



प्रकाशक

यशोधर मोदी

मैनेजिंग डायरेक्टर,

हिन्दी प्रेस एलाकर प्राइवेट लिमिटेड,

पार हिन्दीप्रगती • फोन ३८५३६ • पो० बॉ० ३६२२

रोडबाय

—

बम्बई-४

शाखा प्रजमवन, दयानम्य रोड, २१ दरियागज, विस्ती-६

•

लेखक

डा० सी० एस० प्रभात

प्रमुख हिन्दी विभाग

वे० सी० कालेज,

बम्बई

•

संस्करण

जनवरी १९६५, प्रथम

इसकीस रुपये

•

मुद्रक

अमृतलाल परमार

सिपई प्रेस

४६८ मद्रास

जबलपुर

प्रकाशक

यशोधर मोदी

मैनेजिंग डायरेक्टर,

हिन्दी प्रेस एलाकर प्राइवेट लिमिटेड,

पार हिन्दीप्रगती • फोन ३८५३६ • पो० बॉ० ३६२२

रोडबाय

—

बम्बई-४

शाखा प्रजमवन, दयानम्य रोड, २१ दरियागज, विस्ती-६

•

लेखक

डा० सी० एस० प्रभात

प्रमुख हिन्दी विभाग

वे० सी० कालेज,

बम्बई

•

संस्करण

जनवरी १९६५, प्रथम

इसकीस रुपये

•

मुद्रक

अमृतलाल परमार

सिपई प्रेस

४६८ मङ्गाठाल

जबलपुर

# अनुक्रम

[ एक पृष्ठ-संख्या के सूचक हैं ]

## [ १ ] पृष्ठसूचि

राजनैतिक परिस्थिति १ आर्थिक परिस्थिति ६ सामाजिक स्थिति ७  
शिक्षा १२, पूर्व और उत्तर १२ दार्शनिक परिस्थिति १३ आत्मिक  
पृष्ठसूचि १३ साहित्य १७ संगीत १७ स्थापत्य तथा चित्र १८  
विश्वकला १८ ।

## [ २ ] जीवन-वृत्त अध्ययन के आधार

मीरा-सम्बन्धी सामग्री का वर्गीकरण १६

कवियों और ज्ञानों द्वारा उल्लेख—कबीर २० सेनापति २२ नरसिंह  
मेहता २३ सुरदास २३, हरिराम व्यास २४ कवि विष्णुदास  
कृत कुंवरकाव्य मीरा—२६ श्री हित ध्रुवदास २७  
एकनाथ महाराज २६ तुकाराम २६, श्री नितीश महाराज ३०  
बेलीमाधवदास कृत मूस गोसाईं चरित ३०, कृष्णदास कृत 'पौरुष  
चरित्रिका' ३२ श्रीमच्छाल तथा उसकी टीका, दिव्यप्रिया और  
दृष्टान्त ३३ मामादास कृत भक्तमाल ३६ त्रिपादास कृत भक्तमाल  
की भक्तिचर्चोपनिषद् टीका ३७ वीरदासजी कृत भक्तमाल का  
दृष्टान्त ४२, श्री मयकाण्ठ दिव्य ४६, राधादास कृत भक्तमाल ५०  
चमदास की टीका ५१ छंद चरित्र साहब ५३ नामदीदास ५४  
वसन्त-सम्प्रदाय का आर्त्ता-साहित्य (रचनाकार और रचयिता) ६१  
मीराजी वीरदास की आर्त्ता ६६ हरिदास का वद ६८ रामदास  
मालस कृत मीरप्रकाश ६९, कुंवरों के वीर ७० गरीबदास ७१  
महीपति कृत भक्तसीतामृत ७२, सीपी मामा कृत चरित्र-मीराबाई  
७३ मीराबाई की परची ७३ हमाराम ८० राधाबाई कृत मीराबाई  
महात्म्य ८२ जयचन्द ८३ मीरा-वैराजी संवाद ८३ भक्ति महात्म्य  
चरित्रदास ८६ बयादास जनसङ्ग्रह ८७ भक्तमाल ८७ मुन्दरदास  
कायस्थ ८८ छोटमदास ८९, प्रीतम ८९ ब्रह्मावर ९० हरिदास  
९० पतराम के मीरा-सम्बन्धी भजन ९१



लोकगीतों में भीरु-सम्बन्धी उल्लेख	१२
धनुश्रुतियाँ भीरु भीरु	१६
इतिहास-ग्रंथ—राजनीतिक इतिहास—भुवनेश्वर नैगसी की कथा १७ ऐनस एंड एंटीक्विटी धौब रासत्याग १८ रासमाथा १००	
बीरबिनोद १०१ बीरबिनोद के परचा १०३ हिन्दी साहित्य के तीन प्राचीनतम इतिहास १०४ ग्रन्थ प्रमुख इतिहास १०६, इतिहासेतर ग्रंथ १०७ सिलालेख १०७ धाँवर के जगदीशजी के मन्दिर का विस्तार १०८ मेड़ते की भीरु की मूर्ति पर जुआ के १०९	
रामपत्र	१०९
किशनमङ्ग संग्रह का चित्र	११०
प्रसस्ति-पत्र	१११
अन्त-साक्ष्य	१११

### [३] जीवन-वृत्त रूपरेखा

जन्म-तिथि ११३ विभिन्न विद्वानों के मत ११३ माटीं हाथ उल्लेख ११६ निष्कर्ष ११९,	
जन्म-स्वाध्याय और प्रारम्भिक शिक्षा-स्थल ११९ कासकोट सम्बन्धी भ्रम ११९	
भीरु का पितृ-कुल १२० मारवाड़ के राजा १२० मेड़तिया घाटा का प्रारम्भ—रावबूवाजी १२१ भीरु के पिता १२१ एक भ्रम १२३ भीरु की माता १२४, माई-बहन १२६, परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति १२७ दीधन १२८ विवाह १२९ तिथि १३२	
भीरु का स्वसुर कुल १३२ पति—तीन मत १३३ निष्कर्ष १४१ क्या भीरु के पति मोहराज पाटनी कुँवर थे ? १४२ भीरु के जीवन संघर्ष १४९, विधवा १४९,	
ग्रन्थ घटनाएँ—नाम प्रथम १६० बीराम भीरु मक्ति की तीव्रता १६२ चित्तौड़ त्याग १६३ तीर्थ-यात्रा १६४	
भीरु की मृत्यु १६५—रामानन्द १६५ संत रैदास १६९ रैदासी संत विद्वत् १८ हरिदास वर्मा १८४ माधवपुरी १८३, भीरुध्वज १८७ जीवगोस्वामी १८९, पुरोहित गजानन १८९, देवाजी १९ सोदागुन १९	

भक्तों तथा सन्तों से भीरी का सम्पर्क—देवादा १६१, रामदास १६६, मोदिन्द बुब साचारण ब्राह्मण १६७ कृष्णदास धर्मिकाये १६८ हितहरिबंग घोर हितहृत्ग्राम व्यास १६८ श्रीरंगोस्वामी २०० स्वामीस्वामी तथा सनातन पोस्वामी, २०१ जमनाय २०४ भाषवेन्द्र तथा भाषव २०४ रामानन्द, श्रीमानन्द घोर भाषवाचारण २०४ धनबहुंहरि बाई २०४ बिटलम २१,

धर्मोक्ति घटनाएँ २०६

कुछ धार्मिक प्रसंगोत्प्रेक्ष—क्या २१२ ब्रह्मचर को बाटी में उल्लिखित 'जैमल की बेन' भीरीबाई थी? २०८ धनवर-दानसेन घोर भीरी २११ तुलसीदास घोर भीरीबाई २१४ गरखी मेहुता घोर भीरी के बीच पत्र-व्यवहार २१७

भीरी की धनवरंग सतिषाँ घोर लेखिकाएँ—मिबुसा १६, सतिषा २१६ भीरी की मृत्यु कही, कैसे घोर कब? २२१ मृत्यु तिथि—साहित्य कारों के अनुमान २२१, भाटों के उत्प्रेक्ष २२७ निष्पत्ति २२८।

## [४] रचनायें साहित्यिक कृतित्व

संग्रह-केन्द्र १२१

प्रमुख प्रकाशित संग्रह घोर उनके आधार २११

स्पष्ट पत्र-परिचयों तथा प्रोजेक्ट-रिपोर्टों में प्रकाशित

भीरी के पत्र २६२

धन्य २४

प्रकाशित संग्रहों के अंत २४१

भीरी के पत्र की हस्तलिखित प्रतियाँ २४१—विद्यामया भद्र प्रहमरा बाप में मुद्रित प्रतियाँ २४१, बाही लक्ष्मी भाषवेन्द्र नरिवाड का संग्रह २४६, धनव गुजराती समा बम्बई में मुद्रित हस्तलिखित-ग्रंथ २४७ भीरी के पुरोत्तम विद्याम भाषवी का वैयक्तिक संग्रह २४८ रामदासी सतीषन मण्डल की प्रतियाँ २४६ गुजराती प्रस बम्बई का संग्रह २४० पुस्तक-प्रकाश जोधपुर का संग्रह २४० भाषवी प्रचारिणी समा का संग्रह २४१ रामदास बासी भाषवी उदयपुर २४१ पुण्यतरंग मंदिर जोधपुर २४१ स्पष्ट प्रतियाँ १२ प्रो० सतिषाप्रसाद मुकुत द्वारा प्रकाश म लाई १६ प्रतियाँ २४१ थी

भोकबोलों में भीरी-तन्वन्वी उल्लेख	१२
प्रभुभुतिर्षी और भीरी	१६
इतिहास-ग्रन्थ—राजनीतिक इतिहास—मुहल्लोत नैनवी की कथा	
१७ ऐनस एंड एंटीक्विटी और राजस्वाम १८ रासमाता १००	
वीरबिजोद १०१ बीरबिजोद के परचाव १०३ हिन्दी साहित्य के	
तीन प्राचीनतम इतिहास १०४ ग्रन्थ प्रमुख इतिहास १०६,	
इतिहासेतर ग्रंथ १०७ प्रिलालेख १०७ धामेर के जयवीरजी के	
मन्दिर का सिंहालेख १०८ मेड़ते की भीरी की मूर्ति पर कुवा	
केस १०९	
बालपत्र	१०९
किन्नरपद संप्रदाय का चित्र	११०
प्रशस्ति-ग्रन्थ	१११
प्रत्यक्ष	१११

### [३] जीवन-वृत्त सम्प्रेषण

जन्म-तिथि ११३ विभिन्न विद्वानों के मत ११३ मादों द्वारा उल्लेख  
११६ निष्कर्ष ११८,

जन्म-स्थान और प्रारम्भिक निवास-स्थान ११६ कामकोट तन्वन्वी  
ग्राम ११८,

भीरी का पितृ-कुल १२० मायबाप के राठोड़ १२० मेड़तिया राजा  
का प्रारम्भ—उबबुवाजी १२१ भीरी के पिता १२२, एक भ्रम १२३  
भीरी की माता १२४, माई-बहन १२६, परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति  
१२७ दौलत १२८ विवाह १२९ तिथि १३२

भीरी का स्वभुर कुल १३२ पति—तीन मत १३३ निष्कर्ष १४१  
क्या भीरी के पति मोहराज पाटवी कुँवर थे ? १४२ भीरी के जीवन  
संघर्ष १४८, विधवा १४९

ग्रन्थ ग्रन्थार्थ—नाग प्रसंग १६० बैराग्य और भक्ति की तीव्रता १६२  
बितीरु रथान १६३ तीर्थ-यात्रा १६४

भीरी के गुरु १६८—रामानन्द १६८ संत रैदास १६९ रैदासी संत  
बिदूत १८० हरिदास वर्मा १८४ मायबपुति १८५ मोरकुम्भदास  
भक्त १८७ श्रीगोस्वामी १८८, पुरोहित बजावर, १८८, देवाजी  
१९ शोणामुख १९

भक्तों तथा सन्तों से मीरा का सम्पर्क—देवादा १६५, रामदास १६६, वासिन्ध दुबे साबौरा ब्राह्मण १६७ कृष्णदास धर्मिकाय १६८ हितहरिबंद और हितहरिराम व्यास १६८ जीवयोस्वामी २०० रूपयोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी, २०३ जंमनाथ २०४ माधवेन्द्र तथा माधव २०४ रामानन्द, गोमानन्द और माधवाचार्य २०४ धनबहुवरि बाई २०४ बिट्ठल २०५,

असौधिक घटनाएँ २०६

कुछ अप्रामाणिक प्रसंगोत्प्रेक्ष—क्या ७२२ बीप्सबन की बाटी में उल्लिखित 'जीमल की बेन' मीराबाई की? २८ धनवर-दानसेन और मीरा २११ तुलसीदास और मीराबाई २१४ नरसी मेहता और मीरा के बीच पत्र-व्यवहार २१७

मीरा की घन्तरय सजियाँ और सेविकाएँ—मिथुना १६, मतिठा २१६ मीरा की मृत्यु कहाँ, कैसे और कब? २२३ मृत्यु तिथि—साहित्य कारों के अनुमान २२५, माटों के उत्प्रेक्ष २२७ निष्कर्ष २२८ ।

## [४] रचनायें साहित्यिक कृतित्व

संग्रह-केन्द्र १२३

प्रमुख प्रकाशित संग्रह और जनक धायार २३३

छुट पत्र-परिभाषों तथा लोत्र-रिपोटों में प्रकाशित

मीरा के पद २४२

ग्रन्थ २४

प्रकाशित संग्रहों के लोत्र २४६

मीरा के पद की हस्तलिखित प्रतियाँ २४५—विद्यामया मद्रास प्रहमदा बाई में मुरलिनथ पोडिया २४५, काही नरसी माधवेरी मरियाड का संग्रह २४६, फार्बस गुजराती समा बम्बई में मुरलिनथ हस्तलिखित-ग्रंथ २४७ श्री सैठ पुडोत्तम विद्याम माधवी का वैयक्तिक संग्रह २४८ रामदासी मणोबन मण्डन की प्रतियाँ २४६ गुजराती प्रस बम्बई का संग्रह २५० पुस्तक-प्रकाश जोधपुर का संग्रह २५० नागरी प्रचारिणी सभा का संग्रह २५१ रामदारा धामी कावडी उदयपुर २५१ पुरातन मंदिर जोधपुर २५१ छुट प्रतियाँ २५२ प्रो० लमिताप्रसाद मुकुम द्वारा प्रकाश म लाई नई प्रतियाँ २५३ श्री

हरिनामसमूह पुरोहित अकपुर का संग्रह २५३, धर्म ग्रंथों की हस्त लिखित प्रतियाँ २५५,

मीराबाई की रचनाएँ—गीत गोविन्द की टीका २५६ मरसी महता का मायरा २५६, मरसी महताचि हुंडी २७२ समणी-संमत २७५, राग सोरठ का पद २७६, मीराबाई का मभार राम २७७ मीराबाई की गरबी २७७ रागगोविन्द २७६ फुटकर पद २८० निष्कर्ष २८० कृतियों का पाठ २८०

मीरा की प्रतियों के वर्गीकरण के आधार—पूर्ण प्रतियाँ या संकलन २८२ विषय क्रम से या स्पष्ट रूप से २८२, विभिन्न सम्प्रदायों में लिखित प्रतियाँ २८३ लिपिकारों की मातृभाषा तथा संकलन का भाषाक्षेत्र २८५, प्रक्षेप-सम्बन्ध के आधार पर वर्गीकरण २८५, प्रलिप्त ग्रंथों की समस्या २८६ मीरा के बाद की बटनाओं के उल्लेख वाले पद २८७ संवादात्मक मीरा २९० लिपिकारों की असावधानी २९२ मीरा नाम के उल्लेख मात्र से मीराकृत कहे जाने वाले पद २९३ निम्न भाव-तत्त्व २९५, भाषा की दृष्टि से २९७ धर्म कवियों के वह जो मीरा के नाम से प्रचलित हैं २९८ प्रस्तुत अध्ययन की आधारभूत प्रतियाँ २९९।

## (५) साधना-पथ

आराध्य ३ २ कृष्णोपासकों का मत ३ २ रामोपासकों का शास्त्र ३०३ संत-सम्प्रदायों के कथन ३ ४ लोकमत ३०४ मीरा का वक्तव्य ३०५, मीरा के जीवन का शास्त्र ३०६ नाम-रूप ३ ६ अकताटी रूप ३०७ विष्णुत्व ३ ८, हरि अभिनाशी अगम रूप ३१ रूप और सम्ज्ञा ३१०

लौला की संगिनी मुरली ३११

लौला-भूमि कुम्हारन ३१३

साधक ३१५ जीव-कोटि ३१६ साधक जीव ३१७ राधा ३२१

पुनर्जन्मवाद ३२६ कर्म सिद्धान्त ३२७ सार्वना क काण्ड ३२८

अक्ति-वदति ३३१ भक्ति का अर्थ ३३२ मीरा की भक्ति ३३४ मन्त्रा

भक्ति ३४४ एतादृश आराधना ३४४ प्रपत्ति ३४५ पंचकर्म ३४८

प्रमत्तप्राप्तिक के साधन ३४६, प्रमाणसहायक ३४९ अन्तराय बाधा

और निषेध ३४९

पूर्व प्रचलित विचारधाराएँ और मीरा की साधना—बैदिक प्रमाण पर आधारित दर्शन और मीरा ३३४, भाषावैज्ञानिक गोपाल मल्लि से साम्य ३३६ नैतन्यमत ३३८, ईशान्विचार ३६७ बैदिक प्रमाण को धत्वीकार करके अपने बानी पद्यविषय ३६३ भाष्यमत ३६३ सत्य-मत ३६४ विवेकी दर्शन ३६६, सूत्रीमत ३६७ निष्कर्ष ३६८ भक्ति-परंपरा और मीरा—भक्ति का उद्भव और विकास ३६८, भारतीय भक्त परंपरा और मीरा ३७४—बैदिक और पौराणिक ३७४ तृतीय उत्थान के भक्त ३७६, मीराबाई तथा गोदाग्रन्थाल ३७७ चतुर्थ उत्थान के भक्त ३७८, मीराबाई-संप्रदाय—३८२।

## [६] काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति

- ✓ भाषा-बोध और अनुभूति ३८७—एकान्तिक संयोग ३८४ विमोह ३८६ मीरा की रहस्यनायना ४०२,
- ✓ पद-रचना ४०६—पद परंपरा का उद्भव और नामकरण ४०६, विकास ४१०, मीरा के पदों में राग ४१६ मसहार राग ४१६, समय सिद्धांत ४१८, भाषाशुद्ध राग ४१८,
- ✓ नीति-तत्त्व ४२० मीरा में नीति-तत्त्व—आत्मानुभूति और संवर्धित भाषाविवेक ४२१, नेमदा ४२३ अभिव्यक्ति और संवर्धित ४२४ प्रकार और कोटि ४२३,
- छन्द-विधान—छन्द की दृष्टि से वर्गीकरण ४२८ परंपरागत छंद प्रयोग ४३० नवीन छंद ४३३ पूर्व प्रचलित छंद-पद्यविषय और मीरा के पद ४३३,
- भाषा का स्वरूप [१९८५ वि० की प्रति के आधार पर]—मंजरा के रूप ४४६ सर्वनाम ४४६ क्रिया ४४९, एक निश्चित प्रयोग ४४२, निष्कर्ष ४४३ शब्दावली ४४३ मुहावरे और मोकोक्ति ४४६ बर्ण-श्रुति ४४९ भाषावैज्ञानिक ४४९, भाषावैज्ञानिक ४४९,
- शब्द-भक्ति—मनिषा ४६३, मसदा ४६३, व्यञ्जना ४६६ विग्रह—धार्मिक के विषय ४६७ अनुमान के विषय ४६८ प्रकृति विग्रह ४६८,
- विश्व-मोक्ष—विशेषज्ञा ४७० प्रकार ४७१ धर्मसुत-विधान—४७३

कल्पना—४७६,

उल्लिखित सौंदर्य—४७७

शास्त्रीय कविकोशियाँ और मीरा—४७८,

मीरा के काव्य का सामाजिक मूल्य—४८१ ।

## [७] तीन परिशिष्ट

परिशिष्ट [१] मीरा द्वारा सेवित मूर्तियाँ ४८६—बलुर्मुवाजी के मंदिर की मूर्तियाँ ४८७ हारिका की मूर्ति ४८८ डाकोर की रणछोड़ जी की मूर्ति ४८८ धिबराजपुर की घट्टमूला मूर्ति ४९० धराराज स्वामी की मूर्ति ४९१ जयवीरजी के मंदिर की मूर्ति ४९२ घामेर के जगत खिरोमणजी के मंदिर की मूर्ति ४९२, चित्तौड़गढ़ की मूर्तियाँ ४९४ अन्य ४९४,

परिशिष्ट [२] मीरा-पूर्व हिन्दी-कृष्ण-काव्य—विभिन्न घाटाएँ ४९८ सूत्रिमाना कृष्ण-काव्य ४९८, शृंगारिक कृष्ण-काव्य ५०० चैन दृष्टि से रचित कृष्ण-काव्य ५०० नावतंत्रबाय से प्रभावित कृष्ण-काव्य ५०३ जयदेव ५०३ विद्यापति ५०६ नामदेव ५०७ छंदरदेव ५०७ सदाका कर्तार ५०८ चन्द का दसम ५०८, विष्णुदास ५१०, जीम ५१२ कुंभनदास ५१२, सूरदास ५१३ तरबवेचा ५१४ लालनदास ५१४ नरसिंह मेहता ५१५, भावरा ५१६ केराब हरेराम ५१८,

परिशिष्ट [३] मीरा का प्राचीनतम चित्र तथा प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतिमें के १ पृष्ठ के चित्र

संदर्भ-ग्रंथ—हिन्दी ५२१, संज्ञा ५२७ ।

## राजनीतिक परिस्थिति

मीरा कभी राजनीति के पंथ पर नहीं बसी। जिसे भौतिक भोग का प्रति ही धामस्ति न हो उस राजनीति के संघ नहीं उसका संघ। फिर भी उस काल का कोई और विनोदकर राज-परिहार का व्यक्ति राजकीय संघर्ष की सीमा से घट्टा नहीं रह सकता था। मीरा के विवाह-संबंधी निरुप और उनके जीवन के अंतिम संघ की परिस्थिति के निर्धारण में धार्मिक रूप से तत्कालीन राजकीय स्थिति का भी हाथ था।

मीरा के युग की उत्तर भारतीय राजनीति का मूल स्वर था बीरता और बलिदान न परिपूर्ण संघर्ष।

राजस्थान में व्याप्त यह संघर्ष दो प्रकार का था

(क) मुगलमानी राजाओं और विनोदकर तत्कालीन दृष्टि से विदेशी मुगल राजसत्ता का राजपूतों से संघर्ष और (ख) राजपूतों के आन्तरिक झगड़े।

प्रगति और अराजकता इन सभी संघर्षों का दुनिया का फल था।


मध्ययुग में उत्तर का प्रमुखतम और केन्द्रीय राज्य था दिल्ली का। पर फीरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली राज्य में सम्बन्ध कुछ रियासतों स्वतंत्र भी हो गयीं जिनमें प्रमुख थी जौनपुर, मातवा मुजफ्फर बखान बादमीर, खड़ीका बमरपुर तथा आगाम बसिली राज्य तथा राजस्थान।<sup>1</sup> प्रमुख प्रमंग में हमारा विशेष संबंध राजस्थानी राजनीति से ही है।

उस समय राजस्थान में डेढ़ दजन से अधिक स्वतंत्र हिन्दू राज्य थे। इसमें सबसे प्रमुख थे मेवाड़ और मारवाड़ के राज्य। ये दोनों बहुत दिनों तक बहुत कुछ घातों में राजस्थानी राजनीति के नियामक थे। मीरा का संबंध इन्हीं या राजवंशों से था। जोधपुर के राठोड़ वंश की मङ्गिया राजा में वे पत्नी उसी में उनका सौगात बीता और मेवाड़ के राजा-परिहार में उनका विवाह हुआ। इन राज्यों की संघर्षमय राजकीय परिस्थितियों ने मीरा की जीवन राह को अनेक प्रकार से प्रभावित किया।

(१) विस्तृत विवरण के लिए देखिए—मुस्ताफे अहम डेनहू, पृ० एन०



मीरा के जन्म के समय मेवाड़ के सिंहासन पर रायमल बिराजमान था। वह सन् १४७३ में राजगढ़ी पर बैठा था।<sup>१</sup> उदयपुर के कमिश्नर के मुहाफिजाने में सुप्रीमट एल्फासीन जामी राजपूतों से सात होता है कि उस समय राज्य में शोचनीय आर्थिक दशा थीर चिन्ताजनक दुर्यवस्था थी।<sup>२</sup> अन्तिम 'कुल कानन पंचानन' 'हिन्दुमुराण'<sup>३</sup> महाराणा कुमा के समय की औरबमयी स्थिति की पितृवारी उन्हा कर्मकित कर ही चुका था। रायमल भी ३६ वर्ष के राज्य-काल में (मृत्यु ईस्वी १५०६) अपने पितागृह की महिमा को नहीं पा सका। उधर मारवाड़ में राज जोधाजी के बाद राज सातल भी थीर राज सूबाजी का समय राजकीय उत्थान की दृष्टि से सामान्य ही था<sup>४</sup> पर साथ ही सोबीबदी मुनतान सिकंदर के सासन में दिल्ली राज्य भी इतना क्षतिग्रामी नहीं था कि राजस्थान के मामलों में हस्तक्षेप कर सके। वे प्रांचलिक राज्य को किसी समय दिल्ली सल्तनत के ग्रंथ से अथ स्वाधीनता की मांग कर रहे थे। इसके फलस्वरूप सममें प्रापस में एक दीबबामीन संघष बना। मामबा और बुजराठ के राज्य इस समय विधेय रूप से सक्रिय थे और उनके वासक महमूद द्वितीय तथा मुजफ्फर शाह द्वितीय दिल्ली पर भी अपनी निबाह जमाये थे।<sup>५</sup>

इस समय सन् १५०६ में मीरा के भाबी स्वसुर महाराणा सांवा के हाथ में मेवाड़ राज्य की बागडार प्रावी।<sup>६</sup> वे तलवार के घनी थे सूखा उनके रक्त में समावी थी। अधिकार घाते  राणसदमी ने उनका साथ दिया। कहा जाता है कि उन्होंने दिल्ली और मामबा के सुलतानों के बिच्छ १८ युद्ध जीते थे। बुजरेय मुजफ्फर निबामुस्मुल्क और माड़ू के सुलतान को अनेक बार

- (१) उदयपुर राज्य का इतिहास, ओम्हा, पहली जिल्द, पृष्ठ ३२७
- (२) डॉ० बी० एन० अर्मा : मेवाड़ एंड डी पुगल ऐम्बरस पृष्ठ १२
- (३) वि० सी० १४६६ का राजकपुर के जैन मंदिर का प्रिलालेज (एम्बुग्रल रिपोर्ट प्राथमिक आर्थिकोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया सन् १६०७-८, पृष्ठ २१४ १५)
- (४) उदयपुर राज्य का इतिहास : ओम्हा, प० वि० पृष्ठ ३४६
- (५) मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग, रेड पु० १०४ - ११०
- (६) बी सीन्विज हिस्ट्री प्राथमिक इंडिया ३ रा खंड, पृष्ठ २४३-२४५, और २५२
- (७) उदयपुर राज्य का इतिहास ओम्हा : पहली जिल्द, पृ० ३४७। मुहलोल मेलसी की क्यस्त के आधार पर (वीर बिनोद तथा एम्बर में संवत् १५६७, सन् १५०८ दिया गया है)
- (८) उदयपुर राज्य का इतिहास ओम्हा : पहली जिल्द, पृष्ठ ३५१

मीरा विद्याया या' धीर चारों विद्याधों के विजयी' राजा होकर हिन्दू धर्म के प्रतीक बन गए थे।

इसी बीच बाबर ने लोदी-बंद का अन्त करके मुगल राज्य का मंडा दिम्नी पर गाड़ दिया। इस विषय में तो इतिहासकारों में मतभेद है कि बाबर को महाराणा सांगा ने बुलाया था या बाबर ने दिल्लीपति के विरोध में उस समय के सबसे शक्तिशाली राजा (सांगा) से सहायता माँगी थी पर इतना सत्य है कि शानों एक दूसरे से अतरे से परिचित थे। राणा सांगा ने सन् १५२७ में, बाबर को इस देश से निकालने के लिए अभियान प्रारंभ किया। उन्होंने पहले धाना पर चढ़ाई की और किले को अपने अधिकार में कर लिया। उस समय-काल में मुगलों के विरुद्ध एक राजपूत राजा की यह अंतिम विजय थी। इसके बाद खानवा के युद्ध में बाबर के सामने राणा की पराजय हुई। यह पराजय मेवाड़ की ही नहीं थी समस्त हिन्दू-राज्यों की पराजय थी। इससे उत्तरी भारत के इतिहास में एक नए अध्याय का प्रारंभ हुआ। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् राणा रत्नसिंह सन् १५२८ ईस्वी में जितौड़ की गद्दी का स्वामी बना पर वह केवल तीन वर्ष के बाद ही अपने मामा बूरी के हाँक सूरजमल (जो कि उसके सीतेसे भाइयों की रणभूमि की जागीर की देखभाल करता था) के साथ युद्ध करते हुए मारा गया। इस बीच केवल एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। मामवा पर मेवाड़ की जो शाक थी वह समाप्त हो गयी। रत्नसिंह के निस्संतान होने ॥ उसका छोटा भाई विजयसिंह रणभूमि से भागकर वि० सं० १५८८ (ईस्वी १५६१) में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। शासन करने के लिए वह विमकुल अधोगत था। अपने विजयसिंहों के अतिरिक्त उसने दरबार में सात हजार पहलवानों को रख लिया जिनके बल और अपने छोटे पन के कारण वह सरदारों की हिम्मा जगाया करता था जिससे वे असमर्थ होकर अपने-अपने टिकानों में बसे गये और राज्य-व्यवस्था बहुत बिगड़ गई।

(१) अमरकाम्य बंभावली मुहफ्फर गुजरेरां जित्वा तद् शिबिरं बहत्—  
(एपीरंफिया इंडिका—पृष्ठ ६८ से ७३ पृष्ठ)

(२) 'इब्राहीम पुरब दिला न उलटै पादम मुबारक न बी पयाण  
बलली महमदसाह न बीड़े सामो दानए बहू सुखाए'  
—महाराणा मल प्रताप : ठाकुर भूरसिंह काकाबल, पृष्ठ ६६

(३) उदयपुर राज्य का इतिहास, घोषा, पृ० ३८८ कर्नस टाब ने १५२६ ईस्वी (१५८६ वि०) को राज्याभिषेक मना है।

(४) बही, पृष्ठ ३६४

मीराबाई को भी इस राणा ने बहुत नष्ट दिया था। इसके राज्यकाल में बहादुरशाह ने दो बार चित्तौड़ पर घाक्रमण किया। पहली बार तो वह मेंट सेकर सौट गया।<sup>१</sup> दूसरी बार उसने चित्तौड़ के किले को अपने अधिकार में ही कर लिया।<sup>२</sup> पर हुमायूँ उसके पीछे पड़ गया था इसलिए वह बोझी-सी सेना चित्तौड़गढ़ में रककर आया। मंदसौर में हारकर मांडू बम्पानेर और समात होता हुआ बीच के टापू में पहुँचा जहाँ से सौटते समय समुद्र में मारा गया।<sup>३</sup> इस समाचार को सुनकर मेवाड़ के सरदारों ने फिर चित्तौड़ पर पाँच-साठ हजार सेना एकत्र कर अधिकार कर लिया और बिक्रमादित्य को यही पर बैठ दिया।

राणा बिक्रमादित्य कुसंगति में पैसा था। मौका पाकर पृथ्वीराज के अनारस (पासवानिया) पुत्र ने उसे सनवार के बाट उतार दिया। पन्ना बाय के प्रयत्न से उसका शिष्टपुत्र उदयसिंह कुंभननेर के किलेवार के पास पहुँचकर बच गया करता इस बंध का भंग हो गया होता।

बखीर सफुमीन और साब ही बमबी था। सरदार उसे नहीं चाहते थे। अंत में मावसी में कुछ हुआ और उसे भापना पड़ा। कुछ कहते हैं कि वह मर गया। कुछ भी हो चित्तौड़ का राज्य सन् १५४ में उदयसिंह को मिल गया।<sup>४</sup>

उदयसिंह एक सामान्य राजा था—न वह बड़ा वीर था और न राज नीतिज्ञ। उसका जीवन विमोह और संघर्ष की एक व्यापक कहानी है। राज्य पाते ही उसे ओधपुर के राज मानदेव से युद्ध करना पड़ा पर इस (कुंभननेर के युद्ध) में उसकी विजय हुई।<sup>५</sup> बड़े समय बाद हाजी खाँ से युद्ध हुआ जिसमें मानदेव ने हाजी खाँ की मदद की और राणा को जन-जन की हानि के साथ सौटना पड़ा।

उत्तर उत्तर भारत में शेरशाह का उदय हुआ। वह हुमायूँ को दो बार पराजित करके उत्तर भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने में लगा हुआ था। मेवाड़ को भीतर से कमजोर-कूलने का व्यवहार मिल भी नहीं पाया था कि शेरशाह ने घाक्रमण कर दिया। राणा ने किले की चालियाँ उसके पास भेजकर

(१) हिस्ट्री ऑफ गुजरात बीले : पृ० ३७१ ३७२

(२) वही पृष्ठ ३८३

(३) वही पृ० ३८६-८७

(४) बीर बिमोद, भाग १ पृ० ६३-६४

(५) इस तिथि के विषय में विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद है।

(६) बीर बिमोद, भाग २ पृ० ६५

भारत-समयण की मीन बापला कर ही। घेरसाह भी मीन करके लीट गया।<sup>१</sup> बिछोड़ को यह पराजय दलकर राणा की आर्मे खुसी और उसने एक ऐसे स्थान की खोज की जहाँ रात्रि स चिरन का डर इतना अधिक न हो। इसके फलस्वरूप सन् १५२६ के लगभग उदयपुर की नींव पड़ी।<sup>२</sup> एकदम के बिछोड़ पर आक्रमण के समय राणा उदयपुर आ गया और बिछोड़ के मुगल-अधिकार में पहुँचने के कारण वहीं बस गया। मीरा इसके पूर हो परलोक सिधार चुकी थी।

जहाँ तक मेड़ता की राजकीय परिस्थिति का प्रश्न है, वह बहुत कुछ घासपास की बड़ी रियासतों के ऊपर ही आधारित थी। राज आभाजी के दो पुत्रों (बरसिंह और बुवा) ने सन् १६४१ में मेड़ता कीठा या और पुरानी बस्ती के पास नया मेड़ता नगर भी बसाया था।<sup>३</sup> बरसिंह वहीं का शासक हुआ। उसके बाद बीरमदेव मेड़ता का स्वामी बना। मीरा इन्हीं बीरमदेव के माई एनसिंह की बच्ची थी। यद्यपि बीरमदेव जोधपुरी राठौरों की ही शाखा का था परन्तु मामदेव से उसकी लगन हो गयी और इसके फलस्वरूप मेड़ता सदैव मामदेव के कोप का दुःख परिणाम भोगता रहा। सन् १६६६ में मेड़ता पर मामदेव का अधिकार हो गया। सन् १६४४ में घेरसाह की जोधपुर विजय के बाद यह फिर बीरमदेव को मिला।<sup>४</sup> बीरमदेव के परचाव जयमल मेड़ते का स्वामी बना परन्तु १६६३ में मेड़ता फिर मामदेव के हाथों में पहुँच गया।<sup>५</sup> उसके परचाव जयमल के अनेक प्रयत्नों के बावजूब मेड़ता उसे नहीं मिला। मेड़ता मामदेव से एकदम के हाथों में चला गया और जयमल की मृत्यु में, सन् १६६७ में बिछोड़ दुर्ग की रक्षा करते हुए एकदम की सेना द्वारा मारा गया।<sup>६</sup>

इस युग की राजनीतिक व्यवस्था घासपी मुर्खों द्वारा तो बिपन्न हो ही गई थी। नियम और नीति के ऊपर शक्ति के अधिकार के कारण उत्तराधिकार संबंधी अनिश्चितता राजाओं के पक्ष में राजाओं और मुगलानों की उच्छ्वसिता

(१) मेवाड़ पंडित मुगल एम्बरतः : डा० जी० एन० शर्मा पृ० ६१ ६२

(२) उदयपुर राज्य का इतिहास : श्रीमत् महर्षि विद्वांस पृ० ४२१

(३) मेवाड़ का इतिहास : रेड : पृ० ६३

(४) जोधपुर राज्य का इतिहास : श्रीमत्, प्रथम खण्ड, पृ० २८०

(५) मेवाड़ का इतिहास, रेड : पृ० १३१

(६) वहीं, पृष्ठ १३३

(७) वहीं पृष्ठ १३६ १४१

की सीमा को पहुँची हुई परम स्वतंत्रता और जनता की 'कोठ नुप होय हमै का हानी' वाली बिचछायापूर्ण उदासीनता की नीति के कारण राज्यों में आंतरिक सुरक्षा संतोष और सुनियोजित विकास की प्रक्रिया का अत्यन्त अभाव था। इस राजनीतिक संघर्षों के फलस्वरूप समाज में आर्थिक कष्ट धमुरकितता की भावना और बीरपूजा के भाव प्रबल हो उठे थे। जीवन की संघर्षजन्म निर्मम अनिश्चितता ने आस्तिकता को और बढ़ा दिया था। मुसलमानी विजयों ने एक नयी सामाजिक व्यवस्था और एक नये धर्म को प्रसारित किया जिसने इस देश के परंपरागत धर्म और समाज के सामने अनेक प्रश्न और समस्याएँ खड़ी कर दी।

### आर्थिक परिस्थिति

मीराकासीन राजस्थान की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही का सच्ची। वहाँ की ठाकासीन आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार या धन का उत्पादन और वितरण पर राजपूताने की ऐसीसी और पहाड़ी जमीन बर्षों की कमी यातायात और आबागमन के साधनों की सीमितता के कारण प्रायः अकाल इस प्रदेस को संवस्त कर ले। राजपूताने के पश्चिमी मार्गों में तो यह कहावत प्रचलित है कि वहाँ हर तीसरे बर्ष एक अकाल पड़ जाता है।<sup>१</sup> पुराने समय का एक दोहा भी प्रसिद्ध है जिसमें अकाल स्वयं कहता है कि मेरे पैर पुंगस देश (बीकानेर) बड़ कोठड़ा (मारवाड़) और मुजाएँ बाहड़मेर (जिला भासाती) में स्थायी रूप से हैं और कमी उत्पाद करने पर जोधपुर में भी मिस जाता हूँ परन्तु बीसमेर में तो मेरा ठिकाना है।<sup>२</sup> तुलसीदास जी की भी धासी है कि 'जमि बारहि बार दुकाम परै बिनु धन बुदो सब लोग मरै और 'देव न बपिहि पयनि बए न आमहि धन।'<sup>३</sup> ऐसी स्थिति में आर्थिक कष्ट एक अनिवार्य परिणाम था।

(१) राजपूताने का इतिहास : जगदीश सिंह महलोत, पृ० १२१

(२) पय पुंगस बड़ कोठड़े बाहर बापड़मेर।

जोयो लाहे जोधपुर, ठाको बीसलमेर ॥

(३) इस संदर्भ में तुलसीदास जी की निम्नांकित परिकल्पना भी इष्टम्य है :

सेती न किसान को, मिचारी को न भीत बलि

बनिक को बनिज न जाकर को जाकरी

बीबिका बिहीम भोग, सीबजान सोच बस

बहै एक एवज सों कहीं जाई का करी।

सोसहरीं सती के राजस्थान में राजा समस्त भूमि का एकमात्र स्वामी था। बागीरबार उसकी व्यवस्था के दुनिवार स्वयं थे। किसानों के कुछ सहज प्रकृति प्रदत्त वैयक्तिक अधिकार थे जो राजनीतिक संघर्षों के कारण बहुत धंधों में प्रतिष्ठित तथा सीमित हाव हुए भी उन्हें भूमि के साथ समता के बंधन में बाँधे हुए थे।

देती के प्रतिरिक्त जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण जातीय ज्ञानोद्योगों द्वारा होता था पर इनसे स्वाभौमिक आवश्यकताएँ ही पूर्ण हो पाती थीं। कुछ उद्योगों का राज्याध्यय भी मिला था। ये अधिकतर में सुखोपभोग की सामग्री से संबंधित थे।<sup>१</sup> राजस्थान के कुछ नगर पश्चिमी बंदरगाह तथा उत्तरी भारत के बीच की मस्जिदें थीं। उत्तरी भारत काश्मीर और चीन के मास का योरस फरस तथा अष्ट्रेका के मास के साथ इन स्थानों में लेन-देन होता था। कच्छ व गुजरात के बन्दरगाहों से बजारों के काष्ठित आते थे।<sup>२</sup> उस समय व्यापार के लिए रेश व सड़कों के मुठोते न थे। फिर भी हर राज्य में राहदारी माप हत्तासी व खुंगी (सागर) लगती थी। इससे स्थानीय आर्थिक स्थिति का कुछ उत्कृष्ट मिल जाता था।

मेना उस समय राज्य का सबसे महत्वपूर्ण धंधा थी। इसका सारा खर्च प्रोत्तोगत्वा निम्नान और कारीगरों के ऊपर पड़ता था। युद्ध के काल में तो मूठ मार घादि के कारण इनकी हला बहुत धोचनीय हो जाती थी। मुसलमानी रियासतों के हिन्दू किसानों के लिए भ्रम भी एक अधिगाय था। राजधन के नाम पर मुल्ता मौसबी मुसलमान सरदार भी किसानों की देती के चिरकामीन बनबाह प्रतिधि बने रहते थे। विवरण-संबंधी विषयमाएँ बहुत थी। यह वस्तु एक छोटे-से बर्ग के हाथ में था। ज़ुमदान राजा राज्याधिकारी व्यापारी और साहूबार धन्य-व्यवस्था का नियमन करते थे और समस्त उपभोग के स्वामी बन गये थे।<sup>३</sup> इस प्रकार सने की चिड़िया कहलाने वाले इस दग में समझीबी सामान्य जनता का धोपण अनेक रूप में जान और बनवाने हाता रहता था।

## सामाजिक स्थिति

मोरां के युग में उत्तर भारत की जनता धम की दृष्टि से दो वर्गों में

(१) बी मुस्ताफ़ट धाब डेतही पृ० एल० धीबास्तब, पृष्ठ ३७१

(२) राजपूताने का इतिहास गहलोत पृष्ठ ११८

(३) बी मुस्ताफ़ट धाब डेतही, धीबास्तब पृ० ३७२ ३७३

बैटी थी—हिन्दू धीर मुसलमान । ये बर्ग केवल सामिक ही नहीं थे । बर्ग ने सामाजिक वैषम्य की बीमारों भी इनके बीच खड़ी कर दी थी । यहाँ तक कि कुछ रियासतों में तो इनके सामिक आचार ही नहीं सामाजिक कर्तव्य धीर अधिकार भी मित्र हो गये थे ।

धार्मिक धीर व्यावसायिक दृष्टि से राजस्थानी समाज में निम्नांकित वर्ग प्रमुख थे

(क) सानत तथा बुद्ध व्यवसायी वर्ग

(ख) पुरोहित (हिन्दुओं में ब्राह्मण मुसलमानों में शेख बीनों में ख्ती इसी वर्ग में आते हैं ।)

(ग) भक्त समुदाय—बीराबी बोबी संन्यासी समेनी फकीर आदि ।

(घ) बंसोन्कारक तथा लेखक वर्ग—बारण भाट, मौसीसर, राजन मिरासी ।

(ङ) पायक भर्तक आदि—डोभी हिवड़ा बायरीपातुरी भक्तन कमारत भदि आदि ।

(च) व्यवसायी—व्यापारी

(छ) वस्तकार—कसाकार

(ज) केंतिहर तथा सेवा व्यवसायी वर्ग

उस समय हिन्दुओं में वर्णाश्रम की व्यवस्था थी । आश्रम वर्ग तो सिद्धान्ततः आदर की दृष्टि से देखा जाता था व्यवहार में नहीं था । बर्ग-व्यवस्था प्रचलित थी पर उस पर आघात होने लगे थे और उसमें कहीं-कहीं दरारें भी पड़ने लगी थीं । इसीलिए तुमसी जैसे परंपराग्रिय सुधारक ने कलिकाल के सझरों में वर्णाश्रम वर्ग के धमाक तथा द्युति-विरोध का युद्ध के साथ उत्प्रेक्ष किया है ।

सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक सम्पन्न धीर सुखी वर्ग या घासक धीर मुसलमानी वर्ग । यह वर्ग भोग-भिलास धीर बैभव में मग्न था । 'राजाघों की सत्ता

(१) बरन धरम नहीं आश्रम जारी । द्युति-विरोधरत सब भर नारी ।।

—मनिस, उत्तर काण्ड

(२) पद्माकर घटवि कुछ परवर्ती युग के हैं, भर जनका निम्नांकित छंद इसी राजन्य-वर्ग की पर्याय स्थिति, या उनकी आस्तविक आकांक्षाओं, का चित्रण करता है :

युतयुभी पिल में घसीका है गुलीजन है

बाँवभी है बिक है बिरायन की धाता है,

बड़े त्यों गरजक मित्रा है, लकी सैज है

सरारी है सरा है धीर ध्याता है । आदि ।

म्याय पर नहीं करात बण्ड की शक्ति पर आधारित थी।<sup>१</sup> छत्र धीरे प्रबलता राज-समाज के सहायक और संघीय थे। राजा व्यक्तिगत रूप से भसा भी होता तो धार्मिक और बाह्य संबंध उसे भीन नहीं देते थे। मीरा का जिस रूप से संबंध था वह यही युद्धश्रिय राजपूत मन बर्न था। उसमें मामलों के धर्म दोषों के साथ ही एक सामाजिकता या जो प्रायः अहंकार की सीमा पार कर जाता था। उनकी प्रतिष्ठा के तीन प्रमुख आधार थे

(१) जमीन पर अधिकार (सुबन महलपूर्ण)

(२) स्त्रियों में परदा

(३) उच्च परिवार से विवाह संबंध

उनमें यही सब भी कहावत है

‘जम जहाँ पर पसटता जिया पईता ठाव

यह तीनों दिन मरबय कहा रक कहा राव।

स्त्रियों के धार्मिक समाज का कुमल धर्मशास्त्री बर्न बाह्यता का था जो बर्न के क्षेत्र में एकलव्य समाज था। उनकी व्यवस्था के बिना मात्र भी हिन्दू जीवन का कोई महत्त्व काम सम्पन्न नहीं हो पाता। अनिश्चितता के कारण उस युग में भ्रातृवाद और भ्रातृत्व में लोगों की विषय बढ़ गई थी, जिससे बुद्धिजीवी बाह्यता बर्न के हाथ धीरे मजबूत हो गया थे। यह बग सामान्यतः स्वाभिमानी या पर भ्रातृत्व की आर्थिक परिस्थिति में ‘निगम अनुपासन’ की उद्देश्य करनेवाले व्यक्तिगत शक्ति भी उत्पन्न हो गये थे और ज्ञान तथा ब्रह्म के पथ से हटकर केवल मित्रा के क्षेत्र में उत्तरदायक भी।

वैश्य बग मुन्नी या पर उत्तम सम्मान बाह्यता तथा स्त्रियों की भी नहीं था। वह जगुर या धीरे मृदाकर काम निवास करता था पर उसमें भ्रातृवाद की व्यक्ति भी थे। वैश्यों ने लोह छोड़ दी थी। वह सब धूर्तों का काम सम्पन्न जाता था। ‘सब धीरे काम’ का उत्पन्न करने वाला यह बग बर्न भीरु भी पर्याप्त मात्रा में था। विरोधों की भीमगुहा की धीरे उत्पन्नता इसकी एक स्वाभाविक विषयता-ही बन गयी थी अर्थात् इसमें कि विरोध संबंध धीरे प्रभाव में व्यापार नहीं पकड़ता।

यह बग का दया धर्म्य शास्त्रीय थी। उसकी स्थिति सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से धर्म्य है। अस्वाम्यधर धीरे धर्म्य

(१) ‘साम न दाम न भेद कनि कबल बण्ड करात।

—दोहावली

जात करान नृपान नृपान न राज नमात्र कोई छली है।

—वर्तमानकी उत्तरदायक



वैदी थी—हिन्दू धीरे मुसलमान । ये वर्ग केवल धार्मिक ही नहीं थे । धर्म ने सामाजिक वैषम्य की बीमारों भी इनके बीच काड़ी कर दी थीं । यहाँ तक कि कुछ रिमासलों में तो इनके धार्मिक आचार ही नहीं सामाजिक कर्तव्य धीरे अधिकार भी मिश्र हो गये थे ।

धार्मिक धीरे व्यावसायिक दृष्टि से राजस्थानी समाज में निम्नांकित वर्ग प्रमुख थे

(क) सामंत तथा मुख व्यवसायी वर्ग

(ख) पुरोहित (हिन्दुओं में ब्राह्मण मुसलमानों में शैयद जैनों में मंत्री इसी वर्ग में आते हैं ।)

(ग) भक्त समुदाय—बैरागी बोगी संन्यासी समेती फकीर आदि ।

(घ) बंशोच्चारक तथा केसक वर्ग—बारण भाट मोरीसर, राजल मिठसी ।

(ङ) गायक भक्त आदि—डोली हिवड़ा जागरिपातुरी भक्तन, कलावंत मीड़ आदि ।

(च) व्यवसायी—व्यापारी

(छ) हस्तकार—कलाकार

(ज) खेतिहर तथा सेवा व्यवसायी वर्ग

उस समय हिन्दुओं में वर्णाश्रम की व्यवस्था थी । आश्रम धर्म तो सिद्धान्ततः आर्य की दृष्टि से देखा जाता था व्यवहार में नहीं था । वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी पर उस पर आघात होने लगे थे धीरे उसमें कहीं-कहीं बदरों भी पड़ने लगी थीं । इसीलिए तुलसी जीसे परंपराग्रिय सुधारक ने कलिकाल के लक्षणों में वर्णाश्रम धर्म के अभाव तथा भ्रुति-विरोध का ब्रह्म के साथ उत्प्रेषण किया है ।<sup>१</sup>

सामाजिक दृष्टि से सबसे धार्मिक सम्प्रदाय धीरे सुन्नी वर्ग का साधक धीरे मुसलमानी वर्ग । यह वर्ग भोग-विनाश धीरे बैसन में मग्न था ।<sup>२</sup> राजाओं की सत्ता

(१) बरम बरम नहिं आश्रम जारी । भ्रुति-विरोधरत सब नर नापी ॥

—मानस उत्तर काण्ड

(२) पद्माकर यद्यपि कुछ परधर्ती युवक हैं पर उनका निम्नांकित छंद इसी राजस्य-वर्ग की पारार्थ स्थिति का उनकी वास्तविक आकांक्षाओं का चित्रण करता है :

मुसमुसी गिल में धलीया हैं मुलीजन है,

बाँवणी है चिक है चिरायन की माला है

कहीं ल्यों गजक निजा हैं, सभी सेज हैं,

सुराही हैं, सुरा है धीरे प्यासा है : आदि ।

म्याम पर नहीं, कराल दण्ड की शक्ति पर आधारित थी ।<sup>१</sup> उस घोर प्रबलना राज-समाज के सहायक घोर संगी था । राजा व्यक्तिगत रूप से भसा भी होता तो धार्मिक और बाह्य संबंध उसे जीन नहीं देते थे । भीरा का जिस वर्ग से संबंध था वह नहीं मुख्यतः राजपूत अंतर्गत वर्ग था । उसमें सामन्तों के श्रेष्ठ लोगों के साथ ही एक आत्माभिमान या जो प्रायः घृहकार की सीमा पार कर जाता था । उनकी प्रतिष्ठा के तीन प्रमुख आधार थे

(१) क्षत्रीय पर अधिकार (सबसे महत्त्वपूर्ण)

(२) स्त्रियों में परदा

(३) उच्च परिवार से विवाह संबंध

उनके यहाँ सब भी कहावत है

‘ब्रह्म जहाँ पर पसटता गया पड़ता ताव

वह तीनों दिन मरवरा बड़ा रंक कहा राज ।

क्षत्रियों के धार्मिक समाज का दूसरा शक्तिधारी वर्ग ब्राह्मणों का था, जो वर्म के क्षेत्र में एकदम सत्तावादी था । उनकी व्यवस्था के बिना राज भी हिन्दू जीवन का कोई महत्त्व काय सम्भव नहीं हो पाता । अनिश्चितता के कारण उस युग में भ्रमणवादी और भयानकवादी में लोगों की विशेष बढ़ा बढ़ गयी थी, जिससे बुद्धजीवी ब्राह्मणवाद के हाथ घोर मजबूत हो गये थे । यह वर्ग सामान्यतः स्वाभिमान की पर मध्यकाल की धार्मिक परिस्थिति में ‘निगम अनुशासन’ की अपेक्षा करनेवाले श्रुतिवेत्तक द्विज भी उत्पन्न हो गये थे और ज्ञान तथा वर्म के पक्ष से हटकर केवल मित्रा के क्षेत्र में उतरनेवाले भी ।

वीर्य बग सुधी था पर उसका सम्मान ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों जैसा नहीं था । वह चतुर था शीघ्र झुकाकर कार्य निवाप्त लेता था पर उसमें भावनावादी जैसे व्यक्ति भी थे । वीर्यों में सेतो छोड़ दी थी । वह सब धूर्तों का कार्य समझ जाता था । ‘अर्थ घोर काम’ को उपलब्ध करने वाला वह ब्रह्म वर्म भीर भी पर्याप्त मात्रा में था । विरोधों की भीषणता की घोर उदासीनता इसकी एक स्वाभाविक विशेषता-सी बन गयी थी क्योंकि इसलिये कि विरोध संपूर्ण घोर अशांति में व्यापार नहीं पनपता ।

धूर्त वर्म की दशा अत्यन्त दौर्भाग्य थी । उसकी स्थिति सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त ह्रास थी । अस्वास्थ्यकर और वृष्टि

(१) ‘ताम न शम न भद्र नति कबल दण्ड कराल ।’

समझे जाने वाले सेवा-कार्यों की सम्पूर्ण रेखा है उनके बौद्धिक और शारीरिक सामर्थ्य को बाँध दिया था। जीवनयापन के लिए यह साधन अपर्याप्त था अतएव उन्हें सर्वत्र बाह्य-अभिय-वैश्य वर्ग की कृपा का मुखापेक्षी रहना पड़ता था। धीरे-धीरे ये लोग खेती और दस्तकारी के काम भी करने लगे फिर भी उनका आदर समाज में नहीं बढ़ा। पर मीरा के युग में ही ऐसी सामाजिक शक्तियाँ जन्म लीं जो उत्कासीन व्यवस्था में परिवर्तन चाहती थी। ये शक्तियाँ दो प्रकार की थीं

(क) एक थी सद्बुद्ध सच्चरणीय परम्परा-प्रिय सुधारवाधियों की शक्ति जो सामाजिक मर्यादा के अंतर्गत बेबहिहित मार्ग का अनुसरण करते हुए पाठकों को पर्यजित करके सबके लिए कल्याण की व्यवस्था करना चाहती थी। ये लोग शक्ति के क्षेत्र में तो साम्य के पक्षपाती थे पर समाज के अन्य क्षेत्रों में वर्णभेद को ईश्वरीय विधान मानकर सामाजिक वैषम्य की रक्षा करना चाहते थे।

(ख) दूसरा वर्ग उन क्रांतिकारियों का था जो वर्णभेद की दीवारों को ध्वस्त करके सामाजिक वैषम्य की काण्ड से मानवता को सर्वत्र के लिए मुक्त करने के हामी थे। वे हर रुढ़ि हर आडंबर, हर परंपरागत अनुपयोगी रीति पर निर्भयतापूर्वक निर्मम आघात कर रहे थे। उन्होंने स्पष्टतः बोधित किया था कि आचार अत्याचार होकर नहीं निभेगा।

मुसलमानी शासक-वर्ग भी विमासी था। विजय के पश्चात् शासन और न्याय-व्यवस्था अमीरों मुस्लाओं और काबिलों पर छोड़कर सुबोपमोय की ओर उन्मुख हो जाता था। मुस्ला और मौलवियों का समाज में विशेष बोर था। इनकी स्थिति हिन्दू पंडित-वर्ग से भिन्न थी। एक सामाजिक परंपराओं को बिगड़ाने होने से बचना चाहता था दूसरा राज्य शक्ति और प्रचार से अपने वर्मानुयायियों की संख्या बढ़ाकर लोक-परलोक सुधारने में रत था। इसीलिए उन्हेमाओं और मुसलमान तरपणियों में घटबंदन था। इनमें से सुधी लोग उत्थार से और बन्ता पर भी इनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक था पर जगमें इतना साहस नहीं था कि वे शासकों की अनीतिके विरुद्ध विद्रोह के स्वर उठा सकें।

वैदिक युग में भारतीय नारी का समाज में एक आदरणीय स्थान था। वह अर्धांगिनी थी। बाब में उस पर पिता पति और पुत्र के रूप में पुरुष ने अपने नियमन के अधिकार की गृहस्थाओं को कड़ा कर दिया। मुसलमानी संस्कृति के भारतीय मिथि पर उचित होने पर यहाँ की सामंतीय परंपराओं में बंबी नारी की स्थिति और भी खोखली हो गयी।

प्रायः कन्या का आगमन परिवार को असम्भत नहीं प्रदान करता था। पुत्रियों को बन्ध बेने वाली भाता का भी विशेष सम्मान नहीं होता था। मकड़ी

बाम की बन्धु बन गयी थी और कन्या-बाम करने वाले परिवार का स्थान बर पक्ष के परिवार से नीचा माना जाता था। चापसी भ्रातृओं और मुर्खों के कारण सङ्घर्षों के सम्मान का प्रश्न सदैव गंभीर बना रहता था और कन्या पर सदैव कड़ी निगाह रखी जाती थी।

ह्रीं माता के रूप में भारी का सम्मान था। राजपूत माताओं ने भीरता और त्याग की भावना से अपने लिये विशेष गौरवमय और आदरणीय स्थान बना लिया था। भी के ब्रह्म की आज्ञा रखता राजपूत अपने जीवन का परम कर्तव्य मानता था।

प्राचीन भारत में परदा की प्रथा कदाचित् प्रज्ञात-ही थी। धरम और सुविज्ञान में इसका प्रचार था। एक नयी भूमि पर घाने पर युवसमानों ने इस और महत्त्व प्रदान कर दिया। हिन्दुओं में यह परदा-प्रवृत्ति एक तो वैयक्तिक भुरदा दूसरे, अपनी समाज-व्यवस्था की रक्षा और तीसरे, राजस्य वर्ग के अनुकरण की भावना से प्रेरित होकर प्रचलित हुई। उच्च वर्ग में परदे का प्रयोग अनिवार्य-सा हो गया था। मध्यवर्गीय समाज में भी इसी परम्परा का प्रभाव पड़ता था। राजपूतों में भी परदा की प्रथा बर करती था रही थी परन्तु उसके पामन में कड़ाई नहीं थी, क्योंकि राजपूत कीर्तनार्थ कटार से अपनी आज्ञा बचाना जानती थी।

हिन्दुओं में बाम-विवाह की प्रथा थी। स्वयं भीरु का परिचय १२ वर्ष की आयु में हुआ था। राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि कन्याओं के बड़ी होने पर सम्मान की अनेक सम्माननार्थ पिता के लिये अनावश्यक चिन्ता का कारण बनी रहती थी। इस बाम-विवाह की प्रथा के कारण कन्या या बर की इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रश्न ही नहीं था। बड़े राजपूत परिवारों में कभी कभी कन्या की इच्छा का भी ध्यान रखा जाता था पर राजनीति और सामाजिक सम्मान के सामने हर प्रकार का बहिष्कार हो जाता था।

हिन्दुओं में सामान्य रूप में बहु-विवाह की प्रथा थी। सामान्य व्यक्ति एक पत्नी रखता था और पति-पत्नी का सम्बन्ध धामरूप होता था। युवसमानों में एक समय पर बार पत्नी रखना तो कम-सम्मत था। अधिक पत्नियाँ निवाह द्वारा नहीं भुनाह द्वारा रखी जा सकती थी। अधिक पत्नियाँ रखना धार्मिक बाध था। पर अधिक पत्नियाँ धार्मिक सम्मान और वैभव का प्रतीक मानी जाती थी। पत्नी के अधिकार सीमित थे। बहु पति की धार्मिकतिनी भीष्मा उसके पुत्रों की समतामयी माँ और बर की धार्मिक व्यवस्था की अधिकारिणी थी। पति उसके लिये स्वयं और अर्पण था। पति की प्रसन्नता और प्रेम के

मिये उसका जीवन समर्पित था। राज परिवार की प्रबुद्ध और साहसी नारियाँ मन्तपुर का ही मृगार नहीं बनी रहती थी। वे पति के मित्र प्रेरक और मंत्र दाता का महत्वपूर्ण कार्य भी करती थीं।

सम्बन्ध-विच्छेद और पुनर्विवाह की प्रथा मुसलमानों में भी पर हिन्दुओं में नारी इस अधिकार से वंचित थी।

पत्नी का सामान्य पति के जीवन-काम में या उसके साथ मर जाने में था। अतएव सती की प्रथा का जोर था। वास्तव में हिन्दू विभवा का जीवन एक जीपण समिन्धाय था। अयंगल की सजीव छाया में बसने वाले उसके असाधारण व्यक्तित्व का उन्हे, लंका और उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था।

## शिक्षा

मीरा के युग में राजनीतिक हलचलों और रात-दिन आपसी झगड़ों के कारण राजकीय स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था संतोषजनक नहीं थी। प्रायः पश्चिम लोग पाठशालाएँ जोस लेते थे और शिष्यों द्वारा गुरु-दक्षिणा और दानों द्वारा अनुदान से ये शिक्षा-केन्द्र चलाते थे। मुसलमानों के शासकों की शिक्षा मक़दनों में होती थी जिन्हें मौखिकी लोग पाठशालाओं की तरह चलाते थे। उच्चतर शिक्षा का आयोजन सामूहिक रूप से नहीं होता था। विद्वानों के निवास-स्थल ही अध्ययन के केन्द्र बन जाते थे। प्रेस के अभाव में हस्तलिखित होने के कारण पुस्तकें संख्या में कम और मुख्य में मौखिक होती थीं।<sup>१</sup> संस्थाओं द्वारा प्रसारित पत्र देने की व्यवस्था नहीं थी वैयक्तिक योग्यता और गुरु के नाम से ही किसी की शिक्षा के स्तर का ज्ञान होता था। अतएव गुरु का महत्व असाधारण था।

## धर्म और उत्सव

हिन्दू जीवन में उत्सवों का विशेष महत्व है। इनसे धर्म संस्कृति और इतिहास ही नहीं सामान्य जीवन भी अनुशासित होता रहता है। मीरा के युग में हिन्दुओं में धर्मतारों के जन्म-दिवस ( रामनवमी जन्माष्टमी ) ऋतुओं से संबंधित महत्वपूर्ण दिन ( बसन्तपंचमी होली गीर, वैशाखी पूणिमा ) तथा

(१) हुमायूँ ने मीरा दलीक़त तुहफ़त-अल-सलतून २५०० ए० में बताया था। राजकीय संप्रदाय में एक पुस्तक का औसत मूल्य २५० रु० था।

—सम एलेक्ज़ेंडर याद तुसाहती एंड कश्कर इपुर्गिद मुसल एब्द

पौराणिक ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित पर्वों पर विषय उत्पन्न मनाने की प्रथा थी। होली का बरगुन वीरों के पक्षों में मिलता है। मुसलमानों के घाने से धरम धीरे धरम के उत्पन्न भी यहाँ प्रभाव पा गया था। राजा महाराजा धीरे मुन्तानों की बरपाठ, विजय-दिबस विवाह तथा गहूँगहूँगी आदि के दिन उत्पन्न के दिन बन जाते थे पर उनका महत्त्व तात्कालिक धीरे स्थानीय विषय था। वैशाख-शुक्ल तीज को भवतिमा राठौड़ माता का प्रवर्तन हुआ थी द्वारा हुआ था। भवतिमा में धर भी उस दिन उत्पन्न मनाया जाता है।

## दार्शनिक परिस्थिति

विजय की १६ धीरे १७वीं धरी को 'स्वर्ण-युग' को कहा दिमाने वाला समय समस्त पृष्ठ काव्य 'भक्ति भावना' की मुक्त समिप्यति है। यह भक्ति भाव धरन में पूरा धीरे धरम आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रतिष्ठित हुआ हुए भी धीरे 'भक्ति भाव' ही नहीं था। उसके पीछे धरम की भी पुनः परंपराएँ थी।

इस युग की राजनीति दो धर्मों की सीमा थी। सामान्य जनता उसके परिणाम से-प्रायः दुष्परिणाम में ही-अभावित होती थी। वही उनका हक का कोई मुख्य नहीं था परन्तु इस काल में भक्ति धीरे धार्मिकता जनता में अधिक व्याप्त थी। वे जन-जीवन के धर्म से अधिक भिन्न नहीं थी। समाज में उनकी जड़ें राजनीति की धरेला अधिक गहरी थी। वीरों के युग में धरम की प्रमुख तीन धाराएँ थीं

(क) वैदिक धर्म का मेकर बनने वाली धारा जिसमें ब्रह्म के व्याख्याता आचार्य धर्म का ईश्वरवाद, रामानुज का विनिष्टईश्वरवाद ब्रह्म का मुदाईश्वरवाद मध्व का ईश्वरवाद धीरे निम्बार्क का ईश्वरवाद समाया हुआ है।

(ख) वैदिक-परंपरा के विरोध में जन्मी धारा जो बौद्धधर्म के महापान सम्प्रदाय से जन्म मित्र भाव धीरे मंत्रों तक धारी। वीरों-युग में इस परंपरा का प्रतिनिधि वर्तन संत-वर्तन था।

(ग) धर्म में धरन वाली धारा जिसमें बा-धरन मुसलमानों की धीरे धरम मूर्तियों की धिता-धाराएँ संयुक्त थीं।

## धार्मिक पृष्ठभूमि

सामान्य धर्म धर्मधर तथा निधेधर्म की मित्रि हो उसे धर्म कहते हैं। इसका धर्मधर भावना धीरे धारम के धर्मधर में है जिससे जीवन

के उच्चतर मूर्त्यों की रक्षा और प्रतिष्ठा होती है। मीरा का युग नास्तिक धार्मिकों का युग था। वे प्राध्यात्मिक जीवन के सरस सुलभ मार्गों का उद्घाटन कर रहे थे। इस समय तक सिद्धों और नाथों की बर्म-मूर्ति उठ नहीं थी। पर तंत्रयात्रियों के तंत्र-मन्त्र जादू-टोना ध्यान-धारणा धारि जनता को घब भी घाकपित करते थे। जीवन की अभिव्यक्तिता से इसे बल मिल रहा था। प्रभुम प्रेय और भूपण भरकर मलामल जाने वाले ऐसे योगी कहलाने वालों की कमी नहीं थी और उनका धावर भी होता था। सूर-सागर में भी इन योगियों की बर्मा है। घासल ध्यान और स्वास की साधना मुद्रा मस्म विपाण मृग बर्म धारण करना और बोरल नाम से प्रमल इनकी विशेषता थी।<sup>१</sup> नाथ-योगियों का वैदिक प्रमाण की अपेक्षा करनेवाली हठयोग की धार का उत्तराधिकार पाकर और वैष्णव भक्ति और भुक्ति प्रेम तत्त्व आत्मसात करके निर्गुणवादी संतमत पनप रहा था। हिन्दू समाज का निम्न वर्ग इससे विशेष प्रभावित था। परंपरा-निष्ठ समुदायादी सुधारक बर्म उससे अपत्यन्त सुख्य और चिन्तित था। तुमसी ने 'साक्षी सबही-बोहरा' तथा 'किहनी उपखान' कहकर 'भुति-सम्मत विरति विवेक संयुत हरिमन्ति पंथ' को त्यागकर अपने वालों की कटु धासोचना की है।<sup>२</sup> निश्चित रूप से 'साक्षी-सबही-बोहरा' कहनेवाले कबीर-रंजी बे और 'किहनी उपखान' कहकर सूखी अपना मत प्रचारित कर रहे थे। बर्णान्तर बर्म के विरोधी और सञ्चारकों की मिथान्त प्रबलमता करने वालों के कारण द्विज-सूत्र का परंपरागत संबंध निम्नबल हो रहा था और बर्ण-निर्णय का आधार बर्म को नहीं बर्म को मानने का उद्बोध होने लगा था।<sup>३</sup>

(१) सूर-सागर सना-संस्करण पृष्ठ, २८६१ ३०६२, ३१२३

(२) (क) प्राध्यात्म-धर बरन-धरम-विरहित जन-लोक-बेद-धरकाय गई है—  
विनयपत्रिका पृष्ठ १३६

(ख) साक्षी सबही बोहरा, किह किहनी उपखान ।  
भगति निरपहि भवत कति निरहि बेद पुरान ॥  
भुति सम्मत हरिमन्ति पंथ संयुत विरति विवेक ।  
तेहि परिहरहि विमोह बल कल्पहि पंथ अनेक ॥

—बोहरावाली बोहरा ३३४ ३३३

(३) (क) बाहरि बूझ द्विजान सन हम तुम्हें कष्ट पाटि ।

बाहरि बूझ सो निग्रह धाँसि विजाबहि बंदि ॥

(ख) सूत्र करहि अप तप सत नागा । कैठि परसतन कहहि पुराना ॥

—रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड

संत मठ के प्रतिरिक्त अन्य मठ भी प्रचलित थे। तुमसी ने 'तामस' धर्म की वर्णना की है जिसमें 'अप तप व्रत मग घोर दान' किया जाता था। सम्भव है कि यहाँ तामस-धर्म से तात्पर्य पावनो या हत्यागियों की किसी शाखा में प्रचलित धर्म से हो। ब्रह्मचर्याश्रम में वैतन्य-वास में बनी विपदुरी तथा बाधुसी आदि स्त्रियों के पूजा के प्रचलन का उल्लेख किया है। प्रिनागम के अनुसार मीरा की विवाह के पन्थान् दधी-पूजन के लिए कहा गया। इस प्रकार की दधी-पूजाएँ राजस्थानी राज-घरानों में घटवन्त प्रचलित थी। मीरा के पितामह दूदा जी ने स्वयं देवी का मंदिर बनवाया था।

राज्य के मायाबाद का प्रभाव बुद्धिवाधियों पर था पर सामान्य जनता में श्री ब्रह्मबाद-मायाबाद का डोल पीटकर जमान-खान और रीब जमान बाधे मौजूद थे। तुमसी का तो कहना है कि 'ब्रह्मज्ञान बिनु मारि नर, बहहि न दूसरि बात' इतना ही नहीं आ 'परतिय मन्मट' पर सजान और मोहडाह ममता-निष्ठ य व मी मायाबादी जानी बन गए थे। इससे उस समय की मायाबादी विचार बाध के प्रचार का पता चलता है।

कर्म-वास्य अपने प्रवक्तव्य के साथ समाज में व्याप्त था। ये कमजानी प्राचीन परंपरा के संभवतः थे। वैतन्य के अस्ति-आवेसन तक का इन्होंने बिरोध किया था। कबीर ने इस प्रकार के नाशों को धाड़ हाथों लिया है। उनका कथन में अनुमान होता है कि ये कमजानी स्थान करके तिसक छापा लगाकर विधिवत् पूजादि करवात थे और पाप काटन के लिए ब्याप्य बाठाई भी मुनाई थे। समाज में इनका धार भी था और इनका स्थान कुछ उच्च तथा प्रतिष्ठित माना जाता था।

- (१) तामस धर्म करहि नर, अप तप मगघर दान—मानस उत्तरदास
- (२) वैतन्य भागवत आदिसंख अष्टाध्याय २, सूक्त १२
- (३) श्री भक्तमाल की टीका कवित्त २
- (४) तापो पाई निपुन कहाई।

बकरी मारि मेड़ को घाए, जिस में दहद न घाई।  
करि असमान निमक ई बडे बिधि सो देव पुजाई।  
अन्य मारि पलक में बिनसी दधिर की बरी कहाई।  
अनि पुनोनि ओंवे कुल कहिए लखा मोहि अघिकाई।  
इनमे बिष्ठा लकड़ी भी होमि छाई मोहि भाई।  
पाप काटन की कथा सुनाई करम कराई नीचा।  
बुद्ध बोड परस्पर बीर्य यह कहि अप लीचा।  
गाय बने मे सुरक कहाई यह क्या इनमे छोटे।  
बहै कबीर सुनो भई तापो कनि के ब्रह्मन जोडे।

—कबीर, १२, डा० ६, प्र द्वितीय



अस्य अनेक पंथ भी प्रचलित थे । ब्रह्ममाधारी ने कहा है कि 'नाना बार्दों के कारण समस्त ब्रह्म व्रतादि विनष्ट हो गये हैं । पाशण्ड के लिए ही ब्रह्म-कर्म किए जाते हैं । परमानन्ददास ने तो अनेक मतों में प्रचलित पाशण्ड पूर्ण और अधार्मिक धार्मिक स्थिति का उन्मूलन किया है ।'

इनके प्रतिरिक्त तुलसी ने 'सरारंग' (जीन) 'सिबड़ा', 'अबोरी' और 'मूतप्रेतपूजा' प्रचारकों के बार्दों की और संकेत किया है ।' इसी विविधता के बीच भक्ति-धर्म का प्रचार हो रहा था । यह मत बाह्यलक्ष्य धर्म का विरोधी ठो नहीं था पर उसका पूर्ण अनुयायी भी नहीं था । यह उसका धर्म होकर भी स्वाधीन रहा ।' इसने सहज और स्वाभाविक जीवन को महत्त्व दिया । प्रभु के सम्मुख जाति-पाँति-कुलान्धिमानी सबका प्रस्न हटाकर प्रत्येक को मानव के रूप में ही स्वीकार किया । भक्ति मत की विशेषताएँ थीं—आस्तिकता अवतारवाद अहिंसा शास्त्र-ज्ञान तथा पाण्डित्य की उपेक्षा तथा बड़ा और प्रेम की अष्टतम भावों के रूप में स्वीकृति । ये भक्तिवादी वैष्णव मतके थे । इनके प्रमुख दो सम्प्रदाय थे—राम भक्त और कृष्ण भक्त । रामायण सम्प्रदाय के प्रारंभ में मर्यादामागी भक्ति की प्रधानता थी पर मीरा के समय तक बीरे बीरे उसमें एतक सम्प्रदाय का भी उदय हो गया था । कृष्ण भक्तों की भक्ति प्रारंभ से ही 'रसमयी' थी । मीरा इसी माधुर्य भाव के पंथ की भक्त थीं ।

भारत में एक नए धर्म ने और प्रवेश किया था और वह था इस्लाम । लाखों हिन्दुओं ने जाह्न अमचाहे इस्लाम को अपना लिया । इससे हिन्दुओं की धर्म व्यवस्था को सुरक्षा के लिए विशेष सतर्क होना पड़ा । इस्लाम धर्म के अन्तर्गत जो साक्षात् विशेष लोकप्रिय हुई और जिसने प्रेम से इस देश की जनता का हृदय

(१) माबो मा बर बहुत थरी ।

कहू कुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी ।

जो सोपिन को प्रेम न होतो सब भागवत पुरान ।

वे सब भीषकहि होतो कथत गमैया ज्ञान ।

बारह बरस को भयो विगमर, ज्ञान हीन सम्पासी ।

ज्ञान पाव बर-बर सबहिन के भसम लगाय जवासी ।

पाशण्ड धर्म बड़ को कलियुग में भड़ा धर्म भयो सोप ।

परमानन्द वेद पढ़ि विगदुयी का पर कीनी कोप ।

अष्टाध्याय डा० श्रीमद्व्यास मुल, पृष्ठ ३३ (कुल्लोट)

(२) दोहावली, दोहा, १३, २८३, ३२६, ३३०

(३) मूर साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४४

जीतने का प्रयास किया वह सुफियों की यात्रा भी। भारत में सुफियों की कौन-सी यात्रा ने सबसे पहले प्रवेश किया इस विषय में मतभेद है। स्वामी हसन निजामी के अनुसार भारत में सबसे पहले मुहम्मदी सूफी बाण<sup>१</sup> और सीयद मुहम्मद हाफिज के अनुसार बिस्ती<sup>२</sup> कुछ भी हा मीरा के समय तक तीन प्रसिद्ध सम्प्रदाय यहाँ फैल चुके थे बिस्ती मुहम्मदी और काबरी।<sup>३</sup>

सुफियों के धर्म का सतों पर विशेष प्रभाव पड़ा था और इस कम परामर्श देण की यज्ञावान जनता में उनके लिए आदर का भाव जागने लगा था।

### साहित्य :

साहित्य से यही तात्पर्य समित साहित्य से है। मीरा के युग का प्राथमिक काल साहित्य धर्म की प्रेरणा से उत्पन्न है। यद्यपि बीरगाया युग की सामन्ती प्रवृत्ति के साहित्य का सर्वत्र जल रहा था और शृंगार या रीति-कास का नाम देने वाला तब भी अनस्तित्व में नहीं थे पर उनका स्वर मन्द था। मीरा के पूर्व हिन्दी के विभिन्न कृष्ण-भक्ति साहित्य का सर्वत्र हुआ जिसकी उत्पत्तिकारिणी मीरा भगवत्पास करती उसका परिचय परिशिष्ट में द दिया गया है। यहाँ संक्षेप में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उस समय सामिक प्रणाली से रहे गए राज्य की तीन प्रमुख शाखाएँ प्रभावित हुई थी—सत्, सूफी और सीमरी वैष्णव साहित्य की।

### संगीत

संगीत की दृष्टि से मीरा का युग विषय रूप से महत्वपूर्ण है। इस युग में श्रेष्ठ गायक ही उत्पन्न नहीं किए, संगीत-शास्त्र के विकास में भी धाव दिया। हरिदास तानमन ईशू बाबरा संगीत के इतिहास के समर नाम हैं। संगीत-शास्त्र के प्रणेताओं में मीरा के पति परिवार के पूर्वज राणा कुंभा का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने ईसा की १२ वीं शताब्दी के मध्य में संगीत-राज की रचना की। इसके पश्चात् रीवा नरेय के पुरोहित भोमराण कृष्ण रामभासा मिमती है। विक्रम की १६वीं शताब्दी में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संगीत-धर्म रचा गया भामिपर नरेय मानसिंह तोमर कृत 'मान कुतूहल'। अकबर के संरक्षण

(१) एन इन्डोइजान डू बी हिन्दी भाषा लुकीम्प-ए० जे० आरबरी भूमिका, पृष्ठ ८

(२) इस्लामिक लुकीम्प-सरदार इकबाल घनी शाह, पृ० २८२

(३) एन इन्डोइजान डू बी हिन्दी भाषा लुकीम्प-भूमिका पृ० १२।

सूफी सन और हिन्दी साहित्य, डा० विमलकुमार जीन, पृष्ठ ४४-८२

में तानसेन ने 'मीरा की मस्तार' 'मीरा की टोडी' 'धीर' 'बरबारी कानडा' का प्राबिन्धार किया। इसी समय एक बखिणी पंडित पुंडरीक बिट्ठल ने पद्मराग चन्द्रोदय आदि ग्रंथ मिलकर इस परम्परा को धागे बढ़ाया। मीरा की 'मस्तार' राग की आधारभूत सामग्री तो स्वयं मीरा के द्वारा इसी काल में रही गई।

**स्थापत्य तथा शिल्प :**

धर्म के विकास की दृष्टि से मीरा के पूर्व राजस्थान में राखा कुंभा का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने कीर्तिस्तम्भ कुंभ स्वामी श्रीर प्राबिबराह के मन्दिर आदि बनवाए जिनमें उस युग के राजस्थानी शिल्प और स्थापत्य कला का नमूना मिलता है। इसी समय सुनघार मण्डल ने देवता मूर्ति प्रकरण प्रासाद मण्डन तथा कपावतार आदि ग्रंथ लिखे।<sup>१</sup> कुंभा के पश्चात् उसीसिंह तक मीरा के पति परिवार द्वारा इस क्षेत्र में विधेय कार्य नहीं कराया गया।

**चित्रकला**

यह युग चित्रकला की दृष्टि से पुनरुत्थान का काल था। अपभ्रंश शैली की परंपरा पीछे रह गई थी और एक नवीन शैली का विकास हो गया था जिसे विद्वानों ने राजस्थानी शैली की संज्ञा दी। बुर्रों पत्तियों का आलेखन स्थलों के चित्रों में चोलियों के बहिर्गत धर्म की छोड़कर अपभ्रंश धर्म, सवाचन की जगह एक नवम नहरे आदि विशेषताएँ इस बात के प्रमाण हैं। पर साब ही अपभ्रंश शैली की विशेषताओं के अवशेष-जटरी-उर्रे आदि के प्रमाण धर्मकरण पेड़ के धर्मकारिक आलेखन तथा हमार्यों पर के बैस-बूदों आदि के रूप में मिल रहे हैं।<sup>२</sup>

(१) रिपोर्ट प्राब ए सीकियर डू इन सर्व प्राब संस्कृत शिल्पिकियर इन राज-पुताना एण्ड सेण्ट्रल इंडिया इन १९०४-५, पृष्ठ ३८

(२) राय हम्पुबास कृत 'भारत की चित्रकला' के आधार पर।

मीरा के युग के अठ संत और भक्त संसार को निस्कार और उसकी माया को साधना का विरोधी मानते थे। उन्हें अपने सांसारिक स्मृत 'नाम-रूप' के प्रति मोह नहीं था। मीरा तो इसके साथ ही अपने मनमोहन की मधुराई में इतनी डूब गई थी कि उनकी बाणी के लिए गिरिधरके प्रतिरिक्त किसी अन्य की चर्चा में प्रवृत्त होन का कोई प्रयत्न ही नहीं रहा था। निस्व होकर 'सर्वस्व' में डूब जाने वाली इस 'हरत बीबानी' द्वारा धारम-चरित्र मिथे जाने की संभावना भी नहीं है। पर उनकी रचनाओं में उनकी अपनी इच्छा आकांक्षा और भावना का अभिव्यक्ति मिली है और प्रसंगवश कुछ ऐसे उल्लेख भी हो गए हैं, जिनसे उनके जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार उनके अन्तर्गत और उसे प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियों की व्यंजना उनके पदों में हा जाती है। अतः मीरा की जीवनी के अध्ययन के लिए उनकी रचनाएँ बहुत महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं पर परिमाण में वह अत्यंत अल्प है।

मीराबाई के जीवन पर प्रकाश डालने वाली विरोध सामग्री अन्य लोगों की रचनाओं में मिलती है। मीरा की धार्मिक शक्ति की प्रसिद्धि और उनके लोकप्रिय पीढ़ों का प्रकार पिछले चार-सी बरों से है और उनका व्यक्तित्व वहाँ जनता को मुग्ध करके उसकी प्रशंसा का पात्र बना है, वहाँ सांप्रदायिक धर्म में विवाद का विषय भी रहा है। फलस्वरूप मीरा के विषय में उपलब्ध बहिःसादय में प्रतिगोष्ठियों और सम्मेलनों द्वारा निमित्त अनेक सुन्दर और असुन्दर घट मामलों के प्रवेश पाने की संभावना सदा बतमान है। अतः मीरा के जीवन की रूप-रेखा प्रस्तुत करने के पुन इस समस्त सामग्री पर आलाचकारमक दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है।

सामान्यतः मीरा-सम्बन्धी सामग्री को निम्नलिखित बरों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) कवियों के जीवन-वृत्त में संबंधित अन्य लोगों की रचनाएँ अर्थात् बहिःसादय

(१) मीरा के समयकालीन तथा परवर्ती कवियों कवियों और संतों के उल्लेख

- (२) प्राचीन साम्रपत्र, धिलाकेस बिज घादि
  - (३) इतिहास-बंध—राजनीतिक और साहित्यिक
  - (४) लोक-गीत और जनभूतियाँ
  - (५) मीरा-सम्बन्धी साधुनिक ग्रंथ
- (क) कवियित्री की अपनी रचनाओं के उत्सेख अर्थात् संत-साख्य

## बहिःसाख्य

बहिःसाख्य के अन्तर्गत सबसे अधिक सामग्री मीरा के कतिपय समकालीन और बहुत-से परवर्ती भक्तों और कवियों के मीरा-सम्बन्धी उत्सेखों में है। इस सामग्री को साधारणतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) अपनी संपूर्णता में मीरा का जीवन-वृत्त या उनके जीवन की कोई घटना प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ जैसे मीराबाई की परबी (राजस्थानी), सीपीनामा कृत चरित मीराबाई (मराठी) वयायम कृत मीराचरित (गुजराती) इत्यादि।

(ख) वे रचनाएँ जिनमें अन्य बातों के साथ मीरा-सम्बन्धी उत्सेख मिलते हैं, जैसे नाजाबाद कृत भक्तमास (बम्बी) महीपल कृत भक्तमीसामृत (मराठी) कवि बिष्णुबास कृत कुंवरबाई वु मोसाळ (गुजराती) आदि।

इन रचनाओं को माया रचनाकारों के संग्रहाय (यदि वे सांप्रदायिक साहित्य के अन्तर्गत हैं) सूचना के स्रोत आदि आधारों पर विभाजित करके भी प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु मीरा के जीवन-सम्बन्धी उत्सेख एक माया से दूसरी माया में एक संग्रहाय से दूसरे संग्रहाय में और एक स्रोत की सामग्री से दूसरे स्रोत की सामग्री में आते-जाते रहे हैं। अब उन्हें पूर्णतः असम कर केना संभव नहीं है। अतः इन उत्सेखों को क्रमक्रम से और यथा संभव विविष्ट वर्गों की तथा एक ही परंपरा की सामग्री को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

## (१) कवियों और भक्तों द्वारा छल्लेस

कपीर—कबीरदास के नाम से प्रसिद्ध कुछ पवों में मीरा-सम्बन्धी उत्सेख मिलते हैं। विद्यासभा भद्र बाहमदाबाय के संग्रहालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित पोथी में जिसका लिपिकाल संवत् १५२९ [मिन्मसिद्धित पर दिया हुआ है—

मेरी बात बरण कुस हीए कहो बी जैसे तारोने ॥१॥

रंका तारे बंका तारे तारे सजना कहाई ॥

सुधा पड़ावत मुनका ठारी तारीये मीराबाई ॥ कहो बी ॥२॥

नामदेव की छापरी छाई मुझ गाए जीबाई ॥

सना मगत की चाकरी कीनी भापे मय हरिनाई ॥ कहो बी ॥३॥

बहा जात संसार सागरा कीस बीच पार उतरमा ॥

धपनी करली पार उतरनी केहे मये धुब मेहेसाव ॥ कहो बी ॥४॥

ब्रह्मचर की कुंभ मजिन में भई सोम सु अंट ॥

एक हो प्रनुजी कंस बनेपी एही कबीर ने फेट ॥ कहो बी ॥५॥<sup>१</sup>

मानमुक्तराम निर्गुणराम मेहेवा ने कबीर-छाप के ऐसे दो घोर पवों का उल्लेख किया है, जिनमें मीराबाई का नाम आया है।

एक पद में "बना सना रीवास नाम नीचरी मीराबाई ॥

कहत कबीर सुनो मेर मनवा ज्योति में ज्योति मिसाई ॥"

घोर दूसरे में "मुनका बीच भजाभीम ठारों घोर ठारी मीराबाई ॥"

संग हैं।<sup>१</sup>

कबीर घोर मीरा के जीवन-काल की तुलना करने से यह स्पष्ट है कि कबीर द्वारा मीरा के संबंध में वे उल्लेख संभव ही नहीं हैं।

कबीर की मृत्यु-तिथि के विषय में चार मत प्रचलित हैं—

(क) सं० १३०३ विक्रमीय : पन्द्रहवीं घोर पाँच में मयहर कीना मौन <sup>१</sup>

(ख) सं० १३४६ अथवा १३३२ विक्रमीय पंद्रहवीं जनचास में मयहर कीना मौन

(ग) सं० १३६२ विक्रमीय संवत् पन्द्रह वीं जनहतरा रहार्द <sup>१</sup>

(घ) सं० १३७३ विक्रमीय संवत् पंद्रहवीं पछतरा तियोमगहर की मौन <sup>१</sup>

(१) बिद्या-समा हस्तलिखित पोथी संख्या ६६३

(२) मीराबाई पृष्ठ १३

(३) हिंदी काव्य में निगु रा संप्रदाय, डॉ० पीतांबरदास कश्यपदास, पृष्ठ ३६ तथा

मैदीवाल मिस्ट्रीसिगम, आचार्य ललितमोहन सेन पृष्ठ ८८

(४) बी भक्तमाल टपकता, पृष्ठ ४६१ : टपकताजी ने उक्त पंक्ति को उद्धृत करते हुए लिखा है, "भी कबीरजी १३४६ में मयहर गए। वहीं से संवत् १३३२ के आगहन कुरी एकादशी को परमधाम पहुँच"।

(५) बमदाम हठ हावरापन (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामधुमार वर्मा पृष्ठ २४७ के आधारे पर)

(६) कबीर-कलौटी, बाबू जेहन सिंह, भूमिका, पृष्ठ ३

कबीर के उक्त पदों में मीराबाई का उल्लेख एक पुण्य विभंगत भक्त आत्मा के रूप में हुआ है और उन्हें मखिया गीब तथा धनामिल जैसे पौराणिक व्यक्तियों की कोटि में रखा गया है। हितहरिवंश (अध्याय सं० १५१६) 'हरिराम भ्यास (अध्याय सं० १५६७) और कृष्णदास के प्रौढ़ और प्रसिद्ध भक्त होने पर उनके संपर्क में आने वाली तथा अपने स्वसुर राणा सांगा की मृत्यु (सं० १५८४) के बाद भी जीवित रहने वाली मीरा संवत् १५७५ में या उससे पूर्व ही विभंगत कैसे हो सकती थी ?

स्पष्ट है कि उक्त पद कबीर-संघी आचाराध्याय संतों ने कबीर के आधुन्य काल के बाद कभी लिखे होंगे। ये न गुह्यसंग साहित्य में हैं और न 'सं० १५६१' तथा सं० १५८१ में लिखी प्रतियों के आधार पर संपादित 'कबीर-संवावली' में। इससे भी उक्त निष्कर्ष की पुष्टि ही होती है।

इन उल्लेखों से केवल इतना निष्कर्ष निकलता है कि मीरा के महत्त्व को परवर्ती ज्ञानमार्गी संतों ने स्वीकार किया था और वे उनका नाम आदर से लेते थे।

सेना न्हावी (नाई) बारकरी संप्रदाय के प्रसिद्ध संत श्री नाना महाराज साहरे के हस्तलिखित पोथी-संग्रह की प्रतियों के आधार पर संपादित 'शाखा पंचक' में 'सेना न्हावी' की कुछ रचनाएँ संपृक्षित हैं जिनमें एक धर्म में मीरा के संगम में लिम्गाकित उल्लेख है 'मिरा छाठी। कबकी कैसी आटाघाटी। (मीरा के लिए कितना परिश्रम किया)।'

सेना नाई के जीवन-काल तथा संपर्कों के विषय में मत्तमेव है। एक मत के अनुसार वे ज्ञानेश्वर के समकालीन थे और उनका आधुन्य-काल संवत् १५०५ के लगभग था दूसरे के अनुसार वे बाबबयड़ के नरेल के सेवक थे और तीसरे के अनुसार रामाराम (संवत् १६११-४८) के यहाँ निवृत्त थे।

अगर पहला मत सही है तो सेना के नाम से प्रचलित उक्त पंक्तियाँ

(१) राजाबल्लभ संप्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य डा० विजयलाल स्नातक, पृष्ठ ६९

(२) भक्त कवि व्यासजी गोस्वामी बागुदेव, पृष्ठ ४१

(३) उदयपुर राज्य का इतिहास प्रोफा, पृष्ठ ३४४

(४) संवत् १५६१ की प्रति का यह संवत्-संबन्धी उल्लेख प्राध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता।

(५) शाखा-पंचक की संत-शाखा, सेना न्हावी के पद, पृष्ठ ७०

(६) उत्तरी भारत की संत परंपरा सं० परशुराम जगुबेदी, पृष्ठ २३१-२३२

सेना हट नहीं हो सकती। यदि सीधरा मठ टीक है, तो संवत् १६०० के भास-पास मीरा की मक्ति की प्रसिद्धि का पता चलता है। बस्तुतः उक्त पंक्तियों से कोई निश्चित और महत्वपूर्ण प्रकाश मीरा के जीवन पर नहीं पड़ता।

नरसिंह मेहता :

‘नरसीदा’ छाप के निम्नलिखित पद में मीरा का उल्लेख है—

तुं ताटा कोई साहीमुं क जे धामना न जोईस करली हमारि रे।

मीराबाई जिह धमूत कीर्ण बिहुरनी धारोग्या भाजी रे।

×

×

×

नरसीदासा स्वामी लक्ष्मीनर, मोटी छाप हमारि रे ॥<sup>१</sup>

क० का० दासजी ने वेबल यह कहकर इस पद को अप्रामाणिक घोषित कर दिया है कि यह किसी प्राचीन पापी में नहीं मिला<sup>२</sup> पर अप्रामाणिकता संभवही यह तक श्रव्यन्त निर्बल है। इसके पीछे गुजराती के प्रथम ज्ञात प्रकाशक नरसिंह मेहता की विक्रम की १२ वीं धर्ती का सिद्ध करन की बलवती स्पृहा ही है। बस्तुतः ये १२ वीं धर्ती विक्रम के अन्तिम अथ तक वर्तमान थे।<sup>३</sup> इस उल्लेख से ‘मीरा’ के विषय पीछे और उससे बच जाने की बटनी का पता चलता है। मीरा के जीवन के विषय में सबप्रथम सूचना नरसिंह मेहता के उक्त पद में मिलती है और यह सूचना निरवयवीय है। विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध बाद के लपनप सभी मीरा-ग्रन्थों वस्तुओं में इसकी कमी है।

सुरदास

मूर-छाप का निम्नलिखित पद मंगीत-राग-वस्त्वन्तुम (तृतीय भाग) में संकलित है

हनुमान मुन सीनिक बस्मन भुजीन ज्यपिराज

रंभा बंभा पीरा नामा सेन बना क किए नाज।

सरना रंदास, मीराबाई कृपा करी बजराम।

गह्वरा लकी बरिज अंगन बनवर, निरनरराज

पीर अनेक पतिव तारे गुम बहूँसा निनों मेरे राज।

(१) नरसिंह मेहता द्वारा वाच्य-नैष्ठिक संसारक, हज्जदारान् भूपराय देसाई पुण्ड ४७२

(२) गुजराती साहित्यनु रेलान-वर्तन पुण्ड ८० कूटनोट २

(३) वेनिए, एरिस्टा १



जैसे हूँ तैसी तिहारो सूर प्रभु बाहू यह की भाज ।'

'भारत-साहित्य' का साक्ष्य है कि 'विधियाने' की भावना वाले 'विजय पद' सूरदास ने बल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में बीजित होने के पूर्व ही लिखे थे । धार्मिक शोध का भी यही निष्कर्ष है ।' बीसा के पूर्व 'स्वामी' के रूप में प्रसिद्ध सूरदास का अपने समकालीन बल्लभ और अपने से काफी छोटी तथा भक्ति के क्षेत्र में उस समय सगम्य यज्ञात् भीरा को हनुमान और मुनीश जैसे पौराणिक नायों की कोटि में रखना स्वामाधिक और सहज नहीं प्रतीत होता । बीसा' के बाद बं बल्लभ को साम्राज्य कृष्ण-रूप मानने लगे थे और भीरा के विषय में बल्लभाचार्य के समय में ही पुष्टिमार्गियों में बिरोध और कटुता का भाव पैदा हो गया था । मोचिन बुबे साबोर बाइएण के नाम की बिदुष का पद इस बात का प्रमाण है कि संप्रदाय के इस बिरोधी भाव को संप्रदाय के आचार्यों द्वारा प्रेरणा समर्जन और बल्लभ प्रदान किया गया था । तब 'पुष्टि मार्ग के बहाने' के लिए भीरा का अत्यन्त धावर के साथ 'बुबराज की कृपापात्री' के रूप में चलेस करके अपने गुरु, गुरु-पुत्र और संप्रदाय की प्रशंसा करता संभव नहीं प्रतीत होता । अतः यही मानना अधिक तर्कसंगत है कि यह पद अष्टछापों 'सूरदास' द्वारा रचा हुआ नहीं है । यदि इसे प्रामाणिक मान भी लिया जाय तो इससे भीरा के विषय में केवल इतनी जानकारी प्राप्त होती है कि वे सूर के जीवन काल में ही बबराज की कृपापात्री के रूप में प्रसिद्ध हो गई थीं ।

### हरिराम व्यास

इनके निम्नलिखित दो पद मिलते हैं जिनमें भीराबाई का उल्लेख है—

- (१) पृष्ठ ५६३
- (२) भारतीय साधना और सूर साहित्य डा० मुजीराज शर्मा पृष्ठ ३२
- (३) डा० हरिदासास धर्मा ने सूर का बारखापति-काल संवत् १३६७ निर्धारित किया है (सूर और उनका साहित्य पृष्ठ ४६) जिस समय भीराबाई की आयु छः वर्ष थी ।
- (४) क—हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की कोल-रिपोर्ट सन् १९१८-१९ की कोलिस इंडिया पृ० ४ से व्यासजी का नाम मोहनदास दिया है । यह मूलतः है । इनका नाम 'हरिराम व्यास' था जो अंतः साक्ष्य और बह्मि साक्ष्य दोनों के आधार पर सिद्ध है । (पुष्टि 'मस्तकवि व्यासजी' पृष्ठ ४३ )

क—भीराप्रस मोरलपुर से प्रकाशित 'मस्त-सौरभ' तथा रीबा नरेम महाराजा रघुराजसिंह द्वारा 'राम रतिकान्ता' आदि ग्रंथों में इनके लिए व्यासदास नाम का प्रयोग किया है ।

(१) इनगी है सब कुटुम हमारी ।

सैन बना सब नामा पीपा और बबीर, रैराज बनारो ॥

× × ×

मुरदास परमानन्द मेहा बीरों नलि बिचारी ॥

× × ×

इहि पय बसत स्याम-स्यामा क 'भ्यास'हि बीरों भावहि ठारो ॥'

(२) बिहारीहि स्वामी बिनु का पारो ।

× × ×

मीराबाई बिनु, को घब सीसा याह मुनारो ।

× × ×

'भ्यासबास' इन बिनु, को घब तन की तनन कुन्धरो ॥'

इनस मीराबाई के सबब में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं—

१—मीरों परन नस्त बी और इस दृष्टि से बना बना नामा पीपा बबीर, रैराज रूप सनातन भट्ट मुरदास परमानन्द मेहा हित हरिबंग और हरिरास की कोटि में घाटी है ।

२—भक्तों को पिता मानकर उर भावे में अतिथीय थीं । उनकी बाली तन की तनन मुन्धती थी ।

३—भ्यासजी के इस पद की रचना के पूर्व परसोक सिघार बुझी थी ।

मीराबाई के संलग्न में निविबाद रूप में निश्चित और पूर्ण विरहसगीय प्रपन्न उल्लेख भ्यासजी के उक्त पदों में ही मिलता है । भ्यासजी का जन्म मार्ग शीघ्र कृष्ण २, बुधवार, सवत् १२६७ विक्रमोय का धारणा में हुआ था ।<sup>१</sup> इनके बीसा-गुरु क विषय में मतभेद है, पर भक्ति भावना की दृष्टि से वे हितहरिबंग के अनुवर्ती थे । ८४ बार्ता का साहच है कि वे हितहरिबंगी के साथ व्यक्तिगत रूप से मीराबाई के सपर्क में आए थे । मीरों की व्रज-यात्रा के समय व व्रज में वे जा नहीं इसका पता नहीं है, पर व व्रज के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त जैसे हितहरिबंग हरिरास जीवगोस्वामी आदि क अंतरंग सत्ता रहे य । अतः इनके मीरों सम्बन्धी उल्लेख पूर्ण विरहसगीय गाय के अनुगमन रूप का सकते हैं ।

(१) बसन्त कवि भ्यासजी, गोस्वामी बालुदेव, पृष्ठ १२६

(२) बही, पृष्ठ १६७

(३) बही, पृष्ठ ४१ ४३

(४) कोई हितहरिबंग कोई पिता सुमुख समोगन और कोई भी मायबन्दी को उनका गुरु मानते हैं ।

कवि विष्णुदास कृत 'कुंवरबाईनु मोसाळु'

'कुंवरबाईनु मोसाळु' विष्णुदासकी प्रसिद्ध प्रामाणिक रचना है। पं० के० का० धास्त्री इसका रचना-काल संवत् १६९४-२८ के आसपास निर्धारित कर चुके हैं।<sup>१</sup> इस कृति में कुंवरबाई के मोसाळु के व्यवहार पर सहामता के लिए कृष्ण से प्रार्थना करते हुए नरसी मेहता द्वारा कहलबामा गया है—

'ग्रहणावनी पीडा टाली'

× × ×  
बासबाईना कुल बहु कंबोड हाव काडी बीबां रणछोड  
मीराबाई ने बीक प्रचीत ऋटे, बरब पख्खु पीटे आपले

× × ×  
हेवा बचन तमो भवले सुखी, कुंवरबाई ने मोसाळु करो ॥<sup>२</sup>

कवि विष्णुदास जन्माष्ट निवासी नागर ब्राह्मण थे। यद्यपि इनके जन्म की तिथि तिथि अज्ञात है, पर इनकी कृतियों में दिए रचना-कालों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये संवत् १६०० के आसपास पैदा हुए थे।<sup>३</sup> विष्णुदास-साहित्य के अन्वेषक विद्वानों में इस विषय में मतभेद नहीं है।

विष्णुदास उन नुबरासी कवियों में से हैं, जिनका काल मीरा के ठीक बाद में पड़ता है। अतः वे उन व्यक्तियों के संपर्क में अवश्य आए होंगे या मीरा और नरसी के जीवन-काल में वर्तमान थे और जिन्होंने मीरा और नरसी के स्वयं वर्णन किए होंगे या उनके मुँह में उनकी चर्चा सुनी होगी। अतः विष्णुदास के तत्काल प्रामाणिक तथा निश्चयनीय सामग्री की कोशिशें रहे जा सकते हैं।

(१) कवि-चरित पृष्ठ ३४७

(२) सं० १७५० में जन्माष्ट निवासी गोकुलदास द्वारा लिपिबद्ध हस्तलिखित पोथी के आधार पर 'प्राचीन साहित्य ग्रंथ बीबी' व सा० नि० मेहता द्वारा प्रकाशित 'कुंवरबाईनु मोसाळु' पृष्ठ ६८

(३) 'कवि विष्णुदास जन्माष्टनी रहीश हतो अने जालिये नापर ब्राह्मण हतो। से संवत् १६०० नी आसपास जन्म्यो हतो देखुं शेना काव्यो अपरपी अटकनी अजाय छ, कारण येले "भीम बर्ष" सं० १६१३ मां तथा तथा वर्ष १६१७ मां रच्यो हुता"—"सभा वर्ष नभास्यान कुंवरबाईनु मोसाळु, हुंडी" की प्रस्तावना भा० नि० मेहता, पृष्ठ ६

(४) नुबरासी साहित्य (अध्ययनीय) अनन्तराय राजन्, पृष्ठ ११८ इसमें (रचना-काल सन् १६९८ १६९९ अर्थात् संवत् १६९४ १६९६ माला)

‘मोसाळू’ के आधार पर मीरा के संभव में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) मीरा के विष के प्रभुत होने की घटना संवत् १६२४ २८ के पूर्व ही द्रुवराज में विख्यात हो गई थी और मीरा का उल्लेख कबीर, रैबास, नामा तथा बासबाई के साथ किया जाने लगा था।

(२) मीराबाई ‘मोसाळू’ के रचना-काल से पूर्व ही विरंगत हो चुकी थी क्योंकि मीरा का उल्लेख पौराणिक और प्राचीन मन्त्रों (प्रह्लाद कबीर, रैबास) के साथ और उसी रूप में हुआ है।

(३) मीरा के विष-याम की घटना मरसी के जीवन-काल की है। ‘मोसाळू’ की घटना के पूर्व ही यह घटित हो चुकी थी। कम-से-कम १६ वीं शती के प्रथम चतुर्थांश के अन्त में इस विषय में उक्त बात प्रचलित थी। श्रीहित ध्रुवदास : द्रुवराज कृत ‘भक्त नामावलि सीता’ में मीरा के सम्बन्ध में निम्नांकित शब्द मिलते हैं—<sup>१</sup>

नाथ छाँड़ि गिरधर भजे, करी न कछु कुस काज ।

छोई मीरा जम विविध प्रगट भक्ति की काज ॥

समितहु नाई भोमि के, ठासों हो प्रति हेत ।<sup>२</sup>

धान्य छों निरखत फिरें, नृत्वावन रस बेत ॥

नृपति नृपुत्र बौधि के पावति ली करवाक ।

विमल हियो भक्तनि मिथी विम सम मनि संसार ॥

बंभुनि विष ठाको दिमो, करि मिचार बिठ घान ।

छो विष फिर प्रभुत भयो तब नाम पछिठान ॥

मंगा-जमुना विमनि में परम भागवत जानि

तिनकी बाजी मुनति ही बई भक्ति उर घानि ॥<sup>३</sup>

इससे मीरा के जीवन के संभव में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१—मीरा के आधारभूत गिरधर थे।

२—उन्होंने कुस की मर्वाता पर ध्यान नहीं दिया और न लोह की

(१) श्रीव्यासीत सीता वाली—(भक्त नामावलि सीता) पृष्ठ ३४ ३५

(२) ‘जसिता ॥ नाई भोमि के’ पाठ भी मिलता है।

(३) मंगा जमुना वज्र की दो कृष्ण-भक्त नारियों के नाम भी माने जाते हैं। यहाँ ये दो संवितरा मीरा और समिता के लिए न होकर मंगा और जमुना के लिए भी हो सकती हैं।

सम्बा की । वे गुरुर पहनकर नाचती तथा संतों के सम्मुख करतल लेकर जाती थी ।

३—वे 'प्रगट भक्ति की ज्ञान' के रूप में प्रसिद्ध (जन विदित) थीं ।

४—वे बृन्दावन में बूमी थीं और उन्होंने वहाँ के रससेवियों के दर्शन किए थे । मसिता से उनका बहुत हेत था । बृन्दावन में उसे भी बुसाकर अपने साथ लाई थी ।

५—वैभव और लौकिक सम्बन्धों से विरक्त थीं, भक्तों से विमल हृदय से मिसती थीं ।

६—बन्धुओं ने (परिवार के लोगों ने) चित्त में और विचार करके उन्हें बिप दिया पर वह बिप समुत् हो गया (मीरा उससे मरी नहीं), तब वे लोप पड़ाए ।

७—नारियों में श्रेष्ठ, पवित्र थीं परम भागवत थीं उनकी बाखी (रच नाएँ) भक्ति की प्रेरक हैं ।

'मक्त नामावलि सीमा' में रचना-काल नहीं दिया गया ।<sup>१</sup> कुछ राजा बल्लभजी के अनुसार भुवदासजी हितहरिबंस के तीसरे पुत्र की गोपीनाथ जी के 'परमप्रिय कृपापात्र शिष्य' थे और उन्होंने संवत् १९०० में अपने पुत्र गोपीनाथजी की छाडा से श्री देववन नगर (देवबंस) से श्री बृन्दावन धाम में आकर निवास किया था ।<sup>२</sup> कहा जाता है कि उन्होंने ३ वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य के कारण घर छोड़ दिया था । इस हिसाब से उनका जन्म संवत् १५६५ वि० पड़ता है । राजाबल्लभ भक्तमाल में इनका जन्म संवत् १६२२ दिया है ।<sup>३</sup> भुवदासजी की ४८ रचनाओं में से ३ में रचना-काल दिया हुआ है—

(१) रत्नारंभ सीमा—“संवत् पोडस से रचासा” १६५० विक्रमीय

(२) प्रेमावली—“सोमह से रचहताय” १६७१ विक्रमीय

(१) अवगत कृत 'मीरा, एक अध्ययन' में इस संभव का रचना-काल सं० १६६८ दिया है। यह निराधार है ।

(२) श्री बघातीस सीमा-बाखी श्री हित भुवदास को शोध, पुण्ड (प) श्रीराधावल्लभजी संप्रदायार्थ गोस्वामी मुकुट बल्लभाचार्यजी की ध्यात-नुसार बाला तुलसीदास द्वारा प्रकाशित (बम्बई मुद्रण प्रेस मधुरा)

(३) राजाबल्लभ भक्तमाल—मियादास कुल पुण्ड ३९८ (राजाबल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पुण्ड ४२६ से उद्धृत)

(४) बघातीस सीमा-बाखी श्री हित भुवदास पुण्ड २३६, १८३, १४७, २२, १८६

- (३) समा-गण्डम सीमा—“सोलह सै हस्यासिया” १६८१ विक्रमीय  
 (४) श्री सतसीमा—“सोलह सै द्युष ह्यासिया” १६८६ विक्रमीय  
 (५) रहस्य मंजरी की सीमा—“सत्रह सै झौउन” १६९८ विक्रमीय

उक्त ग्रंथों के रचना-कालों को देखते हुए इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि द्युषवास की रचना-काल विषम की १७वीं शती का उत्तरार्ध था। अतएव भक्त मामाबलि का रचना-काल ७०० के आसपास माना जा सकता है।

यहाँ रचना-काल की अपेक्षा रचनाकार की सूचना का आचार अधिक महत्वपूर्ण है। द्युषवासजी भक्तकल्प में स्वयं अपनी बाँखों से विक्रमीय १७ वीं शती का अधिकारीय दस्त चूके थे। ये हितहरिबंध के (मिनका मीरां से वैयस्तिक संपर्क था) पुत्र के प्रिय धिय्य थे। उनसे उन्हें बहुत-सी बातें ज्ञात हुई होंगी। सब की धीर वैष्णव भक्तों की परम्पराओं का उन्हें विस्तृत ज्ञान था। अतः द्युषवासजी के मीरां-सम्बन्धी उल्लेख विद्वत्सनीय प्रमाण की कोटि में रहे जा सकते हैं।

एकनाथ महाराज—एकनाथ महाराज का काल वि० सं० १६०४-१६६१ वि० माना जाता है।<sup>१</sup> इनसे एक समय में मीरां के सम्बन्ध में निम्न लिखित उल्लेख मिलता है—

‘विप पितो मिरबाई साठीं। विपुराध्या हाटी कप्पा स्वयं’।<sup>२</sup>

इस उद्धरण से मीरांबाई के लिए कृष्ण द्वारा विपपान करने की घटना का पता चलता है।

तुकाराम—तुकारामजी का जीवन-काल विक्रमी संवत् १६६१ से १७०६ तक माना जाता है।<sup>३</sup> इनकी रचनाओं में मीरां सम्बन्धी निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं—

(क) मिरबाई साठीं व्यासो ती विपाचा। सारया कोसाद्मा था होम पिटी।

(१) श्री एकनाथ महाराज पाँची धर्मगाथी गाथा (प्रस्तावना) पृष्ठ १, ३ (अध्याय १ के १४७० अन्तर्धान, १३३६ कास्मिण दाख ६)

(२) वही पृष्ठ १६८

(३) श्री तुकाराम चरित, श्री लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर (हिरा धनुबाद) पृष्ठ ३८;

सर्वज्ञ संतपात्रा तुकाराम महाराज की गाथा, पृष्ठ १३०

(स) न बसे न बुझे न बहे काही । बिप से ही प्रभु पाही ॥<sup>१</sup>

(ग) मिराबाई साठीं पेटो बिप व्यासा । रामाजीबा कासा पाडिबार ।<sup>२</sup>

(घ) बीव के जीवन एका-अनार्दन पाठक श्रीकान्हू मीराबाई ।<sup>३</sup>

इन उद्धरणों से यह सूचना मिलती है कि मीरा को बिप दिया गया था और मगवान् की कृपा से वे इस बिप से बच गई थीं । बिप प्रभु बन गया था ।

श्री निलोबा महाराज—वशिष्ठ ग्रहमण्डनर बिसा के पारनेर ठाणुका में पिपसनेर गाँव के केलकर्णी थे । इनका जन्मसंस्कृत उपलब्ध नहीं है, परन्तु वे श्री तुकाराम के १४ शासकरी शिष्यों में से एक थे । यत् इनका काल सं० १७०० के आसपास माना जा सकता है । इनके श्रमणों में मीराबाई के सम्बन्ध में निम्नांकित उल्लेख है—

(१) बच्छना घाणि बिसोबा सेवर । कान्हू पाबा मिराबाई परम सुवर ॥<sup>४</sup>

(२) अन्नीतं ब्रमे बिपधि व्यासे । नाहीं ते म्योले महासत्त्वा ॥<sup>५</sup>

(३) नाहीं कमिकासा हे म्याके । अग्नि बिप बाटुनि व्यासे ॥

इन उद्धरणों से मीराबाई के सुवर होने और उनके द्वारा बिपपान करने की बटना का संकेत मिलता है ।

बेलीमाचबदास कृत मूल गोसाईं चरित्र—इसका रचना-काल पुस्तक के अन्तिम दोहे के अनुसार सं० १६८७ नवमी कार्तिक शुक्ल पक्ष है ।<sup>६</sup> इसमें उल्लिखित विषयों के प्रमुख तथा बटनाओं के इतिहास-विशेषी होने के आधार पर डा० माताप्रसाद कुप्ट अपने प्रबन्ध 'तुलसीदास' में इसकी अप्रामाणिकता सिद्ध

(१) वही, पृष्ठ २०४

(२) वही, पृष्ठ २०३

(३) मीरा-माधुरी, राजारामदास पृष्ठ ३८ (नया संस्करण)

(४) तुकाराम की मृत्यु संवत् १७०६ वि० में हुई थी—भाष्यस्य संप्रदाय, डा० बलदेव प्रपाध्याय पृष्ठ ३८३

(५) सकल संतमाथा : श्री निलोबा महाराजोंकी गाथा, पृष्ठ ६२—अन्य संख्या ३०६

(६) वही, पृष्ठ ३४ अर्धय संख्या ३२६

(७) वही, पृष्ठ ७० अर्धय संख्या ४२३

(८) मूल गोसाईं-चरित्र गीता प्रेस पोरबणूर, द्वितीय संस्करण सं० १२२३ 'सोरणूर' से सहासि सिद्ध, नवमी कार्तिक मास ।

विरच्यो यह भिन्न पाठ हित बेनी माचबदास ॥

कर चुके हैं।' अतः भूष गोसाईं चरित न उल्लेख विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। जिस प्रति न भाषार पर गीता प्रेस से यह छवि प्रकाशित की गयी है, उसका मिथि-काल स० १८४८ वि० है। इसके भाषार पर कहा जा सकता है कि भूष गोसाईं चरित स० १८४८ के पहले की रचना है।'

मीरा के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख 'भूष गोसाईं चरित' में मिलता है—

सोरह से सोरह सगै कामध विरि द्विग बाध ।  
 मुनि एकान्त प्रदेम मई धाये दूर मुवास ॥  
 दिन सात रौ सतसंग परी । पदकंज मई जब जान लयी ॥  
 तब धाये मबाइ ते बिग्र नाम मुखपास ।  
 मीराबाई-यविका जायो प्रम प्रवास ॥  
 पढ़ि पाठी ऊतर सिखे गीत कवित बनाय ।  
 सब तबि हरि भक्तो मना कहि दिख बिग्र पढाय ॥'

इसी प्रबन्ध में मीरा-भुक्तसीवास-प्रसंग के सम्बन्धत यह सिद्ध किया गया है कि उक्त उल्लेख में वर्णित घटना कास्थानिक है। कृष्णदास 'गीतमन्त्रिका' से भी इसी बात की पुष्टि होती है। अतः इसके उल्लेख विश्वसनीय नहीं हैं।

(१) भुक्तसीवास, पृष्ठ ४४ से ५६ तक

(२) भूष गोसाईं चरित (गीता प्रेस, गोरखपुर) में हस्तलिखित पोथी की प्रुप्पिका भी दी हुई है :

'इति श्री बेनीमाधवदास कृत भूष गोसाईं चरित समाप्त ।  
 श्री दाम्पिष्ठ्य मोक्षोत्पन्न संक्षिपावन त्रिपाठोरामरक्षमणि  
 रामदासेन तदात्मनेन च लिखितम् । निधि विजयावसमी संव  
 १८४८ भुक्तसी ।'

(३) भूष गोसाईं-चरित पृष्ठ १३

विशेष—

(क) बेनी माधवदास कृत 'गोसाईं चरित' नामक ग्रंथ भी मिलता है। इसका उल्लेख 'प्रवर्तित सरोज' में तीन स्थलों पर हुआ है। एक गोस्वामी भुक्तसीवासजी के प्रसंग में दूसरा बेनी माधवदास के विषय में लिखते हुए और तीसरा, गोसाईं-चरित की दो संक्षिप्त होने समय। 'सरोज' में केवल दो संक्षिप्त ही उद्धृत हैं जो मीरा के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। शेषांश धनी तब छपकर है।

(ख) एक 'गोसाईं-चरित' मरानीदास कृत है। यह मरसिद्धिदोर प्रेस मदन



कृष्णदत्त कृत 'गीतम चन्द्रिका' :

काशीराज (रामनगर) के बयोबूढ़ साहित्य-मर्मज्ञ श्री चौधरी सुश्री सिंहजी के पास पं० बिश्वनाथप्रसाद मिश्र को कृष्णदत्त कृत 'गीतम-चन्द्रिका' नामक रचना प्राप्त हुई थी जिसमें से तुलसी-सम्बन्धी अंश नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संवत् २०१२ के अंक १ में प्रकाशित हुए हैं। गीतम-चन्द्रिका में कृष्णदत्त ने अपने बंद का वर्णन किया है। परिवार से सम्बन्धित होने के कारण उसमें तुलसीदास की चर्चा भी प्रसंगवश आ गई है।

गीतम चन्द्रिका संवत् १६८१ में लिखी गई थी।<sup>१</sup> तब तुलसीदासजी को परलोक विचार एक ही वर्ष हुआ था। दूसरे, इसका लेखक तुलसीदास के निकट संपर्क में था और उनके जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों से परिचित था। अतः इस ग्रंथ की तुलसी-सम्बन्धी सामग्री विश्वसनीय है।

इस रचनार्थ एक स्थान पर मीरा का भी उल्लेख है, जो निम्नांकित है—

पंचकोट न्याबहि निपटाबहि । बिपुस संत तुलसीबल आबहि ।

डोल मुरंग डिमडिमी बाबै । बीन सितार मभीर साबै ।

अदल उबेनीबासतुं आप । सुपद सुर मीरां हूत गाए ।

सुनि तुलसी बानी अनुपयी । सुपद कृष्ण पद गावन साबी ।<sup>२</sup>

इसके पश्चात् यह पद्य भी दिया हुआ है, जो तुलसीदासजी ने माया बा ।

यद्यपि मीरा के जीवन पर उक्त उद्धरण से कोई सीधा प्रकाश नहीं पड़ता फिर भी इसे वहाँ इसलिए प्रस्तुत किया गया है कि इससे मीरा द्वारा तुलसी को भेजे गए पत्रादि सम्बन्धी प्रचलित मान्यता पर कुछ प्रकाश पड़ता है और मूल दुसराई चरित के प्रामाणिक उल्लेख का निरसन हो जाता है। इससे दो बातें स्पष्ट हैं—

(१) कोई उम्मीदीदास नामक भक्त तुलसी से मिलने आए थे और

से रामचरितमानस की टीका-सहित प्रकाशित 'रामचरित मानस' की भूमिका में बिना शीर्षक के दिया हुआ है। इसकी धोर निम्नानों का ध्यान सबसे पहले डा० माताप्रसाद गुप्त ने आकर्षित किया। उनके अनुसार यह सं० १५१० के यासपास की रचना है। यह ग्रंथ मूल मोसदाई चरित से बहुत साम्य रखता है। ये कदाचित एक दूसरे का किसी एक ही स्त्रोत की सामग्री से प्रभावित हैं।

(२) पुस्तक में ही निर्मोख संवत् दिया हुआ है—

संवत् सोरह सै एकासी, तुलसी बरपी घसी प्रकासी ।

सावन कृष्ण तीज तिथि पाई । यह गीतम चन्द्रिका पुराई ॥

(३) गीतम चन्द्रिका में तुलसीदास का अनुस्तुत, श्रीबिश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृष्ठ १०

उन्होंने तुमसी की मीरां और सूर के पद सुनाए ।

(२) जज्जीनीबास जैसे सामान्य भक्त के तुमसी से मिलने और सूर तथा मीरां के पद गाने का उल्लेख करनेवाला लेखक जिसका तुमसी से विशेष सम्बन्ध था और जो उनके प्रति भावर भाव रखता था 'सूर का तुमसी के पास पहुँचना और मीरां का विशेष वैयक्तिक संबंधवाहक द्वारा माय-निर्देशन के लिए पत्र प्रेषित करना' जैसी वास्तविक महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख नहीं करता है । यह बात अकारण नहीं हो सकती । कृष्णदास ने तुमसी के संपर्क में आने वाले वास्तविक साधारण और भाव के इतिहास के लिए अज्ञात व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है, वहीं पर सूर और मीरां के नामों का छूटना और उनके पदों का तुमसी के सामने आने जाने का उल्लेख इस बात की ओर संकेत करता है कि वस्तुतः मीरां ने तुमसी से संपर्क स्थापित नहीं किया था जैसा कि भूम गोसाईं चरित के लेखक द्वारा उल्लिखित किया गया है । चाय ही सूर और मीरां की भक्ति और उनके पदों की प्रसिद्धि इतनी हो गई थी कि भक्तपण तुमसी के सामने उनके पद आने लगे थे और तुमसी की वाणी उसके द्वारा लेने लगी थी । क्याचिद् जज्जीनीबास द्वारा मीरां के पद आने की इसी घटना ने तुमसी-भक्तों की कल्पना सहारे भूम गोसाईं चरित में उल्लिखित रूप धारण कर लिया है ।

क्रमिक संय का नाम	रचना-काल	लेखक	विशेष विवरण
(२) भक्तमाल	घापाड़ भुवसरी राजबदास सं० १७१७		संत भट की दृष्टि से रचित
(३) भक्तिरस बोधिनी मीका	कास्तुभ बदीर प्रियादास सं० १७१९		चैतन्य संप्रदाय के से
(४) भक्तमाल का दृष्टांत	संवत् १८००	बैष्णवदास के जगमग	प्रियादास के पोते बृन्हा बन बांसी निम्बार्क संप्रदाय के
(५) भक्त चरणसी	संवत् १८००	जामजमदास के जगमग	बैष्णवदास के भट से धनुबाद
(६) भक्त सुखस	संवत् १८१६	हरी (हरिदास)	प्रियादास की टीका को धनुबाद
(७) राजबदास द्वारा भक्तमाल की टीका	संवत् १८१७	जमदास	प्रियादास का धनुसरण नवीनता का पूर्ण धमाक
(८) भक्तमाल (फारसी धनुबाद)	संवत् १८६८	भू पुनासीलाल	————
(९) बुरमुली भक्तमाल	संवत् १८६८	कीर्तिसिंह	————
(१०) भक्तमाल (२४ लिप्य)	संवत् १९११	गुलसीराम अग्रवाल	दृष्टि और विवेचनमें मौलिकता रही लिपि में
(११) भक्तमाल की टीका हस्तलिखित	बासायाम पोषी का लिपि काल संवत् १९३२		संस्कृतभाषी बिलासमें सुरक्षित
(१२) भक्त कस्तुरि (२४ लिप्य)	संवत् १९३६	प्रतापसिंह	गुलसी साहिब की भक्तमाल का भक्त रस धनुबाद
(१३) राम रसिकावली	संवत् १९९१	रामा रपुनाथ सिंह (टीका)	————
(१४) संक्षिप्त भक्तमाल	संवत् १९२३	श्री युगल प्रियाजी (विश्व)	————

- (१२) भक्तमाल छप्पय संवत् १८१० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र \_\_\_\_\_  
 भादोंपूणिमा ३  
 (१६) रघुने मिहोबक्रा संवत् १८१४ श्री उपस्थीरामजी \_\_\_\_\_  
 (कारवी)  
 (१७) भक्तमाल हरिमल्ल संवत् १८१३ श्रीवारासीय \_\_\_\_\_  
 प्रकाशिका  
 (१८) भक्तमाल का संवत् १८१४ काला प्रसाद \_\_\_\_\_  
 धर्मजी सरा संवत् १८१४ मिश्र \_\_\_\_\_  
 (१९) श्रीनिम्ब संवत् १८१६ भाग्यप्रदाय चिन्मयी \_\_\_\_\_  
 (२०) भक्तिमुखा तिलक संवत् १८१६ बार्ज चिन्मयी \_\_\_\_\_  
 (२१) भक्तमाल शार संवत् १८१६ कपकला \_\_\_\_\_  
 (मराठी) संवत् १८१६ श्री निवास कृष्ण \_\_\_\_\_  
 (२२) भक्तमाला भक्ति संवत् १८१६ श्री निवास कृष्ण \_\_\_\_\_  
 प्रेमामृत (मराठी) संवत् १८१६ श्री निवास कृष्ण \_\_\_\_\_  
 (२३) भक्तमाल (गुजराती) संवत् १८१६ श्री निवास कृष्ण \_\_\_\_\_  
 भगवानबास सामान्य \_\_\_\_\_  
 (२४) भक्तमाल प्रसंग संवत् १८१६ देवसीमाई वैष्णव \_\_\_\_\_  
 (गुजराती) संवत् १८१६ श्री निवास कृष्ण \_\_\_\_\_  
 उनके लेखकों टीकाकारों या अनुवादकों की नामिक मान्यताओं की दृष्टि से प्रस्तुत सूची के भक्तमालों को सामान्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

- (१) संयुक्त वैष्णव मत की दृष्टि से लिखी गई।  
 (२) संत-मत की दृष्टि से लिखी गई।

इनमें रचना-काल की प्राचीनता सामग्री की गंभीरता और महत्ता तथा सामग्री को प्रस्तुत करने के मध्य 'दृष्टिकोण', इन सभी 'दृष्टियों' से 'विशेष महत्वपूर्ण कृति' निर्मात्र हैं—

- १ (क) भक्तमाल नामाबास  
 (ख) भक्तिरसबोधनी टीका प्रियाबास  
 (ग) दृष्टान्त वैष्णवबास  
 २ (घ) भक्तमाल राजबास  
 (च) 'पञ्चबास' कृत भक्तमाल की टीका चण्डीबास

कर्मिक ग्रंथ का नाम	रचना-काल	लेखक	विशेष विवरण
(२) भक्तमाल	भापाङ्क सुक्ल ३ राघवदास सं० १७१७		संत भक्त की दृष्टि से रचित
(३) भक्तिरस बोधिनी टीका	फाग्युम बबी६ प्रियादास सं० १७६२		वैतम्य संप्रदाय के मे
(४) भक्तमाल का दृष्टांत	संवत् १८०० के समय	वैष्णवदास	प्रियादास के पोते बुन्दा बन बांसी निम्बार्क संप्रदाय के
(५) भक्त चरबन्धी	संवत् १८०० के समय	लालचन्द्रदास	वैष्णवदास के भक्त से अनुवाद
(६) भक्त सुबस	संवत् १८३६ हरी (हरिदास)	प्रियादास की टीका का अनुवाद	
(७) राघवदास कृत भक्तमाल की टीका	संवत् १८३७	बबदास	प्रियादास का अनुसरण पकीनता का पूर्णतः अभाव
(८) भक्तमाल (फारसी अनुवाद)	संवत् १८६८	मै गुमासीसाह	—————
(९) बुरमुन्ही भक्तमाल	संवत् १८६८	कीर्तिसिंह	—————
(१०) भक्तमाल (२४ निष्ठा)	संवत् १९११	तुलसीराम अग्रवाल	दृष्टि और विवेचनमें मौलिकता बहुत लियि में
(११) भक्तमाल की टीका हिंस्तलिखित पाबी का लिपि काल संवत् १९३२		बालाराम	सम्बन्धवाणी बिभाषमें सुरक्षित
(१२) भक्त कल्पद्रुम (२४ निष्ठा)	संवत् १९३८	प्रतापसिंह	तुलसी साहिब की भक्तमाल का अन्त रक्ष अनुवाद
(१३) राम रसिकावली	संवत् १९२१	राजा रघुनाथ सिंह (रीवा)	—————
(१४) रसिक भक्तमाला	संवत् १९२३	बी युगल प्रियाबी (पिराज)	—————

कर्मिक संम का नाम	रचना-काल	रिक्तक	विशेष विवरण
(१५) भक्तमास छप्पम	संवत् १६३०	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भाष्यपूर्णमास
(१६) रमूमे मिहोवक्रा (फारसी)	संवत् १६३४	श्री तपस्वीरामजी सीतारामजी	
(१७) भक्तमास हरिमस्त प्रकाशिका	संवत् १६३५	जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	
(१८) भक्तमास का संघेजी करी	संवत् १६६४	मानुप्रताप बिबेदी (बुनार)	
(१९) श्रीनिम्ब	संवत् १६६६	जार्ज प्रियर्सन	
(२०) भक्तिमुखा तिमक	संवत् १६६६	रूपकला	उपयोगी संस्करण
(२१) भक्तमास सार (मराठी)	संवत् १६६६	श्री निवास कृष्ण धर्मन बाळकर	
(२२) भक्तमासा भक्ति प्रेमामृत (मराठी)	सं० १८११	श्री मार्तण्ड बुवा श्रीश्री बह्म पद्यात्मक	
(२३) भक्तमास (गुजराती)	—	मगवानदास देवसीमाई वैष्णव	सामान्य
(२४) भक्तमास प्रसंग (गुजराती)	—	यापानराम प्रभु राम मेहता	

उनके लेखकों टीकाकारों या अनुवादकों की व्यक्तिगत भाव्यताओं की दृष्टि से प्रस्तुत सूची के भक्तमार्गों को सामान्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

— (१) समुच्च वैष्णव मत की दृष्टि से लिखी गई ।

(२) संत-मत की दृष्टि से लिखी गई ।

इनमें रचना-काल की प्राचीनता सामग्री की नवीनता और महत्ता तथा सामग्री को प्रस्तुत करने के अर्थ-दृष्टिकोण— इन सभी दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण कृतिमें निम्नान्वित हैं—

१ (क) भक्तमास नामदास

(ख) भक्तिरसबोधनी टीका प्रियादास

(ग) वृष्टान्त वैष्णवदास

२ (घ) भक्तमास रामदास

(च) 'रापीदास' कृत भक्तमास की टीका जगन्नाथ

सौ प्रबंधों में कोई नई उपयोगी सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतः उपर्युक्त केवल १ प्रबंधों की ही मीरा-सम्बन्धी सामग्री का विवेचन इससे पृष्ठों में किया गया है।

### नामादास कृत भक्तमाल

नामादासजी का वास्तविक नाम था नारायणदास। वे अष्टदास शिष्य थे जिनमें से एक गलता पहाड़ी पर रहते थे बाद में बृन्दावन में रहने लगे थे। भक्तों के विषय में इनका ज्ञान अत्यन्त विस्तृत था। 'भक्तमाल' में इनकी कविबुद्धि के २०० से अधिक भक्तों का परिचय संयोजित किया है। अपने युग के अनेक ऐसे प्रसिद्ध भक्तों से इनका व्यक्तिगत सम्पर्क था जो मीराबाई समकालीन थे। अतः इनके मीराबाई-सम्बन्धी सम्बन्ध काफी विश्वसनीय हैं।

'भक्तमाल' के रचना-काल के विषय में मतभेद है। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सं० १९४३ के पञ्चांग की<sup>१</sup> काशी नागरी प्रचारिणी की सं० १९१७-१९ की सोज-रिपोर्ट के लेखक संवत् १९२२ के बाद की<sup>२</sup> श्री बुधदत्ती आनन्दक भा० त्रि० मेहता संवत् १९६० की रचना मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इस संघ में तुलसी का वर्तमान-काल<sup>३</sup> मीरा और सा नरेख मधुकरदास का वृत्तकाल<sup>४</sup> में सम्बन्ध है तथा तुलसी की मृत्यु-तिथि सं० १६८० और मधुकरदास की १६२१ है अतः इसका रचना-काल इन्हीं के बीच कभी मानना चाहिए।

'भक्ति प्रताप यद्य' सम्बन्धी सम्बन्ध के आधार पर बासुदेव बोस्वामी ने निर्णय किया है कि भक्तमाल का रचना-काल संवत् १६८६ के पञ्चांग धरता है।<sup>५</sup> नामादास की मृत्यु सं० १७११ में हुई थी।

मीरा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सम्बन्ध भक्तमाल में मिलता है—

सोक-भाष कुल-भूषणा तबि मीरा विरचर भजी।

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४७

(२) सूचना-संख्या ११७

(३) मीराबाई, पृष्ठ ९

(४) श्री भक्तमाल (कपकला), पृष्ठ ७२६

(५) यही, पृष्ठ ६७१

(६) भक्तमाल का रचना-काल, बासुदेव बोस्वामी, छायाचित्र हिन्दुस्तान, २२ जून १९२४

सदृश शोपिका प्रेम प्रगट, कमियुगहि विखायी ॥  
 गिरपंकुष धति निबर, रसिक-वध रसनावायी ॥  
 दुष्टनि शोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयी ॥  
 बार न बाँको भयो, गरल भमृत क्यों पीयी ॥  
 भक्ति-निशान बजाय की, बाहू से नाहिन सजी ॥  
 शोक-साज-कुल भुलना तबि, मीरां गिरबर भजी ॥<sup>१</sup>

इस छन्द से मीरां के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त होती हैं —

(१) मीरां के धारावाह्य गिरिबर थे। उन्होंने (मीरां ने) रसिक का (भीकृष्ण के रसमय रूप का) वध गाया था।

(२) मीरां का प्रेम शोपिकाओं के प्रेम के समान था अर्थात् उनकी भक्ति माधुर्य भाव की थी।

(३) मीरां ने शोक-साज कुल-भुलना तब ही की। किसी से भी उन्होंने साज नहीं की और भक्ति का डंका बजाया।

(४) वे निरंकुष और धति निबर थीं।

(५) दुष्टों ने मीरां के गिरिबर प्रेम को शोषमय समझकर उन्हें मारने के लिए गरल दिया। मीरां उसे भमृत के समान पी गईं। उनका बास बाँका भी नहीं हुआ।

प्रियादास कृत भक्तमाल की 'भक्तिरस-वीधिनी टीका' :

प्रियादासजी महाप्रभु कृष्णचैतन्य के संप्रदाय के अनुयायी श्री मनोहरदास के शिष्य थे। नामादासजी से इनका वैयक्तिक सम्पर्क था। उन्हीं की आज्ञा से इन्होंने 'टीका' लिखी थी।<sup>२</sup> जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है (भक्ति उनमान कहाँ लहरी मुख लठनि के) उनके शब्द का मूलाधार संतों में प्रचलित मान्यताओं की मौखिक परम्परा ही थी।

इन के साधु-संत और भक्त राजस्वान की राजकीय परिपाटियों से विशेष परिचित नहीं थे। अतः राजकीय जीवन से सम्बन्धित बातों, विशेषकर राज-परिवार के आन्तरिक क्रिया-कलापों, पद्धतियों तथा रीतियों के सूक्ष्म विवरणों के विषय में हम भक्तों के उन्मुख पूर्णतः विश्वसनीय नहीं कहें या

(१) श्री भक्तमाल पृष्ठ ७१२

(२) श्री भक्तमाल कथकला, पृष्ठ १



सकते । राज-परिवार के हर व्यक्ति को राजा या राजा और प्रत्येक स्त्री को रानी कह देना उनके लिए स्वाभाविक था । पर, मीरा के भक्तजीवन की प्रमुख घटनाओं (विशेषकर ब्रजागमन-नाम की) और उनकी भक्तिभावना के वैशिष्ट्य से ये शोक विशेष रूप से परिचित थे । अतः इस कोटि के उनके उत्कृष्ट प्रथिक बिल्कुलसही हैं । वास्तव में इनके उत्कृष्टों का धन्य साक्ष्यों की कसौटी पर कसकर और प्रतिश्रयोक्तियों से मुक्त करके ही स्वीकार करना उचित है । प्रियावास की मे अपनी इस टीका का प्रख्यान सं० १७६६ वि० में किया था ।<sup>१</sup>

टीका में मीरा सम्बन्धी संस इस प्रकार हैं—

टीका — “मेरखी” जन्मभूमि, भूमि हिस जैन लये  
 पने गिरिबारीबास पिता ही के नाम में ।  
 राजा की सवाई गई, करी ब्याह सामा गई,  
 गई पति बुढ़ि का रैखीके बनस्याम में ॥  
 माँदर परत मम बाँधरे सकुम माँद,  
 ताँबर सी भावें बनिये की पति नाम में ।  
 पूछे पिता माता “पट घामरन नीबिये जू”  
 मोचन भरत नीर कहा काम नाम में ॥१॥ ।

देवी गिरिबारीबास की निहान किन्ही बाही  
 और जन नाम सब राजिये उठाय के” ।  
 बेटी प्रति प्यारी प्रीति रंग बह्यो भारी,  
 रोय मिनी महुठारी कही “नीबिये लड़ाय के” ॥  
 डोला पनराय पुन-पुन सौ समाय बनी  
 मुक्त न समाय नाय प्रानपति पाय के ।  
 पहुँची मदन छासु देवी पै मदन किन्ही  
 तिया भव बर बैठोरी कपी भाय के ॥२॥

(१) संकट प्रसिद्ध इस बात सब कम्हतर  
 फलमगुन ही भास बनी लपतनी बिताइके ।  
 नारायणबास पुनरास भक्तमाल से के  
 प्रियावास बात घर बसी रही छावके ॥

—श्री भक्तमाल उपकृता पृष्ठ २३४

देवी व पुत्राय वीं कियौ न उपाय सामु,  
बर व पुत्राह, मुनि बभू पूत्रि भावियै ।  
बाबो 'मू बिकायो माथी साल गिरिपारी हाम  
घोर कौ न मई एक बही अमिताभियै' ॥  
"बहुत मुहाग याक पूब ताते पूबा करो  
करी भिनि हट नीस पामनि व सखियै" ।  
कही बार बार 'तुम यही निरवार जानी  
कही सुनुमार जाई कही मासियै' ॥१॥

तब तौ भित्तानो मई अति जरि जरि गइ  
यई पति पाय "यहू बभू नहीं काम की ।  
अब ही बबाव दियो कियौ अपमान मरी  
घाम क्यों प्रमान करै ? मई स्वास काम की ॥  
राना मुनि काम करयो बर्यो हिये मारिबोई  
बई छोर म्पारी दखि रोखी मति काम की ।  
मालनि सझाई पुन पाय कैं मझाई साबु,  
संग ही मुहाई जिन्हें सागी चाह स्पाम की ॥४॥

घाम कैं नगर कहै "यहू किन बेग भामा ?  
साबुनि मों हेतु में कमक साथ मारियै ।  
राना देसपछी साथ बाग कुम रती बात  
मानि लीनै बात बेगि संग निरवारियै" ॥  
"साये प्राग माथू संत पावत मनम मुक्त  
जाको पुन होय ताको नीक करि टारियै" ।  
मुनि कैं कटोरा भरि गरम पटाय बियौ  
मियौ करि पाग रंग बर्यौ मों मिहारियै ॥५॥

गरम पटायी सो तौ नीस नै बझायी संग  
त्याग बिय माथी ताको भ्रार न संभायी है ।  
राना नै मयायी बर, बैठ माथु डिग बर,  
नब ही लबर कर, मारी मई कारी है ॥  
राने गिरिपारीसाम जिन्हें सों रंग बाल बोलत

हूँसत क्याल काग परी प्यारी है ।  
 जाय नै तुमारी, मई घति अपसाई, घायी  
 जिये तरवार, है किनार, खोलि न्यापी है ॥६॥

“आके संय रंगभीषि करत प्रसंग माना  
 कही यह नर मयी बेनि है बसाइयै” ।  
 “आये ही बिराही कछु खोसों मही नाहीं धरूं  
 देखि सुख साजै धीन्हें खोलि बरसाइयै” ॥  
 भयोई बिसानी राना लिखी बिज मीत मानी  
 बलटि पयानी कियो नेकु मन चाह्यै ।  
 देख्यो हूँ प्रभाव ऐपे भाव में न भिछी जाइ,  
 बिना हरिऊपा कही कैसे करि पाइयै ॥७॥

बिपई कुटिल एक भेष परि साधु भियो  
 कियो यों प्रसंग ‘मोछों रंग संग कीजियै’ ।  
 आआ भौको बई भाव जात गिरिबारी ” “महो  
 छीस बरि नई, करि मोहन हूँ सीबियै” ॥  
 संतनि समाज में बिछान सख खोलि लिखी  
 “संक भव कौन की निरंक रस मीजियै” ।  
 सेत मुख मयी बिपेभाव सख मयी नयी  
 पावन है भाव ‘मोछों मतिजान दीजियै’ ॥८॥

क्य की निकाई भूप ‘अकबर’ भाई हिये  
 जिये संग तानसेन देखिये कों आयो है ।  
 गिरिधि गिहान भयो छवि गिरिबारीनाम  
 पद मुखजाम एक तब हूँ बड़ायो है ।  
 गुन्दावन भाई बीबगुसाई जू छों भिति भिनी  
 दिया भुल देखिये को पन नै कूटायो है ।  
 बेसी कुंज कुंज नाम प्यारी गुणपुंज भरी  
 बरी घर माँझ, भाव दैत नन पायो है ॥९॥

राना की मनीष मति देखि बेसी डारबति

रति गिरिबारीताल गित ही सझाईयै ।  
 सागी बटपटी भूप मलि की सरूप मानि  
 धति कुछ मानि बिप्र सेणी मै पठाईयै ॥  
 बेगि सैकै घाबो मोकों प्रान बै बिबाबो पछो,  
 गये द्वार बरनौ बै बिनती सुनाईयै ।  
 सुनि बिबा होन गई रास रणछोर जू वै  
 छाड़ी राखी ही न लीन गई नहीं पाईयै ॥१०॥<sup>१</sup>

उक्त उल्लेखों से निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं —

(१) मीरा का जन्म मेड़ते में हुआ ।

(२) पिता के ही घर में उन्हें गिरिबरताल से प्रेम हो गया ।

(३) राजा कै ( के यहाँ ) यर्वाट राजा के परिवार में उनकी समाई हुई ।

मीरा के समय उनका मन 'साँबरे सरूप' (इच्छा) में रज्ज और बिबा के समय से गिरिबारीनाम की मूर्ति को माँगकर समुपवास हो गई ।

(४) समुपवास पूर्ण करने पर साध ने घर से देवी-पूजन करवाकर बभ्रू (मीरा) से देवी-पूजन के लिए कहा पर मीरा ने स्पष्टतः मना कर दिया । साध ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके समुप से शिकामत की । राजा ने बहु दुःख कर दोषवश मीरा को एकान्तवास दिया और उन्हें मारने की घोषी ।

(५) मीरा को ब्राम्ह की चाह थी और उन्हें साधु सेव ही सुहाता था ।

(६) नगर में उन्हें समझाया कि संत-सेव छोड़ दो ( पर वे मानी नहीं ) ।

(७) राजा ने कटोरा भर गरम मेवा मीरा ने उसे सीध लगाकर पी लिया ।

(८) राजा ने भर लया विष और यह आदेश दिया कि जब मीरा किसी साधु के समीप बैठे, तभी सूचना दो । घर में कस के पीठर हँसी सुनकर राजा को सूचना दी । राजा ने आकर उस पुरुष के विषय में पूछा तो मीरा बोली— वे पुरुष तुम्हारे सामने ही विराजमान हैं । यहाँ खोलकर देखिए । राजा विधियाकर चित्र की भाँति रज्ज गया और चुपचाप लौट गया ।

(९) एक विषयी कुटिल साधु ने आकर कहा कि गिरिधर ने मुझे धामा

(१) श्री मक्तमाल, कथकला, पृष्ठ ७१४-७२३

बी है। तुम मेरे साथ प्रसंग करो। भोजगादि करके संतों के बीच परसम बिछाकर मीरा ने उससे कहा कि 'निरंक रस पीबिये'। उस साधु का मुख श्वेत हो गया और वह विषय माग लपककर पैरों पर गिर पड़ा और भक्ति-दान माँगने लगा।

(१०) 'रूप की निर्याई' अकबर बादशाह के हृदय में भाई और वह शानसेन को लेकर (गिरिधर की मूर्ति को) देखने के लिए आया। वह गिरिधारीनाम की छवि को देखकर निहाल हुआ और तब ही उसने (शानसेन ने) एक मुसबाबत पद चढ़ाया।

(११) मीरा बुम्बावन भाई जीवपोस्वामीजी से मिलीं और उनका भिया-मुख न देखने का प्रण किया दिया।

(१२) मीरा ने बच के कुँब देखे और भाल-प्यारी (कृष्णराजा) को हृदय में धारण करके भक्ति के वीर गये।

(१३) राखा की ममिनमति देखकर वे हारावती बनी। (चितौड़ में) बटपटी लगी तब मूप ने भक्ति का स्वस्व जानकर बुद्धि होकर विप्रों को यह कहकर भेजा कि द्वार पर बरना लेकर मीरा को मेरी बिनती सुनाता और सीध लाकर मुझे प्राण लेकर बिसाना।

(१४) राखा द्वारा प्रेषित बाह्यलों का आग्रह देखकर मीरा रणछोड़नी से विदा होने गई। वहीं भोग हो गई।

वैष्णवदास जी कृत 'भक्तमाल का वृष्टान्त' :

'प्रियादास की भक्तिरस-बीबिनी टीका' के पश्चात् भक्तमालों की टीकाओं टिप्पणियों और भावानुवाचों की एक लम्बी परम्परा मिलती है, परन्तु इनमें प्राचीनतम और सबसे अधिक मौलिक तथा संपादेय इति है वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल का वृष्टान्त'। इसकी एक हस्तलिखित प्रति लेखक को सन् १९ में 'प्राच्य विद्या मंदिर बङ्गौरा' के संग्रहालय में मिली। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'गुलसीदास' नामक ग्रंथ में जिस वैष्णवदास कृत 'टिप्पणी' का बल्लेख किया है, वह प्रस्तुत ग्रंथ से भिन्न है और निश्चित रूप से वैष्णवदास कृत नहीं है।

'भक्तमाल का वृष्टान्त' की इस हस्तलिखित पोथी का लिपि-काल

(१) इस पोथी में नरसिंह भट्टता मीराबाई कृष्णलाल नरहराम, परमानन्द इत्यादि के कुछ पद भी देवनागरी अक्षरों में दिए हुए हैं।

संवत् १८४२ है ।<sup>१</sup> कृष्णसाजी ने इस रचना का नाम सं० १८०० दिया है ।<sup>२</sup> वैष्णवदासजी प्रियादास के पौत्र थे<sup>३</sup> श्रीर प्रियादास ने सं० १७६६ में टीका लिखी थी । अतः दुष्टांत का उक्त रचना-काल लगभग ठीक माना जा सकता है ।

वैष्णवदासजी निम्नांक संप्रदायी तथा बुन्दावन-वासी थे । उक्त के मन्त्रों विशेषकर हृष्णमन्त्रों के सम्पर्क में वे विशेष रूप से धाये थे । भक्तमान की प्रियादास कृत टीका में कहीं मई कई बातों का स्पष्टीकरण इन्होंने किया है जिससे टीका द्वारा उत्पन्न कतिपय भ्रम सहज में ही दूर हो जाते हैं । अतः इसका दृष्टान्त अत्यन्त महत्त्व की सामग्री प्रस्तुत करता है ।

चूँकि यह सामग्री अभी तक अप्रकाशित ॥ अतः कुछ धंधों में पुनरावृत्ति तथा भाषा सम्बन्धी अधुनिकियाँ होने पर भी अपने मूल रूप में ही अधिकतम प्रस्तुत की जा रही है ।

भक्तमान छप्पय—भीरुबाई वृ प्रसंग

(क) मीरा गिरधर भजी ॥ मीरा को भीरवर भज्यो ॥ न पारमेष्ठ्यं निरवय संमुखस्तु साधुद्वय निबुधायुपायि न ॥ आसामहो चरणरेणुबुधामहं स्यां बुन्दावने किमपि गुत्तमलवीपवीनाम् ॥

(ख) सदस गोपिका प्रेम ॥ जैसे साहुकार का लड़ीका है नीत फेरि धाया है बोर कहना नहि कह भी बूके ऐसे गोपिन्ह से अधिक नहीं पर अधिक है ॥

(१) पुष्पिका, इति श्रीभक्तमान नाभास्वामी कृत प्रियादास कृत टीका का बुध्दाम्त वैष्णवदास कृत संपूर्ण । सं० १८४२ अतः सुबो वीरुबासी रबीबार समाप्त । श्री श्री श्री श्री श्री राम वठनार्च वैष्णव मनुमुपदास । लिखित कामी मध्ये कल्याणी देवी श्री कृष्णार्पण सुमस्तु श्रीरस्तु ॥

(२) श्री भक्तमान सटीक—मल्लिमुखास्व.व तिलक, पृष्ठ ३३ (कदकता ने इसका नाम भ० भ० लिपनी दिया है) ।

(३) वैष्णवदास कृत श्री भक्तमान माहात्म्य—(कृष्णसाजी श्री भक्तमान सटीक में सम्मिलित) पृष्ठ ६६४

प्रियादास अति ही शुद्धकारी । भक्तमान टीका विस्तारी ॥६६॥

सिगरी पौत्र परम रंज भीमो । भक्तन हित महात्म यह कीनो ॥७०॥

टीका-कविच

(१) गई मति बुद्धि वा रंगीले घनश्याम में ॥ माँव ॥

छोना साबन नायर सागर बर मुरली भुनी गरबी ॥  
बल्सम रुसिक ताम महरै गाबत धाबत सुर परबी ॥  
भोर पल करहु सीहु भैक लगी पूतरी सो बरबी ॥  
रुमक हर हरि घान घान बनि नाथ बरम की सरबी ॥ १॥  
इम नैननि मणि मोहन सोहन मुरति घानि अमानि (अमानी)  
बीरब धरम सरम सब धूले धूली नियम कहाणी ॥  
बल्सम रुसिक कोड कछु भापी सै भैक न मन में घानी ॥  
हिय घटकी सटकी बटकीसी पाव धु सुरा सुहानी ॥ २॥

(२) [ टिप्पण नहीं है ]

(३) देवी के पूजकको ॥

रुच्यति ते तवस्तन स्नान रात्रं गमा अपि ॥  
नैव गोपचुतं देवी पति मे कुरु ते नम ॥  
नोपिन को भगवत् प्राप्ति की बिदासा है । इनके साक्षात्कार  
पति की कृपण होय रहे हैं ॥

(४) अति छर वर गई ॥

छी कँठे बीसे रसी ( रस्ती ) बरै बाको धाकार रही ऐसे छी ॥  
जिने लामो चाह स्याम की ॥ हृष्य मछ नाहीं सत्संग करै ॥ बेयि संभ  
निरवारियै ॥

बिनकी बेहू मेह परिपूरन ते बबमगास्त बय माहीं ॥  
बिन दरसी तिमि परसै बिकने रोम रोम झूँ जाहीं ॥  
भर पधु पाग लपत छर बिनकी बासी सुनत बेराहीं ॥  
बल्सम रुसिक भिंसक धँक गरिगरि तिनसी लपटाहीं ॥

(५) उदाहराई मन्द सौ कहा

बोहा—भीन मारि बस भोई पाये अचिक पीयाब ।

× × ×

कविच—धूती भिंसि बासर भान मोये रहत तातें

बिनती करत सी न क्यों हूँ बिसरायबी ॥  
 हौं तो जरि जेहीं जबास जासनि वै सी मोरी  
 कैसे सहि जैसे बिरहाय की बसायबी ॥  
 कहूँ कहि चितामनि हूँ रे बहारि रूप  
 पाछने सनइ मोहि तहाँ पहुँचायबी ॥  
 कीजियो सपाय सोइ प्यारो धरै जहाँ पाँव  
 वेह भये हैह मरी तहाँ पहुँचायबी ॥  
 बाइसी भावना जबसी बीभक्षी तावुनो ॥ तुलनामि सबेनापि ॥१॥  
 धरै बिस्मोसिताबी गुरमुखरमति बैष्णवो जाति बुद्धि ॥  
 । धर्मावतारी-भावना बैष्णवोत्पति चित्त ॥  
 मान मोलिपरीक्षायां तुल्यामाहु मनीसिता ॥

#### (६) गरल पठाय दियो

रागा तो बड़ो मल्ल है पीर तो मल्ल सुखि सो ॥  
 चरनामूल देखे यह कटोर भर देखे ॥

#### (७) आसै पोसि दरसाईये

अकबर ने रसाईनी को बाँधा रसाइन सीपा चाहे सो वह बतावै नहीं ।  
 नित्य मारने का प्रयोग करे । रात्रीको सखा का रूप करिकै सेवा करे । बीस  
 रोज मारने की डीक पड़ी धाबू में बतावतो कन्हि मारी जिस रोज सखा को  
 बताया सो सेवा सो पाया बिन सेवा चाहे तो नहीं ॥

#### (८) संक खव कौन की :

बीरो बीजमनी तस्य आरोबममजोपिता ॥  
 ध्येन सदैव साधूनां बीरवारसिरोमने ॥  
 देस काल पात्र पाय जिस ही म है ॥

#### (९) रूप की निकरई मूय अकबर माई :

बिलापत के पास्ताह ने हिंद के पास्ताह को लिख्यो कि अपने देस का  
 मेवा सुन्दर सफ़ होय सो भिखियो । तब लिखा गुजराती मन्द म्याल को  
 करजै एक कन्हैया नाम है बाकी रूप के ठगर घनेक ईस्वी बावसी भई है ।  
 पीर टेटी एक फल बड़ा मेवा होय है सो पधिकनका बरजस घटकावै है ।



नहीं कि पाय नै जायो सो तनह के मी भी कनहिया सुन्दर है । सो बैसन धरवर  
पात्साह तानसेन समेत बीरबारी जी छवि को मगन होय गया ।

पद सुय जाल एक तबही भद्रायो है :

पद—प्यारी के बिहुर बिधुरे मानी धाराधर की स्थाय घटा डगई ।

ता मधि झुटि परै जैसे बड़ी बड़ी बूई ॥

ता मध्य मुक्ता मांग बय पाति तरुण यसक निच निच बिनुसता

सी कोबत नैच पंखरी । पीक बोमत बोझै छंदै ॥

जासा छारि हरि की रयदान सी बूझट करि जनी तरकै पीठि

पाछै ते सोई सास मुनीया सी कंचुकी लमी की फूई ॥

मेहरी सु धारक नच बीरबहुटी सी ऐसी पावस बनित मिमी ।

मीरां सास बीरवर कूं सै कामप्रीति हार मूई ॥१॥

पद पद तानसेन समेत धरवर धाय चढ़ायो ॥

वृंदावन आय गीतांई :

इही ब्रजत पीरै बृन्दावन में कोइ भसात है ॥

कोई ने कहा धानू ली बीवभुसांई है ।

तिया मुय देपने को पन से छुड़ायो है— पाता स्वप्ना बुझिआय  
नोबिबल्लसन भवेत ॥ बलवान् इन्द्रिय धामविद्वान्मतिवक्त्रपति ।

(१०) एति गीरधारीलाल नित ही सदाश्रयै : कवित्त—

छाँह सबेरो सबेरो सबेरो भकेले बुकेले बही रस बनयो ॥

आईयो छोड़ो न तेरी नली को को लोगन्ह नाक कुचाक हूँ पाक्यो ॥

बीन भयो हम सी गहू सो अप् कान्ह समान सबे करि छान्यो ॥

पौरि ली आईकै संग लपाय नै ते सुपदायक लोके न तान्यो ॥१॥

धारमार्ग चितये तन तासां मध्ये मनीरयो ॥

रूपयावनसंपन्ना किछीरि प्रमदावीति ॥

बोहा—प्रेम एक एक निच ली एकै संघ बिकारि ॥

बंकी की सोचो नहीं बन बन हाव बिकारि ॥

बचहूँ रनकट प्रेम सी सीपो जास बिबेक ॥

जैसी भीनय कावक पै दरबायो एक ॥

सुनि विदा होन गई

पद—राम श्री रमछार दीर्घ द्वारिका को बास ॥  
 सप जक गगन पदुम दरवीं मिटै जम की बास ॥  
 सकल तीरथ गामछो के रहत नित्य निबास ॥  
 संघ माय रिमांसी बाई सग मुय की रास ॥  
 लग्यो बैन न बेस हु तजि लग्यो राना राज ॥  
 राम मोरो सरन गिरिधर तुम्है सब सभ साज ॥

धाढ़ी रापी ही न सीन मई :

हे हरि हृद्य बनकी मीर ।  
 द्वापरी की नाज रापी तुम बड़ाया मीर ॥  
 भक्त धारन रूप नरहरि चर्या धाय सरीर ॥  
 हिरनकृष्ण मारि मोनी चर्यो नाहिन मीर ॥  
 बूझत भज प्राहु तारुया बिया बाहर मीर ।  
 दास मीरां नाम मीरधर दुप कहाँ तहाँ मीर ॥

पद—सजन मुधि ज्यों जानै त्यों मीर ॥

तुम बिन मेरे मीर न कोई कृपा रावरी कीर ॥  
 बिषम न रूप रैन नहि मित्रा मेहु तन पल पल छीर ॥  
 मीरां नाम गीरधर नाम सब भक्ति बिह्वरन नहि काजे ॥  
 या पद की छाप पग्न सति रमछाड़ू जू आमुय समाप बिया सी बेही ॥<sup>१</sup>

इस सामग्री में (क) (ख) शेष में अक्षमाल छप्पय टीका है। इससे मीरां के जीवन पर कोई नया प्रकाश नहीं पड़ता १, ३ ४ ५ ७ ८ में भी वृष्टय मीनता नहीं मिलती ।

(१) में विधा हृषा स्पष्टीकरता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अबतक बिहान् रसबोधिनी टीका के इस अर्थ का बहु अर्थ लगाते थे कि “मीरांबाई के सौंदर्य का इस मुनकर अफ़सर तानसेन के साथ उन्हें देखने आया था मीर देखकर

बिधाय दिव्यमी—

(१) उक्त दिव्यमी में बिधाय सैखत के उद्धरण भी अत्यन्त प्रामुख्य है, माया सैखती अथवा आधुनिकता भी है पर उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया है।

प्रसन्न हुआ ।<sup>१</sup> कुछ विद्वानों ने इस रासत वर्ण के आधार पर अकबर के द्वारका जाकर मीरा के दर्शन करने की कल्पना कर ली है ।<sup>२</sup> इसी आशय के मीरा के पत्र भी बना लिए गए हैं ।<sup>३</sup> पर वैष्णववास का यह "बृष्टान्त" बताता है कि तानसेन अकबर को लेकर मीरा को नहीं कन्हैया को दिखाने गया था और अकबर भी तानसेन समेत "गिरिबारीजी" की छवि को देखकर मग्न हुआ । तब तानसेन ने एक पत्र अकबर की सेवा में प्रस्तुत किया अर्थात् गिरिबर की मूर्ति के सम्मुख गया । इस पत्र में "गिरिबारीजी" की माधुर्य भाव की प्रशंसा मीरा के उनमें विषय होने के चित्र को प्रकट किया है । गिरिबर मीरा के सेव्य थे उनके पीछे के आराध्य थे । अतः मीरा का 'गिरिबर' के प्रसंग में उल्लेख करना अत्यन्त स्वाभाविक है ।

इससे एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि अकबर के समय में ही मीरा की इतनी धार्मिक प्रतिष्ठा हो गई थी कि अकबर उनके पीछे के आराध्य की मूर्ति देखने के लिए उत्सुक हुआ । उस समय मीरा कदाचित् इस लोक से जा चुकी थी । कम से कम वे आगरे के आसपास या बृम्बावन में नहीं थी वरना सुन्दर व्यक्तियों अफसों तथा कवियों से मिलने के लिए उत्सुक अकबर उनके आराध्य की मूर्ति के साथ उन्हें भी देखने का प्रयत्न करता ।

प्रसंग ६ और १० में श्रीमदोस्वामी से मिलने तथा गिरिबर-सेम का उल्लेख है । अतः के पत्र नानदीवास कृत पत्रप्रसंगमाला से सम्बन्धित हैं ।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मीरा के राजघराने की अंतरंग बातों

(१) मीरा माधुरी, रत्नवास, पृष्ठ २४

मीरा और उनकी प्रेय-बाली ज्ञानचक्र जीव, पृष्ठ २९

मीरा-वर्चन, धुरलीवर श्रीवास्तव, पृष्ठ १८-१९

मीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ ३३

मीराबाई ( गुजराती ) भा० मि० मेहता पृष्ठ ४३

संत, मीराबाई का गाथा (मराठी) बालकृष्ण लक्ष्मण पण्डित, पृष्ठ १३

(२) परिवर्तु निर्वाणवासी, द्वितीय भाग प्रथम निर्वाण से० सुंदर कृत

(३) भाई री सांख्यिया जाम्यो नाथ ।

कैव वरवी अकबर भाषी तानसेन से साथ ।

रगतान इतिहास ध्यान कर नाथ नाथ तिर नाथ ।

मीरा के प्रभु गिरिबर नाथ कीन्हों मोहि लगाव ।

—मीरा बृहद वच-संग्रह, धारणन, पृष्ठ ११०

के विषय में वैष्णवदास बिलकुल मौन हैं। प्रियादास द्वारा उल्लिखित राणा घोर मीरा की सास आदि के संबंधों और घटनाओं का टिप्पणी में धनुस्केत घोर इस विषय में केवल का मौन इस बात की ओर संकेत करता है कि संतों के पास मीरा के आंतरिक पारिवारिक संबंधों के विषय में विद्वत्समीप सामग्री नहीं थी। वे उनके भक्त रूप से ही परिचित थे।

दो अप्रकाशित टिप्पणः

(१) मीराबाई के सम्बन्ध में एक 'टिप्पण' डॉ० माताप्रसाद गुप्त के वैयक्तिक सग्रह की एक पोथी में है। यह पोथी गुप्तदास नामक व्यक्ति द्वारा स० १८८० में लिपिबद्ध हुई थी। वैष्णवदास कुछ भक्तमात्र की धारणा के भी इस पोथी में लिपिबद्ध होने के कारण डॉ० गुप्त ने इसे वैष्णवदास का मान लिया है। बड़ीदा से प्राप्त 'वैष्णवदास का दृष्टान्त की सप्त १८४२ की प्रति' से मिलाने से यह प्रतीत होता है कि यह 'टिप्पण' 'दृष्टान्त' के आभार पर ही बाद में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। दृष्टान्तकार ने कई महत्वपूर्ण विषयों पर भौतिक रूप से प्रकाश डालने का प्रयास किया है, पर टिप्पणकार महत्वपूर्ण शब्दों या वाक्यांशों पर कबित्त बोझा चढ़ाया था यह कहकर चुप हो जाता है। यह कहीं-कहीं और नाममात्र को है। उदाहरण के लिए—

सौक-साज पे :

कवित्त—छीर में क्यों छीर ल्यों समाई बूँद सागर में

तिल में गुमग बास भी गई सु भी गई ॥

×

×

×

क्य उमियारे गुनियारे जान प्यारे बाबें,

सो ही सों मयी है हीनी होइगी नु होयगी ॥

इसी प्रकार टिप्पणकार ने 'गिरधर भणो वै 'सबूख कोपिका प्रेम वै' 'रसिक जन रसना वै 'जैन सबै वै 'मिकाया म्हां लो वै 'बारबार वै' 'सांने प्रान साप वै 'बरम पठायी वै 'ब्यास वै 'बताइयै वै 'समु बसियै वै' 'धक्कर भाई वै 'पद मुक्तनाम वै' 'बिदा होने वै स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए हैं।

(२) संवत् १६०३ में किसी हरिदास द्वारा नैनबा (बूंदी) में लिपिबद्ध एक छीर 'टिप्पण' में भक्तमात्र तथा प्रियादास की टीका में आए मीरा-सम्बन्धी शब्दों पर इसी प्रकार से स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने वाले छंद मिलते हैं।

मीरा के जीवन और काव्य के सम्बन्ध में इन टिप्पणों में कोई नई या महत्वपूर्ण बात बता नहीं होती। इनसे केवल इतना निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनके रचयिता मीरा को 'मिमनसाखा भक्ति' के पक्ष का समर्थक मानते थे।

राधादास कृत भक्तमाल :

राजबहासजी 'बड़े सुन्दरबासजी के शिष्य प्रह्लाददास के पीत्र-शिष्य थे।' इन्होंने भक्तमाल आधाड़ सुकल १ संवत् १७१७ को पूर्ण की थी।<sup>१</sup> इस कृति पर रामदास के भक्तमाल का बहुत प्रभाव है पर राजबहासजी ने संत-संप्रदाय की सामग्री को आधाड़पूर्वक रखा है क्योंकि इसकी दृष्टि अनिवार्यतः संतमत की थी।<sup>२</sup> वे 'संत-संप्रदाय' की दृष्टि से मीरा के जीवन पर प्रकाश डालने वाले प्रथम व्यक्ति हैं। उनके द्वारा संत-संप्रदाय में प्रचलित बातों और संतों की भावना का संक्षिप्त किया जाना स्वाभाविक ही है। निर्गुणदासी राजबहास जी तथा सगुण संप्रदाय के भक्तों द्वारा किए गए चर्चे में से सुलना द्वारा सांप्रदायिक प्रख्या है। ऐसे वए धर्मों को सरलतापूर्वक छाँटा जा सकता है। इस दृष्टि से राजबहास के मीरा-सम्बन्धी चर्चे प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण हैं। वे निम्नलिखित हैं।

मीराबाई की वर्णन :

मूढ छप्पय — भोक् बह कुम भक्त सुख भुवि मीरा भी हरि भजे ।  
 बोपिन की सी प्रीति पीति कसिकाल बिपार ।  
 रसिकछायबस याई, निबर रही संत-समाई ।  
 रानी रोस उपाइ बहुर की प्याली दीन्ही ।  
 रोम मुस्यी नहीं एक भाँनि बरनामुष सीन्ही ।

(१) बत्तरी भाट्ट की संत-परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ४३३

(२) भक्तमाल के अन्त में रामदास ने स्वयं रचनाकाल दे दिया है—

संवत् सत्रह सी सतहतरा सुकल पक्ष बिचार ।

तिथि सुतिपा आधाड़ सुकल राखी सियी बिचार ॥

(३) अपने भक्तमाल में इन्होंने चार सगुण भक्ति-संप्रदायों के आचार्यों के समान ही नामक, कबीर, बाबू और जगन के लिए 'ये चारि महंत बहूँ ; बरकर' कहा है और निर्गुणमत का विस्तृत परिचय दिया है।

मोक्षति भक्ति धुराई की पति सो गिरिधर ही सजे ।  
लोक बेर कुल जगत सुप मुनि मीरा की हरि भजे ।

### मनहर

राम जी की भक्ति न भारी काहु दुष्टन की  
मीरा गई वैष्णु बहर दीन्हों बामिनी ।  
राजा कहै मारे नाब मारि जाटी याहि धाव  
धाप करे कीरतन संत बैठे बामिनी ॥  
प्रेम मनि पीया जिस पद गावे धर्मानस मैं  
ध्याप्यो नैकहुँ न सीन्हीं दुप मानिके ।  
रापी कहै राजी मुनि बैठी सब राज-लोक,  
मीराबाई गगन भरोसी ब्रह्माणि की ॥'

उक्त 'मूल छप्पय और मनहर' के निम्नलिखित सुचनाएं मिलती हैं—

(१) लोक-बेद कुल धीर जगत-मुक्त छोड़कर मीरा ने श्रीहरि भजे ।

उन्होंने रसिकराज का रस माया, पति के समान गिरिधर को माना और कलिकाल में गोपियों की सी प्रीति दिखलाई, अर्थात् मीरा रसिक गिरिधर की माधुर्य भाव की भक्त थी ।

(२) राजा हाथ बागबुझ कर मीरा को बिप बिया गया था । उसका कारण उनका वैष्णव होना था । मीरा उस बिप से अप्रभावित रहीं ।

(३) मीरा ने भक्ति की नीमत बनाई । वे संत-सभा में निबर रहीं पर मुख्य रूप से राजा और सामान्यतः समस्त लोक मीरा का विरोधी हो गया था । उन्हें केवल ब्रह्माणि (अमवान्) का भरोसा था ।

राघोदास जी की मठमास पर चतुरदास या चन्द्रदास की टीका

छोटे सुन्दरदास की छातरी पीढ़ी ने जगदास ने मार्गो बरी १४ संवत् १८५१ को राघवदास की मठमास पर अपनी टीका लिखी । इन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार राघवदास के मठमास पर प्रियादास ने टीका लिखी उसी प्रकार राघवदास की कृति पर मैंने लिखी पर वस्तुतः यह टीका प्रियादास की टीका के १० कवियों का १० सर्गों में कथानुसार है, यहाँ

(१) स्वर्गीय हरिदासराज पुरोहितजी के संग्रह की हस्तलिखित प्रति से ।

तब कि कवित्त के प्रत्येक चरण की सामग्री सर्वथा के एक चरण में और उसी क्रम से रखने का प्रयास किया गया है। अतएव मौलिक सामग्री की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नहीं है। अजरास संत-मत के वे और इनके समय में मीरा को संत-मत का भी बोधित करने का प्रयत्न किया जाने लगा था पर फिर भी उन्होंने परंपरागत अनुभूतियों का ही अनुसरण किया था। अतः अजरास के समय से प्रारंभ होने वाली संत-संप्रदाय की अनुभूतियों में से प्राचीन तथा नवीन प्रयोगों को समझ करने में इनके सम्बन्ध विशेष उपादेय हैं।

अजरास जी ने मीरा के संबंध में निम्नांकित १० सर्वे निवे हैं—

टीका इंच छंद

मात पिता कमसीं पुर मेकठ प्रीति लबी हरि पीहर याहीं ।  
रामहि बाह सगाह करावत व्याहन घावत भावत नाहीं ॥  
फेर फिरावत बान सुहावत यों मन में पति सावि न बाहीं ।  
हेत लबे पितमाठ आयुपन मीत भरे बल मोहि न बाहीं ॥१॥

घौ पिरिबाधिह मान निहारन बेस अनुपन बेस बडाबी ।  
मातपिता मु सुता भति है प्रिय रोम बये प्रभु केहु लडाबी ॥  
पाह महासुप बेपत है मुक्त डोलहि मैं बयछह बलाबी ।  
बौमहि पीवत मात पुजावत सास करावत मांठि पुराबी ॥२॥

मात पुजाह लई सुठ पै पुनि पूजि नहू भव सास कही है ।  
सीस नबै मन की पिरिबाधिह मान न मानत नाव बही है ॥  
होत सुहागिणि बाहिक पूवत टैक तबी छिरनाई मही है ।  
एक लबै हरि और न नावत मानत क्यूं नहि बुझि बही है ॥३॥

होह सदास भरी डर सास गई पति पास नहू नहि घापी ।  
मानत मैं बल फेरि मिनै कम केति कही छिरि घातन पापी ॥  
रोस करौ नृप ठौर पुरी बह रीकि लई बह नाचन कापी ।  
मृत्य करै डर लाल भरी सतसंग बरी सबहै जन सापी ॥४॥

भाह नएँव कही सुनि भाभिहि साजन संग निबारि मजीबे ।  
लाजय है नृप तास बही भुल लावत है बेट बेगि तबीजे ॥

संत हमारहि जीवनमानस तारत हैं कुल सख मनीजे ।  
बाई कही तब भैंर पठावत सैं बरनामृत पान करीजे ॥३॥

सीस नबाई पीत भई बिय संतन छोड़न है दुप भारी ।  
भूप कही मृति जीवस रापहु आइ नगै जन बालत मारी ॥  
स्यामहि सैं बलनात सुनी तब आइ कही सबहैं सत पारी ।  
सो मुनिहैं तरवारि लई कर सौरि ययो पट पोनि निहारी ॥६॥

बोलत हीन गयो कत मानस देहु सपाइ न मारत छोड़ी ।  
देह परे कछु माहि डरे बित सेत हरे किन बाहत मोही ॥  
भूप लबाइ रखी बड़ होइर ऊठि गयो तजिहैं सर छोड़ी ।  
देवि प्रताप न मानत आप रहीं उर ताप करै हरि बोही ॥७॥

सतन भेष कर्यौ बिपई नर आई कही मम संग करीजे ।  
माल बई यह आइस जानहु भांनि लई सब भोजन सीजे ॥  
सेब बिछावत साब सुभा बिधि टेरि लियौ तब कारिब कीजे ।  
देवित ही भूप सेत भया पनि आइ नगै सब सिप्या मनीजे ॥८॥

भूप अकबर रूप सुखी भति तानहिसेन भिये बलि दायी ।  
देवि कुत्पाल भयो छत्रि जालहि एक सबद बनाइ सुनायी ॥  
जा बृज जीव मिली पन ही तिय बैपतनैं भूप ताहि छुड़ायी ।  
कुंजन कुंज निहारि बिहारिहि आइक बैस नगै नन पायी ॥९॥

भूपति बुद्धि समुठ नवी भति डारवली बसि जाल सकाये ।  
पेटि बलभ होत भयो भूप जानि महादुप बित्र पिनाय ॥  
सैकरि आबहु मोहि बिबावहु बेधि भये समचार सुनाये ।  
होन बिदा बलि ठाकुर पै भूप माहि भई तुछ नीर रहाये ॥१०॥

इसके आचार पर केवल एक नवीन सूचना प्राप्त होती है कि राजा के  
पेट में जलनर हुआ । अतएव उन्होंने मीरा को बुलवाया ।

संत दरिया सह्य (विहार वाले) :

बरिया साहब ने मीरा के कृष्ण-मेघ में पावन होने का तथा उक्त प्रचलित



कहानी का उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है कि मीरा को एक विप का प्यासा दिया गया और वे उसे सहर्ष पी गईं ।<sup>१</sup>

हरिया साहब बिहार के रहने वाले थे । इनका जीवन-काल संवत् १७३१ से संवत् १८३७ तक था ।<sup>२</sup> हरिया साहब कृत उल्लेख में कोई नई सूचना नहीं है परन्तु इससे एक महत्वपूर्ण बात का संकेत मिलता है कि संवत् १८०० के आस-पास तक यहाँ में मीरा के कृष्ण-भक्त (सगुण कृष्ण के प्रति माधुर्य-भाव) की बात ही प्रचलित थी । मीरा को ज्ञान का सोझा पकड़ा कर मूल के बाने में लड़े करने का प्रयास उस समय तक व्यापक नहीं हुआ था ।

नागरीदास :

नागरीदास कृत सिंगार-सागर के अंतर्गत पर-प्रसंग-भासा में 'नानप्रिय स्वाम सुधान तिमकी मीना पर संवत् १७३६ करिके वैष्णव गावट भाए है तिनके ककूत पर प्रसंग' <sup>३</sup> (प्रसंग और उनसे सम्बन्धित पर) भाए है । मीरा के संबन्ध में भी इसमें 'प्रसंग और तत्संबन्धी पर' है । इसके अतिरिक्त पर-प्रसंग-भासा के मयसागरण की स्तुति के पर में भी मीरा का उल्लेख है ।

नागरीदास कृष्णकृष्ण के महाराजा चारुचंद्र का ही हरि-संबन्ध का नाम था । इनका जन्म पीप कृष्ण १२ संवत् १७३६ को हुआ था । इनके ७३ वर्ष उपसम्भ हैं जिनमें से १५ में रचना-काल भी दिया है । इनमें मनोरम मंचरी संवत् १७८० की और वनवनप्रसंगा संवत् १८१२ की रचना है । वेप का रचना-काल इन्हीं दोनों संवत्‌ओं के बीच पड़ता है ।<sup>४</sup> अतः पर-प्रसंग-भासा का रचना-काल संवत् १८०० के आस-पास मानने में विशेष त्रुटि की संभावना नहीं है ।

(१) संतकवि हरिया, एक अनुशीलन, डॉ० जयेंद्र महाराजी धारवी, पृष्ठ ७, टिप्पणी १७

(२) वही, पृष्ठ ३

(३) नागर समुच्चय सिंगार सागर, पृष्ठ १८२

(४) वही भी नागरीदासजी का जीवन-चरित्र, बाबू रामकृष्णदासजी, पृष्ठ १२

(५) वही, पृष्ठ २४ २३

यद्यपि नागरीशम के मीरा-संबन्धी उत्तरेष मीरा के २०० वर्ष बाद के हैं पर व अपने नाम की मीरा-संबन्धी अन्य सामग्री से अधिक विश्वसनीय हैं। इसके कारण इस प्रकार हैं —

(१) नागरीशमजा उसी राठौड़ बंस का व जिसकी कि मीरा थी। मीरा हुदाजी का पुत्र रणसिंह की पुत्री थी और नागरीदास हुदाजी के मगे भाई मूबाजी के बंजर व।<sup>१</sup>

(२) मक्ति-शम के निश्चित साहित्य की मुरझा के प्रमुख केन्द्र दो ही थे—राजकीय संग्रहालय और सांप्रदायिक महिला। नागरीशम एक राज्य के स्वामी थे और वह जो राजस्थान के एक राज्य के हुये, वे स्वयं वृष्णभक्त थे और साधु-सन्तों से उनका विशेष संबंध था। अतः अपने युग के मक्त लोगों की अपेक्षा उनके पास मीरा-संबन्धी सामग्री के प्राप्त करने के अधिक साधन थे।

(३) नागरीदास बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे और बल्लभ संप्रदाय के लोग मीरा के प्रति प्रशंसात्मक भाव नहीं रखते थे। इतना ही नहीं उनके लिए भगवत्ओं का प्रयोग भी कर बते थे। अतः नागरीदास द्वारा मीरा की प्रशंसा में प्रतिस्पर्धात्मक बातें कहे जाने की संभावना नहीं है।

(४) नागरीदास स्वयं राठौड़ बंस के एक राजस्थानी राजा थे। वे राजस्थान की राजकीय परंपराओं से परिचित थे विशेषकर राठौड़ों की परंपराओं से। अतः मीरा के पारिवारिक संबंधों का संबंध में उनका उत्तेज अन्य भक्तों और साधु-संतों के उत्तेजों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। उस काल में संत लोग राज-परिवार की हर स्त्री का रानी और हर पुरुष को राजा कहते थे। नागरीशम ने इस प्रकार के उत्तेज सतृप्तापूर्वक किए हैं।

(५) नागरीशम ब्रज और राजस्थानी दोनों भाषाओं तथा उनके साहित्य के ज्ञाता थे। उनके संबंध में भी अनेक कवि और पंडित थे।<sup>२</sup> वे स्वयं एक मुख्य साहित्यकार व। मीरा की रचनाएँ ब्रज-राजस्थानी साहित्य परंपरा की हैं।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से मीरा के विषय में नागरीशम की भूमना के जोर और आधार उनके युग के अन्य भक्तों और कवियों की अपेक्षा

(१) भारद्वाज का इतिहास, देव पृष्ठ ८३-१४७ तथा

नागर लघुग्रन्थ श्री नागरीदासजी का जीवन-चरित्र, पृष्ठ ८१२

(२) कवियों और पंडितों की एक सूची 'नागरीदास श्री का जीवन-चरित्र' में बाबू रामावृष्णदासजी ने पृष्ठ २६ पर दी है।

मिश्रित रूप से अधिक मान्य और विश्वसनीय हैं ।

नामरीबास की रचनाओं में मीरा सम्बन्धी उल्लेख निम्नांकित हैं—

(क) पद प्रबोधमाला का उल्लेख—

मेरे प्रिय वेद व्यास ॥

श्री हरिचंसद व्यास गदाधर परमानन्द नन्दबास ॥

× × ×

तुमसीबास मीरा मानव सब जैम नामरीबास ॥<sup>१</sup>

(ख) पद-प्रबोधमाला के उल्लेख—

(१) पद अथ पद प्रसंग ॥ बचनिका ॥ मेइतें मीराबाई ठिनकों  
राना के छोटे भाई सों व्याही यह प्रसिद्ध है ही सो कितनेक दिन उपरास काहु  
समै राना के बा भाई को बेहान्त भयो अब राना हुते सो मीराबाई सों रुप  
पाय रहे ही हैं, ये वैष्णवनि को सतसंघ करिते बासी बा समै राना ने कहाई,  
जो यह धौसर है तुम भरता के संग सती होइतु तब मीराबाई भक्त रस प्रायै  
भये है, त्योही भये रहे या समै कहू वेद मानी नाही अब या बात के उत्तर कों  
एक विष्णुपद नयो बनाय राना कों सिधि पठ्यो पद बहुत प्रसिद्ध भयो ॥  
सो कह यह पद ॥

मीरा के रङ्ग लम्बो हरीको और रङ्ग सब बटक परी ॥  
बिरबर पास्यो सती न होस्वां मन भोझो बननामी ॥  
बेठ-बहु को नातो नहीं राणाजी भूँ खेच के स्वामी ॥  
बूढ़ो दोबड़ो तिमक बु माना धीनबर्त सिंगार ॥  
और सिंगार भाई नहि राणाजी यों बुर प्यान हमार ॥  
कोई निबो कोई बिबो पुछ भोबिह रा बास्या ॥  
बिरा मारग वी संत पहुँता तिरा मारम भूँ बास्या ॥  
ओरी करा न बीर संतावा कोई करसी म्हाँरो कोई ॥  
हसती बहि गवै नहीं बडां बातो बात न होई ॥  
राज करता नरक पड़ेसी भोभीका बम की लीवा ॥  
गिरबर बखी कर्बो गिरबर भात पिता सुत भाई ॥  
वे बाहुरे भूँ ह्या हारेंतो राणा जी यों कहें मीराबाई ॥

(२) पुनः अथ पद प्रसंग । मीराबाई सों राना बहीठ रुप पायै रहीं,  
राना के घर की रीति तें इनके भिन्न रीत यह भगवत सम्बन्ध सत्यसंघ विशेष

कर । देह सुम्बल को माता झीहार बहुत न माने रागा बहुत ममुमय रहो  
निराज एक बिष को प्यालो उनको पठ्यो कह्यो जगनामृत को नाम लैके  
दीवियो उनही प्रण है जरणामृत के नाम से पीहो जायग या ऐसे ही भयो  
भानि ब्रम्ह दीयो रागा तो इनक भरिबे की राह देखत रह्यो यह यह भोम्ह  
भूईय भय लैके परमरेण मों एक भयो पद बनाय ठाकुर साथे साबत भये पद  
बहुत प्रसिद्ध भयो भो यह यह पद—

रानैय बिष दीनो हम बानी ॥  
जान ब्रम्ह जरणामृत मुनि दियो महि कीरि मीरानी ॥  
कमल कमल बसोटी जीवै तन रह्यो बाण्ड बानी ॥  
साधुन विरहर स्वास कियो यह छाव्यो हूबहू वानी ॥  
रागा कोटक बागे बिहि पर हौं तिहि हाव बिदानी ॥  
मीरौ प्रभु विरहर सागर के करन कमल सपटानी ॥२॥

पुन भव्य पद प्रसंग ॥ रागा को छोड्ये भाई मीरों को देह सुम्बल  
को मर्तो हो सो लाको परमोक भयो ता पीछे मीरोंबाई गंगादिक् तीरव करिके  
घर भी बुन्नावनहू साथे तहां बीरु भुसाई जी को प्रण स्त्री के न देदिबे को  
छुटाप सब सों भुद मोक्षिदवत सनमान सज्जसंग करि झारिका को बसे ऊहा  
बास करिबे के भिये तहां एक बारण में एक भयो पद बनायो बहुत प्रसिद्ध  
भयो सो यह यह पद—

राय भीरमछोड़ दीव्यो झारिका को नाम ॥  
संज बज नवा वज्रम हरनें मिटै भय की नाम ॥  
सकल तीरव बीमती के रहन दिन निवास ॥  
संग भालर भोम्ह बावै सदा मुख की रास ॥  
तज्यो बेमह बेकहू तबि तज्यो रागा रास ॥  
नाम मीरौ सरन भावत तुम्है यह गह नाम ॥३॥

पुन प्रसंग ॥ भो या यांति मनीरम करत यह पद साबत झारिका पहुँचे  
तहां कोई दिन रहे ता पीछे मीरोंबाई के संग प्रीतिहासिक से रागा के लोक  
है, दिन कह्यो सब बहुत दिन भये है सब दिन की बसो रागा की भाम्या है,  
ऐसी है तीन दिन तो कह्यो छिदि मीरोंबाई परि बला कियो तब मीरों

बाई ठाकुर रनछोड़ू सी बिदा हूँवे को नांव ली मंदिर में चकेके ही नाम  
महाभारति सहित एक मयो पद बनाय गायो सो बहु यह पद—

हरि हरिहो जगकी भीर ।  
होपवी की आज रापी तुम बढायो भीर ॥  
भक्ति कारण कम नरसिंह बरुयो आप सरीर ।  
हरिनकस्यप मारि सीपी बरुयो मांहिन भीर ॥  
बूझतै पद चाह ताबो किम्यो बाहिर भीर ।  
बास भीरा साज निरबर रुप जहाँ तहाँ भीर ॥३॥

सो यह पद गायें हूँ चतुर्थें न करे, तब महाभारति प्रेमावेश सहित एक  
घोर पद बनाय गायो तबही ठाकुर आपमें जनकी याही शरीर है सीन करि  
सीने देह हू न रही सो वा पद के गायें सीन भये सो बहु यह पद—

सजन सुधि ज्यों जानें ज्यों सीने ।  
तुम बिन मेरे घोर न कोई कृपा राखी कीने ॥  
सीस न रूप रैन नहि निजा यह जन पस-पस सीने ॥  
मीरा प्रभु गिरबर नागरप्रब मिथि बिहुरनि नहि कीने ॥१॥

सो ये बोकसब निकट द्वार के इनकी परमचतुर बीष्णुब सवी ने कंठ  
करि सीने तथा लिपि सीने से प्रसिद्ध भये ॥१॥

पुनः अग्न पद प्रसंग ॥ मीराबाई की कई प्रांति की चरबा निरकजन  
राना भाई बहुत करन लागे तब एक समी राना ने अपने अंत-पुर की एक  
स्त्री को पछावो । कह्यो कि धात्री राति उपरास्त जहाँ वे होंव तहाँ बसी  
बाइने काहू की इटकी भय रहिये । सो जानै ऐसी ही किम्यो मीराबाई भटारी  
पर सोई सोई जावत ही सीहें जन्ममा की बैधि बैधि हरि प्रीतम के अंत-पुर  
को बिरह सह सहत ही जनकी भावना करि करि परी सदास केत ही छतने  
ही ये नाम ठाडी गई ताकू मीराबाई कह्यो तनकेक बैठिके हमारो दुप मुनी  
या समै हमकू तुम बड़े मोटा भिके सो जबपि वह बिजाती है परन्तु ज्यों  
कौळ भति धनीर अनुराजी हीय ताक बिजाती सजाती को म्यान नाही रही,  
बहि अपने बित नहि सो कहै ही कहै यातै वाके भावे नही बेर एक पद बनाय  
बनाय के पावन लपी सो पद सुनि इनकी अवस्था बैधि वह भाई हुती सो परम

धनुष में सुरछित हूँ गई इसकी ही निवटबर्ती परम वैष्णव भई, फिर  
राना के घंटपुर में न गई फिर राना और काहु स्त्रीनि की इनपै पठई  
छाई नट जाइ, अब कहै जनपै क्या-ज्यो आयई सो बावरी हूँ जात हूँ ठाँ  
इम न जाहिगी यह बात इनकी बहुत प्रसिद्ध भई सो पिछ्छी रात क समे जा  
प के मुनै ती राना की सहचरी की उनमत्त दसा हूँ गई सो कहू यह पद—

मयी मेरी नीव नसानी ॥

पिय को पंच निहारता सब रैन बिहानी ॥

सपीयनि मिलि सीप गई मन एक न भानी ॥

बिन बैरी कस ना परै बिय ऐसी छानी ॥

प्रांग छीन व्याकुल भई भुप पिय पिय बानी ॥

अंतर बेधन बिछ की बहि पीर न जानी ॥

ज्यों जातक बन की रहै मछरी बिन पानी ॥

भीरौ व्याकुल बिरहिनी भुभि बुभि बिसरानी ॥१॥

### वत्सल-सम्प्रदाय का वार्त्ता-साहित्य

वत्सल-सम्प्रदाय में प्रचलित वार्त्ता-संस्करणों में से दो में वीर-सम्बन्धी  
उल्लेख मिलते हैं। इनमें से एक संस्करण 'वीर-वैष्णव की वार्त्ता' और  
दूसरा 'श्री श्री बावन वैष्णव की वार्त्ता' नाम से प्रख्यात है।

इन वार्त्ताओं के रचयिता और रचना-काल के विषय में बहुत मतभेद  
है। वत्सल-सम्प्रदाय के संतर्गत ही दो मत प्रचलित हैं—

(क) विद्या-विधाय (कांक्रोली) के संभासक श्री कंडमलि शास्त्री के  
धनुषार वार्त्ता-साहित्य के तीन संस्करण हुए हैं। पहला संस्करण श्री योकुल  
रावजी के कथा-यकवर्गों के रूप में प्राप्त होता है। इसका काल संवत् १९४३  
से संवत् १९६० तक है। इस समय तक इन वार्त्ताओं का वर्गीकरण ४४ और  
२१२ वैष्णव की वार्त्ताओं के रूप में नहीं हुआ था। दूसरा संस्करण इन  
वार्त्ताओं के ४४ और २१२ नामों के साथ संयुक्त होकर वर्गीकृत क्रमबद्ध रूप  
का है। यह कार्य योकुलरावजी के जीवन-काल में ही सगुं के तत्वावधान  
में श्री हरिरामजी ने सम्पादित किया था। पता इन वार्त्ताओं पर 'श्री योकुल  
नामजी हठ' मिलता जाने लगा। इस संस्करण का काल संवत् १९६४ से सं०

१७३५ तक है। तीसरा संस्करण भी गोकुलनाथ भी के पश्चात् भी हरिराम भी द्वारा हुआ। इसमें उन्होंने 'भाव प्रकाश' नामक टीका और जोड़ दी। इस संस्करण का काम संवत् १७३५ से संवत् १७८० तक है।<sup>१</sup>

(ख) ब्रह्मसंप्रदाय के एक प्रमुख सक्रिय साहित्यिक कार्यकर्ता और बार्ता-साहित्य के पंडित भी द्वारकावास परीक्ष का मत है कि 'ये बार्ताएँ ब्रह्ममाचार्यजी के समय में (सं० १५१५ से १५८७ वि० तक) कदाचित् मौखिक रूप में जन-समाज में प्रचलित थी। बाद में मुसाई भी बिट्ठलनाथजी के समय में (संवत् १५७२ से संवत् १६४२ तक) ये ब्रह्ममाया के गुरु-पंचात्मक रूप में केस-बद्ध हुईं। भी मुसाईजी के सेवक वृष्णमहृ उन्नीमिनाथों ने सर्वप्रथम इन्हें ब्रह्ममाया के गुरु के रूप में केस-बद्ध किया था। परंतु उनके उस केस-बद्ध रूप में न तो वह संस्कारमय बार्ता का क्रमिक रूप था और न केवल व्याचार्यजी के ही सेवकों के प्रसंग से। इस पोथी के आधार पर ही गोकुलनाथजी ने ८४ एवं २५२ वीं प्रकरण की बार्ताओं का निर्माण किया।<sup>२</sup>

इस प्रकार संप्रदाय की दृष्टि से इस विषय में दो मत उपलब्ध हैं। एक के अनुसार बार्ताएँ संवत् १७३५ तक और दूसरे के अनुसार संवत् १६४२ या १६४५ तक लिपिबद्ध हुई थी।<sup>३</sup> संप्रदाय में इन बार्ताओं की प्रतिक्रिया की दृष्टि से मुख्य ही नहीं बटनाथों के उत्प्रेक्षकों की दृष्टि से प्रामाणिक और विश्वसनीय भी माना जाता है। संप्रदाय के बाहर के कुछ विद्वान् (डॉ० हरिहरनाथ टंडन आदि) भी इन बार्ताओं को ब्रह्मसंमत इतना ही प्राचीन और प्रामाणिक मानते हैं।<sup>४</sup>

यह तो मसीमांति सिद्ध हो चुका है कि 'ये ही वाचन बार्ता' का केवल 'चौदसी बार्ता' के केवल से भिन्न है और '२५२ बार्ता' गोकुलनाथजी की कृति नहीं है क्योंकि इसमें संवत् १७३५ तक की बटनाथों के उत्प्रेक्ष धाते हैं।<sup>५</sup>

(१) प्राचीन बार्ता-रहस्य द्वितीय भाग, कण्ठमलि द्वारका द्वारा लिखित भूमिका।

(२) दो सौ वाचन वीष्णुवन की बार्ता संपादक अर्थात् तथा परीक्ष द्वितीय कण्ठ विल्लैयसुप्रसन्न प्रध्यायन, पृष्ठ ३।

(३) प्राचीन बार्ता-रहस्य प्रथम भाग की गुजराती 'प्रस्तावना' में द्वारकावास पाठीक ने बार्ताओं का रचना-काल संवत् १६४२ से सं० १६४५ तक माना है।

(४) जनभारती सं० १९३५-४४ वीं प्रकरण की बार्ता की प्रामाणिकता-पृष्ठ ८-११।

(५) डॉ० वीरेन्द्र वर्मा : हिन्दुस्तानी सन् १९३९, पृष्ठ १४५-१७७।

इन बातोंमें से कुछ ऐसा प्रसंग भी है, जो नामदीक्षा कृत ८२ प्रसंगमामा की रचना के बाद में निपिबद्ध हुए हैं। यही हमारे विस्तृत विवरण अनावश्यक हैं क्योंकि डॉ० माताप्रसाद गुप्त और चन्द्रबनी पाण्डेय इस सत्य की समझाने प्रस्तुत कर चुके हैं।<sup>१</sup>

वस्तुतः गोकुलनाथजी के समय तक ये बातें ऐं मौखिक रूप में ही प्रचलित रही थीं। वल्लभाचार्य जी से इनका सम्बन्ध कदाचित् इसलिये जोड़ा जाता है कि वे ब्रह्म-संस्कार के समय संन्यास का आचार्य और बालकाल या बाल्यावस्था में थे।<sup>२</sup> गोकुलनाथजी ने भी इन्हें लिखा नहीं। उन्होंने केवल "मीनद्विस्तानाचार्य मत्स्यनामाचार्य" लिखा है। जिसमें ८४ श्लोकों का उल्लेख है। एक बार रामदीक्षा समारंभमामा की बातों का प्रसंग छिड़ा जिसमें एक श्लोक न बिलाली की कि 'आज कोई भद्रार्थ बातें नहीं करो'। गोकुलनाथजी ने अपने शिष्य से आशा की कि आज से ये भद्रार्थों की बातें कहेंगे जो कि ठाकुरजी की श्रद्धालु प्रिय हैं। इतना कहकर यह ८४ श्लोकों की बातें कहेंगे। आरंभ करेंगे।<sup>३</sup> इस उल्लेख से भी यही पता चलता है कि गोकुलनाथजी ने बातें नहीं की थीं और न भी ८४ बातें २३२ बातों का रूप उनका सामने भी नहीं था।

पर प्रसंगमामा में बाल्यावस्था प्रसंगों से २३२ बातों के प्रसंगों की तुलना करने से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका संग्रह और संपादन हरिदासजी के बाद तक चलता रहा। उनके जीवन-काल में यह कार्य पूरा नहीं हुआ था।

कट्टर बन्धन-संस्कारों के कारण जब श्यामल ने 'बीरसी श्लोक' नाम से एक कविता लिखी है, २३२ श्लोकों के विषय में वे मौन हैं। नामदीक्षा भी वल्लभ कृत के मूल में। उन्होंने कलिबीरप्यवस्थी में भगवाणराय में 'बन बीरसी मन्त्र' की कविता की है, पर २३२ मन्त्रों का वहीं उल्लेख भी नहीं किया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नामदीक्षा और श्यामल के समय तक

(१) डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास पृष्ठ ७२-७४

चन्द्रबनी पाण्डेय विचार विमर्श, पृष्ठ १४३-१४७

(२) आचार्यनाथ आचार्य सुदी ११मी मध्य रात्रिमां चले,—

ते बचने की ठाकुरजीए मीनद्विस्ताना कहेंगे ब्रह्म संस्कारों मंत्रों आचार्य तथा वे बातें नहीं हैं तो भी गोकुलनाथ सिद्धान्त रहस्य नामको धन करेंगे।

—बीरसी श्लोक की बातें श्यामलदास—गोकुलनाथ संस्कार पृष्ठ ४

(३) वही पृष्ठ २



हैं, उस बिना हमारे सर्वस्व त्याग करना उनके चरणारविन्दों को प्राप्ति प्राप्त करने  
ऐसी वृत्ति बहुतेरी होगी। वे रामदास जी आचार्यजी महाप्रभु के ऐसे  
उपासक मयवीर्य हैं, ताते इनकी बातें कहीं ताई लिखिये ॥ प्रसन्न ॥ ॥ १ ॥  
बैष्णव ॥ ५४ ॥

### (३) स्वयं कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता १

सो वे कृष्णदास सूर एक बेर शरिका गये हुते सो भी रणछोड़ जी  
के बर्तन करिके वहाँ से चले सो आपन मीराबाई के पास आये सो वे कृष्णदास  
मीराबाई के घर गये वहाँ हरिबंस व्यास आदिबे बिछेपसह बैष्णव हुए सो  
काहू को आये माठ बिन काहू को आये दस दिन काहू को आये पन्ध्र दिन भये  
हुते तिनकी बिदा न भई हुती और कृष्णदास ने जी भावत ही कही बो हूँ तो  
चखूँगी तब मीराबाई ने कही बो बैठो तब कितनेक महौर भीनासजी को  
बैत मानी सो कृष्णदास ने न लीनी और कही बो तू भी आचार्यजी महाप्रभु  
की सेवक नाहीं होत ताते ठेरी भेंट हम हाथ से छेबे नाहीं सो ऐसे कहि के  
कृष्णदास उहाँते उठि चले सो आगे सब आये तब एक बैष्णव ने कही बो तुमने  
भीनास जी की भेंट नाहीं लीनी तब कृष्णदास ने कही बो भेंट की क्या है  
परि मीराबाई के वहाँ बितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे  
करके भेंट फेरी है इतने इकठ्ठीरै कहीं मिलते यह हूँ जानेंगे बो एक बेर सूर भी  
आचार्यजी महाप्रभु की सेवक आयो हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके मुख की  
कहा बात होयगी ॥ ★

### (१) वही पृष्ठ ६४२

★ (१) ७४ वार्ता के आखिर संस्करण (संवत् १६६०) में उत्तर प्रसंग इसी रूप  
में मिलते हैं।

(२) 'प्राचीन वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग (संवत् १६६४) में कृष्णदास  
अधिकारी की वार्ता में हरिबंस और व्यास का उल्लेख नहीं मिलता।

(३) '७४ वार्ता' की वार्ता' महामहाराज संस्करण (चतुर्थ प्रकाश संवत्  
१६६०) के अन्त में निम्नलिखित प्रसंग मिलता है—

(क) गोविंद भुवने की वार्ता में दूसरे प्रसंग में पुनर्ही श्राव नेत्रा गुप्ता  
निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत है—

भगवत् पदपद्म पराज भूपो नहि मुक्ततरं मरत्येति तराम्  
इतराथयसं गवराज धृतो नहि रासोममप्युरी कुस्ते ॥

इन छद्मचरणों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) मीराबाई बल्लमाचार्य बिद्वत् हरीशचन्द्र व्यास कृष्णदास अधिकारी गोविंद दुबे और रामदास पुरोहित की समवासीम थी ।

(२) मीराबाई के पुरोहित रामदास से बिन्हूनि मीरा के बल्लम सम्प्रदाय में दीक्षित न होने के कारण उनकी वृत्ति तथ्या थी ।

मिथिले पृष्ठ का संक्षेप :

उसमें छार के रूप में गुहाईबी की इस यात्रा के कारण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'मीराबाई मर्यादा मर्यापि हतां अपने समयों संवीकार भी महाप्रभुकी द्वारमें न हतां'—

पृष्ठ १४-१५

(क) इस संस्करण में रामदास की यात्रा में 'राई और सत्तम को मुकुं जैसे धर्मों का प्रयोग नहीं है । रामदास ने केवल इतना कहा है, 'आ कोनु पद छे ? आत्म भी समाई' मुकुं हूं कोई बलते कोईछ नहीं ।'

पृष्ठ ११७

(ग) कृष्णदास अधिकारी की यात्रा में मीराबाई को स्पष्टता 'अम्भमापीय' कहा गया है ।

(घ) रामदासे संयोगन मण्डल बुलिया में की '४४ बीधएव की अतावलि केवल को मिली उसमें उक्त प्रत्येक इस प्रकार है—

[अतावली में ७२ यात्राएँ पूरी हैं । ७३वीं की केवल १ पंक्ति मिली है ।]

रामदास मीराबाई के पुरोहित

थी प्रभुकी के पद पत्नी सी ॥

उन कही ठाकर के नाब तब ॥

पड़े बारी की ये कीन के हू ए ॥

सो कहे खेर ता गाम ते निकसे ॥—यात्रा ४७वीं

गोविंद दुबे साचीरे बल्लमली के

मीराबाई के घर बहुत दिन रहे । सुन यह क्लेश पठाए जो ॥

मयवत् पद्मनाराय बुयो नहि मुक्ततरं भरलोऽस्तिराज्

इतराभ्यर्थ गजराज यतो नहि रासनमप्युररि कुसते ॥

बहु पढ़त छठ चले । —यात्रा ३४ प्रत्येक २

(१) मीरा के यहाँ 'ठाकुरजी की मूर्ति की पूजा होती थी यहाँ से समुदायी मूर्ति पूजक वैष्णव थी।

(४) मीराबाई ने धार्याजी महाप्रभु ( बल्लभाचार्य ) की शिष्यता स्वीकार नहीं की थी। रामदास के अनेक व्यक्तियों के गाना प्रकार के प्रयत्नों के बावजूद मीरा बल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई।

(५) कृष्णदास और बोधिदास दुबे मीरा से उनके गाँव में मिले थे। अतः यह बटना उनके द्वारका-प्रवास से पूर्व की है।

(६) मीरा अत्यंत संयत उदार (साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त) चरम पंथवादी और भक्तों का आदर करने वाली गायी थी। वे अपने संस्कारों में दृढ़ और विचारों में अटल थी। श्रीराम और ईश को उन्होंने भीत लिया था। पुष्टि मामियों ने सभी प्रकार की भली-बुरी बातें उनसे कहीं पर से न उनके विचारों को दिया सके और न उनकी साधुता को। रामदास द्वारा दी गई मामियों और कृष्णदास द्वारा ज्ञान-बुझकर किए गए अपमान के बरके में भी उन्होंने निस्सन्न प्रतिष्ठा और जीनाथ जी के लिए भेंट के अविरल और कुछ देने की बात नहीं सोची।

(७) मीराबाई द्वारका-भजन के पूर्व ही वैष्णवों में विख्यात हो गई थीं। हित हरिवंश जैसे संस्कृत के पंडित ब्रजभाषा के कवि और एक प्रसिद्ध संप्रदाय के प्रवर्तक तक उनके यहाँ भर्त्ता के लिए पहुँचते थे। स्वयं कृष्णदास-जैसे व्यक्ति भी उनकी ओर से उदासीन नहीं हो सके।

### २१२ वैष्णव की यात्रा

इसमें दो उल्लेख ऐसे मिलते हैं जिनका मीरा के जीवन से सम्बन्ध हो सकता है। एक में तो मीरा का स्पष्ट उल्लेख है। दूसरे में 'मेरा मिठाई बीमल की बेन' (बहन) का उल्लेख है, जिसे बहुत-से विद्वानों ने मीरा मान लिया है, पर वस्तुतः २१२ वाक्यों में उल्लिखित 'बीमल मीरा के ठाढ़ बीरम देव के पुत्र बीमल नहीं मालदेव के पुत्र 'बीमल' के। अतएव २१२ वाक्यों में उल्लिखित बीमल की बेन मीराबाई नहीं थी।<sup>१</sup> इस प्रकार इस वाक्यों में बिचा रणीय उल्लेख एक ही है, जो इस प्रकार है—

(१) बेकिप यही पंथ, 'जीवन कृत'

(१) श्री गुसाईजी के सेवक अजयकुंवर बाई तिनकी वार्ता :

सो ब कुंवरबाई मेढ़ते में रहती हती मीराबाई की देखरानी हती और वही एक दिन श्री गुसाईजी पचारे जब भजब कुंवर को सासाठ पूछपुरपोछम के दर्शन भये ।<sup>१</sup>

×                      ×                      ×

राय वार्ता में मीरा सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है ।

गोस्वामी हरिराय जी प्रणीत हो श्री बाबन वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की सीमा भावना बानी) में भजब कुंवर बाई का प्रसंग कुछ और विस्तार में मिलता है और उसमें कुछ अतिरिक्त उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं ।<sup>२</sup> इस ग्रन्थ में इस प्रसंग का मीरा संबंधी अंग इस प्रकार है—

वार्ता प्रसंग :

सो बह भजब कुंवर बाई बाल बिबवा हती । सो मीराबाई के पास रहती । सो मीराबाई भजब कुंवर बाई के नाम सिहाड़ में रहती । और मीरा बाई के हुनरी सिहाड़ हती । पर भजब कुंवर बाई और मीराबाई एक पाँव पर में रहती ।

सो एक समै श्री गुसाईजी सिहाड़ पचारे । तब बाप में उतरे । तब मीराबाई बरसन को गई । तब भजब कुंवर हूँ साथ गई । तब श्री गुसाईजी को भजब कुंवर ने साक्षात् पुरन पुछपाछम देखे । तब मन में आई, ओ हो इनकी सेवकनि होऊँ तो मसी है । पाछे मेट करि के बरसन करिके तुल्य ही मीराबाई ता फिरीन तब मोनाईजी ने कही जो यह मेट सो हम नाही राखे । हमारे काम की नाही । तब श्री वैष्णव ने मीराबाई सों कही, ओ ये सो अपने सेवक बिना काहू की मेट राखें नहीं है । तो पाछे मेट खेरि दीनी । तब भजब कुंवर बाई न कही मीराबाई सो ओ तुम कही सो हो इनकी सेवकनि होऊँ । तब मीराबाई ने नाही कही । ता पाछे दोऊ घर को गई । तब भजब कुंवर बाई को महा बिरह ताप भयो और खर घायो । तब मीराबाई ने पूछ्यो ओ तौको कहा भयो ? यह ही तो पच्छी हता । तब भजब कुंवर ने कह्यो ओ ही तौ मोसाई जी की सेवकनि होऊँयो । मैं तो उनकी दरसन करत साक्षात् श्री

(१) १२२ वैष्णवन की वार्ता डाफोर-संस्करण पृष्ठ १०६-११०

(२) मो० श्री ब्रजभूषण शर्मा तथा द्वारकावात परीक्ष द्वारा संपादित तथा मुद्रादत्त एकेडमी आँकरोली द्वारा प्रकाशित—बुधरा जन्म ७, पृष्ठ ७६

कृष्ण बेबे : तार्ते ताप भयो । तब मीराबाई ने बही जो तेरी इच्छा । पाछे प्रथम कुंवरि सावधान होई के श्री भुसाईजी सो भिजती कराय । + +

येप बार्ता में मीरा संवन्धी कोई उत्प्रेक्ष नहीं है ।

इस बार्ता से यही पता चलता है कि मीरा ने बल्लभ संप्रदाय में बीसा नहीं भी दी । इसके सामान्य संस्करण के आधार पर कुंवरबाई मीराबाई की बेबरानी की धीरे धीरे में खूबी थी पर तीन बन्स की लीला मानना बाली बार्ता के आधार पर दोनों का यह सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता । इसमें दोनों मेड़ता नहीं सिद्धाद भिषासिनी बताई गई है । बीसा कि पीछे कहा गया है, २५२ बार्ताओं के उत्प्रेक्ष अधिक विश्वसनीय नहीं है । ये असंगतियाँ भी इसी मत का पोषण करती हैं ।

हरीदास का पद :

‘रावस्थानी भाव ३ भुसाई संक १ में प्रो० मरुत्तम स्वामी ने ‘हरीदास’ नामक किसी संत का एक पद प्रकाशित किया है । पद इस प्रकार है—

एक राणी गढ़ बीठीका की ।

मेड़तणी निज भगति कुमाई भोजराइबी का बोड़ा की ।

हिमक मिसक साज दुसामा बैठसु बासी मोड़ा की ।

भसा सुख छाँड़ि भई बैरागिणि साबी मरपति बोड़ा की ।

साइसु पाइए रज पामकी कमी न हसती मोड़ा की ।

सब सुख छाँड़ि जनक में बसी लालीभगापी रणछोड़ा की ।

ताम बजाई गोविंद मुख गाने साज तपी बख्खोड़ा की ।

नवा नवा भोजन भाति भाति का हरिहँ सार रसोड़ा की ।

करि करि भोजन साज भिमाई भापी करत पिबोड़ा की ।

मन धन सिर सायाँ कै भरपण प्रीति मही मन बोड़ा की ।

हरीदास मीरा बड भागिणि सब राख्या सिरमोड़ा की ।

इस उत्प्रेक्ष से निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं—

(१) मीरा मेड़तणी की साज ही ने भोजराइ की पत्नी धीरे बिठीक गढ़ की रानी थी ।

(२) वे दाणुमर में समस्त सुख त्याग कर बैरागिनी हो गई ।

(१) उन्होंने राम भगई, गोविन्द के गुण गाए और रणछोड़जी से प्रेम किया तथा मन मन और सिर साधुओं को अर्पित किया।

पद के साथ टिप्पण के रूप में प्रो० स्वामी ने लिखा है कि 'बीकानेर स्व शान्ति धायम के घरस्वती भवन में एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ है जिसमें संत और भक्त कवियों के भजनों का संग्रह है। यह पद उसी संग्रह से लिया गया है। उसमें बिज महात्माओं के पद हैं, वे सभी प्राचीन हैं। यत ये हरिदास भी काफी प्राचीन होंगे।'

बीकानेर जाने पर श्री सेखर को प्रो० स्वामीजी की धस्वस्वता के कारण इस पोथी के बर्तन नहीं हुए। राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज मात्र ४ में श्री अगरवाल नाहुटा ने 'स्वामी नरोत्तमदासजी के संग्रह' की एक पोथी का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> इसमें श्री प्राचीन महात्माओं के पद आदि संगृहीत हैं, जिनमें हरदासजी के (हरिदास) भी ५ पद मौजूद हैं। यदि प्रो० नरोत्तम स्वामी द्वारा उल्लिखित पोथी यही है, तो इसका लिपि-काल 'संवत् १५३६ बैशाख कबी संनिवार' है<sup>२</sup> और इस प्रकार हरिदास कुछ कम उल्लेख १३० वर्ष से अधिक प्राचीन ठहरता है।

हरिदासजी राजस्थान के संत के यह बात पद की माया से स्पष्ट है। वे राजस्थान के संत-समाज में प्रचलित मीरा-सम्बन्धी आख्यायिकाओं और अनुभूतियों से अवश्य परिचित होंगे।

उन्होंने मीरा के पति का नाम भोजराह दिया है (यह मीरा के पति के नाम का प्राचीनतम स्वरूप है) और उन्हें मेड़तणी कहा है, जो इतिहास की कसौटी पर सत्य सिद्ध होता है। साथ ही संत होने पर भी उन्होंने मीरा को गोविन्द का मुख मानेवाली तथा रणछोड़ की भक्त कहा है, जो उनके निष्पक्ष और उदार बुद्धिबोस का परिचायक है। बाद के अधिकार संत तो मीरा को ज्ञानी सिद्ध करने का प्रयास करते रहे हैं।

### रामदान सातस कृत "मीम प्रकाश"

रामदान जालस ने "मीम प्रकाश" नामक ग्रंथ महाराणा भीमसिंह के समुपेक्ष से स० १८५९ में लिखा और महाराणा को सुनाया था। इसकी एक प्रति छैठ सूरजमल नागरमल पुस्तकालय कमकता में सुरक्षित है।

(१) पृष्ठ ४१ ४३

(२) वही, पृष्ठ ४९

इसमें महाराष्ट्र साँपा के पुत्रों की नामावली के साथ ही यह सम्बन्ध है।

भोजराज बैठे मंग कुँवर पड़े भठ कीय ।

मेकतली मीरां महम प्रमी भगत प्रसीय ॥ १

इस बल्लभ से निम्नांकित सूचनाएँ मिलती हैं—

(१) भोजराज राछा (साँपा) का ज्येष्ठ पुत्र था और वह राछा के सामने ही स्वयंवासी हो गया था।

(२) प्रसिद्ध प्रेमी मल्ल मेकतली मीरां उसकी पत्नी थी।

‘भीम प्रकाश’ इतिहास-ग्रंथ नहीं है। जैसा कि मेवाड़ के इतिहास से स्पष्ट है, मेवाड़ के राज-परिवार के कैलों में भोजराज-सम्बन्धी कोई विवरण नहीं रहा। इस उल्लेख का एकमात्र स्रोत देवीदान बड़वा की बहियाँ हैं जिनकी विश्वसनीयता के सामने राजस्वान के इतिहासकार प्रसन्नवाचक लगा चुके हैं।<sup>१</sup> भीमप्रकाश का लेखक भी कदाचित् उक्त उल्लेख के लिए देवीदान बड़वा की बहियाँ का आश्रय है। भठ इसकी सूचना का उपयोग अत्यन्त सतर्कता से करने की आवश्यकता है।

### कुँवरी के दोहे

डाही सक्ती लाइवरी नाबियाह के एक कुटुम्ब में मीरां-वरिष्ठ नाम से एक दोहे दिए हुए हैं। दोहों की छाप से पता चलता है कि ये दोहे किसी कुँवरी या सी नामक कमयिबी के लिखे हुए हैं। यह कुँवरी तीन और कहीं की थी इस बात का पता नहीं है पर इस पोथी में एक स्थान पर बीसाब सुधी ३ संवत् १८३३ दिया हुआ है, जो कदाचित् पोथी का तिथि-काल है। भठ कुँवरी के इन दोहों का रचना-काल निर्दिष्ट रूप से १२० वर्ष से अधिक है।

बीहे इस प्रकार हैं—

मीरां हरि की जाइली भगत मिली भरपूर।

साँपा सृ सनमुख रही पापी सृ घति दूर ॥

(१) सूरजमल नाथरामस पुस्तकालय जलकला की हस्तलिखित प्रति पृष्ठ ३

(२) बीरबिनोद (भाग १, पृष्ठ ३७१) तथा जयपुर-राज्य का इतिहास (पृष्ठ ३८४) दोनों में भोजराज-सम्बन्धी विवरण देवीदान की बहियाँ से लिए गए हैं।

(३) बीरबिनोद (भाग १), पृष्ठ ३२३

राजा बिप ताकी बयो, पीयो सै हरि नाम ।  
 राखा कीना भयत भुप राखो नहि भव काम ॥  
 जठ कह्यो बैबर कहाँ सास मनर समझाय ।  
 मीरा महसन तब दिए, गोविंद का गुन गाय ॥  
 पुस्कर न्हाई मगन मन बिन्दावन रखयेत ।  
 मई द्वारिका घत में थी रनछोड़ निवत ॥  
 मइवली के मन रही एकै गिरिधर रेह ।  
 रोम-रोम में रमि रह्यो क्यों बाहरि बस मह ॥  
 कान्हा बरनन में परी घोर न मोय मुहाय ।  
 दुँबरी बासी कृष्ण री बरसण दीबो भाय ॥

इससे निम्नांकित सूचनाएँ मिलती हैं—

- (१) मीरा साधु-संगत करती थीं कृष्ण से उन्हें अत्यन्त प्रेम था । उनके मन में एकनाथ गिरिधर की ही चाह थी ।
- (२) बैबर-जेठ सास-जनक सभी ने उनको समझाया पर उन्होंने मल्लि-पथ नहीं स्वीया महान तब दिए ।
- (३) राधा ने उन्हें बिप बिया ।
- (४) ब पुस्कर घोर बुन्दावन गई थीं । घन में द्वारका बसी गई ।

गरीबदास :

गरीबदास रोहतक जिले की ठहरील मजदूर के 'छड़ानी' नामक गाँव में वि० स० १७७४ बीसाल मुदी १५ को उत्पन्न हुए थे ।<sup>१</sup> उनकी रचनाओं का संग्रह श्री स्वामी अन्नरामजी गरीबदासी रमताराम ने सन् १८८१ में 'ग्रंथ साहिब धर्मात् सवमुक्त श्री गरीबदासजी महाराज की बानी' के नाम से बड़ीदा से प्रकाशित कराया था । इसमें मीरा-सम्बन्धी निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं—

- (क) गरीब जे मीरा राठोड़ कू राखी नहीं उबार ।  
 पकर्या मोहा ज्ञान का काट्यो कटक सिवार ॥४०॥
- परीब मीरा हाथ मुठारवा परगावै ह्यो माय ।

(१) पत्तरी भारत की संत-परम्परा परशुराम जगुर्बेदी, पृष्ठ ६०७



- पत्थर की भी प्रतिमा बामें गई समाय ॥४१॥<sup>१</sup>
- (ब) मीराबाई और कमासी । जीसनी नाचै रै रै तारी ॥<sup>२</sup>
- (घ) नानक दाबू तुमसी छोटी भाय बड़े हैं कुर्छी ।  
अनन्त कोटि घरुमामी, कहीं तक बिरय बखानी स्वामी ॥  
कमाँ मीराबाई, मुकुट कमासी कृपाई ।  
पूस्ही पह प्रसीमां बाका यमन मण्डस अस्माना ।<sup>३</sup>
- (ङ) मीराबाई के कारण लामे अहर का प्याला प्याव रे ।  
पीवत ही अमृत हो नाया हाय मया सरप ही यारे ॥

परीवरास के ये कवन सं० १५०० के भास-यास के हैं । इससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

‘मीरां राठोड़ बंध की बीं । ताली रे रे कर नाचती बीं । मारने के लिए उन्हें बिप दिया गया था जो अमृत हो गया । अन्त में ये पत्थर की प्रतिमा में समा गई बीं । ये ज्ञानमार्गी थी ।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि मीरां को ज्ञानमार्गी कहनेवाला प्रथम उल्लेख परीवरास का ही उपलब्ध हुआ है । इनसे पूर्व के राबोबास जैसे संघ मत के प्रचारक भी मीरां को रखेस श्रीकृष्ण की प्रेम-भाव की भक्त मानते थे । परीवरास के कुछ ही पूर्व के बरिया साहब (बिहारबाहे) मीरां को कृष्ण भक्त ही घोषित कर चुके थे । वस्तुतः मीरां को संघ-मत का अनुयायी कहने की परम्परा संवत् १८ के भास-यास ही बम्ब छेटी है ।

महीपति कृत ‘मयतलीलामृत’ :

महीपति ने संवत् १६२६ ( १७७४ ई० ) अस्मृत कृष्ण चतुर्थी को प्रवरा मही के इलिय में उससे १० मील दूर तहाराबाद नामक स्थान में भक्तलीलामृत नामक ग्रंथ पूर्ण किया था ।<sup>४</sup> इस ग्रंथ में प्रियाबास की टीका की

- (१) ग्रंथ साहित्य प्रभात सङ्गुण की परीवरास की की बाली (छात्री) पृष्ठ ३००  
(२) वही (रमैली), पृष्ठ ४२१  
(३) " (रायमारु) पृष्ठ ६५  
(४) " (रायमसातावरी), पृष्ठ ८२  
(५) महीपति कृत भक्तलीलामृत ( संप्रेमी अनुवाद ) अयोध, थोडबोके तथा पृथ्वरत्न १९३५ पृष्ठ ४३१

तरह धनेक मर्तों के जीवन चरित्र उद्भव हैं। इसके अधिकांश विवरण जन धृतियों पर आधारित हैं।

इसमें मीरा के सम्बन्ध में तीन उल्लेख हैं जिनका प्राथम्य निम्नांकित है—

(१) सेपनायी मीरा के सहायक बने।<sup>१</sup>

(२) श्री हरि ने मीरा के प्राणों की रक्षा की थी।<sup>२</sup>

(३) मीरा के पिता ने जब मीरा को बिप दिया तो शारंगपाणि ने उसे पी लिया था। उनका समस्त शरीर नीला पड़ गया था।<sup>३</sup>

मल्लनीसामृत के उक्त मीरा-सम्बन्धी उल्लेखों में एक बात मनीन और विचारणीय है और यह यह है कि मीरा के पिता ने मीरा को बिप दिया। सीपीनामा की छाप के साथ उपलब्ध मराठी में लिखे 'मीरा चरित्र' में श्री इसी प्राथम्य का उल्लेख है। मीरा पदों का स्पष्ट साक्ष्य है कि बिप राणा द्वारा दिया गया था और मीरा के पिता राणा नहीं थे। यह उपाधि राज-स्थान भर में केवल बिछोड़ और उदयपुर के राजाओं की थी जिनके परिवार में मीरा ब्याही गई थी।

सीपीनामा कृत चरित्र-मीराबाई या मीरा चरित्र :

भुमिया के रामदासी संघोजन नामक संग्रहालय की एक हस्तलिखित पोथी में 'चरित्र मीराबाई' नामक एक छोटी-सी रचना भी हुई है।<sup>४</sup> यह पोथी

- (1) Jayadeva Swami, Kamabai Narsi Mehta, Mirabai Rajai Gonal all of whom made the recliner on the serpent subservient to them ... ..

वही पृष्ठ ४२६-४२७

- (2) He who became poison himself at the request of Prahlad and also saved the life of Mirabai, he, Shri Hari

वही पृष्ठ ३२६-३२७

- (3) When Mirabai was given a deadly poison by her royal father thou loah holder of Sharang Bow didst drink it and thy entire body became green thereby

वही पृष्ठ ७२

- (४) काशीर, पृष्ठ १० नागर समुच्चय पर प्रसंगमाता, पृष्ठ १८४

- (१) बाबाजी १३१७

१४० पृष्ठों की है। इसमें 'रामदास कृत कबीर चरित्र' तथा कई अन्य भक्त कवियों के चरित्र भी संकलित हैं। संग्रहकर्ता को यह पोबी 'बिचम' में मिली थी।

पोबी में कहीं लिपि-कास नहीं दिया गया पर उसे देखकर अनुमान होता है कि यह लगभग १५०-२०० वर्ष पुरानी होगी।

'चरित्र मीराबाई' में छाप के रूप में निम्नांकित पंक्तियाँ हैं —

संता चा दास बोले सीपीनामा  
रवाने भील्ला प्रेमा सत्य भक्त ॥  
ईरी मीराबाई चरित्र सम्पूर्णमस्त ।  
बिठल हरी बिठल हरी बिठल हरी ॥

इसके आधार पर यह चरित्र संत नामदेव कृत ठहरता है, परन्तु इस रचना में संत मामा का उल्लेख अत्यन्त धावर के साथ हुआ है 'मामा छने जेवि भाववि मोविन्व'। संत एकनाथ का उल्लेख भी उसने ही धावर के साथ हुआ है — 'एकनाथ बरी बाहा ठेज पानी। अतः यह रचना संत एकनाथ से पहले वर्तमान संत 'मामा' की कथापि नहीं हो सकती।' एकनाथ जी का कास सं० १६०४ के १६६२ के बीच मामा जाता है। अतएव यह अनुमान अतंगत नहीं है कि संवत् १६६५ के पश्चात् कभी बारकारी संग्रहाय के किसी भक्त ने मीरा के जीवन-कृत पर अपने संग्रहाय की भावना का रस बढ़ाकर 'मीराबाई चरित्र' लिखा है और उसे आधारस्थान बनाने के लिए प्रसिद्ध संत 'मामा सीपी' की छाप उसमें कास की है। मामा कृत न होने पर भी यह रचना १५० २० वर्ष पुरानी तो अवश्य है।

मीरा-चरित्र से निम्नांकित सूचनाएँ मिलती हैं :

(१) मीराबाई राजा की पुत्री थीं। उनके माता-पिता कृष्ण-सेवा करते थे। वे बचपन में गुणवती और भावमयी थीं। संत उसके यहाँ घाते-जाते थे। कल्याणित होकर उन्होंने द्वारकानाथ का बरख किया। बचपन में ही मन को ईश्वर-चिन्तन में लगा दिया और भिदा की आगिनी बनी।'

(१) नामदेव का जन्म-काल संवत् कार्तिक शुद्ध ११ उनके ११८२ (संवत् १३२६) उत्तरी जात की संत परंपरा, पण्डुराम कटुबेरी पृष्ठ ११०

की एकनाथवाणी धर्मवाणी गाथा — प्रस्तावना, पृष्ठ १३

(२) रोजीपाणि कन्या नाम मीराबाई। श्रीकृष्णसे पाई धर्म सिखा ॥ १ ॥  
माये बाप प्रिये करीसी कृष्ण-सेवा। आबधिने सेवा पुत्रितासी ॥ २ ॥

- (२) विवाह के पूर्व मीरा और उनके पिता में इस विषय में बर्बाद हुई। मीरा ने विवाह का विरोध किया क्योंकि उन्होंने तो ब्रह्मप्राणि को बर लिया था।<sup>१</sup>

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी का दोषार्थ—

सबे मिराबाई बात असे नित । बेयमस चीत हृष्य-रूपि ॥ ३ ॥  
मीरा गुनगुनी भावग्याची कानि । प्राबडते भनि माये बापा ॥ ४ ॥  
हुमनबी देवा करावा सांगळ । हुरेये बेम्हाळ मिराबाई ॥ ५ ॥  
माये बाप मन केले हृष्यार्पण । घामले मन फार तिचे ॥ ६ ॥  
बरीला का आठा डारणेचा मया । समाधान बिलस्य मले भामो ॥ ७ ॥  
प्राबडिने करी देवाचे बित्तन । नाचे आनदाने प्रेमे डोले ॥ ८ ॥  
सत भानि साधु येती चिंतनासी । अमनब मानसी होत तिच्या ॥ ९ ॥  
सताचे ते पाई मिरा असे नीम । अहो-रात्र ध्यान बैवाजिये ॥ १० ॥  
अप्ये मिराबाई भक्तिवीची प्राबडि । लागलीसे मोडी बैवाजीची ॥ ११ ॥  
सखन अमरारी संतोष भानिली । निरक निरिती तीव्र लामी ॥ १२ ॥  
सकार्यन अंसा ह्रीतो गिरया निम्य । आनंद बरीत माये बाप ॥ १३ ॥

- (१) राजधाने कन्या बेकोनि छप बर । दया बाईत बर कदनिया ॥ १४ ॥  
बोले मिराबाई अंका तुम्ही ताठा । बरीला म्या आता ब्रह्मपानि ॥ १५ ॥  
अमये तत्पुनि केले हृष्यार्पण । ते काहो स्मरण बिसरले ॥ १६ ॥  
क्याने देला असे मामा अगिकार । नका वाहु बर बुवा आता ॥ १७ ॥  
बैवाजिन मज नामडे आनीक । मोठे असे सुख बैवापाई ॥ १८ ॥  
पाद गोडी त्याची बनित्ता ते नय । बोमु आता काये वेका मुळे ॥ १९ ॥  
दैव्या भाता पीता करीनी उत्तर । बोम्य अवतार देव आता ॥ २० ॥  
नामी कपी त्याचे असो छाने बित्त । अर्थ तर्ब होत अर्थप्याचा ॥ २१ ॥  
बोम्बुनि बप करावा संसार । सर्व हा बेम्हार असत्याचा ॥ २२ ॥  
अयेकुनिया अंते बोले मीराबाई । स्वहिताचे येई सांगितले ॥ २३ ॥  
आधीं जाने केले अमुत प्राप्तेन । नाबडे त्या गुन कदा-कावी ॥ २४ ॥  
मुंगीसी लागली साबरेची मोडी । प्राबडिने उठि घालीतले ॥ २५ ॥  
राज्यसुख पंथी मोठीयाचा चारा । आनिक बित्त रा न सेवीती ॥ २६ ॥  
तैसा म्या बरीला असे ता मोडिवा । नका कडू शोम आनिकाचा ॥ २७ ॥  
बैवाजिन काहीं नेने मि आनिक । सबहि जेन जोक मान्ये बाप ॥ २८ ॥

(छोपरासे पृष्ठ पर)

(१) रजुमाई स्वयं मीराबाई को कीर्तन में ले जाती थीं। मोर्चों में भीरु प्रभाव फैल गया अतएव राजा ने अपनी पत्नी द्वारा कन्या मीराबाई को विधु भेजा। विधु पीने से दैव-मूर्ति नीली पड़ गई। तब मोर्चों ने समझ कि मीराई चञ्चल्य का रूप है।<sup>१</sup>

पिछले पृष्ठ के टिप्पणियों का संक्षेप—

तुम्ही क्षणमा बोध्य जाते बक वाली। संखेय हा मनी न परावा ॥२६॥  
 भाविकासी दुस्स प्रसादी का बोध्य। मोहा हा सावब नारामेव ॥३०॥  
 लल प्रसे क्याचे देवाजीच्या पाड। येकनिया राति बुध्यात ॥३१॥  
 त्याचा सर्व बंदा करी चक्यानी। बोलीले पुरानि व्यासविक ॥३२॥  
 सर्वसे पावी जात नका बक बिता। सर्व हा जालता नारामेव ॥३३॥  
 नासावचे जेवि प्रायति थोकिन्व। कसे त्याची बोध्य म्हणुवाये ॥३४॥  
 प्रेकनाचा घरी बाह्येत पावी। कसा चक्यानि बोध्य जाता ॥३५॥  
 कविराचे मायो जीमिष्ठ प्रसे जेले। जग्याचे राखीन सेत तेन्हे ॥३६॥  
 प्राणिज हि कात्र केले भक्ता घरी। काये त्याची पोरी वनुं प्रता ॥३७॥  
 राजा म्हणे मीरा समजली पुन। परीजेन दुखेन लाकितासी ॥३८॥  
 म्हणोनिया त्याने कैली बंदावस्ती। प्रवेश तो रंती न होयच ॥३९॥  
 मीराबाई म्हणे पाहो पादुरंया। काहो संत सपा धर्मतरासी ॥४०॥  
 संताचे समती जालन्व सीहना। बाजबान बोला काहो भज ॥४१॥

(१) कनवानु मोदि सावली बिछाई। नेत मीराबाई किर्तनासी ॥४२॥  
 झुत जाती बाठा तैव्हा राखीमासी। जाते किर्तनासी मीराबाई ॥४३॥  
 ज्येभावन नुप बोले ज्या कतिसा। वेई तु काजेला बिज व्याता ॥४४॥  
 सबकीकाची लाज लाडीयेसी ईन। परी जेन दुखेन लावीतासी ॥४५॥  
 तैवीकाली व्याता मकनिया बीघ। प्राली मंदिरास तेव्हा तीच्या ॥४६॥  
 वेई मिराबाई लावीले दुखेन। सर्व ऐसे जेन बोसतासी ॥४७॥  
 म्हणोनिया नुपे विरहा बिज व्यासन। कुलासी लाविता डाय दुबा ॥४८॥  
 बोले मीराबाई सावल्या धनन्ता। तु येक जायता पादुरंया ॥४९॥  
 येता तरी जायो जाता माझ ना। निचारी हुशेन राजी याचे ॥५०॥  
 मीरा त्याचे पोटी वाली प्रपबीज। बोसती सर्वज जेन ऐसे ॥५१॥  
 म्हणोनिया नुपे विरहा बीघ व्याता। हे लोख तुज का पादुरंया ॥५२॥  
 ( जेव जपले पृष्ठ पर )

मीरा-भेरिज में पति-परिवार द्वारा दी गई संन्यासों का उल्लेख बिलम्ब नहीं है। इसके अनुसार बिप मीरा के पिता की धात्रा से उनकी माताजी ने उन्हें दिया था।

वस्तुतः महीपति कृष्ण भक्तिजीनामृत में किए गए पिता द्वारा बिप देने के उल्लेख का ही विस्तार उक्त 'मीरा-भेरिज' में मिलता है। माता द्वारा बिप प्रियवाने की कल्पना स्वामाविता की दृष्टि से 'भेरिजकार' द्वारा बाद में की गई है। अन्य प्रमाणों के अतिरिक्त मीरा के अपने कथन इस घटना के राणा से संबंधित होने के प्रबल साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक घटनाओं और साम्प्रदायिक भावना को और निकाल देने पर उक्त 'भेरिज' में मीरा का जीवन-मृत से संबंधित कोई उपादेय सामग्री नहीं रहती।

### मीराबाई की परची <sup>१</sup>

श्री अग्ररत्न नाट्य से "मीराबाई की परची" नामक ग्रंथ की एक

विशेष पृष्ठ के टिप्पण का अर्थ—

कहेल हो तैसे राजी याची लाज । बारंबार तुज काये सांगु ॥१॥  
 कहुनिया तेहो कृष्णजे चित्त । प्यासी घाबड़ीचे बीज प्यासा ॥२॥  
 नाहि बाबा वाली लयाची तेवली । नुति जाती निली देवाजीची ॥३॥  
 बिलोकीले तेहूँ येडनिया नृप । पाहाती आनिक बेन लोक ॥४॥  
 धन्य मीराबाई बंविती चेरन । जन्मले निघान बंय्या माजि ॥५॥  
 मीरा जनमासी, लखेची बेगनी । हृष्टते कासी संतीकेता ॥६॥  
 बोले मीराबाई आहो जेक्यानी । का तुम्ही काचनी सोसी लसा ॥७॥  
 प्रेम अधु निर बाहु लाली जे धू । माझ कर जला तुम्हीं घावा ॥८॥  
 साबल सकुमारे धोवरे चेरन । बीछीन से आन पाहावया ॥९॥  
 मरता बी घाबड़ी पुरवि नारायेन । पुर्वत जाग देव जाले ॥१०॥  
 निली रेखा असे घाबणी ते कंठी । हिन्दुस्तान प्राप्ती पाहाती बेम ॥११॥  
 धन्य मीराबाई धन्य तीबी भक्ति । करीयारी खुली सारसुत ॥१२॥  
 संताबा तो दास बोले सोपी नामा । त्याने बीसुहा प्रेमा लय मज ॥१३॥  
 ईती मीराबाई अरिज सपूर्णस्तु । बिटल हरी बिटल हरी बिटल हरी ॥१४॥

(१) आर्विल समा जन्मई में एक पृष्ठके में (संख्या ५०) 'मीराबाई ने परची' नामक एक गुजराती रचना संगृहीत है। रचना-काल तथा रचनाकार का नाम उसमें नहीं दिया गया।

(१) रत्नमाई स्वयं मीराबाई को कीर्तन में ले जाती थीं। सोनों में जोर मयबाध फैल गया अतएव राजा ने अपनी पत्नी द्वारा कन्या मीराबाई को ब्रिय भेजा। ब्रिय पीने से ब्रह्म-मूर्ति मीसी पड़ गई। तब सोनों ने समझ कि मीरा ब्रह्मपात्रि का रूप है।<sup>१</sup>

पिछले पृष्ठ के टिप्पणी का सारांश—

मुन्ही खाना बोध्य बाते बक पानी। संशय हा मनी न बराबा ॥२८॥  
 नासिकासी दुस्य असली का बोध्य। मोहा हा सात्वत नारायेन ॥३०॥  
 मल असे ज्योचे वेवाबीच्या पाह। भेडनिया राति हुबपात ॥३१॥  
 त्याचा सर्व बंधा करी ब्रह्मानी। बोसीके पुरानि व्यासादिक ॥३२॥  
 सर्वसे पाची जात नका बक बिता। सर्व हा ज्ञानता नारायेन ॥३३॥  
 माभाचचे जेवि बाबवि योगिन्य। जेसे त्यासी बोध्य भुलाबोने ॥३४॥  
 शेकनाचा धरी बाहुलेस बानी। कंठा ब्रह्मनि बोध्य जाता ॥३५॥  
 कबिराचे मायो बीजित असे सने। जाटाचे राखील सेत सेने ॥३६॥  
 प्राणिक हि काज केके भक्ता धरी। काये त्याची चोरी बनु भक्ता ॥३७॥  
 राजा भुने मीरा समजली पुन। परीजेन दुखेन नासिकासी ॥३८॥  
 भुनोनिया त्याने केजी बंधावस्ती। प्रवेस तो संती न होयच ॥३९॥  
 मीराबाई भुने जाहो पादुरया। क्यहो संत सया अनवरतो ॥४०॥  
 संताचे संपती आनन्द सोहता। बाजबाल डोला क्यहो मज ॥४१॥

(१) कनकानु मोहि सावली बिछाई। नेत मीराबाई किर्तनासी ॥४२॥  
 मृत जाती काशी लेव्हा राखीवासी। जाते किर्तनासी मीराबाई ॥४३॥  
 ज्योपाडनि नृप बोके क्या कतिना। येई तु कजेला बिस प्याता ॥४४॥  
 लवकीकाची लाज सांडीयेनी ईन। परी जेन दुखेन लाबीतासी ॥४५॥  
 तेची काली प्याता भवनिया बीरी। घाली मंदिरास लेव्हा तीज्या ॥४६॥  
 येई मिराबाई भाबीके दुखेन। सर्व ऐसे जेन बोलतासी ॥४७॥  
 भुनोनो निया नृपे बिह्वा बिघ्न प्याता। कुलासी लाबिता डाय तुबा ॥४८॥  
 बोके मीराबाई लावल्या अनस्ता। तु येक ज्ञानता पादुरया ॥४९॥  
 वेला तरी जाधो भक्ता माभ्य मान। निबारी हुसेन राजी पाचे ॥५०॥  
 मीरा त्याचे पोटी जाती अपवीत्र। बीजती सर्वथ जेन ऐसे ॥५१॥  
 भुनोनिया नृपे बिह्वा बीघ्न प्याता। हे लौज तुज का पादुरया ॥५२॥  
 (छेप प्रयत्ने पृष्ठ पर)

मीरा-भरिष में वरि-भरिषार द्वारा दी गई यशस्वी का उम्मेद विमृष्ट नहीं है। इसके अनुसार बिप मीरा क पिता की आज्ञा से उनकी माताजी ने उन्हें दिया था।

वस्तुतः महीपति वृत्त भक्तिसीतामृत में किए गए पिता द्वारा बिप देने के उम्मेद का ही विस्तार उक्त 'मीरा-भरिष' में मिलता है। माता द्वारा बिप भिन्नाने की कल्पना स्वामाविता की दृष्टि से 'भरिषकार' द्वारा बाद में की गई है। अन्य प्रमाणों के अतिरिक्त मीरा क अपने कथन इस घटना के कारण से संबंधित होने के प्रबल साक्ष्य हैं। इसके अतिरिक्त धर्मोक्तिक घटनाओं और साम्प्रदायिक भावना को और निकाल देन पर उक्त 'भरिष' में मीरा क जीवन वृत्त से संबंधित कोई उपादेय सामग्री नहीं रहती।

### मीराबाई की परची \*

श्री अमरचन्द्र नाहुट से "मीराबाई की परची" नामक ग्रंथ की एक

निम्नलिखित पृष्ठ के टिप्पण्य का अर्थ—

कलेत हो लैसे राणी पाची साज। बारंबार तुम काये सांगु ॥१॥  
 कहुनिया तेम्हां कृप्युचे बितन। प्यासी घाबडीचें बीरा प्यासा ॥२॥  
 नाहि बाबा वाली लयाची तेवेनी। भुति वाली निली देवाजीची ॥३॥  
 बिलोकीले तेम्हां देवनिचा गुप। पाहुली धानिक जेन लोफ ॥४॥  
 धन्य मीराबाई बेरिती जेरन। जन्मले निघान बंम्या मात्रि ॥५॥  
 मीरा बनमासी, मयेची जेवली। हरदाते काली संजीवेना ॥६॥  
 बोले मीराबाई बाहो जेकमानी। का तुम्ही जावनी सोसी लता ॥७॥  
 प्रेम धनु निर बाहा ठाटी जे म्हा। माया कर बना तुम्ही आवा ॥८॥  
 साबल सकुमारे मोडरे जेरन। बोळीन से घाल पण्हावया ॥९॥  
 भक्ता बी घाबडी दुरवि नारायेन। पुर्वगत जान देव जाते ॥१०॥  
 निमी रेशा धले घाबमी ते कंठी। हिन्दुस्तान प्राप्ती पाहुली बंम ॥११॥  
 धन्य मीराबाई धन्य सीची भक्ति। करीपासी स्तुती सरपुसंत ॥१२॥  
 संताबा छो बास बोले सीपी नामा। त्याने बीम्हा प्रेमा सत्य भज ॥१३॥  
 ईती मीराबाई भरिष सपूर्णमस्तु। बिटल हरी बिटल हरी बिटल हरी ॥१४॥

- (१) टीका सभा गण्डई में एक गुटके में (संख्या १०) 'मीराबाई ने परची' नामक एक मुखराली रचना संगृहीत है। रचना-काल तथा रचनाकार का नाम इसमें नहीं दिया गया।



प्रतिनिधि केन्द्रक को प्राप्त हुई है। यह रचना प्रो० नरोत्तमदास स्वामी को जयपुर में कहीं मिली थी। प्रति में अन्तिम पृष्ठ प्राप्त नहीं है, जिससे उसके केन्द्रक और सेखन-नाम के सम्बन्ध में प्रायः संशय के अन्त में उपसम्बन्ध होनेवासी सुझावों का प्राप्त है। इस केन्द्रक को रामसनेही संप्रदाय के “सुखसारणजी महाराज” नामक साधु द्वारा प्रणीत “भीराबाई की परबी” का पता ममा है, जिसमें ११५ पद्यों में भीरा का जीवन-चरित्र वर्णित है। अभी तक इस संशय की प्रति उपसम्बन्ध नहीं हो सकी पर अनुमान यह है कि प्रस्तुत परबी उक्त रचना ही है। लाहटाजी ने इस प्रति को स्वयं देखा है और उनका कथन है कि ‘प्रति के कामज तथा स्थायी से वह आधुनिक सिद्धी हुई बात होती है। परबी का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

बंदू सतगुरु साचा देव ज्यों मोह दीयी भक्ति को भेष ॥

बंदू राम राम महाराज सुमरूयां सरै मनोरथ काज ॥

बंदू अमृत कोटि निज संत बाह संत मज भटो अमृत ॥

राम सतगुरु किरपा कीज्यो कर्क भयत बस आत्मा कीज्यो ॥

इस उद्भरण से स्पष्ट है कि यह रचना रामसनेही संप्रदाय के किसी संत की है, जिसने संप्रदाय के प्रवर्तक संत रामचरण के इस कथन का कि ‘राम मेरी भुक्त जानिये भुक्त भई जानू राम। भुक्त भूति को ध्यान उर, रसना उचरै राम। प्रारंभ से ही ध्यान रखा है। आगे चलकर भीरा द्वारा “राम-राम” रटने की बात को साधु प्रस्तुत करके संत के मुख से “साचा संत रामजी मेरा” कहनाकर और अन्त में “रामसंत बुद्धेय” कहकर आगे वा अंतजाने उक्त मंत्र के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत कर दिए हैं।

रामसनेही-संप्रदाय के प्रवर्तक रामचरण जी के जिनका जीवन-काल संवत् १७७६ से १८५६ वि० तक माना जाता है। उन्होंने १८२५ वि० में राम सनेही-संप्रदाय की स्थापना की थी। अतएव इतना निश्चित है कि ‘भीरा की परबी’ की रचना संवत् १८२५ वि० के पूर्व की नहीं है। संभवतः संवत् १८२५ भवित् भुक्त रामचरण जी की मृत्यु के उपरान्त ही कभी इस परबी की रचना हुई होगी। यह भी संशय नहीं है कि यह रचना विक्रम की २ बीं अष्टाब्दी की ही हो।

परबी की प्राप्त वर्णित प्रति में २१२ पद्य हैं। २१६ वें पद्य की एक प्रभूरी पंक्ति भी मिलती है। २०४ पद्यों में भीरा का जीवन-चरित्र (पूर्व जन्म से लेकर मूर्ति में समा जाने तक) दिया हुआ है। बाद में राजा द्वारा मंदिर बनवाकर उसमें उनकी मूर्ति के पञ्चरात्र की इच्छा का उल्लेख करके तीन पद्यों

में परबी पड़ने-मुगने और राम-भक्ति के फल की ओर संकेत कर दिया गया है।

इस परबी में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं—

(१) मीरां न भरत खण्ड के मयमर वेष्ट क मेकठ नगर में मगति कनार्द। व राब हुन के पुत्र रतन (सिंह) के त्रिगुनि कुड़की मपर बसाना या वर में बग्गी थी। उनके मनापा नामक एक बहन थी माई कोई नहीं था।

(२) वे पूव जन्म में बरसान के बिप्र की पत्नी थीं जो कृष्ण-ग्रम में तन लजकर मीरां के रूप में बग्गीं। श्रीकृष्ण के प्रार्थन से ही हरि प्रेम और भक्ति साधना में उनका मन रमने लगा। व हरि-देवा मन्दिर में नृत्य संत सत्सग स्मरण जनमुन-भ्यान-भठ करने लगीं। माँ ने कोमल अवस्था में यह सब न करने का आग्रह किया परन्तु मीरां न मानीं।

(३) मीरां का विवाह "सीसोसो वर" क साथ हुआ और यह मकठली चितौड़ गढ़ के परिवार में पटरानी बनीं। मीरां न इस विवाह का विरोध पहले भी किया और विवाह के उपरान्त भी। मारव के सामने मिरिबर ने महल में धाकर मीरां से परिणय किया और उन्हें सदैव मीरां अपना पति मानती रहीं।

(४) विवाह के पश्चात् ही कुसरेबी की पूजा से इनकार करने के कारण व सास के रोष का भाजन बनीं। सास न मरण पति स सिंकायत की बिसस राखा कुपित हुआ।

(५) ज्यों-ज्यों राखा मीरां को मारने का प्रयत्न करता त्यों-त्यों मीरां के भलीकरी प्रताप से अधिकारवादी-सी बटमाएँ बटती गईं। अंत में सब पर मीरां के साथ मिरिबर बैठ दिखाई पड़ तबबार छकर मारने पर एकदमिह ने राखा को पनावन के लिए बिबध कर दिया चितौड़ क प्रत्येक मंदिर में मारां ही दिखाई पड़ी—मात्रि।

(६) बयाराम वडा डारा बिय दिया गया। मीरां प्रिय-विरद का भ्यान करके उस पर गईं। बिय भ्यस्य रहा। फिर काला नाग पिठारे में रखकर दिया गया जो हार हो गया।

(७) मीरां के जेठ ने उन्हें समयमाया। उनकी मरह ज्वां ने भक्ति छोड़ने की राय दी। देवराणी-जेठानी सबन कहा पर मीरां नहीं मानी। परमात्मा को पति मानकर भक्ति-साधना (इस प्रसंग में संत-मत की साधना का ही वर्णन विशेष है) करती रहीं।

(८) वे आग्रहपूर्वक डारका गईं। वही जगहों में मंदिरों में बधन किए।

बिप्र उनके साथ थे। जब वे मंदिर में स्थित मूर्ति में समा गईं तो बिप्रों ने रोना घोना प्रारम्भ किया। मीरा फिर प्रगट हुई और यह कहकर कि मैं मूर्ति में समा गई हूँ, घूर्तबान हो गई। राणा को यह समाचार मिला तो उसने मीरा के प्राध्यात्मिक महत्त्व को समझ और मंदिर बनवाकर उसमें मीरा की मूर्ति की प्रतिष्ठा का निर्णय किया।

व्याख्यान :

मुबारक के प्रसिद्ध कवि बयाराम कृत (सन् १७९७-१८१२ ई०) निम्नांकित तीन रचनाओं में मीरा-सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं—

- (क) मीरा-चरित्र
- (ख) चरित्र बेन
- (ग) चोपरी बीष्णु

(क) मीरा-चरित्र ग्रन्थी पंक्तियों की एक लघु रचना है।<sup>१</sup>

मुखी देवीप्रसाद कृत 'मीराबाई' के प्रकाशित होने के पूर्व प्रकाशित मुबारकी और कुछ हिन्दी लेखकों ने बयाराम की इस रचना का अनुसरण किया है।<sup>२</sup>

काल की दृष्टि से यह रचना विशेष प्राचीन नहीं है, साथ ही इसमें पाए हुए ऐतिहासिक तथ्यांशों से सम्बन्धित विवरण इतिहास की कबौटी पर प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते।

इसमें राजस्थानी इतिहास से सम्बन्धित दो प्रमुख उल्लेख हैं—

- (१) मीरा बीमसिंह राजौर की पुत्री थी।<sup>३</sup>
- (२) उनका विवाह कबौतपुर (उदयपुर) के राजा से हुआ था।<sup>४</sup>

(१) डा. लक्ष्मी साहसोरी नाडियाद में सुरक्षित प्रति (खंडन १० पृष्ठ ५) प्रकाशित मीरा-चरित्र में केवल ७४ पंक्तियाँ हैं। बयाराम कृत काव्य-संग्रह, संपादक नंदकिशोर, पृष्ठ १२१-१२३

(२) मीराबाई का जीवन-चरित्र, कांतिक प्रसाद लखी (हिन्दी) में इसका अनुसरण है। बयाराम पछीना तमाम लेखकों मीराजी जीवन-चरित्र लखनामा कर्मल ठोंडो तथा बयारामजी साधार भीषेजी कल्या ठों—मीराबाई भा० नि० मेहत, पृष्ठ ३

(३) बीमसिंह छाकोरजी बीकरी दे, तुजो मीरता एनु धाम।

(४) उदयपुरजी ते राजो राजीयो दे, करसो मम्बुंवरजीजी नेह।

मीरा के मायक धीर समुराम दाजों स्थानों के इतिहासों से यह सिद्ध है कि मीरा रत्नसिंह का पुत्री थी जैमल की नहीं।<sup>१</sup> एक जैमल (मायदब-पुत्र) ने पुष्टिमार्ग स्वीकार कर लिया था और दयाराम भी उसी मत के कट्टर अनुयायी थे। 'मीरा-चरित्र' में प्रन्थ ने इन्होंने इस रचना का पुष्टिमाय द्वारा प्रतिपादित प्रेममत्तसामाजिक का प्रयास कहा है और कहा कि इसीलिए मीरा का सम्बन्ध जैमल से जोड़ दिया है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, पुष्टिमाय में सीता लन बाक जैमल मीरा के भाई जैमल से निम्न थे।

उदयपुर की स्थापना सन् १६१६ ईश्वरी ७ को प्रतापसिंह के जन्म के पश्चात् (मीरा की मृत्यु के बाद) हुई थी। उदयपुर मीरा का विवाह उदयपुर के किसी राजा से सम्भव ही नहीं था। उदयपुर के निर्माता राजा उदयसिंह का जन्म १५०८ की राखी सुदी १२ का हुआ था और मीरा का विवाह उदयपुर ही संवत् १५०३ में हो चुका था।

दयाराम इस 'मीरा-चरित्र' में अधिकारी सामाजी त्रिपाठा की टीका की परम्परा की है और सब जोड़-बीजों में मिलती है। इसके अतिरिक्त अन्य नवीन ज्ञातव्य सम्बन्ध इसमें नहीं है। यद्यपि 'मीरा के जीवन' की रूप-रेखा प्रस्तुत करने के लिए स्वतन्त्र रूप से इस ग्रंथ की कोई उपाययता नहीं है। इस रचना से यह निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि इसकी रचना के समय तक मीरा की महत्ता कट्टर बल्लभ-सम्प्रदायी भी मानन लगे थे।

(ब) और (घ) 'मच्छेस' और 'मीराजी ईप्पण' में भी मीरा-सम्बन्धी हो सम्भव है—

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास, भोग्या, पृष्ठ ३३८

जयमल-वैद्य-प्रकाश ठाकुर गोपालसिंह राठोड़ मेड़सिया, पृष्ठ ७१

(२) उदयपुर का इतिहास भोग्या पृष्ठ ४०८-४०९

(३) राजपूताने का इतिहास जयदीपसिंह गहलोत, पृष्ठ २५७

(४) मही प्रबन्ध- 'जीवन-कृत' प्रकरण

(५) कुछ सामान्य प्रश्न हैं जैसे—इसमें राजा की शासक शक्ति से नहीं पुत्र से शिक्षाप्रप्त करती है। (पृष्ठ ६) देवी का नाम पार्वती दिया है। (पृष्ठ ४) मीरा के ऊपर ललकार उठाने पर जयलक्ष्मी में वृद्धि है। (कहिया २३-२४) इत्यादि।

(१) कृष्ण ने मीरा का बहुर पिया ।<sup>१</sup>

(२) रामदास मीरा का पुरोहित था ।<sup>२</sup>

प्रथम संस्केष सर्वमान्य सत्य है और दूसरे की पुष्टि बाबा साहिब से होती है । रामदास के वंशजों की परम्परागत मान्यता और भक्तमात्र के बेबाजी सम्बन्धी संस्केष इसके साथी हैं ।

### राधाबाई कृत मीरा-माहात्म्य

राधाबाई बड़ौदा में रहनेवाली एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणी थी जिसने अक्षय नाम से बीसा भी थी । इसने संवत् १२०० के आसपास<sup>३</sup> मीरा माहात्म्य बीरपंक से प्रथम की भाषा का १०१ कड़ियों का एक परचा लिखा था ।<sup>४</sup> इसकी भाषा गुजराती और भरुडी मिश्रित है । एक कृष्ण भक्त गारी द्वारा एक दूसरी कृष्ण भक्त गारी के विषय में लिखे जाने के कारण इस रचना का कुछ महत्व है । गवीन सुचनाओं की दृष्टि से यह उपादेय नहीं है । इसमें निम्नांकित बातें अवलम्ब्य होती हैं—

(१) माता ने (मीराबाई को) छोड़ दिया भाई ने सयाई की । (कड़ी १०)

(२) नवरा (वर) जीरे की तरह कठ मना उसकी मीरा ने त्याग दिया और एक बहुराई में मन लगाया (१२ ११ कड़ी)

(३) १६ वर्ष की होने पर जीवन ने मरुमरोच रूप के पतल लई । (२४ कड़ी)

(४) साधु-संमति और कृष्ण भजन करती थी । विभुवन रूप के रूप पर मीरा मोही थी । (१० १७)

(१) दयाराम कृत काव्य-संग्रह, ११३, भक्तवैजय पृष्ठ २१ 'तने मीरानु और पीरु' ।

(२) वही—१२६ जोराधी वैष्णव, पंक्ति ३१ 'रामदास मीराभा प्रोहीत है'

(३) अनुमान का आधार है—अक्षय के पास जाने का समय संवत् १८६० तथा काशी-यात्रा का सं० १८६०

(४) प्राचीन काव्य-भारता प्रब ६, पृष्ठ १७२

प्रारंभ मीराबाई नाम भवो क्याम तुम्हरे

भूमि तन्ही नाम, जयु सार्क जो

× × ×

अन्त बहुर गुरी, बिता बकवरी,

सीता नाहिं अहुरी, राभी राबेरमछा ।

- (५) बहूँ सेकर राणा मारने आया था मीरा की बात सुनकर लौट गया,  
(५१-६१) मीरा को राणा की बहन ने समझाया (६२-६६)
- (६) बस-बीस महलों में राणा की एक मीरा ही दिखाई दी। राणा ने बहुर  
दिया मीरा ने उसे भी सिमा और बहूँ समूह हो गया (७१, ७८-८४)
- (७) मीरा ने हारिका का मार्ग लिया और बहूँ 'रंग भोग किया सब सोमों ने  
उसे देखा' (८६, ८८)

### असंत

बिद्यासभा पर भ्रमवाचक के संवत् १६१५ में विविध एक घुटके में  
बसन्त नामक किसी कवि का एक पद दिया हुआ है। कवि प्रभाती के रूप  
में अपने 'राम परमबल' को बचाने के लिए पद गाया है। उसी पद में मीरा  
के सम्बन्ध में निम्नांकित दो पंक्तियाँ हैं

आली बसेली अत नाहुं धुं जाँह समेत मीठाई हो।

छासे बघरी और गुणधुं मीराबाई के धाई हो।

ये पंक्तियाँ मीरा के जीवन के विषय में कोई उपयोगी सूचना नहीं  
देती। केवल उनकी प्रसिद्धि की व्याख्या करती हैं।

### मीरा-जमाजी-संवाद

मरसिहपुर से प्राप्त एक घुटके में मीरा-जमाजी-संवाद के रूप में  
लिखी हुई एक १३ पंक्तियों की कविता है। जमाजी कहते हैं कि 'मीरा तु सोई  
बिसनू सोई बिसनू आप'। उन्हें वे ब्रह्म की अनन्तता और अपार शक्ति का महत्त्व  
बताने हैं। मीरा का जहना है कि 'स्याम सलोनी साँवरो सोई है राम भवार,  
पर छँतिम छँव में मीरा मान भेती हैं कि 'सबि तुम मुनिभाव'। गीत की  
अभिप्रेति से स्पष्ट है कि इसका रचयिता कोई किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति है,  
बिसने अपने सम्प्रदाय के प्रचार के लिए मीरा-जमाजी-संवाद लिखा है। यह

### (१) पद्य का प्रारंभ :

जमाजी : मीरा तु नाम सत्य कर आप, सोई बिसनू सोई बिसनू आप ।

मीरा : जमाजी मन भाए मीरा मिरवारी प्रभु आप ये करती सोई आप ।

×

×

×

धंत : मीरा : साँवरो सुन्दर साँवरो साँवरो तुम मुनिभाव

साँवरो देव भिरजना, सतनाम सब साथ ।

मीरा सत्य नाम कर आप ॥

व्यक्ति धरन्त सामान्य बौद्धिक स्तर का है। इसने अपने संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु के लिए 'तुम' शब्द का प्रयोग मीरा द्वारा उस समय कराया है, जब वह उनके ज्ञान की बात मान लेती है। अन्य सम्प्रदायों में भी ऐसा हो चुका है। रामसनेही आदि सम्प्रदायों में मीरा के 'यहुबीर' 'रघुबीर' और 'राम' बन गए हैं। अस्तु। इस गीत से मीरा के जीवन के संबंध में कोई उपयोगी सूचना नहीं मिलती। इस बात का पता चलता है कि किस प्रकार विभिन्न सम्प्रदाय वाले मीरा को अपनी और जीचते रहे हैं।

### भक्ति-माहात्म्य चरित्र

बाबू बजरत्नदास ने मीरा-माधुरी में 'भक्ति माहात्म्य-चरित्र' नामक संस्कृत ग्रंथ है मीरा के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं।<sup>१</sup> उनके अनुसार यह हस्तलिखित पुस्तक अंशित थी। 'चरित्र' के रचना-काल और विविक्तता दोनों अज्ञात हैं। ग्रंथकार के विषय में भी कुछ पता नहीं है। इससे निम्नांकित सूचनाएँ उपलब्ध हैं।<sup>२</sup>

(१) जयमल ने मीरा का विवाह राजा के पुत्र से किया था। मीरा शिविका में गिरिधर को साव के गयी।

(२) ग्राम-बैरागी की पूजा का विरोध मीरा ने किया और सौम्या बड़ो की बात सुनकर कहा कि यह मेरा पति नहीं है और यदि मरेगा तो मेरा सौम्या बड़ेगा। आपके ग्राम में इतनी विचलनाएँ क्यों हैं?—यह सुनकर राजा क्रोध में आ गयी।

(३) पत्नी की शिकायत पर राजा ने रुठ होकर जलज घर में मीरा को रखवा दिया पर वहाँ के साधु-संपर्क तथा भजन करने लगी जिससे परिवार वाले दुखी हुए।

(४) अन्त में भगवत् ने कहा—माया तुमने दोनों दुनों में फँस कर लिया है, क्योंकि निर्लज्जता पूर्वक वैष्णवों के सामने गाड़ी हो।

(१) मीरा-माधुरी, पृष्ठ २० २२

(२) जिससे गिरिधर वैरा पति कृत्वा व्यवसिचर्यते ॥

जयमलसतती मीरा मुमुक्षुर्ते कथी मुदा ।

रामापुराण बीराय यनानि विविधानि च ॥

ततः स मीरा नीत्या सर्वं जगत्तु भक्तितोऽभवत् ।

पिछले पृष्ठ के टिप्पणी का दोहरा—

भीरा गिरिधरं त्यक्त्वा नार्हतुं प्रसहतेऽस्यता ॥  
 प्रस्थान समये भीरां दधती मूर्च्छिताऽप्यतत् ॥  
 ततस्तु पिनरी तस्या समापत्यबभूवतु ॥  
 किमस्ति हृदये भीरे तद्रूढाभोजनानुभा ॥  
 इति श्रुत्वाऽऽभीमीरास्तमुन्मील्य बिलोचने ॥  
 ह्यंयं गिरिधरं देहि नीत्वा सं ग्रामि हृदिता ॥  
 मोक्षेवैवम मरत्नं भविष्यति न संशयः ॥  
 इति श्रुत्वा बभूवस्तस्याः पितरावतिमोहिनी ॥  
 बभूवुस्तं गिरिधरं पुत्री तोषयतावुभी ॥  
 अथ भीरा गिरिधरं शिषिकया विधायतं ॥  
 हृदिता प्रययौ पत्न्यैर्हं सैभ्यस्तर्मान्विता ॥  
 तत्रैवभू समस्य्य भीरया सहस्रात्मज ॥  
 ग्रामदेवी समीपे तु निवासातिथ्यमोहिता ॥  
 पुत्रेण पूजयित्वा तां देवीं नीरामयावद्वीत् ॥  
 स्नुये संपूज्य मनसा ग्रामदेवीं नमस्कुर ॥  
 इति श्रुत्वा बभू श्रुत्वा भीरां प्राह कृताञ्जलि ॥  
 विना गिरिधरं काम्यं नमस्कुर्यामहं नहि ॥  
 इति श्रुत्वा पुनः श्रुत्वा प्राह सौभाग्यभेर्बनं ॥  
 भविष्यति ततस्तर्तु नमस्कुर न संशयः ॥  
 इति श्रुत्वा पुनः प्राह भीरां श्रुत्वा न मे पतिः ॥  
 मरिष्यति ततो नित्यं सौभाग्यं बभूव नमः ॥  
 किंच मे विवहाः संति ग्रामे तत्र कर्त्तव्यया ॥  
 इति श्रुत्वा तदाऽऽभू कोपेन स्फुरिताभरा ॥  
 बभू पत्रो परित्यज्य पतिं संनिविमापता ॥  
 उवाच तं महा कुप्ता स्नुयालीता स्वया पूहे ॥  
 अथेव न भूभोत्युक्तो किमेवापे करिष्यति ॥  
 अहं तु नैव ब्रूयामि किंचिदस्ये हितार्हितं ॥  
 इति श्रुत्वा ततो राजा नृपः कुप्यो विचारयन् ॥  
 मारणेऽस्मत् कर्मकस्यात् सत्रीवयवजातिवास्तु ॥  
 तस्मात्तन्निबिद् पूहे स्वया भोजनान्नाहनादिभिः ॥

—शेष अगले पृष्ठ पर



चरणदास :

ये मेकटे निवासी चरणदासी संप्रदाय के प्रवर्तक संत थे। (जन्म संवत् १७१० मृत्यु सं० १८१६) इनके एक संज्ञा-ग्रन्थ 'शब्द' में 'भक्त का धर्म' शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए की निम्नांकित पंक्तियों में मीरा-सम्बन्धी उल्लेख है—

‘वास मीरां पसी प्रेम सनमुख चली  
छोड़ गई बाज-कुल माहि माना’

दयादास :

परिचय अनुपलब्ध है। संभव है कि ये चरणदासी संप्रदाय की दयाबाई के शिष्य हों या ठाकुर दयाराम रामसनेही दयाराम बाबूपंजी दयाधम बाबूपंजी दयासदास मन्मथपंजी दयालदास में से ही कोई व्यक्ति हों। मीरा द्वारा 'राम' कहूँ बिब पीने का उल्लेख इनके संत-मत के आग्रह को व्यक्त करता है।

विश्रुत पृष्ठ के दिव्याली का श्लोक—

विज्ञातया नवै वेद्विस्त्यः प्राजापत्यस्यात्कर्त्तव्यम् ॥  
इति निश्चित्यतां मीरा स्वल्पयामस्त मेमिरे ।  
स्वाधितचरणदासी द्वारपालान् शुचानिकान् ॥  
मीरा गिरिचरं नित्यं पूजयंती वसिष्ठता ।  
मन्वेद किञ्चिच्छर्त्तं स्वभा वा स्वधुरस्यच ॥  
पूजयंती गिरिचरं निर्मज्जाः साधुनिः सह ।  
अनमिता कुलाचारे निमज्जावन्द्यचारे ॥  
तथा रामादया सर्वे तथाचारेण कुक्षितः ।  
कुले कर्त्तव्यमूतेयं गरिव्यसि कथा पुनः ॥  
एवं विजित्यस्तस्ते मेमिरे शर्म न स्वचित् ।  
मीरागर्गदाशैकस्मिन् दिनेम्भीत्याश्रमीश्वरता ॥  
आतुजाये, क्रियेवं त्वं कुलहृदयकर्मणिनी ।  
भूत्वा मायति निर्मज्जा भेष्युचार्ता धुरस्मिता ॥

(१) बिब का प्याला मीरिका दारुण जेग्यो छान ।

मीरा अज्यो राम कहि हो गयो गुवा जमान ॥

जनलिङ्गमन :

रामरसिकावली में जनलिङ्गमन हूत एक पद दिया हुआ है। इसमें मीरा के रणछोड़ जी के मंदिर में निमीन हो जाने की बटना का उल्लेख है। पद इस प्रकार है —

घाई छ राजा रणछोड़ दारणें मारे, घाई धुं। टेक।  
 हित सुं बाह्यण भेज दिया रे, मायो ने मड़तणी बहोड़।  
 बरम संकट वियो बाह्यण बीछी मंदिर में दीड़॥ घाई०  
 घापली हिम राखि साबरं चिनरी कई कर जोड़।  
 नेमों पाछी बाळ बगल में जाये मने मोटी जोड़॥ घाई०  
 भयो प्रकाश मंदिर में भारी उमा सूरज करोड़।  
 ऐसा रूप देखि कृष्ण को घाई मंदिर में दीड़॥ घाई०  
 मीर मीर क्यों मिल गया सबनो परमानंद की जोड़  
 'जनलिङ्गमन' सांघी जु बगल में बनि मीरां राठीड़॥<sup>१</sup> घाई०

इस पद से मीरा के अंतिम साणों की बटना पर प्रकाश पड़ता है। इस पद का केवलक सतर्क व्यक्ति है क्योंकि पुजराठी समाज में कुछ दिनों तक मजन कीर्तन करने वाली मीरां से पुजराठ के मंदिर में पुजराठी मिश्रित हिंदी में पद गवाया है।

नन्दराम

बाबू बजरामदास ने नन्दराम नामक व्यक्ति द्वारा लिखा मीरा-सम्बन्धी एक बाण्डूमासा सम्बृत्त किया है।<sup>१</sup> नन्दराम का परिचय अज्ञात है। जोब रिपोर्ट (विस्द १) में एक नन्दराम का उल्लेख है जो अम्बावति वाली अंडेसबान बजराम के कृष्णोपासक पुत्र थे। इन्होंने कातिक दुकन संवत् १७७४ में एक पचीसी लिखी थी। संभव है कि पचीसी के लेखक नन्दराम और बाण्डूमासाकार नन्दराम एक ही व्यक्ति हों।

नन्दरास के उल्लेखों में निम्नांकित सूचनाएँ उपलब्ध हैं—

(१) राम रसिकावली, महाराज रघुराजसिंह, पृष्ठ ८७८

(२) मीरा-माधुरी पृष्ठ ३६

(१) मीरा मारबाड़ के मेड़ता नगर के राठीड़ कुल की थी और चितोड़-मड़ में इनका विवाह बैठ में हुआ था । विवाह के लिए स्वयंवर रचा गया था ।

(२) मीरा की कृष्ण भक्ति प्रेमरूपा थी । मीरा ने विवाह के बाद राणा से कहा 'मैं तुम्हें माई मानती हूँ ।'

(३) राणा ने सनवार पिछाई, व्यास कुटी पर लटकाना बिप दिया जो प्रभूत हो गया ।

उक्त उल्लेखों में कई बातें अभिप्रेतनीय हैं । मीरा के युग में स्वयंवर की प्रथा ही नहीं थी । विवाह के बाद मीरा ने पति से भ्राता कहा हो यह स्वामाधिक नहीं बनता । अथवा कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है । शेष प्रचलित बातें ही मन्दराम ने कही हैं । अतः इस बारहमासा में मीरा-जीवन-चरित्र के अध्ययन की कोई विश्वसनीय मौलिक सामग्री नहीं है ।

सुन्दरदास काव्यस्थ :

ये १६वीं सताब्दी के प्रारम्भ में वर्तमान थे । इन्होंने कृष्णलीला पर बहुत-से पद तथा संतों की बंरना लिखी है ।

मीराबाई-बंरना में निम्नांकित पंक्तियाँ हैं—

बीर—धी मीरा को करी प्रणाम । हरि के भक्त में सरनाम ॥

तिनकी प्रेम बरनि नहि जाय । सागर तारें जात समाय ॥

(१) मारबाड़ नड़ मेड़तो कसबज कुल राठीड़ ।

जतनी मीरा भक्त कृष्ण की व्याही नड़ चितोड़ ॥ (छंद १)

× × ×  
बैठ मात गुन लवन सात मेरी व्याह की तयारी ।

× × ×  
रख्यो सुयंवर सात बात मेरी सुनो कृष्ण के कान ॥ (छंद ३)

(२) सीतोछो भूख्यो फिरे लख्यो में पाने समझूँ भ्रात ॥ (छंद ४)

× × ×  
प्रेम भक्ति तु नाथ कूरकर, गुण गिरिधर का पावे ॥ (छंद ५)

(३) भरकर प्यालो जहर को, उस मन्दर में बरबायो ॥

कपड़ मात कर व्यास की जने लूँदी पर लटकानो । (छंद ६)

× × ×  
राजो व्यायो सङ्ग लेय कर, अथ जान कूरु बचाती । (छंद ११)

तिनको प्रेम मनो सागर उमड़यो । देसन देसन बावस भुमड़यो ॥  
 परलामुन कहि बिप दियो बारि । बच गइ नहि साम्यो बारि ॥  
 तिन किरपा से भलि मै पायो । संगहि संय भुज में पायो ॥  
 इसके साथ ही मोरों के एक पद का भी उल्लेख है ।

### छोटमदास

ये भुजपटी क एक सामान्य कवि थ । छोटमदास कृत एक 'मीरों गो  
 परबो' लेखक को मिला है ।<sup>१</sup> इसका सर्वाधिक मीरों की रचना के रूप में ही  
 प्रचलित है । इसमें ब्यापार के उल्लेखों की परम्परा का अनुसरण नहीं है । जो  
 उल्लेख हैं, स्वतन्त्र हैं । अत इसका अपना महत्व है । ३३ पंक्तियों की यह रचना  
 'राय गरबी' में है । मीरों स्वयं इस गीत में बज्जा है । उनके मुख से कवि ने कहल  
 बापा कि 'मुझे सासरे में मुख नहीं है, मायक में मरा मान नहीं' पछा रोप  
 में मरा है । हे मोबिन्ध तुम मरे साबी हो ।

इस मीरों-जीवन के विषय में यह पता चला है कि—  
 (१) वे पारिवारिक जीवन से असंतुष्ट थीं । सासरे-मायके वहीं उन्हें  
 रुख नहीं था ।

(२) वे डारका में परलोक सिजारी ।  
 (३) वे रणछोड़जी की मछ थीं ।

### प्रीणवन :

मीरों-माबुटी में प्रीणवन का एक पद उद्धृत है । कवि का परिचय  
 अनुपमम्भ है । पर इस प्रकार है—

पछा बी जर सीयो भू में बाणी ।  
 कुनन छर भगन में डारो नीक सो बारो बाणी ।  
 पछो बी विप का प्यासो मनो मेनो मीरों पछी ।

(१) 'प्रभु बी पासव पकड़ी रही हैं पुरखा प्रेमबी दे—  
 मारा छेन पसीता बल्लर ना बाबार,  
 ऊपी धरन करे छे मीरों राकडी दे,  
 तने शक्ती तराए मुख म्ही बूर करो दे ।  
 इत्यादि ।

बसन बीजय बेहास करी है मोरे कबू न सरीयो री ।  
 भजना सकीये हाहाकर झूटी पावन छीस धरीयो री ।  
 'प्रीणधन' तम सहरीयो मोरी समर नार परीयो ।'

वस्तुतः :

राय कम्पद्रुम में बल्लतावर छाप के निम्नलिखित दो पद दिए हुए हैं—

(१) मेणछली मौडी छे पतवार ।

बसमी भाटीरो भव भोजी छे भर वे सुमत कमवार ।  
 मैन पियासा पीबत घति कमरस काम कोषवियो बार ।  
 बल्लतावर मीरा बडभागिन घर बैठां ही पाए धुरार ।'

(२) मीरा मैलावे रंग छायो ।

कोट भाणु बांके महलां बीसे प्रानम्भ भत ही उमायो ।  
 छिन समकाधिक धीर बड्ढाधिक बेर पुराण में गायो ।  
 बल्लतावर मीरा बडभागी घर बैठे घर पायो ।'

हरिदास दर्जी :

मीरा-एक अध्ययन में श्रीमती शबनम ने निम्नलिखित पद को मीरा की रचनाओं के अन्तर्गत सम्बुद्ध किया है, पर बीसा कि छाप से स्पष्ट है, यह पद हरिदास दर्जी लिखित है । पद इस प्रकार है—

“मीरा ए ज्ञान बरम की पांछी हीरा छन बड़ायो जी ।

सोम बारी निहरा करै साधों में भत जायो जी ।

(१) मीरा-माधुरी, पृष्ठ ४१

(२) अष्ट १ पृष्ठ ३४२ पद १

(३) वही, पृष्ठ ३६६ पद ३

श्रीय-प्रतिकर भाग ३, शीक ४ (जून १९५९) में भी बल्लतावर का मीरा-सम्बन्धी एक पद दिया हुआ है, जो इस प्रकार है—

आज ती मेड़तनी मीरा के राज, महलां रंग छायो ।

सहज किरण सु सुरज उगियो, भागो सति निरकर धायो ।

सुरजर र्वा का ध्यान बरत है बेर पुराणा पायो ।

कह 'बल्लतावर' मीरा बडभागर छर बैठी ध्याम बनयो ।

कृष्ण पुरेक सम्झायो बर को बाधो छोड़्यो जी ।  
 सोम थारी निहरा करे साधा में मत बाधो जी ।  
 कने कहागी बाई माइकी  
 कने कहोगी बाई बोरी की  
 कृष्ण थारो पगसिया चापसी  
 कृष्ण बुझे पारे मन री बात  
 बुझी टेढ़ी म्हांरी मायकी  
 बीरों भर्या ये ससार ।  
 पावड़ी पयसियां चापसी मासा बुझ मन की बात ।  
 हरिदास दर्जी की बिनती की बोला बसतर सिमाधो की ।  
 देख नगारो मीरों बड़ गई, मासा हियो मत हारो की ।  
 बागा में बोसी कावसी बन में बाबुर मोर  
 मीरों ने गिरबर मिभिया मागर नन्द कियोर ।<sup>१</sup>

### जेतराम के मीरों-संबन्धी भजन

'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' (द्वितीय भाग) में उदयसिंह भटनागर ने जेतराम नामक कवि के तीन भजन दिए हैं। ये भजन रामदास वाली बाबड़ी उदयपुर में संगृहीत एक गुटके के हैं। यह गुटका राम सनेही संप्रदाय का है। इसमें जेतराम के भजनों के अतिरिक्त बन गोपाल हठ प्रह्लाद चरित नू चरित मोहमद की कथा (अपूर्ण) रामचरणजी की 'धर्मबाणी' आदि रचनाएँ, नवदास की अनेकार्थमासा और अनेक नाममासा भी लिपिबद्ध हैं।

इस गुटके का लिपि-काल अज्ञात है और जेतराम का रचना-काल भी। रामचरणजी महाराज का जीवन-काल संवत् १७७६-१८११ है। जेतराम के भजनों में मीरों को राम की (हृष्ण की नहीं) सेबिका भक्त और संत के रूप में रखने का प्रयत्न किया है। लेखक की दृष्टि रामसनेही संप्रदाय की है। अतः इस गुटके का लिपि-काल संवत् १८११ के बाद ही किसी समय का होगा। इसने से गुटका १०० वर्ष से अधिक पुराना नहीं लगता।

(१) 'मीरों-एक अध्ययन' पृष्ठ २१६

(२) उत्तरी भारत की संत परंपरा पृष्ठ ६२०

चेतराम के इन गीतों में मीरा के जीवन से सम्बन्धित कोई विशेष नई सामग्री उपलब्ध नहीं होती पर उनका महत्त्व एक और दृष्टि से है—मीरा छाप से उपलब्ध कई गीतों की रीतियाँ ज्यों-की-त्यों अबका सामान्य परिवर्तन के साथ मिलती हैं। अतः इनसे तुलना और साम्य के कारण ही मीरावा करके अनेक स्थलों पर प्रामाणिकता के प्रश्नों को सुलभभया जा सकता है।

इन गीतों में निम्नोक्ति सूचनाएँ मिलती हैं—<sup>१</sup>

पहला मजन (१) मीरा की मनब मे मीरा को समझया कि 'छाबु-संगत छोड़ दो कुस को छोड़ मत लगाओ। इससे पीहर, ससरो और हिवबोमैलु नवाता है।

(२) मीरा ने निररतापूर्वक इस प्रकार की बातें कहीं—'मगत बिना ठकुराष्ट फुटी—राखो म्हारो कोई करसी—छाब हमारे कुदुब कबीसी' आदि।

(३) मनब ने बिप का प्यासा मीरा को दिया, राखा हाथ वह भेजा गया था। बिप पीकर भी मीरा मरी नहीं 'मगत को बस मिसा और दुष्ट पछाता रहा'।

दूसरा मजन (४) राखा ने कोप करके लसवार बनाई, मीरा महन ॥ उठरी तो राखा ने हाथ पकड़ लिया।

(५) मीरा कठार बसी गई शृंगार छोड़कर उन्होंने अपना-तिसक बारख कर लिया।

तीसरा मजन (६) मीरा ने सब कुछ त्यागा 'राखा बीसा बर भी त्यावा और सबको छोड़कर राम की चरण गही।

लोक-गीतों में मीरा-सम्बन्धी उल्लेख

लोक-गीतों से तात्पर्य उन गेय रचनाओं से है, जो जनता की स्मृति के सहारे जीवित ही नहीं रही ॥ बरजु बिनमें अनेक पद्मात् नाम बर कवियों का प्रासु कवित्व भी मिल गया और जो लोक-हृदय की सीधी अभिव्यक्ति है।

लोक-गीतों के अनेक स्थान मिलते हैं। उनमें क्या-क्या परिवर्तन हुए, उसका कोई खेला नहीं रहता। उनके प्राचीन लिखित रूप प्राप्त न होने के कारण उन स्थानों की पूर्वापर क्रम से रचना सम्भव नहीं है। अतएव उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री की प्राचीनता के विषय में अनुमान लगाना अनुचित है।

(१) राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित संघों की जोर तृतीय भाग, उदयपति  
भटनागर, पृष्ठ २३३-२३८

होगा। पर मोड़-मीन एक दिन में नहीं बनते और साथ-ही धान निराधार भी नहीं होते। कभी-कभी तो उनके पीछे शताब्दियों की परम्परा रहती है। अतः मोड़-मीनों के साक्ष्य का हर वया में पूरा-अप्रामाणिक और अनुपमागी बहकर उदात्त कर देना भी उचित नहीं है। जहाँ पर मोड़-मीनों का विशेषकर विभिन्न प्रयोगों के साक्ष्य-मीनों का बलवत् इतिहास अपना अन्य प्राचीन साक्ष्य में मन जाता है, वहाँ वह बलवत् उन्हें अपभ्रान्त अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय सिद्ध करने में सहायक हो सकता है और जहाँ साक्ष्य-मीनों तथा अन्य सामग्री के बलवत् में विरोध है, वहाँ भी विरोध के कारणों का विवरण करने पर कुछ प्रबल ज्ञानव्यक्तियों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना रहती है।

मीराबाई से सम्बन्धित बहुत-से मोड़-मीन मिलते हैं। इन्हें सामान्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) मीरा के वरों के शब्दों वाक्यांशों या चरणों के विस्तार के रूप में उपलब्ध मोड़-मीन। कभी-कभी पद्यत किसी समूची 'भावना' या 'वदना' का भी साक्ष्य-मीन का रूप मिल गया है।

(२) स्वतन्त्र रूप से भी दो प्रकार के मोड़-मीनों की रचना हुई—  
(क) बनता मीरा के सम्बन्ध में जो कुछ सोचती या मानती रहती है, उसे साक्ष्य का स्वर मीरा का रूप देता रहा है।

(ख) कभी-कभी विरक्त नाट्य के अपने प्रति अपाचार के विरोध और अमानवीय व्यवहारों के प्रति विरोध के व्युत्पन्न मीरा-नाम का सहारा पाकर प्रबल रूप से साक्ष्य-मीन बनकर व्यक्त होते रहे हैं।

विभिन्न प्रयोगों के मोड़-मीनों में मीरा-सम्बन्धी अनेक उल्लेखों के सम्बन्ध में उनकी विपुलता का अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे शायद मीरा के प्रति प्रसंगानुसृत भाव व्यक्त करते हैं। उससे ये निष्पन्न हो सकते हैं कि वे निम्नलिखित हैं—

(१) कठिणतः परम्परावादी सामंतीय समाज मीरा के कर्मों से धुन्न था। उसने प्रारम्भ में काफी समय तक मीरा की अपने परिवार का कलक समझा और अपने प्रयोग के इतिहासों में उनका नाम तक नहीं रखा। पर बनता वे मीरा का सामंतीय मुक्त-समय के त्याग और निरिहार की भाव-साधना को प्रसंगानुसृत भाव से ग्रहण किया। इसका एकमात्र कारण यही हो



सकता है कि मीरा ने सामंतीय धर्मकार की उपासना करके जनता की मूल आकांक्षाओं को संतोष दिया था।

(९) सूर और तुमसी जैसे महान् कवि भी लोक-गीतों के इतने लोक प्रिय विषय नहीं बने जितनी कि मीरा। इसका धर्म यह है कि इन कवियों की कृतियों ने महान् होने पर भी लोक-हृदय उनके व्यक्तित्व में बहु भावपूर्ण न पा सका। वस्तुतः मीरा के व्यक्तित्व और वैयक्तिक कार्यों में कुछ ऐसा मनो-हारी सौंदर्य प्रबल था जो अनायास ही जन-काव्य का विषय बन गया और वह बा उनके चरित्र की अपराजय निर्मय आत्मशक्ति का सौंदर्य जिसकी व्यञ्जना उनके द्वारा किए गए सम्प्रदायवाद और पुरुष की मनमानी के प्रति मूक विद्रोह द्वारा हुई।

लोक-गीतों में मीराबाई के जीवन के सम्बन्ध में सैकड़ों छोटी-मोटी बातों का पता चलता है, पर उनके विषय में मतभेद होने की सम्भावना बहुत अधिक है। अतः यहाँ केवल उन प्रमुख तथ्यों का उल्लेख किया जा रहा है, जो अनेक गीतों में उपलब्ध हैं अथवा किसी अन्य दृष्टि हैं विशेष विचार जाय है। वे सूचनाएँ निम्नांकित हैं—

(१) मीरा भेड़तली थी।<sup>१</sup> वे राठोड़ थीं। उनका सम्बन्ध सौतोछा (सितोचिवा) बंस और चितौड़मंड से भी था।<sup>२</sup>

(२) मीरा ने सबके बरबाने पर भी 'गोसर हार' और 'बिखसी (बलिनी) और' त्यागकर 'तुमसी की माला' और 'मगवा बस्तर' चला रह्यो

(१) क—'बित हमरा कर बाबूयो ए भेड़तली।' सोच पत्रिका भाग ३ अंक ४ मनोहर शर्मा का लेख 'मीरा के प्रसंगों के अन्तर्गत', पृष्ठ १७७

ख—'ए छोटीया कोई मीरा भेड़तली मगवा के लिया जी म्हारा राज' 'मीरा की माला' नामक लोक-गीत से उद्धृत यही, पृष्ठ १५९

ग 'साबिदा धो कोई म्हारी भेड़तली मगवा पहिर लिया।' मीरा—एक अध्ययन (लोक-गीत परम्परा से प्राप्त कुछ पद्य)—धीमती प्रबन्ध, पृष्ठ १४७

(२) 'सौतोछा समझ्यो नहीं तजी बन मीरा राठोड़।

सोनों भाई भेड़तो से कोड़ जोनी पाड़ चितौड़' ॥

—सोच पत्रिका, भाग ३ अंक ४, पृष्ठ १७८

किए थे ।<sup>१</sup> बरजने वालों में 'जुंवर पाटवी' भी था ।<sup>२</sup>

(३) राणा ने मीरा के पास बिच का प्याला भेजा जिसे ने चरखा मृत मानकर पी गई ।<sup>३</sup>

(४) राणा ने मीरा के पास 'सर्प का पिटाटा' भेजा । मीरा ने उसे घड़े में डाल लिया और बह नोसर हार बन गया ।

(५) राणा ने मीरा पर बह्य चलाया और मीरा एक की हज़ार हो गई ।<sup>४</sup>

(६) मीरा जी 'पुसकर' नहाने गई थीं ।<sup>५</sup>

(७) मीरा जी जूनापड़ के मार्ग से गई थीं ।

(१) जायद बरजै ए मीराबाई उछामए ।

कोई भगवा बस्तर छोड़ हरि के भजना में ॥

भगवा बस्तर ए भायद मीरा ना छूटै ।

कोई छोड़्या दिखली बीर हरि के भजना में ॥

बीरोजी बरजै ए मीराबाई भायए ।

कोई तुलसीरी माला छोड़ हरि के भजना में ॥

तुलसी की माला छो बीर न्हारा न छूटै ।

कोई छोड़्या नोसर हार हरि के भजना में ॥

वही, पृष्ठ १७६

(२) "जुंवर पाटवी जाने बरजै बिक-बिक कहै संसार ॥"

वही, पृष्ठ १८१

(३) बहर प्याली भेजियो रे, छो मीरा के हाथ ।

कर चरखामृत पी गई रे, तुम बाखों रघुनाथ ॥

वही, पृष्ठ १८०

(४) ताँप पिटाटी भेजियो रे छो मीरा ने हाथ ।

मीरा पल बिच पहुँचियो रे बस गयो नोसर हार ॥

वही पृष्ठ १८०

(५) 'राणाजी बह्य संवारिया,

ने बाँडो तरवार ।

किसड़ी मीरा ने राखी जी मारली,

हो गई एक हजार ।'

मीरा- एक अभ्ययन—वीमती दानम लोक परम्परा से प्राप्त पर

पृष्ठ २४४

(६) 'तुम की तारण इतरी रे बली हू पुसकर न्हार ।'

(७) 'राणाजी बह्यो रे जूनापड़ रो मारण रे'

वही पृष्ठ २४७

( ८ ) ब्रज की होसी के घबसर पर कृष्ण की 'रस-सीमा' के प्रति मीरा का मधुर भाव था ।<sup>१</sup>

( ९ ) मीरा 'साध गिरिधर' की दासी थी । उनका हृदय हरि के प्रति प्रणय भाव और वियोग की व्याथा से संसिक्त था ।<sup>२</sup>

( १० ) मीरा को (राणा के आश्रमियों ने) द्वारका जाकर नर-नर हुँदा के 'मंदिर' से नहीं टली ।<sup>३</sup>

**अनुभूतियाँ और मीरा :**

मीरा ने राज-परिवार के वैभव-सुख को त्यागकर भक्ति का कंठका कीर्ण भाग भगनाया था । अतः सामान्य जनता के मन में उनके प्रति आदर और स्नेह का कोमल भाव था जिसने कालान्तर में उनके व्यक्तित्व को अनेक प्रतीकिक कथाओं का केन्द्र बना दिया । मीरा के जीवन-वृत्त और काव्य के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इन कथाओं का अपने में विशेष महत्व नहीं है पर इनसे लोक-हृदय पर पड़े मीरा के व्यक्तित्व के प्रभाव की व्यंजना अवश्य होती है ।

लेखक ने मीरा के मायके (मेड़ता), ससुरास (बिटीड़) बाकोर आदि से अनेक अनुभूतियों को एकत्र किया है उदाहरण के लिए कुछ नीचे दी जा रही हैं—

( १ ) नदी में एक बौना बहता हुआ थाया । उसमें से मीरा ब्रत हुई । एलसिह की इस बात का पता छिबडी ने पहले ही एक साधु के रूप में आकर दे दिया था । (मेड़ता की आसणी मंडली के सबस्यों से उपलब्ध)

( २ ) मेड़ता के ग्राम देवता बनुसंभा जी (चारमुखाजी) ने मीरा के हाथ से दूध पिया था ।—(पुस्तोत्तमजी पुरोहित से उपलब्ध)

( ३ ) मीरा मालफोट में पैदा हुई थी—(मालफोट के द्वार पर खूनेभासे से प्राप्त)

( ४ ) मीरा बाकोर होकर ही द्वारका गई थी—(बाकोर से प्राप्त)

( ५ ) राणा ने मीरा के पास साँप भेजा वह 'सासिधरम' बन गया था

( १, २ ) पोद्दार अभिलेखन ग्रंथ, ब्रज का लोक-साहित्य डा० सत्येन्द्र नृत्त १९८८  
तथा १००१

( ३ ) आस्य द्वारका घर-घर हुँडी नंबर सूँ न लगीं

— ध्येय पत्रिका भाग ३, संक ४, पृष्ठ १७७

धूम का हार बन गया—(मिट्टी और पिट्टीइमड़ धानों जगह प्रशस्ति) —  
इत्यादि ।

इनमें से कुछ जनश्रुतियाँ तो प्रकाशित ग्रंथों में भी स्थान पा गई हैं ।  
ये प्रायः मीरा के महत्व की जनता-आप स्वीकृति की छीनक हैं ऐतिहासिक  
सत्य की मही ।

इतिहास ग्रन्थ :

मीरा-सम्बन्धी उल्लेख बिना इतिहास-ग्रंथों में मिलते हैं उन्हें दो वर्गों  
में रखा जा सकता है— (१) राजनीतिक तथा (२) साहित्यिक इतिहास ।

राजनीतिक इतिहास राजनीतिक इतिहास प्रायः उन्हीं व्यक्तियों के विशेष  
विवरण प्रस्तुत करते हैं जिनका राजनीति की दृष्टि से कुछ महत्व होता  
है । मीरा का राजनीतिक महत्व शून्य था । अतः देश के प्राचीन राजनीतिक  
इतिहासों में मीरा-सम्बन्धी उल्लेख भी नहीं मिलते । फिर भी मीरा के जीवन  
से प्रभावित और प्रत्यक्षतः संबंधित अनेक सत्तों के जानने के लिए ये इतिहास  
आवश्यक महत्वपूर्ण हैं । अतएव प्रस्तुत अध्ययन के लिए उपादेय इतिहासों में से  
प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।

(१) राजस्थान के राजपूतों से संबंधित सबसे अधिक प्रामाणिक  
ऐतिहासिक सामग्री का प्राचीनतम उपलब्ध संग्रह है, भूहणोत्त नैणसी की  
ख्यात । नैणसी (जन्म सं० १६६७) जोधपुर-नरेश महाराज बसवंतसिंह का  
जीवान था । उसने ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण प्रत्यक्षपूर्वक एकत्र किए थे ।  
श्रीधरजी का कहना है कि वि० सं० १९०० के बाद से नैणसी के समय तक के  
राजपूतों के इतिहास में किए गये अनुसंधानों की तिथि बड़ी ठगपट्टियों से भी  
नैणसी की ख्यात नहीं-कहीं विशेष महत्व की है । जहाँ-तहाँ प्राचीन दशक से  
प्राप्त सामग्री इतिहास की पुष्टि नहीं कर सकती वहाँ 'नैणसी की ख्यात' ही  
कुछ सहारा देती है । श्रीधरजी ही नहीं कविराजा क्यामसदास का मत भी  
इसी प्रकार का है ।<sup>१</sup>

(१) भूहणोत्त नैणसी की ख्यात ग्रन्थ भाग, भूहणोत्त नैणसी बंध परिचय

पृष्ठ ७

(२) बीर-विमोह, भाग १ पृष्ठ ३५३—“हमन जो क्यात ठमर मिला है वह  
नैणसी मेहता मारवाड़ी की मिसी हुई दो सी बर्य पहले की एक पुस्तक  
में मिला है ।”

यद्यपि मैसुरी ने मीरा का कहीं उल्लेख नहीं किया पर मीरा के पितृकुल और पतिकुल की अनेक घटनाओं पर उसने प्रकाश डाला है। घवाहरण के लिए राणा सांगा राणा रत्नासिंह, राणा बिहम आदि के परिचय जिनसे प्राप्त हो गया मीरा के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित अनेक उल्लेखों के सत्यापन की परीक्षा होती है। बाव में लिखे गए इतिहासों की बहुत-सी सामग्री का तो मूल स्रोत ही मैसुरी की क्यात है। अतः मीरा का उल्लेख न होने पर भी मीरा के जीवन-सम्बन्धी अध्ययन के लिए इस ग्रंथ का महत्व असामान्य है।

### (१) एन्स एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान

इतिहास ग्रंथों में सेफ्टिमेन्ट कर्नल बेन्ट टॉड कुछ "एन्स एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान" अपने ग्रंथ का बहु प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें राजस्थान की बहुत-सी अप्रकाशित ऐतिहासिक सामग्री को प्रथम बार एक स्थान पर प्रकाशित कराया गया है। ग्रंथ के प्रथम संस्करण के समर्पण में पता चलता है कि यह २० जून सन् १८२६ तक पूरा हो गया था। इसका प्रथम भाग सन् १८२६ में प्रीड प्रिंट सन् १८३९ में अंगरेजी में प्रकाशित हुआ। मीरा की जीवनी की दृष्टि से इस ग्रंथ का बहुत महत्व है क्योंकि इस ग्रंथ के बाव मीरा के सम्बन्ध में लिखे अनेक बर्णों और लेखों में इसकी सामग्री का उपयोग उसे प्रामाणिक मानकर बड़ी निश्चिन्ता के साथ किया गया है और बाव तक मीरा के सम्बन्ध में जो अनेक भ्रांतियाँ शोधकों का धिरदर्श बनी हुई हैं, उनमें से कई का मूल उत्स भी टॉड की यही कृति है।

टॉड के "राजस्थान" में मीरा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएँ हैं—

(१) मीरा मारवाड़ के राणा कुंभा की पत्नी थी। वे सौधर्व और स्वच्छन्द पवित्रता के लिए अपने पुत्र की सबसे प्रसिद्ध राजकुमारी थीं। उन्होंने बहुत-से बीत लिखे जो भक्तों में प्रचलित हैं। मीरा के काव्यत्व से उनके पति की प्रेरणा मिली या कुंभा से उन्हें काव्य-सौन्दर्य उपलब्ध हुआ यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। मक्ति के प्रतिरेक और स्वच्छन्दता के कारण अनेक प्रभाव मुसक कथाओं को जन्म मिल गया।<sup>१</sup>

(१) "एन्स एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान" टॉड (द्वितीय संस्करण का संस्करण) एन्स ऑफ मेवाड़, पृष्ठ २३२-२३३।

(२) ने मरुवर बीर मड़तिया राठोड़ों की राजा के प्रबलक बुद्धि की पुत्री की।'

'ऐनस एंड ऐंटीबिबटी ऑन राजस्थान' में भीरों के सम्बन्धों के विषय में जो बातें कही गई हैं, उनकी परीक्षा सरलता से की जा सकती है। टोंड के अनुसार भीरों मड़तिया बुद्धि की पुत्री और बिछोड़ के राजा कुंमा की पत्नी थीं। जैसे तो भीरों बुद्धि से पुत्र राजसिंह की पुत्री अर्थात् बुद्धि की नातिनी थीं। यदि टोंड की बात को सही मानकर ही उनके दोनों कथनों की संवति मिलाते का प्रयत्न करें तो भी उनका अन्तर्विरोध सुरक्षित सामने आ जाता है।

राजा कुंमा वि० सं० १४६० में बिछोड़ के राजसिंहासन पर बैठे और सं० १५२५ में उसके पुत्र उदयसिंह ने उन्हें कटार से अमानक मार डाला।' राज बुद्धि का जन्म वि० सं० १४६७ की आखिर सुदी १५ को हुआ था। इस प्रकार राजा कुंमा की मृत्यु के समय बुद्धि की २८ वर्ष के थे। यदि भीरोंबाई को बुद्धि की प्रथम सन्तान भी मान लें और यह मान लें कि लगभग १८-२० वर्ष की आयु में उनके घर भीरों का जन्म हुआ था तो भी भीरों कुंमा की मृत्यु के समय ८१० वर्ष की ठहरती हैं। आयु के इस अनुपात के साथ भीरों और कुंमा के मित पारस्परिक साहित्यिक सम्बन्धों की बर्चा टोंड ने की है, वह तो असम्भव है ही दोनों के विवाह-सम्बन्ध की संभावना भी घुम्व है, और विशेषकर उस परिस्थिति में जब कि राजा कुंमा जीवन के अन्तिम दिनों में उन्माद रोग से पीड़ित थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि टोंड के ही भीरों-सम्बन्धी जो कथन परस्पर विरोधी हैं और एक साथ दोनों सही नहीं हो सकते।

इतना ही नहीं, राजा कुंमा के जीवन के सम्बन्ध में कई अन्य अमान्यक बातें भी टोंड ने कही हैं। कई ऐसी अन्य घटनाओं का भी सम्बन्ध उनसे जोड़ दिया है, जो इतिहास की दृष्टि से असिद्ध हैं। यहाँ विस्तार से उनका सख्सेत अमान्यक है क्योंकि श्रीमती अपने उदयपुर के इतिहास में इन घटनाओं पर ध्यान से विस्तार विचार करके निर्णय ले चुके हैं।'

टोंड मैग्नेजी राज्य की ओर से राजस्थान की राजपूत रिपासों में

(१) वही, पृष्ठ १७

(२) उदयपुर राज्य का इतिहास भोपा, पृष्ठ २७६

(३) वही पृष्ठ ३५५

(४) मारवाड़ का इतिहास, रैड, पृष्ठ १०३

(५) उदयपुर राज्य का इतिहास, भोपा, पृष्ठ ३१६

पोसिटिव एजेन्ट थे। उन्होंने 'भारत माटों की ब्यातों बँत-क्याओं और बँधाबतियों के आचार पर अपने गुरु जीतपति ज्ञानचन्द्र की सहायता से इस ग्रंथ को लिखा था।<sup>१</sup> इससे इस ग्रंथ में बनेक काल्पनिक बातों का भा जाना स्वाभाविक ही था। शिवासेख ताम्रपत्र चिन्के धादि ठीक-ठीक न पड़ने से और मूठा नैसुसी की ब्यात जैसे उपयोगी ग्रंथ के उस समय अप्राप्त होने के कारण उनके ग्रंथ में अन्य बनेक असुधियाँ भी रह गई हैं।

यह टोंड के उत्प्रेक्ष्य प्रामाणिक साक्ष्य की कोटि में नहीं रहे जा सकते।

(३) रासमासा—एलेक्जेंडर किन्सोल् फॉर्ब्स ने जो कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रान्तेबुल सिविल सर्विस के अधिकारी थे 'रासमासा हिन्दु ऐन्स स्मॉन् वी प्रॉबिस स्मॉन् मुजरात इन बीस्टर्न इण्डिया नामक रत्न लिखा। यह ग्रंथ पहली बार लंदन से सन् १८२९ में दो भागों में प्रकाशित हुआ था। रचना-काल की दृष्टि से तो इस ग्रंथ का महत्व है ही इसलिए भी यह कृति महत्वपूर्ण है कि मुजरात के बहुत-से प्राचीन लेखक इस ग्रंथ में बनेक सुचनाएँ ज्यों की त्यों उद्धृत करते रहे हैं। मीराबाई के संरक्ष में रासमासा में एक ही उत्प्रेक्ष है, वह भी रासा कुंभा के संरक्ष में किया गया है। उत्प्रेक्ष इस प्रकार है— 'वह स्वयं कवि थे और प्रसिद्ध राठोर राजकुमारी मीरा नामक कवयित्री के पति थे।'<sup>२</sup>

इस उत्प्रेक्ष से स्पष्ट है कि फॉर्ब्स ने टोंड का ही अनुसरण किया है। टोंड के उत्प्रेक्षों के विषय में जो निष्कर्ष हैं, वह यहाँ भी वही रूप में लागू होता है। इस पुस्तक के संपादक श्री एच० बी० राबर्सन का कथन ठीक ही है कि 'इतिहास के रूप में निस्सन्देह रासमासा में दोष है। इसका लेखन पुरातत्त्वविद् या और मुजरात के प्राचीन इतिहास के विषय में कहने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। पौराणिक वाचार्थों को उलझने वह यहाँ सुझाव सका और कुछ बातों के विषय में तो वह बुरी तरह से त्रस्त था।'<sup>३</sup>

फॉर्ब्स टोंड के परन्तु रासमासा का इतिहास लिखने के कई प्रयत्न

(१) राजपुताने का इतिहास पहलोत जमिका, पृष्ठ ५२

(२) He was himself a poet and the husband of a poetess, the celebrated Rathor Princess Meeraabai.

रासमासा (भाग १) फॉर्ब्स अध्याय २, पृष्ठ ३३७

(३) वही, लेखक की भूमिका के नीचे की संपादकीय टिप्पणी, पृष्ठ १२

हुए, परन्तु य काव्यात्मक थे या टॉड के 'राजस्थान' तथा मैंगरेजी सरकार की प्राथमिक रिपोर्टों पर आधारित थे। अतः इनका महत्त्व विषेय नहीं है।

(४) बीर-बिनोद—राजस्थान की उदयपुर रियासत का प्रथम विस्तृत और प्रामाणिक इतिहास लिखा गया बीर बिनोद। इसे राजा सख्तसिंह को प्रेरणा से मेवाड़ के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष कविराजा श्यामशम ने लिखा था और संवत् १९४२ में इसका छपना प्रारम्भ हुआ। इसकी चारही प्रतियाँ बाहर आई थीं कि इसे महाराजा ने जब्त कर लिया। अब यह प्रश्न फिर उपस्थित हो गया है।

बीर-बिनोद में भीरा-संबन्धी उल्लेख निम्नलिखित हैं—

'इन महाराजा के ७ राजकुमार थे भोजराज कर्ण, रत्नसिंह, पर्वतसिंह, कृष्णराज बिक्रमाशिर्य और उदयसिंह, जिनमें दो भोजराज कर्ण, पर्वतसिंह और कृष्णराज ठा कुँवर पदे ही में परसाक बास कर गए।

महाराजा साँवा के पाटवी जाने सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे जिनके मेकटिया राजा बीरमदेव के छोटे भाई की बेटी और जयमल की बहिन ब्याही गयी थी। इन राजकुमार का ब्रह्मन्त महाराजा की मौजूदगी में हा चुका था। इसलिए राजकुमार रत्नसिंह जो राठीड़ बापी की बेटी महाराणी बनावार्ई के पेट से पैदा हुए थे भोजराज के मरने के बाद राज्य के बारिस ठहरे।'

'इन महाराजा ने भोजपुर के राज जोरा के पोते राज भूजा के बेटे कुँवर बाबा की तीन बेटियों से शादी की थी। ये तीनों बाबा की पत्नी बहुवान पुहवावती से पैदा हुई थी। इनमें से बनावार्ई के पेट से बड़े कुँवर रत्नसिंह पैदा हुए और बूँधी के राज भाँडा की पोती और मरवा की बेटी महाराणी कमवती बाई से महाराजा बिक्रमाशिर्य और जयसिंह पैदा हुए। इन महाराजा के सबसे बड़े राजकुमार भोजराज थे जिनकी शादी मेकटा के राजा बीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की बेटी व जयमल के काका की बेटी भीराबाई के साथ

(१) क—ईसी राज्य के बारस कवि सूर्यमल मिश्रण बंधमास्कर (काव्य संक) रचना-संवत् १९२५, सं० १९५५ में प्रकाशित

क—भरतपुर के धरालती मुषी बाबू ज्वालासहाय मापुड, 'आर्यो राजपूताना' (संवत् १९५५ में प्रकाशित)

(२) बीर बिनोद भाग १ 'महाराजा संघासिंह' अध्याय पृष्ठ ३६२



हुई थी लेकिन उक्त राजकुमार का बेहान्त महाराणा सांगा के सामने ही हो गया था। कर्नल टॉड बरीरह फिरो ने मीराबाई को महाराणाकुंभा की राणी निभा है, लेकिन यह बात गलत है, क्योंकि मीराबाई का भाई अयमस्त तो बिज्जी १६२४ (हि० १७५-ई० १५९७) में अकबर की सड़ाई में चितौड़ में मारा गया और महाराणा कुम्भा का बेहान्त बिज्जी १५७१ (हि० ८७१ ई० १५९८) में हो गया था, फिर न मासूम कर्नल टॉड ने यह बात अपनी किताब में कहीं से हर्ष की। सोचना चाहिए कि महाराणा कुम्भा के वक्त बूरा को मेड़ता ही नहीं मिला था फिर बूरा की पोती मीराबाई 'मेड़तखी' कुम्भा की राणी किस तरह हो सकी है।<sup>१</sup>

महाराणा कुम्भा के बेहान्त के ५९ वर्ष पीछे बाबर और राणा सांगा की सड़ाई में मीराबाई का बाप रत्नसिंह मारा गया तो महाराणा कुम्भा के वक्त में (टॉड साहब का लिखना ही ठीक समझ जाय तो) रत्नसिंह की अवस्था बालीस वर्ष से कम न होगी इस हिसाब हैं मारे जाने के वक्त ही वर्ष के आसरे होनी चाहिए, और इतनी उमर के आदमी का बहादुरी के साथ सड़ाई में मारा जाना असंभव है।<sup>२</sup>

'महाराणा सांगा के साथ पुत्र हुए। १-पूर्णमस्त २-भोजराज ३-पर्वत सिंह ४-रत्नसिंह, ५-बिज्जादित्य ६-कृष्णसिंह और छबिसिंह। पूर्णमस्त भोजराज पर्वतसिंह और कृष्णसिंह बार तो महाराणा सांगा के सामने ही परसोक सिबारे, इनमें से दूसरे भोजराज जो धोलखी अयमस्त की बेटी के गर्भ से जन्मे थे उनका विवाह मेड़ता के राज बूरा भोजराज के पाँचवें बेटे रत्नसिंह की बेटी मीराबाई के साथ हुआ था। मीराबाई बड़ी बालिक और धातु संघों का सम्मान करनेवाली थी। यह विधान के पीछे बनाती और जाती इससे उनका नाम अब तक बहुत प्रसिद्ध है।'<sup>३</sup>

'महाराणा रत्नसिंह, जो भोजपुर के राज बाबा सुबागत की बेटी के गर्भ से उत्पन्न हुए वे वि० १५८४ कार्तिक शुक्ल ५ को चितौड़ की गली पर बैठे।'<sup>४</sup>

(१) बीर-बिनोद भाग १ पृष्ठ १७१ तथा महाराणा रत्नसिंह अध्याय, पृष्ठ १, पार-दिप्पल १

(२) बही फुटनोट २

(३) बीर-बिनोद महाराणा रत्नसिंह पृष्ठ १

(४) बही पृष्ठ ३

‘महाराणा कुम्भा से १०० वर्ष पीछे मीराबाई के बचेरे भाई जयमल्ल का मार जाना मिथा है, इस हासत में जयमल्ल की बड़ी बहन मीराबाई कुम्भा की राखी किस तरह समझी जायें।’

‘मीराबाई महाराणा विक्रमादित्य और उदयसिंह के समय तक बीटी रही और महाराणा ने उसको जो कुछ दिया वह उसकी कबिता में स्पष्ट है। कर्मठ ढोंह ने बोला थाया है—मीराबाई का मंदिर कुंभ ल्याम के समीप होने के कारण—परन्तु हमारे यहाँ, व मेड़िया राठौरों की व जोधपुर की तथा राज्यों में मीराबाई को भोजराज की राखी मिथा है।’

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बीर-विनोद की सामग्री साधारणतः विरचनीय है, पर वहाँ पर केवल ने किसी बात को किसी कारण या माट की बही के आधार पर ही लिखा है और उसके पक्ष में प्राप्त अन्य सामग्री का उपयोग नहीं किया है, वहाँ उनके उत्सवों को परीक्षा करके ही प्रस्तुत करना उचित होगा। उदाहरण के लिए ‘मीराबाई के पति भोजराज का कुँवर पाटवी होने का उत्सव’ लिया जा सकता है। यह उत्सव देवीदान बढ़वा की कथा से लिया है। अन्य लोगों की सामग्री से इसकी प्रसन्नता सिद्ध हो जाती है। इस विषय में अन्य लोगों की सूचना कथाचित् बीर-विनोदकार को उपलब्ध नहीं थी। अतः बढ़वों की पोथियों के उत्सवों की प्रसन्नतायता को प्रसन्न मानते हुए भी उन्होंने यह उत्सव कर दिया है। जीवन-मूल में इस बात पर विस्तार से विचार किया गया है।

बीर विनोद के पश्चात् :

बीर-विनोद के पश्चात् राजस्थान की विभिन्न रियासतों के अनेक इतिहास निकले जैसे—मीमबी प्रभुलफाहटी (बिजनीर) इत ‘छोहरी राज स्थान’ (सं० १९४६) चारण रामनाथ रतनु (जोधपुर) इत इतिहास राज स्थान (सं० १९४७) मुसी देवीप्रसाद कामस्थ इत जयपुर, उदयपुर, बीकानेर आदि राज्यों के कुछ राजाधों की जीवनीयाँ (सं० १९२० के समय) और बाबू रामनाथराण इत इत ‘राजस्थान रत्नाकर’ (सं० १९६६ १९७०)। प्रस्तुत विषय की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए—

(१) वही कुटनोद ३

(२) वही, कुटनोद ४

(३) पृष्ठ १४२-१४७

- (क) गौरीचंकर हीराचंद भोसले द्वारा 'जयपुर राज्य का इतिहास', दो खिल्द । पहली खिल्द वि० सं० १९८५, द्वितीय सं० १९९१
- (ख) विश्वेश्वरनाथ रेड द्वारा 'मारवाड़ का इतिहास' २ भाग—प्रथम सन् १९३८ द्वितीय सन् १९४०)
- (ग) जगदीशसिंह गहलोत द्वारा 'राजपूताने का इतिहास' (प्रथम भाग सन् १९१७)
- (घ) जगदल सोपानसिंह राठोर मेरठिया द्वारा जयमल गंध-प्रकाश
- (ङ) हर बिलास सारवा द्वारा 'महाराणा सांगा' (सं० १९८१)
- (च) डा० जगदीशसिंह वर्मा द्वारा 'जगदल-जगदल' (सन् १९०२)

इनके प्रतिरिक्त अन्य इतिहास-ग्रंथ भी हैं, जिनसे मीरा के जीवन की अनेक घटनाओं और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश पड़ता है और मीरा के जीवनवृत्त के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है, परन्तु इन समस्त ग्रन्थों का उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है और न अपनी समग्रता में ये हमारे अध्ययन के आधार हैं। इनकी आवश्यक सामग्री का यथासंभव उल्लेख कर दिया गया है।

### हिन्दी-साहित्य के तीन प्राचीनतम इतिहास

हिन्दी-साहित्य का प्राचीनतम इतिहास फाँसीसी विद्वान् मासी व तासी द्वारा 'इस्तावर व न सिटरेत्तूर प्रीतूर प्रीतूरानी' है। इसका पहला संस्करण दो भागों में क्रमशः सन् १८३१ तथा सन् १८४७ में पेरिस से प्रकाशित हुआ था। यह रचना फ्रेंच भाषा में थी। हिन्दी में सबसे पहले हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वान् थे जिनसिंह खेवर। उनका इतिहास 'जिनसिंह सरोज' सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद वर्ष पश्चात् सन् १८८९ में सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा 'डी मोडर्न क्लासिकल सिटरेत्तूर प्राँव हिन्दुस्तान' नाम से हिन्दी साहित्य का एक संक्षिप्त इतिहास अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। यही तीन हिन्दी-साहित्य के प्राचीनतम प्रकाशित इतिहास हैं। रचना-कास पुष्टि से वे तीनों १९वीं सताब्दी के ग्रंथ हैं।

(१) तासी ने अपने इतिहास में 'मीरा या मीराबाई' शीर्षक के अन्तर्गत मीरा के जीवन-वृत्त को संक्षेप में लिखा है।<sup>१</sup> अन्त में उन्होंने दो पदों का अनुबाध भी दिया है। तासी के मीरा सम्बन्धी उल्लेखों का विवेचन करने

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास भूल सेनाक-गार्गी व तासी अनुबाधक—डॉ० लक्ष्मीतागर बापलुय पृष्ठ २१२-२१३

पर उनके आचार निर्माकित ग्रंथ ठहरते हैं—

- (१) नामादास कृत भक्तमाल और उसपर प्रियादास की 'भक्तिरस बागिनी' टीका ।
- (२) टोंड के 'ऐनस्त ग्रंथ राजस्वान' तथा 'ट्रैविस्' ।
- (३) प्रिन्सेप की 'यूज' कृत 'ट्रैविस्' ।
- (४) प्र० ए० बिस्मिल कृत 'मिमीयर्स ऑन द रिजिबल सेन्ट्स ऑन द हिन्दूज' तथा 'एथियाटिक रिमर्कज' ।

तासी ने ऊपर क ग्रंथों के प्रतिरिक्त कोई नई सामग्री नहीं दी । एकाध स्थान पर प्रियादास की टीका के उल्लेख को लम्बिक छोड़-मोड़ कर प्रस्तुत कर दिया है, जैसे—टीका के अनुसार एक बिपरी कुटिल साधु बेव बरकर मीरा के पास संग-संग करने की माँग लेकर गया था और उसका कहना था कि उसे गिरिधर नाम ने यह आज्ञा दी है । तासी के अनुसार 'स्वामी की आज्ञा का निष्कर्ष करके एक भेदिये ने मीरा के पास जाकर संग-संग करने की बात कही ।

(२) प्रिन्सिपल सेंसर ने अपने इतिहास 'प्रिन्सिपल सरोज' में मीरा का उल्लेख तीन स्थानों पर किया है ।<sup>१</sup> स्वयं लेखक का कथन यह है कि 'तुलसीदास कायस्थ कृत भक्तमाल और तारीख चित्तौड़ को मिलाने पर उसे दोनों में अन्तर मिला । अतः उसने दूसरे आचार पर मीरा का जीवन चरित्र लिखा । मीरा-सम्बन्धी उल्लेख को देखते ही यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'सरोज' का आचारभूत ग्रंथ 'तारीख चित्तौड़' टोंड का 'ऐनस्त ऐंड ऐथिक्विटीज ऑन राजस्वान' ही है । यही एक इतिहास है जिसका उल्लेख सरोजकार ने बड़े आदर के साथ भूमिका में सहायक ग्रंथों में किया है । मीरा की रचनाओं के रूप में एक बोझ और एक सबैया दिया हुआ है । सबैया देव का सिद्धा हुआ है । वह कई भक्तमालों में भी उद्धृत है । तासी द्वारा प्रस्तुत मीरा का परिचय प्रिन्सिपल सेंसर की अपेक्षा अधिक विस्तृत और आलोचनात्मक है । उसमें उपयोग भी अधिक सामग्री का हुआ है ।

(३) जार्ज प्रिन्सिपल ने "द मीरान बर्नाक्लर लिटरेचर ऑन हिन्दुस्तान" में मीराबाई का ठीक जगह उल्लेख किया है ।<sup>२</sup> एक घन साहब में आए कवियों की

(१) प्रिन्सिपल सरोज पृष्ठ १० पृष्ठ १७१-७७, ४१२

(२) संख्या २३ पृष्ठ १३ 'भुंभकरण' पृष्ठ १३ संख्या २० पृष्ठ १२

सूची में दूसरे 'संस्करण' के परिचय के साथ भीरतीसरे, स्वयं मीराबाई के परिचय में । मीराबाई के परिचय के लिए प्रयुक्त आधारसूत्र सामग्री इस प्रकार है—

- (१) ऐंग्ल एण्ड ऐंटीक्विटी ऑन राजस्थान टॉड
- (२) 'उदयपुर' तथा 'सेक्ट्स ऑन हिंदूज' बिस्मन
- (३) शिवसिंह-सरोज शिवसिंह सेंगर

यद्यपि सूची में भक्तमास गोसाईं चरित आदि का भी उल्लेख है, परन्तु मीरा के विषय में विवरण प्रस्तुत करने में इनकी सहायता नहीं की गई । कुछ भी हो प्रियर्त्तन चरित इन्हीं की सीमा से बाहर नहीं गए । अतः उनकी सामग्री पर ध्यान से विचार करना अनावश्यक है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि उक्त इतिहास-लेखकों ने मीरा की जीवनी प्रस्तुत करने में टॉड बिस्मन ग्रिसेप और नामादास की रचनाओं का ही प्रयोग किया है । प्रस्तुत कृति में इन लेखकों की कृतियों की सामग्री का सीधे उपयोग किया गया है ।

### अन्य प्रमुख इतिहास

उक्त तीन इतिहासों के बाह्य हिन्दी-साहित्य की बाग का अनेक दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत हुआ । कुछ इतिहास विधेय कालों को लेकर लिखे गए और उनमें स्वभावतः विस्तार अधिक रहे, मगर अधिकोद्य इतिहास संपूर्ण बाग की झोंकी ( आलोचनात्मक और परिणामात्मक ) प्रस्तुत करते रहे । इनमें बड़ी भक्ति-काल का विवेचन हुआ है, मीराबाई का उल्लेख अवश्य आया है । गुजराती केवल मीरा को गुजराती की कवयित्री मानते रहे हैं । अतएव गुजराती साहित्य के इतिहासों में भी मीरा के जीवन-चरित तथा काव्य पर प्रकाश डाला गया है । इन समस्त इतिहासों का उल्लेख यहाँ संभव नहीं है । मुख्य इतिहास जिनके द्वारा मीरा के जीवन के अध्ययन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योग मिलता है, कालक्रम से इस प्रकार हैं—

- (१) माइलस्टोन इन गुजराती लिटरेचर—पै० एम० मन्वेरी वगैरह  
१९१४
- (२) मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु ( ४ भाग ) प्रथम तीन भाग सं०  
१९७ में प्रकाशित चौथा सं० १९९१
- (३) हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रथम

संस्करण सं० १९८२ संशोधित संस्करण सं० १९९७

- (४) हिन्दी भाषा और साहित्य—डॉ० इयाममुन्दर दास (सं० १९-८३) सं० २००१ में 'हिन्दी साहित्य' भाष का परिवर्तित तथा परिमार्जित संस्करण
- (५) हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—पं० अयाभ्यासिंह उपाध्याय ( प्रकाशन-काल ग्रंथ में नहीं दिया है )
- (६) हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ० रमास ( स० १९८८ )
- (७) मुजरात एंव इट्स सिटरेवर—बन्हीपालाम एम० मुर्षी ( प्रथम संस्करण १९३२ ई० )
- (८) हिन्दी-साहित्य का आतापनात्मक इतिहास—(सं० ७५-१७५०) डॉ० रामकृष्ण बर्मा (प्रथम संस्करण सन् १९३८ तृतीय परिवर्तित तथा संशोधित संस्करण सन् १९५४)
- (९) हिन्दी-साहित्य की भूमिका—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (सन् १९४०)
- (१०) राजस्थान का पिण्ड साहित्य—पं० सीतरीलाल बनारिया ( १९३२ ई० संशोधित संस्करण सन् १९५८ )
- (११) कवि-चरित—क० का० दास्वी ( सन् १९३२, दूसरा संस्करण )
- (१२) हिन्दी-साहित्य—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (सन् १९३२)

### इतिहासेतर ग्रन्थ

इसके अतिरिक्त मीराबाई के विषय में जीवनी और काव्य को लेकर हिन्दी मुजराती मराठी और बंगला में अनेक परिचयात्मक तथा प्रशोचनक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से अधिकांश की संख्या भी कम नहीं है। मीरा के पदों के संग्रहों की सूचिकाओं के रूप में भी बहुत-सी सामग्री बिखरी पड़ी है। इन सब का उल्लेख यहाँ संभव नहीं है। व्याख्यान इनका उल्लेख कर दिया गया है।

### शिक्षासूचक :

मीरा के सम्बन्ध में कोई प्राचीन शिक्षासूचक नहीं मिलता। मीरा की जीवनी के निर्धारण में जिन शिक्षासूचकों की चर्चा की गई है, उनका विचार कर लेना आवश्यक है। ये शिक्षासूचक हैं—

(१) आमेर के जगदीशजी के मन्दिर का शिलालेख :

मरु-नामावसी के संपादक श्री रामाकृष्णदास के अनुसार आमेर<sup>१</sup> में स्थित जगत शिरोमणि जी के मन्दिर में गड्ढ की संगमरमर की मूर्ति की चौकी पर निम्नलिखित लेख प्रकट हैं —

“सं० १६११ फागु सुदी सातों संव का सुनवार बोहीय ईसर की से”

“सं० १७१९ मि० सावन सुदी ८—दास रो भेटा—हुवे नैसु”<sup>२</sup>

इन लेखों के आधार पर उक्त संपादक ने अनुमान लगाया है कि संवत् १६११ में चितौड़ में मीराबाई के इष्टदेव की मूर्ति स्थापित की गई और १७१९ में वही मूर्ति आमेर में प्रतिष्ठित हुई। बाद के कई मान्य विद्वानों ने इन उल्लेखों के आधार पर मीरा के जीवन-काल और उनके आराध्य परिवार की मूर्ति के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक निष्कर्ष निकाले हैं।<sup>३</sup>

वस्तुतः गड्ढ की मूर्ति की चौकी पर निम्नांकित लेख जुदा हुआ है—

“संवत् १५७७ फागुन सुदी सप्तमी वसंत का सुनवार बोहीय

ईसर कीसे”

रामाकृष्णदासजी ने गलती से १८ को १६ तथा ७७ को ११ पढ़ लिया और आने चलकर विद्वानों की एक बड़ी संख्या १८७७ को १६११ मानकर अनेक कात्थनिक मामलातएँ गड़ती रही।

गड्ढजी की इस छतरी के बाहरी भाग में ऊपर की ओर कुछ घसर चुके हुए हैं जो अब अस्पष्ट और अवाक्य हो गए हैं। छतरी के सामने नीचे की ओर निम्नांकित दो पंक्तियाँ और जुड़ी हैं—

(न) चरन सरन बाया राम गोपाल की काम

(ल) चरन सरन तुसरी बासी परी

इनके अतिरिक्त मन्दिर के भीतर कई “चरन-सरन” जुड़ी हुई हैं। इनमें विभिन्न पुजारियों के नामादि जुड़े हैं। सबसे प्राचीन “चरन सरन” संवत् १८२० की है।

“चरन सरन” के उल्लेखों में मीरा के विषय में सूचना मिलने का

(१) महावीरसिंह पहलोट ने “मीरा-जीवनी और काव्य” में “आमेर में इस शिलालेख का वर्तमान होना निश्चा है जो वस्तुतः सही नहीं है।

(२) डॉ० श्रीकृष्णदास—मीराबाई पृष्ठ ५० से उद्धृत

विचार विमर्श आग्रवसी पाण्डेय, पृष्ठ ७४

(३) मीराबाई पृष्ठ ३३

कोई प्रश्न ही नहीं है। यहाँ की मूर्ति के सामने पर लुप्त हुआ मूल भी इस दृष्टि से अनुमानित है। लक्ष के घाट भू है एन सीपी पंक्ति में भी नहीं है जब कि मन्दिर की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। दोनों का देखकर कोई नहीं कह सकता कि इसी सुन्दर मूर्ति बनानेवाले कलाकारों और उभय निर्माण करनेवाले राजा का क्यामक साथ गुप्त होगा। दूसरी बात यह है कि मन्दिर चौकी के सामने बाग बग्न पर नहीं है (जैसा कि प्रायः चौकियों में होता है) चौकी के पड़े लक्ष पर है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति की स्थापना के पश्चात् किसी अनुपलब्ध कलाबोध से हीन व्यक्ति ने यह कारीगरों दिखाई है। अतः इस लेख की अपादयता शुभ्य है।

## (२) मन्दिर की मीरा की मूर्ति पर सुदा लेख -

मन्दिर में अनुमानित जी के मन्दिर में मीरा की मूर्ति है। इस पर मीरा का जन्म-मृत्यु १२६१ विवाह-मृत्यु १२७३ और निर्माण-मृत्यु १९०७ सुदा हुआ है। हा सकता है कि मन्दिर में इन संवत्सों को इसलिए महत्त्व दिया जाने लगे क्योंकि ये मीरा के पुत्र-मृत्यु संवत्स हैं। इनसे धीरे-धीरे स्थानीय जन धर्मियों को भी बन्धन मिल सकता है।

मीराबाबा के मयमीराम रामकुमार बागवतीन हान् ही में अब मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था अभी उन्होंने यह मूर्ति बनवाई थी। रैजरी से लेखक को ज्ञात हुआ कि इन मूर्तियों पर अब जन्म-मृत्यु की तिथियाँ और सब सुदाने का प्रश्न आया तो इन तिथियों को जानने की अतिरिक्त समस्या प्रस्तुत हो गई और उन्हें जानने का कोई विश्वसनीय साधन नहीं मिला।

(३) कुछ लोगों का अनुमान है कि बदनोर में मीरा का कोई मिला दण्ड है। उदयपुर व बकिरबा मोहनमिह जी को इस बात को सूचना मिली थी। बदनोर में बलुन मीरा से सम्बन्ध रखनेवाला कोई मिलाकेत नहीं है।

## दान-पत्र :

गवावर नामक पुणेतिन को मीरा द्वारा दान-पत्र देने की भी कथा की जाती है। गहलोत जी का कथन है कि उन्होंने दान-पत्र का उल्लेख नहीं किया था। अभी तक कोई दान-पत्र प्रमाण में नहीं आया। मीरा ने जिस परिस्थिति में किसी छोड़ा था उसमें उनके द्वारा किसी को दान-पत्र देने की सम्भावना नहीं है।



### किशनगढ़ संग्रह का चित्र

किशनगढ़ के चित्र-संग्रह में शूरदास भीरा कबीर, हितहरिबंध बसन्तमाध्याय प्राय के चित्र भी थे जिन्हें डॉ० बासुदेववरण भद्रमान प्रथम बार प्रकाश में लाए। इन चित्रों में आर्य के व्यवहार का भीरा और साध में अन्य भक्तों का एक सामूहिक चित्र भी है। डॉ० भद्रमान से लेखक को ज्ञात हुआ कि कदाचित् ये चित्र प्राचीनतर चित्रों की प्रतिकृतियाँ हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध चित्र-कला विद्यारण्य श्री एटिक डिक्मिन्सन का किशनगढ़ चित्र-संग्रह के विषय में निम्नांकित बक्तव्य उल्लेखनीय है—

‘चित्रों के बस्ते बराबर सामने धाटे-बाटे थे—यहूँ की ‘सबीहा’ का प्रतिकृति की खोजी जो संख्या में सबसे अधिक थी। इसमें प्रसिद्ध संत, बरबेख नामक राजा-महाराजा नवाब-बादशाह और भायिकाओं के चित्र थे। भिन्न समयों पर किशनगढ़ की चित्रशाला में ये चित्र भिजे गए थे और काफी विश्वसनीय थे किन्तु ये कृतियाँ राजपूत काशीन चित्रकला की ‘उजस्वानी’ सबीहों की मीति ही थी।’

ऊपर के उद्धरण से इतना तो स्पष्ट है कि किशनगढ़ संग्रह के संत चरबेखों के चित्र ( जिनमें भीरा का चित्र भी था जाता है ) सबीहा भर्त्ति प्रतिकृति हैं और विश्वसनीय हैं।

भीरा का उक्त चित्र लगभग २०० वर्ष प्राचीन है। अगर यह चित्र प्रतिकृति है तो यह मानना पड़ेगा कि इसका मूल्य २०० वर्ष प्राचीन सामग्री से अधिक है। इस संग्रह के राजा और सम्राज्यों के चित्रों में जयपुर, जोधपुर और जयपुर का विशेष स्थान था। इस आधार पर डिक्मिन्सन का कहना है कि सम्भवतः इनमें से कुछ चित्र मेरोपहार के रूप में किशनगढ़ आए होंगे। भीरा जोधपुर के राठोड़ों की मेड़तिया शाखा की थी और बिछीड़ के राजाओं के उस राजपराने में उनका विवाह हुआ था जिसने जयपुर को बसामा और अपनी राजधानी बनाया था। अतः जोधपुर और जयपुर से उपहार स्वरूप प्रेषित चित्रों में भीरा के चित्र के सम्मिश्रित रहने की सम्भावना अन्य भक्तों और संतों की सबीहों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इस स्थिति में प्रस्तुत चित्र की विश्वसनीयता और बढ़ जाती है।

भीरा के इस चित्र से निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) पोद्दार अभिलेखन ग्रंथ—‘किशनगढ़ चित्र-दीप्ति में बनी-रनी राजा’

(१) मीरा सगुण भाव की उपासिका थीं। वे पूजा-अर्चन करतीं तिसक सवारीं और मासा फेरती थीं।

(२) वे पर्व नहीं करती थीं उसकी विरोधी भी थीं। भारती के समय पुरुषों की उपस्थिति और साथ ही पूजा करने वाली स्त्रियों का मुँह खोलकर निस्संकोच भाव से उपस्थित रहना पर्व के सम्बन्ध में उनकी और उनके साथ की स्त्रियों की सामान्य मान्यता की ओर संकेत करता है।

(३) वे साक्षात्स पढ़ती थीं। रावती ठाठ उन्होंने त्याग दिया था।

(४) उनमें साम्प्रदायिकता नहीं थी। भारती के समय बैठे भक्तों के तिसकों की विभिन्नता इस बात की ओर संकेत करती है।

### प्रशस्ति-पत्र

मीरा का महत्व राजकीय स्थिति के बल पर नहीं प्रकट के कारण था। न उन्होंने दान-यज्ञ दिए थे न महत्त्व बनवाए थे। घर के लोग भी उनसे दूट थे। अतः उनकी कीर्ति को घिसाछेड़ों या ताज-मनों में सुरक्षित करने की संभावना कम ही है।

वि० सं० १६०५ वैशाख सुक्ल १२ को जगत शिरोमणि के मंदिर की 'बड़ी पील बरबाजे के बाहर' प्रतिष्ठा हुई। इस मंदिर के प्रशस्ति-पत्र में मीरा का उल्लेख है। पत्र का मीरा-सम्बन्धी अंश इस प्रकार है—

पूर्व श्री चित्तकूटे क्षितिभित्तिगिरीवर्धण । विंबो कोखीमृन्मेदपाट  
द्विपद्महृत्पद्मपुष्पमूलभूषो ॥ मीरादासीधिरस्वस्तबनुपचयस्तिष्ठपुष्ट्यम्भरीत्मा  
धीर्व स्वस्वापितादाबुद्धमपुरन्दरे मंदिरे स्मरुंमृये ॥१७॥

कास की दृष्टि से यह सामग्री नवीन है। इससे पुरानी प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त होने के कारण इसका महत्व अधिक नहीं है। फिर इससे मीरा के जीवन पर कोई महत्वपूर्ण प्रकाश भी नहीं पड़ता।

### अन्तःसाक्ष्य

मीरा का प्रत्येक पद उनकी किसी न किसी भावना को अभिव्यक्त करता है और इसलिए प्रत्येक पद मीरा के अन्तर्जगत का परिचय देकर उनके जीवन-वृत्त की सामग्री प्रस्तुत करता है। किन्तु, कुछ पद ऐसे भी हैं जिनमें मीरा के जीवन से सम्बंधित किसी प्रमुख जटला पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ पर उनके पदों पर आधारित ऐसी ही प्रमुख बातों का उल्लेख किया जा रहा है। ये इस प्रकार हैं—

- वैद्य जय सुहाग मिथ्या री सजाणी होंबा ह्यो मिट नासी<sup>१</sup>  
मिरवर पास्यां सती न होस्यां मन मोह्यो जमनाभी<sup>२</sup>
- विप-मान रानिं भू भिय बीनी हम जानी<sup>३</sup>  
विपरो प्यालो राणा मेझ्या पीछ मयम हूया<sup>४</sup>
- कस्तुराग काजानाय पिटार्या मेझ्या साजिगराम पिछाछीरी<sup>५</sup>
- राजा मूरबजरु सिवासन राजा पंडित फिरता हारा  
मीरा के प्रभु मिरवर नागर, राणा भगत राजार<sup>६</sup>  
जेठ-बहु को पातो नाही राणाबी  
ह्यो सेवक बे स्वामी<sup>७</sup>
- सास भोग कइयां मीरां मई बावरी बाधू कइयां कुसनासां री<sup>८</sup>
- राजा-राज्य का परित्याग तऊ भूया अवर नरेख<sup>९</sup>  
तज्यो बेसत बेस हू तवि  
तज्यो राजा राज<sup>१०</sup>
- वैराग्य माया छाइया बंवां छाइया जाइया सगा सुयां<sup>११</sup>  
मूख कुइरां प्याठी<sup>१२</sup>
- आराध्य म्हारोरी मिरवर बोपाल हुतरा न कूया<sup>१३</sup>
- साधना भयति रसीली बाकी<sup>१४</sup>  
प्रेम भयति री पीड़ा म्हारो श्रीर न बाछा रीत<sup>१५</sup>  
धौसुबा जम पीच प्रम बेसि कूयां<sup>१६</sup>
- सेवा बरखामूत री नेम धकारे नित बरखन बास्या  
हरि मधिर मा निरत करवां भूबरया जमकारयो<sup>१७</sup>
- साधु-संगत साबा संग बैठ-बैठ लोक साज ओई<sup>१८</sup>

( १ ) वि. अ० पद ३

( २ ) नागरीबास पद १ ( ३ ) वही, पद २

( ४ ) वि. अ० पद १०

( ५ ) डाकोर, पद ११ ( ६ ) वही, पद ११

( ७ ) नागरीबास पद १

( ८ ) डाकोर, पद ४७ ( ९ ) डाकोर, पद ३७

( १० ) नागरीबास, पद ३

( ११ ) डाकोर, पद १ ( १२ ) वही पद ४३

( १३ ) वही, पद १

( १४ ) काशी पद ४३ ( १५ ) डाकोर पद ६

( १६ ) वही, पद १

( १७ ) काशी पद १०१ ( १८ ) वि० अ० ११

पिछले पृष्ठों में कवयित्री मीराबाई के 'जीवन-मृत' के प्रथम भाग की व्याख्या की थी। इस भाग की सीमा तक प्रामाणिक या विश्वसनीय मानी जा सकती है उसी के आधार पर मीराबाई के जीवन की रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया जा रहा है।

### जन्म-तिथि :

मीराबाई की जन्म-तिथि के संबंध में कोई मीरा-कालीन प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कवयित्री की कृतियों में भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, जिसके आधार पर उनकी जन्म-तिथि निश्चय के साथ निर्धारित की जा सके।

आचार्य समिधाप्रसाद मुकुन्त द्वारा प्रकाशित 'बाकोर की प्रति' में (१७) व संख्या के पद में प्रथम पंक्ति है 'रास पूर्ण बलमिया री रासका अवतार'। इस पंक्ति के अन्तर्गत के आधार पर मुकुन्तजी ने "रास पूर्ण" को मीरा की जन्म-तिथि माना है। वर्ष का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि इस विशेष दिन ही मीरा के अवतरित होने में कुछ रहस्य है 'कृष्ण का जन्म हुआ था भासों की सीधेरी रास की घटमी को रास ने अवतार लिया था बीस मास के सुकल पक्ष में नवमी को, अर्थात् यदि पृथ्वी पर आधा प्रकाश था तो आधा अंधकार भी था—ये दोनों ईश्वरीय अवतार थे। किन्तु इन अवतारों को छोड़कर ईश्वी विभूतियों के अवतरित होने के साथ उनसे भिन्न वेबे जात हैं। कुछ पृथ्वी पर अपना समस्त प्रकाश-बुलबुल कर आये थे बीस मास पूर्णिमा को कबीर ज्येष्ठ की पूर्णिमा को और मीराबाई रास पूर्णिमा को।"। उही पद के एक अन्य सेख में कुमारी जमिता

(१) मीरा-स्मृति पद्य—मीरा पदावली पृष्ठ १६

(२) जनभाट्टी—वर्ष २ पंक ४ (सं० २०११) बीवीय हिन्दी-परिचय "मृति पद्य-मीरा"—लेख-पृष्ठ २

भंडारी पं० ए० ने दूसरे शब्दों में सुकुलजी के इसी मत को पुष्ट किया है ।<sup>१</sup>

मीरा के इस विलेप बिज बन्म लेने के रहस्य का जो उद्घाटन सुकुलजी ने किया है उसमें उनकी भक्ति-भवना, सहज भक्ता और धर्मोक्ति के प्रति सर्वांगीण विश्वास की अभिव्यक्ति है, कार्य कारण का कोई बुद्धिगम्य संबन्ध उसमें नहीं है । संसार के धन्य सर्वमान्य महान् पुरुषों और धर्मतारों की जन्म-तिथियों पर दृष्टिपात करने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महापुरुष पूर्णिमा को ही ( जब सब धोर प्रकाश होता है ) जन्म नहीं लेते<sup>२</sup> और समस्त धर्मतारों के जन्म "भाभी जेहेरी और भाभी जेहेरी" रातों वाली तिथियों को ही नहीं हुए ।

अनेक प्रमाणों से यह भी स्पष्ट है कि सत्त पक्ष परावर्ती में बाद में जोड़ा हुआ है । अतएव उसका साध्य विश्वसनीय नहीं माना जा सकता ।<sup>३</sup>

एक दूसरी परंपरा मीरा का जन्म संवत् १५७३ वि० को मानती है । मिश्र बंधुओं ने अपने "बिनोद" में इसका उल्लेख किया है : एनीवेसेन्ट मी इसी मत की है ।<sup>४</sup> भावे जलकर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी मीरा के जन्म का वर्ष यही माना है ।<sup>५</sup> सुकुलजी का मत 'मिधबन्धु-बिनोद' के उल्लेख पर ही आधारित है । इस सूचना के मूल आधार के विषय में बिनोदकार मौन हैं और सुकुलजी भी ।

इस मत को सही मानने पर मीरा की विवाह-तिथि ( १२ वर्ष की आयु पर इनका-विवाह हुआ था ) संवत् १५८५ वि० ठहरती है और यह एक सिद्ध ऐतिहासिक सत्य है कि मीरा के पति भोजराज अपने पिता की मृत्यु के पूर्व ( अर्थात् मात्र सुदी ९ वि० १५८४ के पूर्व ) ही इहलोक-नीता समाप्त कर चुके थे । इसी प्रकार अन्य ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर

(१) बही, "धन्हे न भुने" लेख—पृष्ठ १४

(२) सुलदीशत का जन्म भारी सुदी ११ को हुआ था—सुलदीशत डॉ० मास्ताप्रसाद गुप्त पृष्ठ १४०, हिताद्विर्बन्ध का जन्म ईशाख सुल ११ को सूर्योदय-काल में हुआ था—राजाधरप्रसाद-संग्रहाय सिद्धांत और साहित्य, डॉ० विजयदेव स्मृतक, पृष्ठ ६३

(३) विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—सीतरा अध्याय (रचनाएँ)

(४) मिधबन्धु-बिनोद भाग १ पृष्ठ २२५

(५) मीराबाई—भा० वि० मेहता से उद्धृत—पृष्ठ ३

(६) हिन्दी साहित्य का इतिहास,—रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८४

परीक्षा करने पर यो एनीबेसेन्ट विनीयकार और शुक्लजी के उक्त मत का निरसन हो जाता है।

गो० ही० श्रीमन् मू० बेबीप्रसाद हरविभास सारखा प्रादि राजस्थानी इतिहास के मान्य विद्वानों ने स्वार्थों के इस उत्प्रेष को एक मत से स्वीकार किया है कि मोजराज का विवाह सं० १५७३ में हुआ था।<sup>१</sup> मेड़तियों का इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि बीरमदेव न वि० सं० १५७३ में अपने कनिष्ठ भ्राता राजसिंह जी की पुत्री भीरीबाई का विवाह किया।<sup>२</sup> उक्त विद्वानों ने इस विवाह-संबन्ध को ही बन्ध-संबन्ध मान लिया है।

विद्वानों का एक वर्ग भीरी को राजा कुंमा की पत्नी मानता था। इस मत के विद्वानों ने भीरी का बन्ध-काम भी इस बात को ध्यान में रखकर निर्धारित किया है। वस्तुतः इस मान्यता की कोई निश्चित परम्परा नहीं है। परिस्थितियों के आधार पर इसका अनुमान किया गया है। इस वर्ग के विद्वानों के द्वारा दिए गए संवत्तों में वैभिन्न्य इस बात को सुरक्षित स्पष्ट कर देता है।<sup>३</sup>

इसी प्रबन्ध में 'भीरीबाई के पति' शीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि भीरी राजा सांगा के पुत्र मोजराज की पत्नी थीं, राजा कुंमा की

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास शोभा—पृष्ठ १६४, भीरीबाई का जीवन चरित्र, मू० बेबीप्रसाद, पृष्ठ ६, कुटनोट ३ महारमछा सांपद, हर विभास सारखा, पृष्ठ ८८, कुटनोट

(२) बन्धमल-बन्ध-प्रकाश भा० योपास्तसिंह राठोड़ पृ० ६।

(३) मयनलाल मरोचमवास पटेल महारज मण्डल : संवत् १४८०  
केसवजी विचित्राथ सती मण्डल संवत् १३८० (क्याचित् मूल से १४८० के स्थान पर १३८० छप गया है।)

गोबर्धनराम त्रिपाठी : संवत् १४६० विक्रमी

महाराज कवि : संवत् १४७३ विक्रमी

इन्द्राराम सूर्यराम बेसाई, बृहत् काव्य बोधन भाग ९ संवत् १४२६ विक्रमी  
जयसुखराय ज्योतिषी-सागरभाभा : संवत् १४६०

महाराष्ट्र ज्ञान-कोष (म) ११ : संवत् १४६४

पियर्सन, बर्नार्डपुनर सिट्टेवर डॉब हिन्दुस्तान : (१४९० ई०) १४७७ विक्रमी

शिवासिंह, शिवसिंह सरोज १४७३ विक्रमी

काठिकप्रसाद ज्ञानी, भीरीबाई का जीवन-चरित्र : १४७३ विक्रमी

इत्यादि :

नहीं। यद्यप्य उन्हें कुंभा-पत्नी मानकर निर्धारित किए गए संवत्‌ों का मूसाधार ही प्रशास्तिक धीर अधिष्ठ है। मीरा के जन्म की ये तिथियाँ किसी प्रकार मान्य नहीं कही जा सकती।

माटों द्वारा उत्पन्न :

(क) जोधपुर के इतिहासकार श्रीजगदीशसिंहजी महलोत् को राठोड़ों के रामीमंगा माटों (ब्रह्ममटों) की हस्तलिखित बहियों से पता चला कि मीराबाई राठोड़ का जन्म वि० सं० १२५५ भावण सुदी १ शुक्लवार को हुआ था। वहीं किसी ग्रन्थ बही से उन्हें ज्ञात हुआ कि मीरा का जन्म वि० सं० १५९१ भावण सुदी १ शुक्लवार को हुआ था।<sup>१</sup>

(ख) ग्वाभियर स्टेट के राज-म्योतिषी पंडित बभारीलाल के अनुसार "मीराबाई का जन्म वि० सं० १५५७ वैशाख शुक्ल १ प्रातःकाल हुआ था"।<sup>२</sup> पुरोहितजी के संग्रह से प्राप्त इस सूचना के विषय में सूर्य नारायण जतुबंदी से भी लेखक ने चर्चा की। उन्होंने बताया कि ग्वाभियर ही नहीं एक अन्य स्रोत से भी इसकी पुष्टि हुई है। जतुबंदीजी उस समय अत्यन्त कम उम्र के और वह बीमारी उनका जीवन लेकर ही टली। अतः विशेष विस्तृत विवरण उनसे नहीं मिल सका।

(ग) जलनिवावास, जयपुर (मारवाड़) निवासी भिड़िया बीहानों के कुल-कुलमों तथा घोड़ेराव के उनके भाट के अनुसार मीरा का जन्म वैशाख सुदी १ को सं० १५५५ में हुआ था।<sup>३</sup>

उक्त उल्लेखों से निम्नलिखित ४ तिथियाँ मिलती हैं—

- (१) भावण सुदी १ शुक्लवार संवत् १५५५
- (२) भावण सुदी १ शुक्लवार संवत् १५९१
- (३) वैशाख शुक्ल १ संवत् १५५७
- (४) वैशाख शुक्ल १ संवत् १५५५

- (१) भारत इतिहास-संशोधक मण्डल, स्वर्ण ग्रंथमाला ज्योतिष एवं कुलबीरसिंह महलोत् 'मीरा की जन्मतिथि-एक निर्णय'—पृष्ठ १२
- (२) इतिहासकार पुरोहित के नाम धीरेश्वर शिव के पत्र के आधार पर (जयपुर स्थित उनके वैयक्तिक संग्रह से)
- (३) मीरा स्मृति-प्रथम—मीरा के जीवन-कृत का स्थानीय सम्प्रदाय विद्वान्‌र द्वारा दीखवाया पृष्ठ ५०

(१) घोर (४) तिथियों में दिन नहीं दिया गया। अथ गणना छाप हमकी सुझता-मसुझता पर बिचार नहीं दिया जा सकता। इसमें भी गई 'बैसाख मुस्म तीज' तिथि का मेड़ता में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यस्तुत यह तिथि मीरा की जन्म-तिथि नहीं है। मेड़तिया राठोड़ों के आदि पुरुष, मीरा के पितामह दूरामो द्वारा मेड़ता बसावे और राठोड़ों की मेड़तिया झाका का धीपण्ड बनने की तिथि है।<sup>१</sup> केवल इसीलिए मेड़तियों घोर उनके चारण-भाटों के लिए यह तिथि महत्त्वपूर्ण है। पुरुषोत्तमशास पुरोहित ने इसीलिए अपना 'मीराबाई' नाटक 'मीरा के ठाकुर जयमल के सहायक, मेड़तियों के इच्छेदेव एवं मेड़तालमर ने सामदेव श्री जगुर्मुखाजी महाराज के चरणारविन्द में बैसाख दुक्क घणाय तृतीया ही की मक्तिपूर्वक समर्पित किया है।

इस दिन आसुदेवता के मन्दिर में रात भर जागरण घोर कीर्तन होता है। सामान्यतः जगुर्मुखाजी की स्तुति के मीरा घोर मीरा के पद गाए जाते हैं। कभी-कभी 'जायण-मण्डली' जैसी सम्पाद 'मीराबाई' या जयमल-संलग्नी नाटक भी खेलती हैं। मेड़ता में यह दिन विशेष रूप से श्री जगुर्मुखाजी के मन्दिर में ही मनाया जाता है। वहाँ इस दिन के महत्त्व घोर उत्सव को देखकर कुछ लोगों ने उसके मूल कारण को खोजने घोर जानने का चष्ट किए बिना ही इसे मीराबाई की जन्म-तिथि के रूप में प्रचारित करने का प्रयास किया और कुछ की बात यह हुई कि राजस्थान के हरिनारायण पुरोहित तथा सूर्य नारायण चतुर्वेदी जैसे मीरा-साहित्य के विद्वानों ने उसे बिना आम-जन के स्वीकार भी कर लिया। नए मेड़ता ने आधिकांशीय इतिहास के उपरिष्ठ पृष्ठ ही नहीं मेड़ता में इस दिन को असम्भवपूर्वक मनाने वाले प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता भी इस बात को जानते हैं कि यह दिन मीरा का जन्म-दिवस नहीं है, नए मेड़ता का स्थापना-दिवस है। इसीलिए मेड़ता स्थित जगुर्मुखाजी के मन्दिर में हान ही में प्रतिष्ठित मीरा की मूर्ति के ऊपर उनके जग्य संवत् के साथ इस तिथि का उल्लेख नहीं करवाया गया।

भाबरा सुदी १ शुक्रवार संवत् १९१२—यह तिथि गणना करने पर समुद्र ठहरती है। संवत् १९१२ विजयीय की भाबरा सुदी १ के दिन अनिवार या, शुक्रवार नहीं। शुक्रवार को सादेतीस बटक या १२ बजकर १५ मिनट तक

(१) सं० १९१६ की बैसाख शुक्ल तृतीया को मेड़ता बसाया गया था—



अभावस्या पी ।<sup>१</sup>

अतः आशय सुधी १ शुक्रवार संवत् १५५५ को मीरा की जन्म-तिथि किसी प्रकार नहीं मानी जा सकती ।

आशय सुधी १ शुक्रवार संवत् १५५१—गणना करने पर कुछ छूटती है । संवत् १५५१ में आशय के शुक्ल पक्ष में १ तिथि गुरुवार को ४८ घटक अर्थात् संवत् के ७ १० बजे से लेकर शुक्रवार को ४२॥ घटक अर्थात् संवत् के ३ बजे तक थी । अतः यह शुक्रवार को ही मानी गई होगी ।<sup>१</sup>

मीरा से संबंधित उत्कामीन ऐतिहासिक बटनामों पर विचार करने पर भी संवत् १५५१ में मीरा का जन्म मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

(१) मीरा के पिता रत्नसिंह का जन्म संवत् १५३८ के पूर्व नहीं हुआ था । अनुमान यह है कि वे संवत् १५४० ४१ के आसपास जन्मे थे ।<sup>१</sup>

रत्नसिंह के बड़े भाई और मेड़ता की गद्दी के मुखराज बीरमदेव का विवाह १८ वर्ष की आयु में संवत् १५५३ में हुआ था । रत्नसिंह आयुक्रम से अपने भाइयों में चौथे थे । यदि उनकी विवाह भी लगभग १८ वर्ष की आयु में हुआ हो तो वह संवत् १५३८ ३९ में पड़ता है । इसे अधिक-से-अधिक १-२ वर्ष और पीछे हटाया जा सकता है । यह बात भी प्रसिद्ध है कि मीरा का जन्म काछी पूजा-याठ और मनीसियों के पश्चात् हुआ था । अतएव उनकी जन्म संवत् १५५५ या १५५७ में मानना तर्क-संगत नहीं कहा जा सकता उसकी सम्भावना संवत् १५५१ में ही हो सकती है ।

(२) मीरा का विवाह निम्नित रूप में संवत् १५७३ वि० में हुआ था और यह प्रसिद्ध है कि विवाह के समय मीरा की आयु १९ वर्ष की थी ।

(३) याने गृह सिद्ध किया गया है कि भोजराज का जन्म सं० १५३४

(१) एन इन्डियन एन्थ्रोपॉलॉजिस्ट ३, सन् १९२९, पृष्ठ० के० निम्न, पृष्ठ सं० १५३३ का

(२) वही सं० १५३१ का

कॉमिशन द्वारा तैयार किए 'डेनुस' के आधार पर बलुना करम पर भी यही परिणाम आते हैं ।

(३) रत्नसिंह के सबसे बड़े भाई बीरमदेव का जन्म सं० १५३४ में हुआ था और रत्नसिंह आयु-क्रम में चौथे थे ।

(४) जयमल-बीर-प्रकाश पृष्ठ ६८

११ या उसके पश्चात् हुआ था। गर-कथा की भाषा में शस्त्र धारण रहता है। अथर्व सं० ११६१ को मीरा की जन्म-तिथि मानना अधिक ठीक-संगत है।

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री के विस्लेषण तिथि-गणना तथा ऐतिहासिक घटनाओं के साक्ष्य के आधार पर मीरा की जन्म-तिथि माघ शुक्ल १ दशहरा संवत् ११६१ निर्धारित होती है।

**मीरा का जन्मस्थान और प्रारंभिक निवास-स्थल :**

बोसेराव पांडे के मेड़तियों के भाट पाबूदानसिंहजी तथा स्वामीय जनश्रुति के अनुसार मीरा का जन्म कुड़की नामक ग्राम में हुआ था। दूदाजी ने मीरा के पिता रत्नसिंह को बच के लिए १२ गांव दिए थे। कुड़की उनका केंद्र था। वहाँ पहाड़ी पर एक छोटा-सा किला है। कहा जाता है कि उसी किले में मीरा बच्यी थीं।

**मास्कोट सम्बन्धी ग्रंथ**

मेड़ता के मासदेव कुर्ग के द्वार-रक्षक ने (कुर्ग के द्वार पर एक कोठरी में रखेबाक उस व्यक्ति से यहाँ आकर है, जिसकी निपुणता वहाँ है द्वार-रक्षक का प्रत्यक्ष उस दूरे हुए में नहीं है) सन् १८१४ में लेखक को बताया कि मीरा उसी कुर्ग में पैदा हुई थीं और वहाँ एक मकान था जो नष्ट भ्रष्ट हो गया है। उसके अनुसार "मीरा की माताजी की मृत्यु बहुत बचपन में ही हो गई थी इसलिए उन्हें उनकी माँ के पास कुड़की में गए।" ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात संभव है, क्योंकि मासदेव ने मासदेव का निर्माण मेड़ता-विषय के पश्चात् संवत् १९१४-१५ में किया था। उस समय मीरा इस लोक में नहीं थी।

मीरा के पिता रत्नसिंह के अपने बड़े भाई बीरमदेव के साथ जनक लड़ाइयों में जाने का साक्ष्य उपलब्ध है। रत्नसिंह के पिता (दूदाजी) तथा बड़े

(१) मीरा-स्मृति-ग्रंथ—मीरा के जीवन का स्थानीय साक्ष्य विद्यालय द्वारा डीकाना पृष्ठ ३२

(२) यह स्पष्टीकरण इसलिए आवश्यक है कि कुछ मीरा-जीवन-चरित्र के प्रसिद्ध लेखकों तथा लेखिकाओं ने इसका व्यापक जनश्रुति के रूप में उल्लेख किया है।

(३) मारवाड़ का इतिहास देव, पृष्ठ १४३

भाई (बीरमदेव) का परिवार मेड़ता में ही था और मेड़ता कुड़की से केवल १८ मील दूर है। यद्यपि यह स्वामाधिक ही है कि मीराँ प्रायः मेड़ता जाकर रहती होगी। अगर उनकी माँ के उनके जीवन में विरगल होने की अनुमति की सत्य माना जाय तो इसकी संभावना और बड़ जाती है। मंदिर के पीछे प्राचीन महल है, जहाँ आज प्राइमरी स्कूल है। वहीं बूवा का परिवार रहता था विधायक स्त्रियाँ। महल का सीधा संबंध मंदिर से था जिससे राज-परिवार की स्त्रियाँ राजास से सीधी मंदिर में आ-जा सकती थी। कहा जाता है कि मीराँ भी वहीं रहती थी।

मुख्य मंदिर के सामनेवाले द्वार के ऊपर तीन कमरे से बने हैं। मेड़ता में यह बात प्रसिद्ध है कि जहाँ बैठकर मीराँ कीर्तन किया करती थीं। बैसाख सुषी १ को जहाँ अब भी विशेष कीर्तन होता है और मीराँ के भजन गाए जाते हैं। डीठबाना के मंगमीराम रामकुमार बागडगी ने इस मंदिर का बीरोंद्वार कर उसमें द्वार के पास ही मीराँ की मूर्ति स्थापित करवा दी है।

## मीराँ का पितृ-कुल

मारवाड़ के राठोड़ और उनकी मेड़तिया शाखा :

मीराँ मेड़तिया राठोड़ बंध की थीं। ये मेड़तिया राठोड़ राजपूतों की उस शाखा के थे जो जोधपुर से आकर मेड़ते में बस गई थी। इस प्रकार वह शाखा मारवाड़ी राठोड़ों की एक उपशाखा थी।

## मारवाड़ के राठोड़

राठोड़ों के प्राचीन पुरुष कौल वे यह कहना कठिन है किन्तु उनकी मारवाड़ी शाखा के मूल पुरुष राज सीहानी वे जो कथौज के राजा जयचमर के पौत्र थे।<sup>१</sup> इन्होंने विष्णु की १४वीं अठारवी के प्रारंभ में पाली (मारवाड़) में अपना राज्य स्थापित किया था।<sup>२</sup> इनके पश्चात् राज धासवानजी राज ब्रह्मजी राज रामपालजी राज कनपालजी राज बालराजीजी राज छाड़ाजी राज लोड़ाजी राज सलबाजी राज बीरमजी राज बूडाजी राज काह्लाजी राज सताजी राज रिडमसजी क्रमशः राठोड़-राज्य के स्वामी हुए। पश्चात् गद्दी

(१) जर्नेल ओब ड बंगाल एशियाटिक सोसाइटी (१८९०) नं० ६, पृष्ठ २७६

(२) रेड, मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृष्ठ ६७

का अधिकार मेड़तिया राजा के प्रवर्तक दूराजी के पिताजी राज जोभाजी को प्राप्त हुआ जिन्होंने जोधपुर की नींव डाली ।<sup>१</sup>

मेड़तिया राजा का प्रारंभ

राज दूराजी :

मेड़तिया राजा के प्रवर्तक राज दूराजी राज जोभाजी के चतुर्थ पुत्र थे । इनका जन्म वि० संवत् १४६७ में अषाढ़ शुक्ल १३ बुधवार को मारवाड़ की तत्कालीन राजधानी मझावर में हुआ था ।<sup>२</sup> इनका जन्म के दो वर्ष पूर्व ही इनके पितामह राज रजमलजी पिछोड़ के सिंसे में कपट से मारे गए थे । इनकी पैतृक राजधानी मंढोवर पर भी राजा कुंभा का अधिकार हो गया था । अतः इनके पिता राज जोभाजी ने अपने पैतृक राज्य की प्राप्ति के लिए पुनः प्रयत्न प्रारंभ किया और संवत् १४१० में मंढोवर से ६ मील दक्षिण में नया किला बनवाना प्रारंभ किया और उसी के पास अपने नाम पर जाधपुर नगर बसाया ।<sup>३</sup> तत्पश्चात् वि० संवत् १४१८ में उन्होंने अपने पुत्र बरसिंह और दूरा को मेड़ता पर अधिकार करने के लिए भेजा । मेड़ता उन दिनों मातंग के मुसलमान महमूद खिमजी के अधिकार में था । दोनों भाइयों ने उक्त नगर के साथ ही उस प्रान्त के ३६० गांवों पर भी अधिकार कर लिया । तभी उन्होंने प्राचीन बस्ती के दक्षिण में नया मेड़ता नगर बसाया<sup>४</sup> और संवत् १४१९ की वैशाख शुक्ल तृतीया से दूराजी अपने भ्राता बरसिंहजी सहित सपरिवार मेड़ते में आकर रहने लगे ।<sup>५</sup> इस प्रकार, संवत् १४१९ में राजाओं की मेड़तिया राजा का प्रारंभ हुआ ।

राज दूराजी के दो पत्नियाँ थीं—एक सीसोदनी चन्द्रकुँबरी और दूसरी चौहान मुण्डुबरी । दोनों राजिणियों से राजजी के ३ पुत्र और १ पुत्री सुमन्त कुँबरी उत्पन्न हुई । राज दूराजी के पुत्र आयु क्रम से इस प्रकार थे—<sup>६</sup>

(१) बही पृष्ठ ६७८

(२) जयमल-वर्ण-प्रकाश ठाकुर घोपालसिंह राजा ३, पृष्ठ ६२

(३) मारवाड़ का इतिहास, वैज (प्रथम भाग) पृष्ठ ३६

(४) बही पृष्ठ ६३

(५) जयमल-वर्ण-प्रकाश, पृष्ठ ३७ ६१

(६) बही पृष्ठ ७१

(१) बीरमदेव—जन्म १५३४ यही १५७२ मृत्यु १६००-वि० । राज बूवाजी के बाप मेड़ते से स्वामी हुए । इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध बीर जयमल से जिन्हें इनके बाप मेड़ते का राज्य मिला ।

(२) रायसस—रायससोठ घासा के मूल पुत्र

(३) पंचायण—संतानहीन

(४) रत्नसिंह—मीराबाई के पिता

(५) रायमल—रायससोठ घासा के मूल पुत्र

मीरा के पिता :

मेड़तिया राठोड़ों के कुलकुलधों तथा बोसेराव के उनके भाट के यहाँ प्राचीन बहिर्मा के उत्खननों से यह स्पष्ट है कि मीरा बूवा के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी । मारवाड़<sup>१</sup> और मेवाड़<sup>२</sup> के सरकारी इतिहासों से इस बात की पुष्टि होती है । टॉड ने मीराबाई को राज बूवा की पुत्री कहा है,<sup>३</sup> परन्तु टॉड का ज्ञान मेड़तिया राठोड़ों के विषय में गण्य-सा था । उन्होंने इस घासा के मूल पुत्र बूवा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसके एक पुत्र का बीरम जिसके दो पुत्रों (जैमल और जयमल) ने जैमसोठ और जयमसोठ घासाएँ बनाई,<sup>४</sup> जबकि बूवा के २ पुत्र थे और १ पुत्री । बूवा की पुत्री का नाम भी गुनाबजुंबरी था<sup>५</sup> मीराबाई नहीं ।

टॉड साहब मीरा को राणा कुंभा की पत्नी यह बूके से और इसलिए उन्हें कुंभा की समकालीनता प्रदान करने के लिए मीरा को एक पीढ़ी ऊपर बढ़ा देना स्वाभाविक था ।

मीराबाई मेड़तिया राठोड़ थी और राठोड़ों की मेड़तिया घासा का प्रारंभ बूवाजी से ही हुआ था । अतः टॉड साहब मीरा को बूवा के पिता बोवा

(१) विश्वेश्वरभाष रेड—मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १०३  
पुल्लोठ संस्करण-२

(२) बी० ही० घोष—जयपुर का इतिहास, पृष्ठ ३२५  
बीर-बिनोद भाग १ 'महाराजा स्यामसिंह' अध्याय, पृष्ठ २६२

(३) जेम्स टॉड—ऐलस एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान संपादक स्टेडेन,  
दूसरी विस्द, पृष्ठ १७

(४) यही—(रिमार्क्स) पृष्ठ १६५

(५) जयमल-जैस-प्रकाश, ठाकुर बीपलसिंह राठोड़, मेड़तिया, पृष्ठ ७१

की पुत्री<sup>१</sup> नहीं बना सके बरना वे क्याचित् यही करते क्योंकि काम क्रम की दृष्टि से कुमा और जोबा बरबर के थे। दूबा तो कुमाजी के राज्याभिषेक के भी ७ वर्ष बाद उत्पन्न हुए थे।

एक भ्रम

मुंशी बेबीप्रसाद ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि मेवाड़ के महाराने तबारीक के भ्रमरा कबिराज साँवमरासजी से मीरा सम्बन्धी पूछताछ करने पर उन्होंने जवाब दिया कि 'मीराबाई का कोई सही हाल विचार इसके हमको मायूम न हुआ कि वे दुल्हाबी के पोते मेड़ठिया राजे रत्नसिंह की बेटा थीं—इत्यादि' वहीं फुटनोट में उन्होंने धामे कहा है कि 'मीराबाईकरजी ने भी यही लिखा है कि—'मीराबाई महाराणा साँव के दूसरे बेटे भोजराज की राजाँ और मेड़ठे के राज दुल्हाबी के बेटे रत्नसिंह की बेटा थी—'<sup>२</sup> इन दो उद्धरणों को लेकर श्रीमती सचनम ने निष्कर्ष निकाला है कि 'जहाँ एक के आधार पर मीरा राज दुल्हा की पौत्री सिद्ध होती है वहीं दूसरे के आधार पर प्रतीती सिद्ध हो जाती है।'<sup>३</sup>

इस विषय में निम्नलिखित बातें दृष्टव्य हैं—

(१) जहाँ कथनों से भी यह निष्कर्ष निःसिद्ध रूप से निकलता है कि मेड़ठिया मीरा रत्नसिंह की पुत्री थीं। इस विषय में कोई मतभेद कहीं नहीं है। श्रीमती सचनम द्वारा प्रस्तुत उद्धरणों में भी नहीं है। अतः केवल यह सठ सकता है कि रत्नसिंह राज दुल्हा के पुत्र थे या पौत्र।

(२) कबिराज साँवमरास के 'जवाब' का जो उल्लेख मुंशी बेबी

(१) भोसले, 'उदयपुर राज्य का इतिहास', कुमा की गद्दीनघोनी (सं० १४६०), पृष्ठ २७६

(कर्मल डॉड ने इसमें भी भूल की है। उन्होंने राज्याभिषेक का संवत् १४७५ दिया है)

विराट : गुजराती कवि बयाराम ने बीमल (बयमल) को मीरा का पिता कहा है। बयमल के संघ का इतिहास अप्रकट नहीं है। उनकी पुत्रियों में कहीं मीरा नाम नहीं है। दूसरे, संवत् १४६४ में जन्म लेने वाला व्यक्ति संवत् १४६१ में उत्पन्न होने वाली मीरा का पिता कैसे हो सकता है ?

(२) मीराबाई का जीवन-चरित्र पृष्ठ २, फुटनोट

(३) मीरा एक सम्प्रदाय, श्रीमती सचनम पृष्ठ २६

प्रसाद ने किया है, यह मौखिक ही या जबकि घोसजी का उत्तर सिद्धि या। स्पष्ट है कि मौखिक बात कहने-सुनने या संवृत करने में कही पुत्र की जगह पोते प्रसाद बोधा की जगह बूबा की मामूली-सी भूल हो गई है, क्योंकि अपने इतिहास में सावसदास जी ने स्पष्टतः लिखा है कि—'इनमें से (२) मोहराज को सोमजी रायमल्ल की बेटी के गर्म से जन्मे से उनका विवाह मेड़ता के राज बूबा बोधावत पाँचवें बेटे रत्नसिंह की बेटी मीरबाई के साथ हुआ था। यही नहीं इसी इतिहास में अन्य कई स्थानों पर भी इसी प्रसाद के उल्लेख हैं।'

(३) मेड़ते के इतिहास की सामग्री का चितौड़ या उदयपुर में मिलना इतना स्वाभाविक नहीं है कितना मेड़ता राज्य में। मारवाड़ और मेवाड़ के इतिहासों में रत्नसिंह के नाम का उल्लेख भी नहीं मिलता है। ये मेड़ते जैसी छोटी रियासत के १२ गाँव के जागीरदार माने जाते हैं। इन बड़े राज्यों के इतिहास में रत्नसिंह का विशेष परिचय न मिलना ही स्वाभाविक है। अतः इस विषय में मेवाड़ की प्रेरणा मेड़ता के राज्य-वंश के स्थानीय इतिहास अधिक विश्वसनीय हैं और वहाँ के इतिहास का इस सम्बन्ध में पर्याप्त मूल है कि मीरबाई बूबा के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थीं।'

मीरबाई के पिता रत्नसिंह की राज बूबाजी के तीसरे पुत्र थे।' बूबाजी के प्रथम पुत्र बीरमदेव जी का जन्म सं० १५३४ में हुआ था। बूबाजी के दो परिवार थे। अतः रत्नसिंह का जन्म सं० १५३७ में था उसके बाद ही कभी हुआ होगा। इनको निर्वहण के लिए मेड़ता राज्य से कुछी जाजोली आदि १२ गाँव दिए गए।' वि० सं० १५८४ ईसवी सुकल १४ को अपने में राखा साँवा और बाहर के बीच हुए युद्ध में साँवा की ओर से युद्ध करते हुए वे बीरगति को प्राप्त हुए।'

(१) बीर बिनोद, 'महाराजा रत्नसिंह,' पृष्ठ १

वही 'महाराजा रत्नसिंह,' पृष्ठ ३७१

वही 'महाराजा रत्नसिंह,' पृष्ठ ३ कुठनीय ३

(२) जयमल-वंश-प्रकाश गोपालसिंह राठोड पृष्ठ ७१

(३) वही, पृष्ठ ७१

(४) वही पृष्ठ ६३

(५) उदयपुर राज्य का इतिहास, घोस पृष्ठ ३२६

(६) जयमल-वंश-प्रकाश, गोपालसिंह राठोड पृष्ठ ७१

## मीरा की माता

राजस्थान के इतिहास में केवल उन्हीं स्त्रियों ने परिचय मिलते हैं जो या तो राजाओं की प्रमुख पत्नियाँ थीं या जिनके कारण कुछ राजनीतिक उन्नयन-पुनर्नष्ट हुए थे । कहीं-कहीं ब्यालों में राजाओं की पत्नियों की सूचियाँ भी दी गई हैं । मीरा की माँ १२ माँ के एक छोटे-से जमींदार की पत्नी थीं। उनका परिचय किसी इतिहास में न मिलना ही स्वाभाविक है । स्पानीय किम्बदंतियों के आधार पर डीबबाग के विद्यानंद शर्मा ने लिखा है कि 'मीरा' बाई की माता का नाम कुसुम कुँवर था । वे टोंकसी राजपूत थीं । मीराबाई के नाना कैसनसिंहजी थे । मीरा की माता कहीं की थीं इसका उन्हें पता नहीं लगा ।<sup>१</sup> हरिनारायण पुरोहित के अनुसार "मीराबाई की माता का नाम मीरकुँवरि और नाना का नाम मुसतानसिंह था । वे जाति से भामा राजपूत थे । गोंयवा जाँब में ब्याहे थे ।<sup>२</sup> बस्तुतः उक्त कवनों का कोई विश्वसनीय पुष्ट आधार नहीं है और मीराबाई की माता के जीवन का ऐतिहासिक विवरण अशक्य है ।

मेड़वा में प्रचलित है कि मीरा केवल दो ही बर्यें की थीं कि उनकी माँ का बेहान्त हो गया ।<sup>३</sup> तब राज बूबा ने मीरा को मेड़ते में अपने पास बुला लिया । प्रियावास कृत 'श्री भक्तमाल की अक्षरसंशोभनी टीका' में मीरा के विवाह के समय इनके 'माता-पिता' के वर्तमान होने की ध्वनियाँ होती हैं ।<sup>४</sup> अन्य प्राचीन ग्रंथों इस विषय में मौन हैं । मीरा-रूप के कुछ पदों में 'माई' को संबोधन किया गया है । इनमें 'माई' शब्द से किसी साध की सहानुभूति पूर्ण गरी या भक्ति या अंतरंग सहचरी की ओर संकेत होता है जन्मदात्री माँ की ओर नहीं । कुछ विद्वान् तो माई का प्रयोग इनकी दासी-सखी समिता के लिए होने का अनुमान करते हैं ।<sup>५</sup>

(१) मीरा-स्मृति-ग्रंथ परिशिष्ट, पृष्ठ ५१

(२) मीरा-एक अग्र्यवर्ण श्रीमती ज्योत्सना पृष्ठ २६

(३) आदर्श भक्त शर्मा श्री मीराबाई पुष्पोत्तमदास पुरोहित, मुद्रिका, पृ० २

(४) श्री भक्तमाल सटीक कृष्णदास पृष्ठ ७१४

(५) मीरा-स्मृति-ग्रंथ—पदावली परिचय अक्षरप्रसाद सुब्रह्म पृष्ठ ४



माई-बहन :

मीराबाई अपने पिता की इज्जतीली संतान थीं ।<sup>१</sup> यत मीराबाई के सगे माई-बहनों का प्रयत्न ही नहीं चलता । मीरा के पिता रत्नसिंह पाँच माई थे । इसमें से तीसरे पंचायराजी के कोई संतान नहीं थी । रामसमजी तथा राम मलजी के पुत्र-पुत्रियाँ हुईं जिनसे कमल-रामसमोत और रामममोत साकाराएँ जसी पर वे जोब मेड़ता से बाहर की जागीरों के अधिकारी होकर बसे गए अथवा अन्य राज्यों में सेवा करने लगे ।

राज बीरमदेवजी मेड़ता में ही रहे । उनसे मीरा का अपेक्षाकृत अधिक सम्पर्क था । उनके १ पुत्रियाँ और १३ पुत्र हुए थे ।<sup>२</sup> ये ही मीरा के माई बहन थे ।

इसमें से कई का मीरा से संपर्क रहा होगा क्योंकि वे विवाह के पूर्व मेड़ता में ही रहती थीं और विधवा-पान की बटना के पश्चात् फिर वहीं लौटकर आ गई थी ।

(१) हरिनारायण पुरोहित को मीरा के एक 'ओपान' नामक माई की सूचना कहीं से मिली थी । इस सूचना को सत्य सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है । मीरा के पूर्व उनकी एक बहन के जन्म के संवत्स में भी किंवदंती मिलती है । मीरा की परची में मीराबाई की बहन का नाम अनोपा दिया हुआ है । इसका भी आचार अशुद्ध है ।

(२) राज बीरमदेव के निम्नलिखित संतानें थीं—

(क) पुत्रियाँ १ श्याम कुँवरि—रायत सायाजी सीसोदिया से विवाहित

२ कृष्ण कुँवरि—रायत बलराजी सीसोदिया से विवाहित

३ अक्षय कुँवरि—राज रामदेव ओहान से विवाहित

(ख) पुत्र १ जयमलजी—मेड़ता के राजा, मीरा से अनिष्ट सम्पर्क और विशेष लोह

२ ईश्वरदासजी ८. पुष्पीरासजी

३ जगन्नाथजी ९. सारंगदेवजी

४ जाँवाजी १०. प्रतापसिंहजी

५ करलजी ११. भाकरजी

६. राजराजी १२. लोकाजी

७ बीरजी १३. जेब चरलजी

जयमल ।

इन माइयों में जयमल का मीरा से विशेष संपर्क था । ये स्वयं प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे । (भी भक्तमाल में मायादासजी ने कहा है कि चतुर्मुख भयवान 'जयमल' के मुख में स्वयं प्रसन्न पर चढ़कर आए थे ।<sup>१</sup> प्रियादास ने तो इन की भक्ति की विशेष प्रशंसा की है ।<sup>२</sup>) भक्त दोनों की प्रकृति का मिसमा स्वामाधिक था । जयमल का जन्म संवत् १३६४ में हुआ था ।<sup>३</sup> प्रायु में ये मीरा से थोड़े ही छोटे थे । मीरा के विवाह के बाद में भी जयमल और मीरा के घात्सीय संबंधों का पता चलता है । कहा जाता है कि जयमल से प्रसन्न होकर मीरा ने इन्हें बरवान दिया था कि 'बहुत बड़े ठेरे परिवार । नहीं होय कविया में हार' (अर्थात् ठेरा परिवार बहुत बड़े और मुख में हार न हो) यह भी प्रसिद्ध है कि मीरा के देवर राजा उदयसिंह ने जयमल के कहने पर ही मीरा को हारका से बुलाने के लिए आह्वान भेजे थे ।

मीरा के परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति :

मीरा का पालन जिस परिवार में हुआ उसमें धार्मिक भावना विशेष प्रबल थी । उन के ताऊ बीरमदेव के पुत्र जयमल की भक्ति-भावना की प्रशंसा तो प्रसिद्ध भक्तों ने भी की है । उनके पितामह दूबाजी भी बहुत बर्मात्मा भक्ति थे और उनकी बर्मा भावना अत्यन्त उदार और असांप्रदायिक थी । वे परम उदार वैष्णव थे । उन्होंने मेड़ता में चतुर्मुखजी के मंदिर का निर्माण कराया था । मेड़तिमा बाबा के राठोड़ भक्तक चतुर्मुखजी का इष्ट रहते हैं । साब ही, दूबाजी भगवती जगदंबा के भी भक्त थे । ऐसी कथा प्रचलित है कि जब वे भस्मूर्त्ति से लड़ रहे थे तब पीपाड़ ग्राम में बाल-स्वरूप भगवती जगदंबा का चमको वर्धन हुआ था उसी समय से वहाँ से तीनकोस दूर तातका गाँव में भगवती निवास करने लगीं ।<sup>४</sup> जोधपुर के गरीटियर में महात्मा बंभा द्वारा दूबाजी को ऐसी लकड़ी देने का उत्स्रेख है जिससे उन्होंने मुख किया था ।<sup>५</sup>

(१) क्यकता—भी भक्तमाल, पृष्ठ ४३०

(२) वही, पृष्ठ ४३२ ४०

(३) जयमल-बंश-प्रकाश कानुर गोपालसिंह राठोड़, मेड़तिमा, पृष्ठ ७०

(४) मीराबाई का जीवन-चरित्र, भू. देवीप्रसाद, पृष्ठ २६

(५) वही, पृष्ठ ७१

(६) पृष्ठ ५५

इन घटनाओं पर से भक्तिकता का आवरण हटा दिया जाय तो ब्रह्माजी का देवी की उपासना करने और महात्माओं से संपर्क रखने की बात सिद्ध होती है।

राठोड़ बंध बैठे भी अपनी बेप्यठा के लिए प्रसिद्ध हैं। एक प्राचीन बोहा है—

मरुत खाया रंका गढ़ा मेव पहाड़ा भोड़।

हंसा में चन्दन भली राजकुली राठोड़ ॥

इसके राठोड़ बंध के प्रति जनता के सामान्य सम्मान के भाव की व्यञ्जना होती है।

मीरा का श्रेष्ठत्व:

मीरा के श्रेष्ठत्व के विषय में जनश्रुतियों और भक्तों के अनुचित उल्लेखों के प्रतिरिक्त अन्य कोई विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। मीरा को भक्ति-भाव की ओर प्रेरित करने और गोपात्र की मूर्ति की उपासना के विषय में जो घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। एक के अनुसार वे किसी बारण को देखकर पूछ बैठें कि 'मीरा बर कौन है?' मैं उस भवान् प्रबोध बालिका से क्या कहूँगी उन्होंने गोपात्र की मूर्ति की ओर संकेत कर दिया। तभी से मीरा ने गिरिधर को मन और प्राण छीप लिए और समझी हो गई।<sup>१</sup> एक दूसरी बटना किसी साधु के रात्र के यहाँ जाने के संबन्ध में है। कहा जाता है कि मीरा उनके गोपात्र की मूर्ति पर मुग्ध हो गई। साधु ने प्रारंभ में तो देव मूर्ति नहीं दी, पर जब उन्हें स्वयं भगवान् ने स्वप्न में प्रेरणा दी, तो वे मूर्ति मीरा को दे गए।<sup>२</sup> मराठी 'मीरा चरित्र' में माता-पिता द्वारा उनके कृष्णार्पित किए जाने का उल्लेख है।<sup>३</sup>

मीरा को गिरिधर की मूर्ति के बचपन में प्राप्त होने की बटना का उल्लेख व्यापक रूप में उपलब्ध होता है। मतभेद केवल सूक्ष्म विस्तारों के संबन्ध में है। अतः इसके सत्य होने की संभावना अधिक है। मीरा को यह

(१) मीराबाई की पदावली जी परमुराम बतुर्जेवी (सं० २०१४), मुमिया पृष्ठ २१

(२) वही पृष्ठ २१

(३) मुमिया रामबासी संशोधित पाठोंक १५१७-अंश १५

मूर्ति किससे मिली थी इस संबंध में माधवेन्द्रपुरी<sup>१</sup> और देवाजी<sup>२</sup> के नाम उपलब्ध हुए हैं। पर बीसा कि 'गुरु' प्रकरण में कहा गया है, देवाजी का संपर्क पिछोड में हुआ था। भिड़ता में उनके द्वारा मूर्ति लिए जाने की बटना संभव नहीं है। माधवेन्द्रपुरी के जीवन-मृत के पूर्ण विस्तार नहीं मिलते पर मूर्ति का माधवेन्द्रपुरी या उनके शिष्य माधव से उपलब्ध होना असंभव नहीं है। सब में गिरिधर गोपाल की पूजा के प्रकार का येम इन्हीं माधवेन्द्रपुरी को था।

मीरा जीवन में कटुता के बिछड़ धनचरत संघर्ष करके भी अपने मन को मधुर बनाए रही इसका कारण उनकी आत्मशक्ति प्रवृत्ति और प्रारंभिक शिक्षा थी। यह शिक्षा कटु संघर्ष के प्रति निरन्तर अपराजित भाव जीवन के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण मानसिक दृढ़ता और उदारता की थी। शास्त्रिक और संपीत का प्रारंभिक ज्ञान भी उन्हें मिला ही होगा जो उनकी भक्ति-भावना की मनोरम अभिव्यक्ति की योग्यता का सहज संगी बन गया था। धर्म के विषय में उनके पितृमह देवाजी अत्यन्त उदार थे। वे वैष्णव थे पर संतों का आदर करते थे। मीरा में यह प्रवृत्ति उनकी प्रारंभिक शिक्षा के फलस्वरूप ही बनी थी।

इसके अतिरिक्त मीरा के बचपन की कई भौतिक घटनाओं के उत्कृष्ट मिलते हैं जैसे 'बनुर्मुबाजी ने मीरा के हाथ से दूध पी लिया' आदि पर ये बटनाएँ भक्तों की ध्यामयी कल्पना का निर्माण हैं। इससे केवल इतना निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मीरा बचपन से ही भक्ति की ओर विशेष प्रवृत्त थी।

## विवाह

गिरिधर का बरछ करके मीरा चिरमुहागिनी बन गई थी। आध्यात्मिक क्षेत्र के इस सत्य को माधुक भक्तों ने मीरा के मोक्षिक जीवन में भी चिह्न कर दिया है। उनके अनुसार भावराज का विवाह मीरा के तन से हुआ था उनका मन ठो गिरिधारी की मधुर मूर्ति पर मुग्ध होकर, उसके सम्मुख

- (१) उदयपुर के जगदीशजी के मंदिर के पुजारियों से
- (२) आमेर के जगत शिरोमणि के पुजारियों (देवाजी के बंधज) से
- (३) (क) आदर्श भक्त धर्मात्मी मीराबाई, पं० पुष्पोत्तमदास पुरोहित

बी० ए०, भूमिदा, पृष्ठ ९

(ख) डाकोर स्थित बनुर्मुबाजी के मंदिर की जगमुति

प्रियतम भाव से समर्पित हो गया था।

मीरा प्रकृति से ही अस्मितायी थीं। १२ वर्ष की धनुमयहीन, कम्पना सील बय में विवाह की बेदी पर बैठा ही जानेवासी यह कम्पा कयाचित् विवाह के मधुर धर्म को नहीं समझती होगी। उस समय मिथिचर की प्रिय मूर्ति को साव रखने का आग्रह उसकी अस्मृति बुद्धि के लिए अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। भक्तों ने उस बटना की आदर्शभूमक व्याख्या कर ली है। 'यहाँ तक कि 'भारव को बुलवाकर एकान्त में उनका विवाह कृष्ण से करवा दिया है।' इतना सत्य अवश्य है कि मीरा बचपन में मत्त प्रकृति की थी। उनके मन में कृष्ण-प्रेम या हृदय में उस प्रेम को लेकर वे चिटीड़ गईं। साव ही अपने आराध्य की मूर्ति भी नित्य-सुखा के लिए के गईं। मीरा के विवाह के संबन्ध में जो विस्तार भक्तों और संतों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, वे अपने विवरणों की नहीं मूल आशय की दृष्टि से सत्य हैं और उनका तात्पर्य इतना ही है कि मीरा प्रारम्भ से ही कृष्णानुरक्ति जीन हो गई थी।

१२ वर्ष के जावीर के स्वामी की पुत्री मीरा का विवाह अपने समय के एक शक्तिशाली प्रतिष्ठित राज्य के राजकुमार से हुआ था। सामान्यतः देखने पर यह बात कुछ अस्वाभाविक-सी लगती है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने यही प्रश्न लेखक के सामने सम १९२३ में रखा था। मीरा के इस परिवार में विवाहित किए जाने के कारण इस प्रकार हैं—

(१) कम्पा के रूप में मीरा के गुण तथा रूप की प्रशंसा थी। 'नारी को उपमोय्या मानने वाले सामंतों में रूप-वीर्य का महत्व असाधारण था।

(२) मीरा छोड़ बंस की थीं और लड़कियों में यह बंस अत्यन्त प्रतिष्ठित माना जाता था। छोड़ों तथा सीसोबियों में आपस में विवाह सम्बन्ध बहुत दिनों से प्रचलित था। छोड़ राज राणमल की बहुत हंसाबाई का विवाह

(१) विस्तार के लिए देखिए, भक्तमाल, प्रियादास की टीका, पृष्ठ, ७१ मीरा महारम्य राजाबाई, खंड ३० ३७; रायोदास के भक्तमाल की चरदास कुल होका खंड १-२

(२) मीराबाई की परबी ( अगारबाज नाहुटा से उपनमन प्रसिमिति )

(३) मीरा-माहात्म्य, राजाबाई, कड़ी २४;

'काण्ठपात्रा, मिराबाई परम सुन्दर।' श्री निलोभा महाराज, लकन संत पापा पृ० ६६;

'मीरा गुलबती नायन्याची कानि'—मीरा चेरिज, खंड ४

राणा भाबा से<sup>१</sup> राव बोधा की पुत्री शृंगारदेवी का राणा राममल से<sup>२</sup> तथा उनके पोते बाबा सुभाषत की पुत्री बर्माई का विवाह राणा सांगा से हुआ था।<sup>३</sup>

(१) उक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त मीरों मोरराज-परिणाम में तत्कालीन राजनीय परिस्थिति का विशेष हाथ था। राणा सांगा के परिवार में आंतरिक कलह भी। उनकी रानियों में भी कई प्रकार की विरोधी आकांक्षाएँ प्रस्फुटित हो गई थीं। सबसिंह और बिजय की माता रानी करमेठी तथा रत्नसिंह की माता बर्माई में गहरी घनघन थी। दूसरे, राणा सांगा 'हिन्दुपति' तो प्रसन्न बन गए थे पर उन्हें अपने व्यापक सम्मान वंश और राज्य की रक्षा के लिए सना ही नहीं कूटनीति की भी आवश्यकता थी। उस समय राणा के सबसे सक्रियधामी विरोधी राजपूत रावा जोधपुर के राठोड़ थे जो राणा मोरमल के समय से चित्तोड़ पर हावी थे और सांगा के समय में उनके परिवार के कई व्यक्तियों ने अपने छोटे-बड़े राज्य समस्त पश्चिमी राजस्थान में स्थापित कर लिए थे। राणा सांगा की जगहों इस बात में थी कि राठोड़ परिवार के सब राज्यों को एकत्र और संगठित न होने दें। मेड़ता का राज नीतिक महत्व उसकी स्थिति ही नहीं ब्रह्मचारी के पराक्रम और अपनी कूट नीतिज्ञता के कारण भी था। अतएव राणा सांगा मेड़ता से विवाह-संबन्ध स्थापित करके उसे राजनीतिक मैत्री तथा पारिवारिक संबंध-सूत्र में बाँध लेना चाहत थे और हुआ भी यही। मीरों के विवाह के पश्चात् मेड़ता के राजा मारवाड़ राज्य के विरुद्ध मेवाड़ के राजाओं का साथ देते रहे और इनका फल यह हुआ कि उन्हें मेड़ता के राज्य से सदैव के लिए हाथ धोना पड़ा। इतना ही नहीं मीरों के पिता रत्नसिंह तथा चन्दे भाई जयमल दोनों मेवाड़ की ओर से युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुए।

(१) जयपुर राज्य का इतिहास श्रीमन्, पृष्ठ २७०

(२) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल जिस १६ भाग १ पृष्ठ ७२

(३) बीर बिनोद—भाग १ पृष्ठ ३७१

(४) जयमल-वर्णन-प्रकाश, पृष्ठ ११६ ११७

—जोधपुर के राजा मालदेव तथा मेड़ता के राजा बीरमदेव और उनके पुत्र जयमल के आपसी संघर्ष के विस्तृत विवरण के लिए देखिए, मारवाड़ का इतिहास रेज 'राज मालदेव' अध्याय।

—मेवाड़ और मेड़ता के आपसी सहयोग के लिए देखिए—जयपुर राज्य का इतिहास—श्रीमन्, पृष्ठ ३८८ ४२३।

इस प्रकार मीरा-भोजराज परिवार के निर्णय में राणा की उस राज नीतिक दूरदर्शिता तथा कूटनीतिज्ञता का विशेष हाथ था जिसका सख्त राठोड़ों की केन्द्रीय शक्ति को दुर्बल और एक महत्वपूर्ण और राठोड़ राज्य परिवार को अपना सहयोगी बनाना था। राणा इसमें सफल हुए।

तिथि :

मीरा के विवाह की तिथि के विषय में राजस्थान में कोई मतभेद नहीं है क्योंकि राणा सांगा के पुत्र भोजराज के विवाह की तिथि चारसों और भाटों में सब बराबर एक ही मिलती है। यह तिथि है संवत् १३७३। बार के विद्वानों में मीरा को कुंमा-पत्नी मानने वालों ने इस विवाह-तिथि को स्वीकार नहीं किया। पर मीरा कुंमा की पत्नी नहीं थी भूत इस मत का अनुयायी ही रही नहीं है। अनामनाथ बंसु ने सं० १३६७ में मीरा का विवाह माना है। इसका कोई आधार नहीं है। मीरा का विवाह उनके ठाकुर बीरमदेव ने गद्दी के दूसरे वर्ष ही किया था। दुवाजी उस समय इस भोक में नहीं थे। दुवाजी की मृत्यु संवत् १५७२ में हुई थी और इसी वर्ष बीरमदेव सिंहासन पर बैठे।<sup>१</sup>

मीरा का स्वसुर-कुल

मीरा चितौड़ के राणा के यहाँ ब्याही गई थी। माना जाता है कि वह परिवार रामचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र कुश का वंशज सूर्यवंशी क्षत्रिय है। कुश के वंश के अंतिम राजा सुमित्रा तक की नामावली पुराणों में दी हुई है। उस वंश में बि० सं० ६२३ के आस-पास मेवाड़ में बुद्धि नाम का प्रतापी राजा हुआ जिसके नाम से उसका वंश 'बुद्धि-वंश' कहलाया। पश्चात् इस वंश की एक शाखा सीसोवा गाँव में रही जिससे उत्तर शाखावाले उस गाँव के नाम पर सीसोबाई कहलाए।<sup>२</sup> मीरा के पति-परिवार के भोज इसी शाखा के वंशज थे। इनका प्राकृतिक इतिहास प्रायः महाराणा हम्मीर से श्रारंभ होता है। इनके पश्चात् क्रमशः सोमसिंह, लक्षसिंह (भाबा) भोज कुंमकर (कुंमा) उदयकरी (उबा) रायमल और संग्रामसिंह (सांवा) मेवाड़ के

१ अयमल-वंश-प्रकाश पृष्ठ ७३

२ उदयपुर राज्य का इतिहास-प्रोफ़ १३-१६।

प्रतिपति हुए।<sup>१</sup> सांगाजी राजनीति और धर्म के मर्मज्ञ थे और भीरुता के बल पर महान् बने थे।

माटों की क्वालों के अनुसार महाराणा सांगा ने २८ विवाह किए थे जिनसे उनका सात पुत्र हुए—भाजराम कणसिंह रत्नसिंह, विजयसिंह उदय सिंह परसिंह और हृणसिंह।<sup>२</sup> यही भाजराम मीरा के पति थे। उनके विषय में धाय सविस्तर विचार किया है। अनेक लोक-गीतों में मीरा की किसी ऊँची नामक नैनद का उल्लेख मिलता है। उसने मीरा को राह पर साने ( राह से हटाने ) का बहुत प्रयत्न किया था। ईर के राजा रायमल के साथ महाराणा सांगा ने अपनी पुत्री की सगाई कर ली थी।<sup>३</sup> जगदीशसिंह महमोद का कहना है कि इन्हीं ईर के राजा रायमल की पत्नी उर्षा मीरा की नैनद थीं। साङ्ग-मीरा से इस बात की अधिक पुष्टि होती है। क्वालों में राणा सांगा की चार पुत्रियों के नाम मिलते हैं—(१) कुँवरबाई (२) गंगाबाई (३) पद्माबाई तथा (४) राजबाई। इसमें ऊँचाबाई का नाम कहीं नहीं है।

मीराबाई के पति :

मीराबाई के पति कौन थे इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन मत प्रचलित हैं—

- (१) महाराणा कुँमा
- (२) महाराणा कुँमा के मुखराज
- (३) भाजराम

पहला मत सबसे पहले जर्जस जेम्स टॉड ने व्यक्त किया।<sup>४</sup> उसके पश्चात् केवल प्रैगरेडी ग्रंथों के आधार पर मीरा का जीवन-वृत्त लिखनेवाले अधिकतर विद्वानों ने टॉड के ग्रंथ का ही अनुसरण किया और उनके नाम का उल्लेख करके और नहीं बिना उल्लेख के ही उनके मत का सहारा दिया

(१) राजपूताने का इतिहास, पहला भाग, पृष्ठ २०२-२२२

(२) उदयपुर राज्य का इतिहास पृष्ठ ३४४-३४५

(३) महाराण सांगा, हर विमल सारदा, पृष्ठ ३३-३४

(४) मीराबाई का जीवन और काव्य महमोद पृष्ठ २४

(५) टॉड, जेम्स एंड ऐंटीक्विटी ऑफ राजस्थान (बुक द्वारा संपादित)

पहली प्रिंट पृष्ठ ३३७



है। 'मीराबाई के संलग्न में लिखनेवाले हिन्दी के विद्वान् श्रीर विष्णुपियों में बन्धु कार्तिकप्रसाद 'कबी' श्रीमती पद्मान्वती सावन्म' और प्रोफेसर संतुप्रसाद बहुगुणा' का मूकाल इसी धोर है।

कबीजी ने तो अपने उल्लेख के पक्ष में कोई तक नहीं दिया। श्रीमती सावन्म तथा प्रोफेसर बहुगुणा अपने अध्ययन के फलस्वरूप जिस 'संभावना' पर (मीरा के पति राणा कुंभा ब) पहुँचे हैं, उसके पक्ष में दिए उनके तर्कों का सार तथा संतुष्ट इस प्रकार है—

(१) मीरा को 'मेकतली' के रूप में प्रस्तुत करनेवाले मीरा-छाप के पक्षों की विवेचना करने पर उनकी 'प्रामाणिकता' में संदिग्ध को पर्याप्त स्थान मिल जाता है। अतः 'मेकतली' के आधार पर मीरा के पितृकुल की विवेचना अवश्य ही ठीक होती है। [अतः मीरा को मेकता बचने के पूर्व का (महाप्रण

- (१) (अ) माँझन बर्नाब्युलर मित्ररेवर ऑफ हिन्दुस्तान, धियर्सन, पृष्ठ १२  
 (ब) महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोष (क) पृष्ठ ३३२ (महाराणा कुंभा के प्रकरण में)  
 (घ) सिबसिह-सरोज पृष्ठ ४७५  
 (घ) आत्मा सागर रत्नों (गुणालाल बलपतराम कवि, पृष्ठ ८, ११५ अतः का भी उल्लेख किया है, पृष्ठ १०)  
 (२) बृहद् काव्य-बोहन-नाथ २ (इच्छाराम सूर्यराम बेसाई)  
 (३) कुनु नर्मगद्य (नर्मद) कवि-चरित्र-मीराबाई, पृष्ठ ४३७  
 इनके अतिरिक्त, "रा. आनन्द संकर बुध, रा० ब० रामलुभाई नील-कण्ठ, सी० विद्या पबरी नीलकण्ठ, रा० कुन्दलाल मोहनलाल फलेरी बिसेरे मीरा ने कुमाली राखी जाने छे-मीराबाई (भा० नि० मोहता) पृष्ठ ४  
 (२) मीराबाई का जीवन-चरित्र पृष्ठ ५  
 (३) मीरा-एक अध्ययन-सावन्म, पृष्ठ १८ १३  
 "मेरे विचार में आध्यात्मिक प्राप्त सामग्री के सभी बहुमुखों की बरीर विवेचना करने पर यही स्पष्ट हो उठता है कि प्राप्त सामग्री के आधार पर कर्मल डोंड के कथन का निश्चयात्मक कथेन कायन समझ नहीं, बहुत संभव है कि मीरा राणा कुंभा की ही राखी थी।"  
 (४) मीरा-स्मृति-ग्रंथ ( 'अनन्य जोगिल मीरा' केन के आधार पर, पृष्ठ ४६ ४७ ४८ पर )  
 (५) मीरा-एक अध्ययन, सावन्म, २२-२३

हुंमा का समकालीन) माना जा सकता है । ]

(२) मीरा-गीतों में मड़तली शब्द मीरा के लिए प्रयुक्त हुआ है पर मेड़ता की स्थिति रूप भूरा व धीस के लिए प्रयुक्त होती थी । अतएव मड़तली शब्द प्रसंग-भूतक अर्थ में कुछ हाकर प्रचलित हो गया । कुछ गीतों में घर की कुतूह स्थिति या मनः अपनी बह या भावना के लिए 'मेड़तली' का प्रयोग बिभ्रप रूप से करती पायी जाती है ।<sup>१</sup> अतः मीरा-गीतों के इस शब्द का अर्थ 'मड़ता' वाली न होकर 'रूप-भीम-भूरा वाली' होया । (अतः मड़ता बसने की शरीर के पूर भी मीरा की स्थिति मानी जा सकती है । )

(३) अगर 'मड़तली' का अर्थ 'मड़तावाली' भी हा ता भी मीरा का अर्थ मड़ता (वर्तमान मय बसने के पूर का माना जा सकता है, क्योंकि कदाभी ने 'मेड़ता' नहीं बताया था, 'नया मड़ता' बताया था । इस प्रकार मड़ता संवत् १११८ ( नए मेड़ता बसने का वर्ष ) में पूर भी था और इसलिये मड़तली मीरा की स्थिति संवत् १११८ के पूर भी मानी जा सकती है ।

(४) मीरा का शरा हुंमा का समकालीन मान लेने पर अन्य बिभ्रप समस्याओं का भी हम हो जाता है ।<sup>२</sup> संगीत-मृत-वाद्य-रस-गिता का हुंन स्वायी तथा आदिकाराह के मंदिरों का मीरा के मन्दिर कहलाने तथा मरानी पूजा के लिए बसू मीरा की मास द्वारा बाध्य किए बाध का कारण भी बिबित हा जाता है । इसक अतिरिक्त जनमुद्रिया के द्वारा प्राप्त सामग्री के साम संमति भी बैठ जाती है ।<sup>३</sup>

(५) कुछ मुखराती और बलिग के इतिहास और पुरातत्व के बिद्वानों ने जर्मन टोंड का समर्थन किया है ।<sup>४</sup>

मीरा का शरा हुंमा की पत्नी मानन जाने पुरातत्व के बिद्वानों के नामों का उल्लेख न श्री० बहगुला न किया है और न भीमरी राजनम ने । मुखराती और बलिग के इतिहास और पुरातत्व के बिद्वानों ने कम-अ-कम

(१) वही २०

(२) मीरा स्मृति-ग्रंथ अमर भोगिल मीरा, पृष्ठ ३६

(३) मीरा—एक अष्टमन शकनन पृष्ठ १८

(४) मीरा स्मृति ग्रंथ 'अमर भोगिल मीरा', पृष्ठ ४६

(५) वही, पृष्ठ ४७

(६) वही पृष्ठ ४४

गुजराती<sup>१</sup> और मराठी के अधिकांश प्रवक्तारों ने इस बात को स्पष्टतः स्वीकार किया है कि उन्होंने मीरा को कुंभा-पत्नी जर्नल टॉड के कथन के आधार पर ही लिखा है। इस सूचना का अन्य कोई स्वतन्त्र स्रोत नहीं है। वस्तुतः इन प्रवक्तारों ने किसी तर्क के साथ टॉड का समर्थन नहीं किया है, उनका अनुकरण मात्र किया है। अतएव उनकी उद्धृत करने से इस मत की पुष्टि नहीं होती।

उक्त तर्कों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि मीराबाई का कुल-निर्णय उनके मेड़तणी होने के आधार पर नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार मीरा मेड़तणी नहीं थी अपर भी तो मेड़ताबासिनी नहीं सुन्वरी के के घर में उनके लिए इस शब्द का प्रयोग होता था और अगर मेड़तणी का अर्थ 'मेड़ता की' लिया भी जाय तो बूवाजी के मेड़ता बसाने के पूर्व भी मेड़ता था और वहाँ की स्त्रियाँ मेड़तणी कहलाती थी। इस प्रकार उनके कहने का तात्पर्य यह है कि नया मेड़ता बसाने के पूर्व मीरा के वर्तमान होने में कोई बाधा नहीं है।

वस्तुतः ये समस्त तर्क अभावपूर्ण हैं। हमसे कहीं यह सिद्ध नहीं होता कि मीरा राणा कुंभा की पत्नी थी। मीरा मेड़ते की थीं यह तो उनके पठोकों की मेड़तिया साक्षा के इतिहास से ही प्रकट है। नामदीपास प्रियादास बयाराम जैसे विभिन्न प्रान्तों के और विभिन्न संप्रदायों के व्यक्तियों के सम्मुख इसके साक्षी हैं। 'मेड़तणी' शब्द का प्रयोग सुन्वरी या रूप-दीप वाली के लिए प्रसिद्ध नहीं है, कम से कम मीरा अपने पति-गृह में मेड़ता की होने के कारण ही मेड़तणी कहलाती थी क्योंकि उनके ससुराल वाले उनके 'रूप-दीप' से बहुत प्रसन्न नहीं थे।

यदि श्रीमती सखनम के कथनानुसार मीरा को 'मेड़तणी' के रूप में प्रस्तुत करने वाले यह प्रक्षिप्त भी मान लिए जाएँ तब भी यह सिद्ध नहीं होता कि मीरा राणा कुंभा की पत्नी थी या उनकी समकालीन थी। मीरा कृत न होने पर भी मीरा के नाम से प्रचलित गीतों में उन क 'मेड़तणी' होने का उल्लेख यह बताता है कि लोक में मीरा को 'मेड़तणी' मानते वाले मत की एक परम्परा जमती रही है, जमता या जन-कवि मीरा को मेड़तणी मानते रहे हैं और इसीलिए मीरा की छाप लगाकर यह लिखते या प्रचलित करते समय उन्हें 'मेड़तणी' कहते रहे हैं।

प्र० बहुगुणा का यह कथन सत्य है कि 'भूदाजी ने गया मेड़ता बनाया मेड़ता नहीं। पर इससे यह निष्कर्ष निकामना उचित नहीं है कि मेड़तणी मीरा का जन्म नए मेड़ता के बनने के पूर्व हुआ था। मीरा ने मेड़ता के राठोड़ राजवंश में (रत्नसिंह के यहाँ) जन्म लिया था। यद्यपि मीरा की जन्म-तिथि का निर्धारण नए-पुराने मड़ते के बसने पर नहीं राठोड़ों की मेड़तिया शाखा के प्रारम्भ हान के आधार पर करना चाहिए। मेड़ता में इस राजवंश की शाखा का प्रारम्भ भूदा के नए मेड़ता बसाने और उसमें अपना राज्य स्थापित करने के बाद ही हुआ था।' यद्यपि नए मेड़ता के बसने और वहाँ राठोड़ों के राज्य प्रारम्भ होने के पूर्व राठोड़ राजवंश की मेड़तिया शाखा ही नहीं थी तब मेड़तणी राठोड़ मीरा का जन्म उसके पूर्व मानना किसी प्रकार ठीक संगत नहीं कहा जा सकता।

इस विषय में निम्नलिखित बातें धीरे विचारणीय हैं—

(१) महाराणा भूमा द्वारा बनवाये कीर्ति-स्तम्भ की प्रगति में कुंमल देवी का धीरे उनकी अपनी लिखी हुई 'भीत गोविन्द' की रसिकप्रिया टीका में 'अपूर्व देवी' का नाम 'प्रिया और महारानी' के रूप में उल्लिखित है। मीरा की भूमा की पत्नी मानने वाले विद्वान् मानते हैं कि मीरा 'स्वच्छन्द पवित्रता के भौंदर्य में अपने युग की सबसे प्रसिद्ध रानी थीं' और उनके काव्य की प्रेरणा ही नहीं काव्य-रचना के क्षेत्र में उनकी प्रथम गतिविधि थी। यद्यपि मीरा की सभी बिंदुओं समपरायणा और मंगीत तथा काव्य की समझा महाराणा भूमा की पत्नी होतीं और उन्होंने राणा की काव्य-रचना की प्रेरणा और प्रेरणा दी होती तो कीर्ति-स्तम्भ की प्रगति में धीरे बिन्दुपर राणा द्वारा प्रणीत 'रसिक-प्रिया टीका' में मीरा का उल्लेख अवश्य होता। यह बात भी नहीं है कि राणा भूमा ने किसी पत्नी का उल्लेख नहीं किया। इनमें ऐसी दो पत्नियों के नाम मिलते हैं जो काव्य-रचना मंगीत-विद्या समपरायणा और रूप-भौंदर्य

(१) वि० सं० १५१८ में मेड़ता बसाया गया था। मारवाड़ का इतिहास ऐ०, पृष्ठ १५। व्याप्तों में इस घटना का काल सं० १५१६ दिया हुआ है।

(२) पद्मार्जुनसुन्दरक पदवी कुम्भेश्वरी प्रिया ॥१८०॥ कीर्तिस्तम्भ का लेख

(३) महारानी श्रीमपुर्वदेवी हृदयप्रियायेन महाराजाधिराज महाराज श्री भूमा कथमर्हमहाराज—॥ 'भीतगोविन्द' की रसिकप्रिया टीका पृष्ठ १७४

(४) ऐमत्स एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान डॉ० जिम्स १ पृष्ठ १३७

(५) मोहन वर्मापुलर ऑफ हिन्दुस्तान प्रियमर्ग पृष्ठ १३

किसी गुरु में मीरा की छाह भी नहीं झू सकती। ऐसी स्थिति में मीरा का अनुत्सेह प्रकाश नहीं हो सकता।

(२) भाटों की कथाओं के अनुसार महाराणा कुंभा की रानियों के नाम 'प्यार कुँवर' 'अपरमदे' 'हरकुँवर' और 'नारगवे' मिसते हैं।<sup>१</sup> इन्हें प्रामाणिक मानने पर तो इसमें संदेह ही नहीं रहता कि मीरा राणा कुंभा की पत्नी नहीं थी। पर ये नाम बहुत विश्वसनीय नहीं हैं। फिर भी इससे यह पता लगता है कि इन नामों को किसी सही या गलत आधार पर चुनिचने वाले राजस्थानी किंवदंतियों और घटनाओं की मौखिक परम्पराओं से बिछेप परिचित 'व्यक्तियों' के सामने भी मीराबाई को राणा कुंभा की पत्नी के रूप में मान लेने का कोई आधार नहीं था। अगर उनके राणा कुंभा की पत्नी होने की अनुमति भी होती तो इस विषय की उपाक्षिप्त 'प्राचीन सामग्री' बनाकर भाट लोग प्रबन्ध प्रस्तुत कर देते। मीरा के परिचित प्रसिद्ध नाम को छोड़कर अन्य वास्तविक या काल्पनिक नामों का उल्लेख न करते।

(३) महाराणा कुंभा का निधन उनके हत्यारे पुत्र उन्ना द्वारा संवत् १५२२ में हुआ था। मीराबाई वृष के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी। रत्नसिंह के बड़े भाई और राज कुशाबी के ज्येष्ठ पुत्र बीरमदेव का जन्म संवत् १५३४ वि० मकर संक्रांति १४ को हुआ था।<sup>२</sup> इस प्रकार, मीराबाई के ठाढ़ का जन्म राणा कुंभा की मृत्यु के १ वर्ष बाद हुआ था। ऐसी वृत्ति में मीराबाई का महाराणा कुंभा की पत्नी होना सर्वथा असंभव है।

(४) धार्मिक तथा साहित्यिक उल्लेखों का साक्ष्य भी मीरा के कुंभा कामीन होने के विरोध में पड़ता है। उदाहरण के लिए —

(क) मीरा हरिवंश व्यास कृष्णवास की समकालीन थीं।<sup>३</sup> जब में जाकर जीवगास्वामी से भी मिली थीं। इन सबका जीवन-काल १६वीं शताब्दी विजयनगर के उत्तरार्ध में पड़ता है और राणा कुंभा का काल १६वीं शताब्दी के प्रथम अनुार्ध के माने नहीं जाता।

(ख) मागरीबाय ने (जो राठोड़ वंश के थे) मीरा को राणा के छोटे

(१) अजयपुर का इतिहास खोजा पृष्ठ ३२२, पाल-टिप्पण संख्या-६

(२) मारवाड़ का इतिहास रेज पृष्ठ ११८ पाल-टिप्पण ३

(३) वर वीरबन की बार्ता महावीर अष्ट गुजराती संस्करण पृष्ठ १८६

(४) श्रीमत्तमान कथकना ७२१

माई की पत्नी हान घौर मोरी क पनि क प्रणय में ही स्वयंवासी हो जाने का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> कुंमा स्वयं राणा से किसी राणा के छोटे भाई नहीं घौर ३५ वय तक राज्य करते रह्ये।<sup>२</sup>

(५) मोरी के एक <sup>३</sup> में उल्लेख है—‘राणा भगत मंहारा’।<sup>४</sup> इतिहास की साक्षी है कि राणा कुंमा भगत संहारक नहीं थे वे तो स्वयं कवि थे तथा साहित्यिकों कलाकारों और नक्तों का विधाय सम्मान करते थे।

(६) इस मत का एकमात्र मूल खोज बनन टॉड का उल्लेख है। टॉड ने किसी आधार का उल्लेख नहीं किया। तत्कालीन इतिहास साधनीय और जनश्रुतियाँ धार्मिक तथा साहित्यिक उल्लेख और मोरी के पद मनी उदय पद के विरोध की व्यञ्जना करते हैं।

बैसा कि राजस्थान के प्रसिद्ध पर्वतों का अनुमान है, कुंमराम के मंदिर के मनीय के मंदिर के लिए ‘मोरीबाई का मंदिर’ नाम का प्रचलन ही टॉड की इस कल्पना का मूल आधार था। चित्तौड़गढ़ में दोनों मंदिर नाम-मात्र हैं। कुंमराम का मंदिर अजमेराज काफ़ी बड़ा है। दोनों की बनावट में कुछ साम्य है। मोरी उस मंदिर में प्रायः आठो बी घौर हमीलिए मोरी के संरक्ष के बोय उस मोरीबाई का मंदिर कहने लग्ये। बाद में उसका यही नाम प्रचलित हो गया। राणा कुंमा न ही दोनों मंदिर बनवाए थे। राणा कुंमा घौर मोरी-दोनों साहित्य और संगीत में रुचि रखते थे धार्मिक श्रुति कथे। इन बातों से अनुमान को बल दिया। जिस आज युवती से मोरीबाई का मंदिर कहा जाता है, वह बलुन धारिबराह का मंदिर है।<sup>५</sup>

कनैस टॉड ने राजा मानसिंह के राज्यकाल में राजपूताना-सम्यभारत का सर्वे किया था। इतिहास की सामग्री का सम्बन्ध यह बनन राजा मानसिंह के दरबारियों और प्रसिद्ध भाटों धारि से भी मिला था। इनमें से एक दरबारी धनुदसजी बोयी ने (गोविन्द-संबन्धी मोरी इत्ये मोरी क आधार पर ही)

(१) नागर समुच्चय नागरीशाल पुष्क १६३

(२) अजमेर राज्य का इतिहास प्रोफ़, पुष्क २७६ ३२४

(३) बाबोर की प्रति पर-सक्या ३१

(४) अजमेर राज्य का इतिहास, प्रोफ़, पुष्क ३०८-२१६

—राजपूताने का इतिहास जगदीशसिंह गहलोत, पुष्क २११-२१२

(५) चित्तौड़ कीति-मर्म का लेख छब ३१

—हरविनाय शारदा महाराज कुंमा पुष्क १४६

मरी समा में साहस के साथ 'मीरा' को गीत गोविंद की टीकाकार' घोषित किया। ऐसा कि बीर-विनोदकार का कवन है, टोंड की अधिकार सामग्री इन्हीं चारों-भाटों की बहियों या कवनों के आधार पर लिखी गई है। टोंड ने मीरा को 'गीत गोविंद की टीका' का रचयिता कहकर, समुद्रत जोशी के मत को ही बुरा दिया है। क्योंकि मीरा के 'गीत गोविंद की टीका' की रचयिता होने की कल्पना के समान ही मीरा के कुंभा-पत्नी होने की कल्पना के आविर्भाव भी यही बुझावही समुद्रतजी जोशी हैं और उन्हीं से ये दोनों कल्पनाएँ सूचनाओं के रूप में टोंड को प्राप्त हुई थीं जिन्हें उन्होंने सरस मानकर बिना आधार की चर्चा किए अपने इतिहास में अंकित कर दिया है।

### द्वितीय मठ :

दूसरे मठ का आधार जे० एन० फर्क्यूहर का उल्लेख है।<sup>1</sup> उसके अनुसार मीराबाई का विवाह राजा कुंभा के पुत्र और मेवाड़ के मुखराज के साथ हुआ था जो अपने पिता के सामने ही मर चुके थे। डॉ० फर्क्यूहर का कवन है कि उनको यह सूचना 'मेवाड़-परिवार' के 'Palace records' से जयपुर के रिबरेंट डॉ० जेम्स सेफर्ड द्वारा मिली थी।

यहाँ मेवाड़ के राज-परिवार के records के उल्लेख से इस मठ का प्रमाण अधिक पड़ता है, पर स्ट्रैटन ने मेवाड़ के स्थानीय लेखों और सूचनाओं के आधार पर बुरा ही निष्कर्ष दिया है। बीर-विनोदकार, प्रोफ़ेसर विद्याओं के समक्ष भी राज-परिवार के records ने अगर उन्होंने भी फर्क्यूहर के इस मठ से भिन्न मठ व्यक्त किया है।

इस मठ में एक बात स्पष्ट है कि मीरा के पति के सम्मान में दो किंवदंतियाँ आपस में घुल-मिल गई हैं—(१) टोंड द्वारा प्रकाशित 'मीरा के कुंभा-पत्नी' होने की (२) बेबीशान बड़वा द्वारा प्रकाशित 'मीरा के पति मीराराज के मुखराज होने और अपने पिता के जीवन-काल में ही परभोक सिंघारने की।

(1) Mirabala, a princess of the house of Merta in Jodhpur became the wife of heir-apparent to the Mewar throne, but he died before the assassination of his father the great Kumbha Rana in 1469

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है मीरा के पिता के बड़े भाई बीरमदेव का जन्म राणा कुंभा की मृत्यु के नौ वर्ष बाद हुआ था। अतः राणा कुंभा के सामने ही परमेश्वर सिंघार जाने वाले इनके पुत्र की वधू तो मीराबाई किसी प्रकार नहीं हो सकती।

राणा कुंभा का मुखराज पाटली कुमार, उदा था।<sup>१</sup> वह कटार से पिता का काम समझ करके सं० १५२३ में सिंहासन पर बैठा था।<sup>२</sup> वह राणा कुंभा के जीवन-काल में परमेश्वर नहीं सिंघारा था। राज उदा ने छोटे भाई रायमन से भारवाड़ के राजा राज जोषा की पुत्री—राय बूवा की बहन (मीराबाई के पिता की कुम्भा) का विवाह हुआ था।<sup>३</sup> उदा ने भी कुँवर बाबा राठोड़ की बेटी के साथ विवाह किया था।<sup>४</sup> मीरा राठोड़ थीं। श्री शेफर्ड महोदय 'राठोड़ की बेटी' का अर्थ मीरा समझ गए या फिर बूवा की बहन को मीरा समझ बैठे और मनवाने एक नए मत के जन्मदाता बन गए।

वस्तुतः मीराबाई चितौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज की पत्नी थीं। इस बात को प्रमाणित करने के लिए विभिन्न परम्पराओं की सामग्री उपलब्ध है। संतो के कथन साहित्यकारों के उल्लेख चारणों या माटों की बहिर्मा और स्थानीय साम्य सभी इस मत की पुष्टि करते हैं।

(१) संत परम्परा के उल्लेख—संत हरिदास के पद में स्पष्ट कहा गया है—'एक राणी गढ़ चितौड़ की।

मेकतली गिज भगति कुम्भाई भोजराज की का ओढ़ा की ॥'<sup>५</sup>

(२) साहित्यिक उल्लेख—नागरमल पुस्तकालय कलकत्ता में सुरसित रामदास भासस कृत 'भीम प्रकाश' की हस्तलिखित पोथी (रचना-काल १८३६ वि०) में महाराजा सांगा के पुत्रों की नामावली के साथ दिया गया है—

भोजराज भठो भ्रमं कुँवर पदे मृत कीच

मेकतली मीरा महल प्रेमी भगत प्रसीस'<sup>६</sup>

(१) मुहसोत नेहली की ब्यात प्रथम भाग पृष्ठ ३२

(२) उदयपुर राज्य का इतिहास, घोषा, पृष्ठ ३२४

(३) धेनुडी बाबड़ी की प्रशस्ति—बैसाख सुबि ३ बुधवार वि० सं० १३६

बंगाल एशियाटिक सोसायटी जर्नल भाग एक (१) पृष्ठ ७६-८२ में उद्धृत

(४) मुहसोत नेहली की ब्यात ३२

(५) जर्नल ऑफ राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, भाग ३ अंक १

(६) राजस्थान का पितृ साहित्य, मेनारिया पृष्ठ ३८



(१) मेवाड़ के बड़वा देवीरानजी क्यार के उल्लेख—मेवाड़ के राजवंश में बड़वा देवीरानजी की बही में मिले अनुसार उनका ( महाराणा सांगा का ) समयसे बड़ा कुँवर भोजराज (या) जिसका विवाह मेड़ते के राज बीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की बेटी प्रसिद्ध मीराबाई से हुआ था ।<sup>१</sup>

(२) इतिहासकारों की सीधें—बीर-बिनोदनार के अनुसार 'हमारे यहाँ (मेवाड़) ४ मेड़ठिया राठोहों की ४ खोपपुर की सवारीलों में मीराबाई का भोजराज की पत्नी होना सिद्ध है ।' स्ट्रैटन ने ब्रिटीश में स्वामीय सामग्री की जाँच की थी । उसका निष्कर्ष भी यही था और इसीलिए उसने टोंड की भूम का सुचार किया । एच० बी डब्लू० ने पुरातत्व विभाग की धोर से राजस्थान यात्रा का ओ बिबरण मार्क योर्नोर्जीकस सर्वे ऑफ इंडिया (सन् १८८१-८४) की रिपोर्ट में प्रकाशित कराया उसमें भी स्ट्रैटन के मत का समर्थन किया गया है ।

(३) परिस्थिति अन्य साक्ष्य—मीराबाई के पिता रत्नसिंह का जन्म संवत् १३४० के लगभग हुआ था । भोजराज के पिता राणा सांगा ने संवत् १५३३ में जन्म लिया था । अतः मीरा और भोजराज की समकालीनता में किसी प्रकार की अविश्वसनीयता का प्रश्न नहीं उठता जब कि न राणा कुंवा मीरा के समकालीन सिद्ध होते हैं और न उन्नीसवीं ।

चाहे उक्त कोई एक सोच अपने में पूर्णतः विश्वसनीय न हो पर वहाँ पर विभिन्न स्वतन्त्र ओलो की सुझाएँ एक दूसरे में मेल खाती हैं तथा परिस्थिति अन्य साक्ष्य द्वारा उन्हें समर्थन भी मिलता है, वहाँ उनके विश्वसनीय न मानने का कोई कारण नहीं है । अतः भोजराज की ही मीरा का प्रति मानना समीचीन है ।

क्या मीरा के पति भोजराज पाठवी कँवर थे ?

भोजराज के विषय में मेवाड़ का इतिहास विस्तार से कुछ नहीं कहता । एक निर्विवाद सुझाव इस इतिहास से केवल यही मिसती है कि भोजराज राणा सांगा के जीवन काल में (अर्थात् संवत् १५८४ के पूर्व ही) इस संसार की मीला समाप्त कर चुके थे । एक और उल्लेख राजस्थान के प्राकृतिक इतिहासों में मिलता है और वह यह है कि 'भोजराज राणा सांगा के ज्येष्ठ

(१) महाराणा सांगा, हरविंसाक सारवा पृष्ठ ४८

(२) बीर बिनोद, पृष्ठ ९, कुतुबोद

पुत्र य ।" इस उल्लेख के विरोधी उल्लेख प्राचीनतर ग्रन्थों में उपलब्ध हैं । अतः इस प्रश्न पर विचार कर लेना आवश्यक है ।

[१] इस सूचना का जोत बङ्गों की बहियाँ हैं जिनकी विद्रोहसमीपता भीर-विनोदकार के इस कथन से प्रमत्त है—'कर्मस टोंड ने बहुत कुछ बङ्गों की पोषियों से सटाकर नकस कर दिया है—इसलिए बहुत-सी अप्रामाणिक बातें भी उसमें धा गई हैं ।" रामदान भासम का उल्लेख संवत् १=१९ का है,<sup>१</sup> वह एक मानसिंह भीर कर्मस टोंड के समय का है ।

[२] बङ्गा देवीदान ने जो उल्लेख राणा की पत्नियों के विषय में किए हैं, उनमें इतनी अशुद्धियाँ हैं कि उन्हीं उल्लेखों को नहीं उनसे सम्बन्धित उल्लेखों को भी बिना परीक्षा किए गुप्त ग्रहण करना उचित नहीं लगता । उदाहरण के लिए—देवीदान की बही में राणा सांगा की २८ पत्नियों और उनके पितामहों के नाम दिए हैं । उनमें से कई नाम राठाड़ कुस के प्रसिद्ध नाम हैं । इतिहास की कमीटी पर कसने पर उनकी असत्यता सिद्ध हो जाती है ।

(क) अपने इतिहास-विभाग की छोध के आधार पर भीर-विनोदकार का कथन है कि 'इन महाराजा ने (राणा सांगा) जोधपुर के राजा की के पोते राज सूबा के बेटे कुँवर बाबा की तीन बेटियों से शादी की थी । ये तीनों बाबा की रानी बहवान पुष्पावती से वैवाहिक हुई थीं । बङ्गा देवीदान की सूची के अनुसार एक भी राणी बाबा की पुत्री नहीं ठहरती ।

(ख) राणा की ११ वीं रानी का नाम बम कुँवर और उस रानी के पिता का नाम 'राज सिवाजी का बेटा राज मानजी' दिया हुआ है ।<sup>२</sup>

मूहलोठ मेरुसी की व्याप्त के अनुसार बनाई या बमकुँवर कुँवर बाबा सूबाबत राठाड़ की पुत्री थी<sup>३</sup> मानजी की नहीं । भीर मारवाड़ का इतिहास इस बात का धारी है कि ये कुँवर बाबा राज जोधा के प्रपितामही और राज

(१) भीर-विनोद, पृष्ठ ३६२ । जोध, जयपुर राज्य का इतिहास पृष्ठ ३६८ सारदा, महाराणा सांगा, पृष्ठ ७७

(२) भीर-विनोद भाग १ पृष्ठ ३२३

(३) राजस्थान का पिंगल साहित्य मेनारिया, पृष्ठ ३८

(४) सूची के लिए देखिए, महाराणा सांगा, हरचिन्तास सारदा, पृष्ठ ८७-८८

(५) महाराणा सांगा, पृष्ठ ८०, कुठनोट में उद्धृत सूची से

(६) पृष्ठ ४७, 'भीर-विनोद' में भी यही बात ठीक माना गया है पृष्ठ ३७१

मूबाजी के पुत्र थे<sup>१</sup> सियाजी के पुत्र नहीं। इस बात को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि मुहम्मद ग़लबी का उल्लेख बड़ों के उल्लेखों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है।

(ग) राठोड़ जोधाजी की पुत्री बजबाई का नाम भी राछा सांगा की पत्नियों की इस सूची में है। सांगा का जन्म संवत् १५१६ वि० को हुआ था। राज जोधा संवत् १४७२ में पैदा हुए थे।<sup>२</sup> इस प्रकार सांगा के जन्म के समय जोधाजी की आयु ६० वर्ष की थी। जोधाजी संवत् १५४५ में स्वर्णवासी हुए। इसलिए अगर उनके किसी पुत्री का जन्म लगभग ७० वर्ष की आयु में हुआ हो तभी यह बात सम्भव है बरना नहीं। अगर ७० वर्ष की आयु में सन्तानोत्पत्ति की संभावना किन्तु होती है?

(घ) ऊपर के दोनों सम्बन्धों की तुलना की जाय तब तो उनकी असंगति तुरन्त स्पष्ट हो जाती है—वहके के अनुसार राछा की एक पत्नी जोधा के पीत्र (पुत्र के पुत्र) कुँवर बाघा की पुत्री थी। इसी के अनुसार, राछा की एक पत्नी जोधा की पुत्री थी। दोनों सम्बन्ध एक साथ कहाँ तक संभव है?<sup>३</sup>

इसी प्रकार रानी-सम्बन्धी कई अन्य उल्लेखों की असंगतियों के आधार पर उनकी प्रामाणिकता शिङ्का की जा सकती है। यहाँ इन विस्तारों की आवश्यकता नहीं है। उक्त विवेचन का तात्पर्य केवल इतना है कि बड़बाईबीरान की बही के उल्लेख क्रम-से-क्रम राछा की रानियों आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक और विश्वसनीय नहीं हैं। और जब रानियों के नामों आदि में इतनी बबरबस्त भूलें हैं तब जहाँ के साथ दिए राजकुमारों के जन्म क्रम को विश्वसनीय कैसे

(१) मारवाड़ का इतिहास ऐज, ११०

(२) वही, पृष्ठ ८३

(३) गीताजी का उल्लेख वही न मानें और जलकुँवर को सियाजी के पुत्र की पुत्री मान लें तो भी स्थिति लगभग वही ही होगी। मारवाड़ में दो राज सीद्दा हुए हैं। एक थे जोधाजी के पूर्वज जिनका स्वर्णवास सं० १५१० में ही हो गया था। (ऐज कृत मारवाड़ का इतिहास पृष्ठ ४०) निश्चित रूप से इनके पुत्र की पुत्री महाराजा सांगा (जन्म सं० १५१६, मृत्यु १५८४) की पत्नी नहीं हो सकती। दूसरे सीद्दा राज बूबा के भाई बरसिह के पुत्र थे। (मारवाड़ का इतिहास, ऐज पृष्ठ ६) जबकी सांगा के बसुर मागने पर संबंध इस प्रकार होया—जोधा के पुत्र बरसिह के पुत्र सीद्दा के पुत्र राज मान की पुत्री राछा सांगा की पत्नी।

माना जा सकता है।

[३] राणा सांगा का जन्म बीसाल बरी नवमी संवत् १५३६ तथा उनके पुत्र रत्नसिंह का जन्म संवत् १५३३ बीसाल बरी ८ को हुआ था।<sup>१</sup> इसका अर्थ यह है कि रत्नसिंह के पैट में थाने पर राणा सांगा की आयु १३ वर्ष और ९ महीने थी। अब अगर भोजराज को रत्नसिंह से आयु में बड़ा मानें तो यह मानना पड़ेगा कि राणा सांगा १४ वर्ष की आयु में दो पुत्रों के पिता हो चुके थे और उनके १२-१३ वर्ष पर, या उससे भी कम अवस्था में पुत्र हो चुका था। राणा सांगा की पत्नी की आयु तो राणा की आयु से कम ही क्याचित् ८-९ वर्ष की होगी। इस बात पर विचार करने से ऊपर के उल्लेख की संसत्पत्ता तुरन्त स्पष्ट हो जाती है।

[४] यह निर्विवाद है कि भोजराज की मृत्यु, विवाह के पश्चात् अपने पिता राणा सांगा के जीवन-काल में हो गई थी। यह वह कमी संवत् १६७३ और १६८४ के बीच हुई होगी। अगर भोजराज को स्पष्ट पुत्र मान लिया जाय तो इनका जन्म संवत् १५३२ (क्योंकि रत्नसिंह बीसाल संवत् १५३३ में जन्म थे) या उससे पूर्व ही मानना होगा। इस प्रकार चित्तौड़ के टीकापत्र का २१ वर्ष तक अविवाहित रहना सिद्ध होता है। उस समय चित्तौड़ के टीकापत्र का इतनी आयु तक अविवाहित रहना कल्पना के परे की बात है।

[५] मेवाड़ के महकमे तबारीत के प्रारंभ में जींच करने पर महामहोपाध्याय अचिराज सावंतदासजी ने मुंशी बेबीप्रसाद को यही सूचना दी थी कि मीराबाई 'राणा सांगा के कुँवर भोजराज' को ब्याही थी।<sup>२</sup> अचिराज के बाद उनके सहायक पं० बीरीधर धोम से निष्ठा-पट्टी करने पर मुंशी बेबीप्रसाद को यह उत्तर मिला था—“धीर सब जगह मसहूर है मीराबाई महाराणा सांगा के कुँवर बेटे भोजराज की राणी और मेड़त के राज ब्रुवाजी के बेटे राज रत्नसिंह की पुत्री थी।”<sup>३</sup>

अचिराज सावंतदास के कथन के उक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि मेवाड़ की पुरानी परम्परा भोजराज की राणा सांगा का कुँवर ही मानती थी पाटली

(१) मीराजी की कथा, पृष्ठ ४७

(२) राणा रत्नसिंह का जीवन-चरित्र मुंशी बेबीप्रसाद, पृष्ठ ४५। धोमराज परमपुर राज्य का इतिहास पृष्ठ ३८८

(३) मीराबाई का जीवन-चरित्र, पृष्ठ ९ फुटनोट—यहूसा वीराप्राक

(४) बही, कुँवर वीराप्राक

हुँवर नहीं, घोमझनी ने तो स्पष्ट लिखा था कि भोजराज दूसरे पुत्र के धीर इसकी पुष्टि में सन्तोने व्यापक (सब ओर मचहूर) रूप से प्रचलित जनश्रुति का उल्लेख किया है।

बाद में वैभीराज की स्वात के उल्लेख को देखकर इन विद्वानों ने अपने इतिहासों में भोजराज को पाटली हुँवर कहा। चूँकि भोजराज राणा सांगा के सामने स्वर्णबाही हो चुके थे अतः उनके 'पाटली हुँवर' मानने या न मानने से मेवाड़ के इतिहास में कोई समस्या नहीं उठती इतिहास के धर्म पटना-कर्मों के निर्धारण पर असर नहीं पड़ता। इसलिए इस बात की विशेष परीक्षा नहीं की गई।

राजस्थानी इतिहास के प्राचीनतम (लगभग ३०० वर्ष पुराने) ग्रन्थ शिख प्रब (जिसकी महत्ता के विषय में सर्वप्रधान तथा घोमझ के भर्तों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।) मुहम्मद गैरासी की स्वात में स्पष्ट उल्लेख है कि "रत्नसिंह डीकायत के अतिरिक्त बिकमाविस, अवयसिंह भोजराज और कर्णमाही धीर की पुत्र राणा (सांगा) के थे।" इस उद्धरण के विवेचन की आवश्यकता नहीं है। उसमें रत्नसिंह के डीकायत (भुवराज) होने तथा धर्म सामान्य राजकुमारों में भोजराज का उल्लेख इस बात का अतिरिक्त सूचक है कि रत्नसिंह (डीकायत) सबसे बड़ा या धीर धर्म (जिनमें भोजराज की सम्मिलित हैं) उसके छोटे भाई थे।

गैरासी का यह उल्लेख बड़ों के उल्लेख की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है, धीर विशेषकर उक्त दशा में जबकि राजस्थान की एक रियासत के राजा सावंतसिंह (नागरीदास) के २०० वर्ष से अधिक प्राचीन धीर स्वतंत्र परम्परा के उल्लेखों के उसकी पुष्टि होती है। नागरीदासजी ने लिखा है—“मिट्टे धीरबाई तिनकी राना के छोटे भाई तों व्याही—”

नागरीदास ने मीराबाई का जो यह उद्धृत किया है, उसमें भी मीरा धीर लक्ष्मीन राणा के सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है। मीरा राणा की

(१) मुहम्मद गैरासी की स्वात प्रथम भाग पृष्ठ ४७—इसी पृष्ठ पर एक स्वात पर धीर रत्नसिंह के डीकायत होने का उल्लेख है—“एक दिन रात्री मे डीकायत से भर्तों की कि डीकायत राणा वर्तमानत रही वरन्तु बिकमाविस और अवयसिंह जातिक है। रावरी (आपके) डीकायत धीर राज्य का स्वामी रत्नसिंह ”

(२) नागर समुच्चय पह-असंफ-माना, पृष्ठ १८३

सम्बोधित करते कहती हैं—

‘खेठ-बहू को नातो नाहीं राणाजी म्हे देखक ये स्वामी’—परि मीर के पति भोजराज राणा सांगा के प्रथम पुत्र होते तो मीर के ‘खेठ’ के वर्तमान होने का प्रश्न ही नहीं होता और उक्त छन्दरा में ‘खेठ-बहू’ न होकर ‘देवर मामी’ होना चाहिए था ।<sup>१</sup>

‘हुंवर के बोहे’ और ‘मीराबाई की परबी’ के भी मीर-सम्बन्धी उल्लेख उनके ‘खेठ और देवरो’ के वर्तमान होने की सूचना देते हैं ।

इस प्रकार यह निश्चित है कि मीर के पति भोजराज ‘खेठे हुंवर’ नहीं थे । उनसे बड़े रत्नसिंह (टीकयठ और बाव में राणा) थे ।

मीर के देवर मीर के खेठ रत्नसिंह थे । राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् ये ही बिलोड के राणा हुए । इनके पश्चात् इनके दो भाई और क्रमशः बिलोड की पत्नी पर बैठे—

(१) विक्रमादित्य—जन्म संवत् १५७४

(२) उदयसिंह—जन्म संवत् १५७९

ये दोनों मीर के विवाह के बाव जन्मे थे । परन्तु इनके मीर के देवर होने में किसी प्रकार के संदेह की गुंजायश नहीं है ।

(१) उक्त पंक्तियों में ‘खेठ-बहू’ का अर्थ बाबू बजरत्नराज ने ‘खेठ और बहू’ न लगाकर ‘खेठ बहू’ लगाया है । वे लिखते हैं—

‘महाराजा सांगा के खेठ पुत्र की पत्नी होने के कारण उसकी कुल-बधुओं में यह सबसे खेठ थी, पर पति की मृत्यु हो जाने के कारण वह उस उच्च पद से गिर गई थी । खेठ बहू का नाता ही कहीं रह गया था ।’ स्पष्ट है कि बजरत्नराजजी ने बड़वा देवीराज के उल्लेख को पूर्ण श्रद्धा मानकर उसके पूर्व के और अधिक विश्वसनीय उल्लेखों के अर्थ की खोजतान की है । ‘खेठ-बहू’ और ‘खेठी बहू’ में अन्तर स्पष्ट है । बड़ी बहू के लिए ‘खेठी बहू’ होता है ‘खेठ बहू’ नहीं ।

इससे, बहू शब्द का प्रयोग बड़े सौप-सास-ससुर, खेठ आदि करते हैं देवर ‘मामी’ शब्द का प्रयोग करते हैं बहू का नहीं ।

(२) ‘खेठ कह्यो, देवर कह्यो सास जनक समझाय’

(३) पही पंच पृष्ठ ७१

(४) उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४०१

(५) वही पृष्ठ ४०३

## वैधव्य और संघर्ष

वैधव्य शौकिक विवाह का शुद्ध मीरा के भाव्य में नहीं था, जीवन के प्रत्यक्ष में ही उनके सीमाव्य का छिन्न भुट गया। मुँबर भोजराज की बहिनो-मीला का तस्फाई में ही अन्त हो गया।

भोजराज की मृत्यु उनके पिता राणा सांगा के सामने ही हुई थी और राणा सांगा संवत् १५६४ तक ही इस लोक में थे। अतएव भोजराज की मृत्यु संवत् १५७३ और १५९४ के बीच ही कभी हुई होगी। अनुमान से उसे संवत् १५७८ के आसपास माना जा सकता है।

पद्यावली सप्तम में इस विषय में एक 'आत्मगत मीमिक' मठ रखा है। उसका कथन है कि 'उदयपुर की तबाकधित विधवा मुबराही प्रातःस्मरणीया साधनायता मीरा के कठोर संन्यस्य जीवन व उनके पदों में व्यक्त अनुभूतियों के आचार पर ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरा विधवा नहीं थीं। ऐसा लगता है कि मीरा के पदों में जिस राणा का वर्णन मिलता है, वह उनके पति ही थे। देवर नहीं—'। सप्तम जी ने जिन पदों को उद्धृत किया है, उनमें से कई लोकगीत हैं और जहाँ कथोपकथन के रूप में सिद्ध मीरा-मीला बातों के गीत हैं। दूसरे, सप्तमजी जाने या अनुमाने इस बात को मानकर चलती हैं कि मीरा कदाचित् राणा कुंभा की पत्नी थी। पिछले पृष्ठों में यह सिद्ध किया जा चुका है कि भोजराज ही मीरा के पति थे और राजस्थान के इतिहास का इस विषय में अतिरिक्त साक्ष्य है कि वे राणा सांगा के जीवन-काल में ही परलोक सिंघार गए थे। अतएव यहाँ इस बात की परीक्षा अनावश्यक है।

सती न होना पति के मरने पर राजस्थान में सती होने की प्रथा मीरा के समय में थी। शैव्य से ही पति के साथ रहने के कारण कभी-कभी तो विमोचन प्रसन्न हो जाता था और सती होते समय प्रणय और बलिदान की भावना के कारण उनको और अधिक विषय संतोष की अनुभूति होती थी पर किशोरों के सती होने का एक सामाजिक कारण भी था कि वैधव्य हिंदू नारी के लिए सबसे बड़ा अभिशाप बन गया था। विधवा का जीवन जीने योग्य नहीं रह जाता था। पति की मृत्यु के समय मीरा के सामने भी यही प्रश्न पड़्य। संभव है कि राणा सांगा ने उनसे कहा हो या भविष्य में होने वाले राणा रसलहि में संकेत किया हो पर मीरा सती नहीं हुईं। इसके लिए उनका प्रथम और द्वारका-वास का जीवन अतिरिक्त प्रमाण है। मीरा ने स्वयं भी कहा है—

‘मीरा के रंग लखी हरि को धीर संग सब घटक परी  
मिरपर गायी सती न होस्यो मन मोहयो बननामी  
बेठ-बहु को मातो माहीं राणा<sup>१</sup> बी म्हे सेवग बे स्वामी ॥’

मीरा के जीवन में संघर्ष :

मीरा के पति भोजराज अपने पिता महाराजा साँगा के जीवन-काल में ही परलोक सिपार गये थे। उसी से उनके जीवन में विपाद का प्रवेश हुआ। संवत् १३६४ तक उन्हें राणा परिवार में कोई बिसेय कष्ट नहीं हुआ क्योंकि एक दो राणा साँगा स्वयं अत्यन्त उदार और स्नेहशील व्यक्ति थे दूसरे मीराबाई के पिता रत्नसिंह भीषित थे धीरे-से राणा के अत्यन्त विद्वत्त बीर सहायकों में थे। संवत् १३६४ में पंच युद्ध १४ को बपाने में साँगा-बाबर-युद्ध में रत्नसिंह काय पाये और उसी युद्ध में घायल होने के कारण साँगा का स्वर्णवास हुआ। अतः मीरा के मौलिक जीवन में विपादपूर्ण संघर्ष धीरे-विपमताओं की कटु कहानी का संवत् १३६४ के बाद कटुतर शब्दाय प्रारम्भ हुआ। इस संघर्ष के कारण निम्न-लिखित थे—

(१) मीरा का कम यावन तथा वैधव्य मीरा में रूप, जीवन और वैधव्य तीनों एकत्र हो गए थे। यह सामंजस्य कोशों की दृष्टि में गड़ता और सर्वेह की चिनमारियों को घनायास ही जन्म देता था। संकल्प और अहंकारी राणा के लिए तो चिन्ता का विषय बन गया था।

(२) मीरा का स्वतंत्र स्वभाव मीरा के प्राणों में बड़ी शक्ति थी। उन्होंने किसी प्रकार की-कुर विपमता के सामने धीस नहीं झुकामा किसी परिस्थिति से समझौता नहीं किया। सबकी मुनी मगर की मन की। राणा ने सती होने को कहा साधुओं की संगति छोड़ने के लिए समझया मगर मीरा ने बात इस कान में मुनी और उस कान से निकल सी। अतः राणा का चिड़ जाना स्वामाधिक था।

(३) साधु-सन्तों का सम्पर्क, मीरा के स्वभाव की स्वतंत्रता भी कटुता उत्पन्न न करती यदि वे साधु-मूर्तों के संग उठती-बैठती रहें। उनका जीवन रणबासों की मानवती रात्रियों की तरह घटनाहीन (कम से कम बाहरवालों की

(१) नायरीरास ने राणा शब्द का प्रयोग किया है और वह भी मीरा के बेठ रत्नसिंह के लिए। कदाचित् उनका तात्पर्य होने वाले राणा से है।

(२) नायर समुच्चय, पञ्चमस्कंधमासा, युद्ध १६३



दृष्टि में) बीत जाता। राजकीय मर्यादा को तोड़कर जिस प्रकार मीरां सामुन्तों का संपर्क करती थी वह राज-परिवारों के लोगों को सह्य नहीं था। सामुन्तों को राज-शिक्षा देना मंदिर बनवाना एक बात है मगर उनके साथ बैठकर भजन और कभी-कभी उनकी उपस्थिति में गिरिधर के सामने नृत्य धारि करना विमलकम धन्य बात है। इससे राजकीय मर्यादा को बीत पहुँचती थी, साथ ही राज-परिवार की एक बहू के सामुन्तों से अनुचित और भ्रष्टाचार सम्बन्ध होने की चर्चा होती थी, जो राज-परिवार के बिम्बेश्वर लोगों को अपमानजनक लगती थी। यह अपमानजनक बीज और रोप प्रकृत मीरां पर ही उतरा, क्योंकि वे ही उसका मूल कारण थी।

### एक भ्रम

गुजरात में मीराबाई से राजा के सम्बन्ध होने का एक और कारण प्रसिद्ध है। अकबर बादशाह मीरां की भक्ति को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इतना ही नहीं, उसने अपने बने की कंठी मीरा को भेंट कर दी। यह बात राजा के कानों तक पहुँची। इस बातसे राजा की कोशाम्नि में धूत का काम किया। वह कबा बस्तुतः अकबर मीरां मित्र के प्रियावास बाने प्रसिद्ध सम्बन्ध का विकास मात्र है। इसी प्रबंध में यह सिद्ध किया गया है कि 'मीरां और अकबर के मित्र के प्रसंग' काल्पनिक है। अतः उक्त घटना के सत्य होने का कोई प्रमाण ही नहीं है।

(४) राजा की अनुदार नीति संवत् १५८४ के बाद जो राजा बही पर बैठे वे उनमें विष्णु विशेषकर अपनी अनुदार-अनुदार्थी नीति के लिए कुख्यात हैं। विज्ञास, झूठी धान और निरर्थक अहंकार उसकी विशेषताएँ थी। अतः पारि वारिक सम्बन्धों को उत्तम करने का कारण भी बही थे।

(५) राजनीतिक दलबंदी मीरां राजनीति के कुछ से मुक्त थी पर उनके वैयक्तिक के आस-पास का समय मेवाड़ के राज-परिवार में आन्तरिक पक्षों और राज-शक्ति की लीला-मपटी के कारण प्रतापना और प्रबंधना का काम था। ऐसे समय में अविश्वास, लंका तथा सम्बन्ध आकांक्षाधीन पक्षों के अनिर्धार्य लंका बन जाते हैं। राजा साँचा के समय में ही राजिनों में दो-बर्ग अत्यन्त सक्रिय थे। एक का हाड़ा राज नर्वह की पुत्री करमेटी (कर्मवती) और उसके भाई सूरजमल का और दूसरा पाटवी कुँवर रत्नसिंह की माँ और छोटी राज सुजायत की पुत्री बनवाई (बनवाई) का। इनमें अविश्वास इस सीमा

तक पहुँच गया था कि करमेठी राणी ने अपने दो पुत्रों (बिक्रम और उग्र) के लिए राणा से धनग जागीर माँगे थी और रत्नसिंह के राधा होने पर अपने एक विरहस्त संबंधी—मरशार अलोक द्वारा बाबर तक की सहायता से रत्नसिंह को अपदस्त करने के लिए पद्धत रचने का प्रयास किया था ।

रत्नसिंह का प्रयत्न भी यही था कि किसी प्रकार करमेठी और उसके भाई मुरजमत को समाप्त करके रणधमार को फिर अपने हाथ में ले लायें और इसी प्रयत्न में स. ११८८ में उसकी मृत्यु हुई ।

मीराँ जमी राठोड़ परिवार की थी जिसकी कि राणा रत्नसिंह की माँ । अतएव करमेठी राणी उनको भी राठोड़ बंस का एक अंग मानती थी । उनके प्रति जनता का प्रशंसात्मक भाव और अज्ञा परिवार की साम्प्रतिक राजनीति में फैली हुई दानिमी और उनसे संबंधित व्यक्तियों को शकानु बना बटी थी और वे किसी न किसी बहाने मीराँ को समाप्त कर देना चाहते थे । मीराँ को मारने का सुला प्रयत्न करमेठी के पुत्र राणा बिक्रम भी नहीं कर सके और मारने के चमक प्रयत्नों के बावजूद मीराँ बची रही । इससे पता चलता है कि राज-परिवार में मीराँ के प्रसंसक, दाम्भितक और सहायक थे जो मीराँ की रक्षा के प्रति प्रकट या अप्रकट रूप से सतक थे । उदयसिंह के समय में इस स्थिति में परिवर्तन आ गया था पर इनके बहुत पूर्व ही मीराँ बिलोप होइ चुकी थी ।

यहाँ इस बात के उल्लेख का आशय केवल यही है कि मीराँ और राणा के विरोध का कारण राजनीतिक संबंधी भी बहुत कुछ पड़ों में थी ।

मीराँ के साथ समुदाय में हुए संघर्ष के तीन चरण थे —

- (१) विवाह के पश्चात् भोजराज की मृत्यु तक
- (२) पति की मृत्यु के पश्चात् राणा माँगा की मृत्यु के पूर्व तक
- (३) राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात्

प्रारंभिक संघर्ष का एक रूप जनशास और प्रियावास की टीकाघों में मिलना है । जनशक्ति संप्रदायिक भावना से प्रेरित होकर तत्सम्बन्धी उल्लेख किए गए हैं । जनशास के अनुसार मीराँ विवाह के बाद जैसे ही समुदाय में पहुँचती हैं वैसे ही यह बटका बटती हैं । माँ (मीराँ की माय) अपने लुट से भाठा (देवी) की पूजा कराती हैं, फिर बहू ने पूजा के लिए कहती हैं मगर बहू का उत्तर है— सीस नई मम की गिरिधारिणी, घान न मानत माय बही है ।

दृष्टि में)। बीठ जाता। राजकीय मर्यादा को तोड़कर जिस प्रकार मीरा साधु-संतों का संपर्क करती थी वह राज-परिवारों के लोगों को सहा नहीं था। साधुओं को दान-वस्त्रियाँ देना मंदिर बनवाना एक बात है मगर उनके साथ बैठ-कर मजन और कभी-कभी उनकी उपस्थिति में गिरिधर के सामने गृथ प्रादि करना बिल्कुल भलग बात है। इससे राजकीय मर्यादा को तोट पहुँचती थी, साथ ही, राज-परिवार की एक बहू के साधुओं से अनुचित और धर्मिक सम्बन्ध होने की चर्चा होती थी, जो राज-परिवार के बिम्बेदार लोगों को अपमानजनक लगती थी। वह अपमानजनक चीज और 'रोष घंटत' मीरा पर ही उतरा क्योंकि वे ही उसका मूल कारण थीं।

### एक प्रश्न

मुबारक में मीराबाई से राजा के सम्बन्ध होने का एक और कारण प्रसिद्ध है। अकबर बाघसाह मीरा की भक्ति को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इतना ही नहीं, उसने अपनी बत्ते की कंठी मीरा को भेंट कर दी। यह बात राजा के कानों तक पहुँची। इस बातने राजा की कोबालि में बृत्त का काम किया। यह क्या वस्तु! अकबर मीरा भित्ति के प्रियादास वाले प्रसिद्ध उल्लेख का विकास मान है। इसी प्रबंध में यह सिद्ध किया गया है कि 'मीरा और अकबर के भित्ति का प्रबंध' काल्पनिक है। भूत उक्त घटना के सरय होने का कोई प्रमाण ही नहीं है।

(४) राजा की अनुदार नीति संवत् १५८४ के बाद जो राजा नदी पर बैठे थे उनमें बिक्रम विशेषकर अपनी अनुदार-अदूरदर्शी नीति के लिए कुख्यात हैं। बिकास झूठी छान और निरर्थक अहंकार उसकी विशेषताएँ थीं। भूत पारि वारिक समस्वामी को उल्लंघन का कारण भी बड़ी थे।

(५) राजनीतिक दृष्टिकोण मीरा राजनीति के कुछ से मुक्त थी, पर उनके वैचर्य के दास-वास का समय मेवाड़ के राज-परिवार में आन्तरिक पक्षधरों और राज-शक्ति की भीमा-सपटी के कारण प्रसारना और प्रबंधना का काम था। ऐसे समय में अधिराज, राजा तथा समूह प्राकाशाधीन पक्षधर-कारियों के अधिबार्ध संगी बन जाते हैं। राजा सांगा के समय में ही राजियों में दो-बर्ध आत्यन्त सक्रिय थे। एक या हज़ार राज नर्बध की पुत्री करमेटी (कर्मवती) और उसके भाई सूरजमल का और दूसरा पाटवी कुँवर रत्नसिंह की माँ और राठोड़ राज नृबाध की पुत्री भगई (भगवाई)<sup>१</sup> का। इनमें अधिराज इस सीमा

(१) मुहम्मद नैयसी की कथा के आधार पर

तक पहुँच गया था कि करमेटी रानी ने अपने दो पुत्रों (बिक्रम और उदय) के लिए राजा से अलग जागीर माँगी थी और रत्नसिंह के राजा होने पर अपने एक विरहस्थ संबंधी-सरदार अयोध द्वारा बाबर तक की सहायता से रत्नसिंह को अपदस्थ करने के लिए वध्यंत्र रखने का प्रयास किया था<sup>१</sup>।

रत्नसिंह का प्रयत्न भी यही था कि किसी प्रकार करमेटी और उसके भाई सूरजमल को समाप्त करके रघुवंशोर को फिर अपने हाथ में ले लाये और इसी प्रयत्न में सं० १५८८ में उसकी मृत्यु हुई।

मीराँ उन्हीं पठोड़ परिवार की थी जिसकी कि राजा रत्नसिंह की माँ। अतएव करमेटी रानी उनको भी पठोड़ बंस का एक संघ मानती थी। उनके प्रति जनता का प्रसंसारक भाव और अछा परिवार की आन्तरिक राजनीति में फैली हुई रानियों और उनसे संबंधित व्यक्तियों को शंकासु बना देती थी और वे किसी न किसी बहाने मीराँ को समाप्त कर देना चाहते थे। मीराँ को मारने का कुला प्रयत्न करमेटी के पुत्र राजा बिक्रम भी नहीं कर सके और मारने के अनेक प्रयत्नों के बावजूद मीराँ बची रहीं इससे पता चलता है कि राज-परिवार में मीराँ के प्रसंसक दुर्भावितक और सहायक थे जो मीराँ की राजा के प्रति प्रकट या अप्रकट रूप से सतर्क थे। उद्यमसिंह के समय में इस स्थिति में परिवर्तन आ गया था, पर इसके बहुत पूर्व ही मीराँ बिछीड़ छोड़ चुकी थी।

यहाँ इस बात के उल्लेख का आशय केवल यही है कि मीराँ और राजा के विरोध का कारण राजनीतिक दलबंदी भी बहुत कुछ संघों में थी।

मीराँ के साथ सूरजमल में हुए संघर्ष के तीन चरण थे —

- (१) विवाह के पश्चात् भोजराज की मृत्यु तक
- (२) पति की मृत्यु के पश्चात् राजा सांगा की मृत्यु के पूर्व तक
- (३) राजा सांगा की मृत्यु के पश्चात्

प्रारंभिक संघर्ष का एक रूप जनशास और त्रियाशास की टीकाओं में मिलता है। क्याचित् सांप्रदायिक भावना से प्रेरित होकर तत्सम्बन्धी जल्पेक किए गए हैं। जनशास को अनुसार मीराँ विवाह के बाद जैसे ही समुदाय में पहुँचती हैं वैसे ही यह बटना बटती हैं। 'माँ (मीराँ की शास) अपने सूत से माता (बेटी) की पूजा कराती हैं फिर बहू से पूजा के लिए कहती हैं अगर बहू का उत्तर है— 'सोस नई मम भी गिरिधारिणि, धान न मानत नाय बही है।

(१) मुमुके बाबरी धंधेजी अनुवाद, पृष्ठ ११९ १३

उदयपुर राज्य का इतिहास, घोसा, पृष्ठ ३८६

क्याचित् जगत बटमा वैष्णवों और शैव-शाक्तों के विरोध से जन्मी कहा है। मीरा के बाबा बुवाजी परम् वैष्णव थे परन्तु उन्होंने देवी के मंदिर की भी स्थापना की थी और वे चतुर्भुजाजी के साथ देवी की पूजा भी करते थे। उनकी देख-रेख में पली हुई मीरा बारह वर्ष की आयु में ही पति के घर में पहली बार जाकर इस प्रकार का दर्शन कर सकी है यह बात संभव नहीं प्रतीत होती। इससे केवल इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि मीरा अपने जीवन में ही परम वैष्णव के रूप में प्रसिद्ध हो गई थी। शाक्तों को भीषा दिखाने के लिए वैष्णवों ने उनकी कीर्ति का इस प्रकार दुरुपयोग किया।

विवाह के कुछ समय बाद जब मीरा विधवा हो गई और उन्होंने अपने सन को पूर्णतः गिरिधर में लगा दिया तथा साधु-संतों के संपर्क में आने लगीं तब वास्तव में उनका जीवन-संघर्ष प्रारंभ हुआ। इस संघर्ष का निष्कर्ष जर्मन लोकगीतों और कथाओं में मिलता है, जिसकी निश्चयनीयता सीमित है। उनमें अनेक सातों की शिकायत अनेक ननियों की गाराखी और समझाना-बुझाना और अनेक बहुओं की व्याधाओं का वर्णन मीरा के प्रसंगों में जुड़ गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मिलान करने पर पता चलता है कि यह संघर्ष सामान्यतः मीरा और राजा के परिवार के लोगों में और विशेष रूप से (प्रबल रूप से जो जनता के सामने आता) मीरा और राजा के बीच में था।

संवत् १५५४ से पूर्व के संघर्ष में मीरा के विरोधी थे राजा राजी और पाटवी कुंवर। वे मीरा को बरबसे थे कि बड़े घर की लार होकर साधुओं के पाठ मत बैठो तानी बजा-बजाकर भोगों के सामने मृत्यु मत करो नसे में मांस घासि पहनकर अपना भोग मत बिगाड़ो। वे राजा मीरा के समुद्र महाराजा सांगी ही थे मगर वे राजी कौन थी इसका पता लगाना कठिन है। देवीदान की स्मृतियों के अनुसार महाराजा के २८ रानियाँ थीं। सभी मीरा की सासैं थीं। हो सकता है कि यहाँ तात्पर्य भोजराज की माँ सोमकी रायमल की पुत्री कुंवरबाई या कुंवर पाटवी टीकायत रत्नसिंह की माँ बाबा सुजायत की पुत्री बनाई से हो। कुंवर पाटवी वो निश्चित रूप से टीकायत रत्नसिंह ही थे। परन्तु जैसा कि पीछे कहा गया है संवत् १५५४ तक यह संघर्ष सामान्य रहा। राजा सांगी की मृत्यु के पश्चात् इसने उग्र रूप धारण कर लिया।

## विव-दान

नागरीबास का कथन है कि 'मीराबाई साँ राजा बहीत दुख पाय रहे। राजा के घर की रीति उनकी भिन्न रीत यह समयत सम्बन्ध सत्यसंग विशेष करे,

देह-सम्बन्ध की जाती व्यवहार कछु न मानी राना बहुत समुत्साह रखी। निदान एक बिप की व्याप्ति इनको पठथो कछी चरनामृत की माम से के बीबियो उनसे प्रम है। चरनामृत के नाम से ही ही जार्येमे सो एसी ही मयो, जानि बूझि पियी राना तो इनके मुँह की यह देखत रह्यो उत यह शांम मृत्यु संग सेके परम रंग ही एक नयो पद बनाय ठाकुर धार्ये मावत मये पय बहुत प्रसिद्ध मयो —<sup>१</sup> भीरों बाई की बिप सेने की जिस चन्ना की धोर नागरीदास ने संकेत किया है वह भीरों के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना है। तगमय सभी प्रकार के सन्तों और भक्तों के उल्लेखों तथा इतिहासों में इस घटना को स्थान दिया गया है। गुजरगुटी कवि बिष्णुदास ने अपनी संवत् १६२४ २५ के बीब की इति कुंबरबाईन् मोसाळु में भरसिहमेहता हाउ इस घटना का उल्लेख करवाया<sup>२</sup> और भीरों के समकालीन महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत एकनाथ ने भी कहा — “बिप पिती भीरोंबाई साठी।”<sup>३</sup> इस बात को कबीर पंथी संत गरीबदास भी कहते हैं<sup>४</sup> और चैतन्य संप्रदायी भक्त प्रियादास भी<sup>५</sup> इनके अतिरिक्त हिन्दुहरिबंगी संप्रदाय के भ्रुवदास बाबू पंथी राबोदास ब्रह्मान तथा चरणदासी बयाबाई आदि विभिन्न संप्रदाय के अनेक सन्तों और भक्तों ने भी उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त विवरण आध्यात्म के आधार नामक आध्याय में दिए जा चुके हैं।

भीरों के पदों में भी इस बात को अनेक बार और अनेक कियों में कहा गया है —

- (१) “राई नू बिप बीनो हम जानी।  
आनबूझि चरनामृत मनि पीयी महि बीरी बीरीनी।  
कंचन कसत कसीटी जैसे तन रह्यो बाछ बानी।  
भीरों प्रभु मिरिचर नामर के चरन कमल लपटनी।”<sup>६</sup>
- (२) झोरों री मिरचर गोपाल दूनरों न कूया।  
दूसरा ना कोया साया सकन सीक जूया।

- 
- (१) नामर समुच्चय पद्यसंगमाला, पृष्ठ १६३
  - (२) ‘भीरोंबाई ने बीब चन्नीत शरे, चरन राख्य पीते आपने’
  - (३) सफल श्रीसंतपावना-श्री एकनाथ यात्री भाषा पृष्ठ १६८
  - (४) पंथ साहिब धर्यात् सद्गुरु की गरीबदासजी की बानी पृष्ठ ८६
  - (५) भक्ति रस बोधिनी बीका, कविता संख्या ६
  - (६) पद्यसंगमाला, भीरों सम्बन्धी दूसरा प्रसंग

राजा बिपरो प्यासा भेज्या पीव भयन ह्यो ।

मीरा री लभन सम्पा होबा होय ह्यो ।—<sup>१</sup>

(१) धामरे रंग राखी, नोबान रंग राखी ।

कहो सखी किसिके सुदूँ मई सुमर की माची ।

काहो मयो बेखु जे हेर ब बीगो महीं नेह सुकापी ।

भीरां मभु गिरबर जागत जुठी के याची—

अतः यह एक निर्विवाद सत्य है कि राजा ने भीरां के लिए बिब का प्यासा भेजा था वे इस बिब के प्यासे को पी गई थी और कदाचित् जान-बूझकर पी गई थी, क्योंकि वह चरनामृत के नाम से दिया गया था । भीरां ने जीवन का सर्वस्व जिसके चरनों में भौतिक दमन के भाव से प्रेरित कर दिया था उसके चरनामृत के नाम से था कुछ भी भीरां को मिलता वह उन्हें अप्राप्त कैसे होता ?

बिब का फल

बिब-पान का प्रभाव भीरां पर वैसा नहीं हुआ जैसा प्रायः होता है । कुछ लोगों का कहना है कि इस बिब से भीरांबाई का शरीरपात हो गया<sup>२</sup> परन्तु बिब के प्रभु हो जाने की व्यापक बर्षा से यह स्पष्ट है कि वे इस बिब से मरी नहीं । बिब-पान की बटना का उल्लेख करनेवासे भीरां के कई पद मिलते हैं । अगर वे बिब की ज्यादा से मर गई होतीं तो इन पदों की रचना न कर सकतीं । इतना ही नहीं, नागरीबास द्वारा उद्धृत पद में तो उन्होंने स्पष्ट कहा है—

“जानि बूझि चरनामृत सुनि पियौ नहि बीरौ मीरानी

कंचन कसत कसौटी जैसे उन रह्यो बारह बानी—”

और उसके जाने यह कहते हुए भी नहीं भूलें कि ‘घापुन विरिबर म्याव कियौ यह जाम्बी भुष ब पानी ।’

इस बिब से वे कैसे बचीं यह पता नहीं है । इसका कारण बिब की साधा रचना, भीरां या उनके किसी सुमेध की चतुरता या जैसा कि अक्ष मानते हैं (भाव विज्ञान इसे स्वीकार नहीं करता) उनकी भौतिक शक्ति का सहज परिणाम था । इसी परिवार में राजकुमारी दुष्मा को भी बिब दिया गया था । पहली बार वे बिब की ज्यादा से मर गई, दूसरी बार बिब बिबपी हुआ और उनका

(१) डाक्टर की प्रति, यह संख्या १

(२) भीरांबाई का जीवन-चरित्र, मुंशी बेबीप्रसाद, पृष्ठ १४

स्वयंवास हो गया। बिप से बच जाने कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सभी बिप सदैव प्राणांतक सिद्ध नहीं होते।

इस बिषय में मक्कों में प्रचलित है कि मीराबाई के बिप-यान की घटना से कृष्ण की मूर्ति नीली हो गई थी।<sup>१</sup> इस बात को ध्यान में रखकर कृष्णजी की कुछ मूर्तियों का निर्माण भी हो गया है। शिवराजपुर की मूर्ति इसका अच्छा उदाहरण है। यह बात समर्थ भगवान की भक्तबलसत्ता के प्रति तर्कहीन अगाध विश्वास और खरब कल्पना पर आधारित है इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। संसार के हर व्यापार को कृष्ण-निर्वहित माननेवाले सगुण भक्त के लिए मीरा के बिप पीकर भी बच जाने का प्रत्यक्ष कारण इससे अतिरिक्त और कुछ मानना स्वभाविक भी नहीं है।

यह बिप मीरा को किस उपाय दिया इस बात का निर्णय परिस्थिति द्वारा की गई स्वयंवा के आधार पर ही किया जा सकता है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई विवरण स्पष्ट छत्सेछ उपलब्ध नहीं है।

जैसा कि हमी कहा जा चुका है मीरा के जीवन में संपूर्ण विषय रूप से संवत् १५६४ के परचात् सीव और कट्टु हुआ।

संवत् १५६४ के परचात् मीरा के जीवन-काल में चित्तीड़ की गद्दी के स्वामित्व का मत-कर्म से विवरण इस प्रकार है—

(१) रामा रामसिंह <sup>२</sup>	संवत् १५८४ माघ सुदी १५ वि० गद्दी
	संवत् १५८८ मृत्यु

(१) 'मीराबाई बेरिच' - ५५ बी छंद ' मूर्ति शाली मिली बेबाजीबी ' गुह्यार्ततवादी काँस्ट्रोमी बासी श्री कण्ठमणि शास्त्री ने लेखक को बताया कि कृष्ण की मूर्ति को नीले होने की बात बल्लभ संश्रयाय भेजी प्रचलित है। चूँकि मीरा ने बिप-यान द्वारा कृष्ण की कट्ट दिया था इसलिए मीरा लाष्टि है। बल्लभ-संश्रयाय में मीरा के लाष्टि होने का कारण तो इतरा ही या प्रस्तुत कारण वस्तुतः बल्लभ-दर्शन के आधुनिक तत्कालीन पंडित की कल्पित इसील है।

(२) सीमा-उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३८५-४२२  
होर्ड ने रामसिंह की गद्दीनशीनी संवत् १५८९ में और बेहान्त संवत् १५९१ में माना है, पर वे सिमिया राजस्थानी इतिहास की अन्य घटनाओं से मेल नहीं खाती। अतः स्वीकार्य नहीं है।



(२) राजा विक्रमादित्य (विक्रमाजीत) संवत् १३८८	यही
संवत् १३९३	मृत्यु
(३) बलबीर संवत् १३९३	गद्दी
संवत् १३९८ मारा गया था भाय मया	
(४) राजा उदयसिंह संवत् १३९७	यही
संवत् १६२८ फागुन सुदी १३	मृत्यु

स्पष्ट है कि इन्हीं में से किन्हीं राजानों की मीरा को विप बिया या बिलबाया होना।

इसमें से बलबीर महाराजा राममल के सुप्रसिद्ध कुँवर पुष्पीराज का अनोरस (पासवानिया) पुत्र था और महाराजा विक्रमादित्य के प्रीतिपात्रों से मिलकर उनका मुसाहिब बन गया था। वि० सं० १३९३ में एक दिन उसने महाराजा को जो उस समय १६ वर्ष का था अपनी सभवार से मार डाला और निष्कण्टक राज्य करने की इच्छा से उदयसिंह का भी बध करवा बाहा।<sup>१</sup> उदयसिंह अपनी स्वाभि-  
मक्ता बाम पन्ना के त्यागपूर्ण चातुर्य के कारण बच गया और संवत् १३९७ में सरदारों की सहायता से पुनः अपने पैतृक राज्य का स्वामी बना।<sup>२</sup> यद्यपि बल-  
बीर ने अपने को भी राजा बलबीर<sup>३</sup> के नाम से नोपित किया था परन्तु मेवाड़ के राज्य-परिवार और छामत-बर्ग ने उसे यह सम्मान नहीं दिया था। वे लोग मजबूती समझकर उसके साथ खानपान का स्वच्छंद सम्बन्ध नहीं रखते थे। मेवाड़ के इतिहासों में भी बलबीर के राज्यकाल का विवरण उस रूप में नहीं है जिस रूप अन्य राजाओं का है। उसका उल्लेख राजा-राज्य-परंपरा की शृंखला के रूप में कम शृंखला के टूटने के रूप में अधिक माना गया है। फिर बलबीर को राजा के परिवार की स्थिति की वैयक्तिक नीति से कोई संरोकार न था वह तो राज नीति के मंच पर सहसा धूमकेतु की तरह उदय होकर विभीषण हो गया।

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास, घोसा पृष्ठ ४०१

(२) वही, पृष्ठ ४०४

(३) बीर बिनीद, भाग २, पृष्ठ ६२-६३

(४) बलबीर द्वारा बलापुत्र पट्ट सिककों पर यही लेख मिलता है राजपुताने का इतिहास, पहलोत पृष्ठ २९७, व करौलीख दाँव राजपुताना, वीर, पृष्ठ ७

राजा रत्नसिंह ने मीरां को बिप दिया होगा इसकी सम्भावना बहुत कम ही है। कारण इस प्रकार है—

(१) बिप की वज्रा मीरां-राजा विरोध की वरम मीमा थी। इसी के कारण मीरां ने पिछोह छाया था। इस विरोध और मर्म के परिपक्व होन में कुछ समय अवश्य लगा होगा। रत्नसिंह ने केवल मर्मात् ११८४ से मर्मात् ११८८ तक राज्य किया था। उसके पश्चात् विजय राणा हुआ।

(२) जिस दिन ये बहू यहीं पर बैठा था उसी दिन से उसके मन में रत्नसिंह की आगीर को मिटाने की चिन्ता लग गई थी। धार्मिक कुचकों में बहू इतना लीन नहीं था। अपने छोटे भाइया (विजय और उदय) के हाथ में रत्नसिंह की १०-१० लाख की आगीर का होना उस बहुत प्रचुरता था क्योंकि वह उसकी धार्मिक इच्छा के विरुद्ध था। उदर हाडी कर्मवती (रत्नसिंह की पत्नी की विजयादित्य तथा उदयसिंह की माँ) विजयादित्य का मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी जिसके लिए उसने मुरखमल म बागबीठ कर बाहर को अपना महात्म्य बनाने का प्रयत्न रखा।<sup>१</sup> इस मुरखमल का लम्बुबंक मारने के लिए राजा रत्नसिंह ने अपने चार वर्ष के राज्य-काल का बहुत-सा समय मर्मात् कर दिया और अन्त में विजयादित्य मर्मात् ११८८ में इस राजा का दहान इसी मर्म में हो गया।<sup>२</sup> इस प्रकार राजा रत्नसिंह के अपने अन्य राज्य-काल में चित्तोड़गढ़ के धार्मिक पारिवारिक पक्षों और कुचकों में पड़ने की अधिक संभावना नहीं रह जाती।

(३) मीरां का रत्नसिंह द्वारा बिप न दिए जान की जान इसलिए भी सही प्रतीत होती है क्योंकि रत्नसिंह का मीरांबाई से अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक निकट का सम्बन्ध था। रत्नसिंह जाया के पीछे मुजाबत जाया की पुत्री पनाई में लग्न हुए थे। मीरां इन्हीं जायराज के पीछे रत्नसिंह की पुत्री थी। इस तरह रत्नसिंह की माँ और मीरां मकरम एक ही राटोड़ परिवार की थीं वरन् दूर के रिश्ते की बहिन भी थी। फिर, मीरांपुर की धार्मिक राजनीति में मीरां

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास प्रोफा, पृष्ठ १८८

(२) वही, पृष्ठ १८८

(३) वही, पृष्ठ १८१ बहने-मातों की क्पातों तथा अमर काव्य में इस प्रस्ता का संवत् ११८७ दिया है।

रत्नसिंह की माता के राठोड़ गुट की मांगी जाती थी। अतः इनमें भीरों के लिए सहृदयता, प्राथमीयता और सम्भावना विरोधी गुट की रागियों विरोधकर करमेठी और उसके पुत्रों की अपेक्षा अधिक थी।

(४) इसके प्रतिरिक्त रत्नसिंह अपने पराक्रमी पिता-बाँया की तरह बीरोचित गुणों से पूर्ण थे। 'रण में जाना उन्हें पसन्द था, पर साथ ही वे शांति-प्रिय भी थे। वे भीड़ा बोलते थे 'शंकाधीन नहीं, विस्वासी प्रवृत्ति के थे।'

भीरों ने अपने पक्षों में राजा द्वारा बिध देने की घटना के उत्तेज के साथ राजा की दो विरोधताओं (दोषों) पर विशेष बल दिया है — (१) राजा भयत संभारा (२) मूरखान सिंघासन राजा।<sup>१</sup> राजा विक्रमादित्य के विषय में राजस्थान का इतिहास लयमय इसी प्रकार की बातें कहता है।<sup>२</sup> उसमें मूर्खता, निर्दयता और अविश्वासपूर्ण दुष्टता कूट-कूट कर भरी थी। बिध देने के लिए क्रूरता और क्रूरता की आवश्यकता है वह विक्रमादित्य में पूर्णतः वर्तमान थी। दूसरे बिध देने की घटना राजा-भीरों संबंध की चरम सीमा थी, जिसके उत्पन्न होने में कुछ समय तो लगा ही होगा। यह बात भी विक्रम के राज्यकाल में ही संभव थी। तीसरे, विक्रम की माँ करमेठी भीरों को अन्त-पुर में बसे अपने राजनीतिक सभुबल (राठोड़) का स्तंभ मानती थी जो उसकी महत्वाकांक्षाओं की सबसे बड़ी बाधा थी। अतएव भीरों को बिध देने या बिलबाने वाला करमेठी-पुत्र राजा विक्रम ही बिध होता है।

बिध देने के कुछूरय में दो व्यक्तियों के नाम भीर संबंध हैं —

- (१) बिध लानेवाला (साकर भीरों की देने वाला) दयालम पंजा।
- (२) भीरों को बिध देने के लिए महाराणा को 'सत्कार' देनेवाला बीजा-बर्षी जाति का महाजन मुसाहिब।

(१) राजपूताने का इतिहास पहलीत, पृष्ठ २५४

(२) जयपुर राज्य का इतिहास ओसा, ३२४ ४०१

"शासन के यह बिलकुल अयोग्य था। — अपने छिछोरेपन के कारण यह सरदारों की जिल्ली उड़ाया करता था—महाबुरखाह की चत बड़ाई से भी महाराणा का नामचलन कुछ न सुबरा — महाराणा अपनी बाल्य-वस्था एवं कुरी संवर्ति के कारण अपना बालचलन न सुबार सका।" इत्यादि।

दयाराम' का सम्पन्न मीरा-छात्र के एक घर में है। और बीजावर्गी मुसाहब के सम्पन्न के पीछे राजस्थान की एक बहुत बलवती जनमुक्ति है। जो स्वयं बीजावर्गी जाति के लोगों में बनी था रही है और जिस एक साक्षात्कार के रूप में व्यक्त और पूर्ण करके जनता ने अपना प्रत्यक्ष समझन भी प्रदान किया है। जनमुक्ति इस प्रकार है— 'बीजावर्गी जाति का मुसाहब रामा का सहाकार था। उसने रामा को मुसाया कि मीरा का प्रन्थ बिप बेकर सरमता से ही सकता है और उनके भाव उनके कारण सम्पन्न समझाएँ स्वयं समाप्त हो जावेंगी। मुसाहब के साथ उसने इस काम की जिम्मेवारी स्वयं की और मीरा का बरलामुत क नाम से बिप र दिया। मीरा को यह बात तुरन्त ज्ञात हो गई और उन्होंने उन बीजावर्गी को धान दिया कि जिस भाषा के लिए तुम यह दुष्कर्म किया है वह तेरे दुःख में न रहेगी और सब रहेगी ता उसे भागनेवासी मजान नहीं हानी। मेवाड़ के बीजावर्गी बनियों की दुरवस्था का कारण यही धान मान्यजता है। भारवाड़ के बीजावर्गियों में भी धनी तक यह विश्वास फैला है कि उनकी बन-जन की जो हानि होती है वह मीराबाई के धान का ही परिणाम है। राजस्थान में प्रचलित है कि—

‘बीजावर्गी बनियो दुवा घुमर मीड़  
तीको मिन ओ ताहयो करे टारो जोड़’

(यदि बीजावर्गी बनिया घुमर घुमर मीड़ तथा तीमर रायभावाह्वन पापस में मिस जायें तो पूरा घर जीपट कर दें।) इससे बीजावर्गियों की कृत्ता और जासाकी के विषय में साक्ष्य ज्ञात हो जाता है।

बीजावर्गी लाभ प्रधानता चाहें हैं इनमें बिष्णु क उपासक बहुत पड़े हैं। हो सकता है मीरा को बीजावर्गी द्वारा बिप देने की जनमुक्ति का आधार दीर्घ तथा बेव्यक्त का प्राप्ती न्यय हो। यह भी संभव नहीं है कि ईश बीजा-

(१) मीराबाई की राज्यावली, पृष्ठ १७, शब्द ३२

एक मीरा-छात्र का घर है—

सांसोधा रामो प्यामो भूने क्यु पठायो।

मर्ती कुरी तो न नहि कौनहीं राधा क्यु है रिमायो।

कनक कजोरे न बिप घोस्यो दयाराम पंडो लायो।

मीरा कहै प्रभु गिरिधर नापर जून की बिहुर बड़ायो।

(२) बीजावर्गी भद्रजन व्यवसायी जाति के हैं। ये रथ देखते हैं। ये सोप जपपुर के हलाते के रथपंथोर स्थान से भारवाड़ आते थे।

(३) मीराबाई का जन्म, मुंछी बेबीप्रसाद, पृष्ठ १३

बर्मी ने वैष्णव भीरों के मरवाने में यीश्व दिया हो। भीजावर्गियों में प्रचलित जन-  
श्रुति धार्मिक विश्वसनीय है क्योंकि उसमें अपने एक पूर्वज के अपराध की स्वीकृति  
है और प्रायः अनुश्रुतियों के जन्मदाता अपने निरक्ष जनश्रुतियों को जन्म नहीं देते।

भीजावर्गियों के अनेक बस राजस्थान में हैं जैसे परबा खोटेबा नामकमान  
सिद्धान्त इत्यादि।<sup>१</sup> यह अनुश्रुति नहीं बताती कि भीरों के विष-पात की घटना  
से किन्तु बंश के भीजावर्गों का सम्बन्ध था।

अब प्रश्न उठता है कि भीजावर्गों और दयारामपंथा का क्या सम्बन्ध  
है? भीजावर्गों व्यवसायी जाति है जो वैश्यों के अन्तर्गत आती है, पंथा शास्त्र  
होते हैं। कोई पंथा भीजावर्गों नहीं होता। अतः भीजावर्गों सम्राट् दयाराम से  
भिन्न व्यक्ति थे। अमरदुसरा उल्लेख भी सत्य माना जाय तो बात यों हो सकती  
है कि भीजावर्गों ने राधा को सम्राट् हो और स्वयं इस काम को दयाराम पंथा  
द्वारा कराया।

### अन्य घटनाएँ :

नाग-प्रसंगा विष के प्रतिरिक्त नाग-प्रसंग का उल्लेख भी अनेक लेखकों  
ने किया है।<sup>२</sup> कहते हैं कि एक दिन राजा ने एक डिब्बे में काला नाग बन्द करके  
किसी दासी के हाथ यह कहकर भिजवा दिया कि इसमें श्री सासिबराज की अपूर्व  
मूर्ति है। अट भीरों ने बड़ी अज्ञा मति से उस डिब्बे को से मस्तिष्क से लगा लिया,  
और अ्योंही सोता तो अचानक में उस डिब्बे के अंदर विष्य सासिबराज की मूर्ति  
निकली। इस बात के पक्ष में भीरों-छाप के कई पत्र भी उद्धृत किए जाते हैं।<sup>३</sup>

(१) राजस्थान की जातिपट्टी, बजरंगलाल मोहिया, पृष्ठ १६२

(२) भीरावबाई भा० नि० मेहता, पृष्ठ ४७-४८

भीरावबाई की प्रभावशाली और जीवन-चरित्र से० प्रे० जीवन-चरित्र, पृष्ठ ४  
श्री कार्तिकप्रसाद खत्री, भीरावबाई का जीवन-चरित्र पृष्ठ १८

(३) साँप पिटाये राधाजी भेड़ों, भीरों हाथ दियो जाय  
हैंत-हैंत भीरों बंठ लगायी यो झूरे नीसर हार

—भीरावबाई की पदावली, पं० परमुराम पत्र ४२

(क) वेयां नाग छोड़िया जी, छोड़ो भीरों के नहल

—भीरों मुह पत्र-संग्रह पृष्ठ २९ (पत्र ४ से)

मीरा की स्वीकृत पदावली में भी इस सम्बन्ध में एक उल्लेख है —

‘काला नाग पिटाया मेका सातिगराम पिछाना

मम्भकालीन राजस्थान में भारने के प्रसिद्ध ढंग में बिप बेना सर्प द्वारा कटवाना और तमवार या भाला आदि के प्रयोग ही प्रमुख थे। घट-मीरा की बिप के साथ ही सर्प-बंधन द्वारा मम्भाने का प्रयत्न आदर्श की बात भी है।

इन पदों में ‘श्रीप’ की बटमा तीन रूपों में मिलती है—

(१) डिब्बे में काला नाग मेका को मीरा क देखते ही सातिगराम हो गया

(२) नाग को मीरा ने नीसर हार के छप में दला और

(३) नाग को मीरा ने सातिगराम कर माना।

काला सज्जा के पुत्र बैतसिंह ने अपनी बड़ी बहू की स्वयंसेवी का विवाह राज मासदेव से किया। यह उसकी छोटी पुत्री के सम्बन्धन पर मुगल होकर उससे भी विवाह करना चाहता था। घट बैतसिंह ने पुत्रकेसे राजा उदयसिंह को बुलाकर अपनी लड़की का विवाह उनसे कर दिया। स्वयंसेवी ने जो उस समय खरने में थी अपनी बहू को बिदा करते समय खड़े में खड़े होने चाहे परन्तु बत्ती में महलों के डिब्बों के बरने राठोड़ों की कुल देवी नागसेवी की मूर्ति वाला डिब्बा दे दिया—बहु डिब्बा मीरा द्वारा लोका गया तो उसमें नागसेवी की मूर्ति निकली, जिसको महापणी ने पूजन में रखा और तभी से उसको छान में दो बार पूजने का रिवाज बना आता है।<sup>१</sup>

(क) उल्ला जोली मीरा जब बैकते ही यप सातिगराम  
जयजय ज्यति सब लीत लसा भई, दुप्य करी घनराम  
—मीराबाई, भा० नि० पद्योत्तम पृष्ठ ४८

(घ) मेरे राजाजी में गोबिंद मुन गाला।  
ब्रह्मिणी में फिर काली नाग मेका में सातिगराम कर वाला।  
मीरा प्रभु की प्रेम बिवाही, मैं साधरिया कर वाला।  
—मीराबाई, पृथ्वोत्तम पुरोहित पृष्ठ ६६-६७

डिब्बा में सातिगराम जोलत काहे नहिवाँ  
मीरा को प्रभु गिरियर नागर तुमहीं मोह लईये—  
मीराबाई का बीरम चरित्र खत्री, पृष्ठ १८

(१) बीर-विमोद भाग २, पृष्ठ ६७-६८

उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४०४-४०५

संभव है कि सम्मिलित नाय-दिव्या नागनेत्री (संमिश्र रूप नाय बेबी) का दिव्या हो।

### वैराग्य और भक्ति की तीव्रता

भक्तों और संतों ने मीरा को जगन्नाथ यादव भक्त के रूप में प्रतिष्ठित किया है और स्पष्टतः यह कहा है कि मीरा ने अपने लौकिक पक्ष को मन से कभी स्वीकार नहीं किया। पर, सत्य यह है कि भोजराज की मृत्यु के पश्चात् मीरा के मन में वैराग्य की भावना तीव्रता के साथ उठी। उनके पासपास राज-परिवार में कुतुहलमय छल प्रपञ्च और प्रसारणाओं के बजाय स्वार्थों के मर्त्य और पर-मीढ़क प्रवृत्तियों का बोसबासा था। लखवाई के पहले प्रहर में ही जीवन के रस और दुःख के द्वार ध्वस्त ने सबैव को बंद करके भगवान् के अधिनाश स जिसका माता जोड़ दिया हो जिसको परिचय स्नेह के स्थान पर बिप देने की सज्जते हो और जिसके प्रार्थों में जीवन की दुर्लभ्य अपराधैव क्षति और धनुराग की प्रकृति धमिट प्यास मरी हो वह जगत् की उपेक्षा कर उससे महत्तर, मुहत्तर और अधिक स्थायी तथा सरस सत्य की प्राप्ति जगत् न हो तो क्या करे? मीरा में भक्ति-भावना सहज और स्वानादिक प्रकृत्य थी। ऐश्वर्य में वह संकुरित भी हो गई थी पर वह पस्सवित और पुष्पित हुई, वैश्वर्य के बाव।

मीरा ने स्वयं कहा है कि जग-सुहाय मिथ्या है क्योंकि वह होकर मिट जाता है फिर नहीं है।<sup>१</sup> भक्त्युक्त उन्होंने ऐसे अधिनाशी का वरण किया जिसे कास-व्यास न खा सके। जग-सुहाय के मिटने का विपादपूर्ण उत्प्रेषण और कास-व्यास की पतुँच से बाहर के 'अधिनाशी' को वरण करने की चर्चा इस बात का प्रबल प्रमाण है कि मीरा ने वैश्वर्य का कुछ सहा था और कास-व्यास के प्रति उनमें धसमर्ब रोष था, जिसके कारण उन्होंने अधिनाशी के वरण पकड़े।

एक ही संस में जब वे ये दो बातें कहती हैं—

(१) मीरानर जग-वैश्वर्य भूठा भूठा कुहरी स्याती

(२) म्हारी जगम-जगम री धापी जाने ना बिघर्या दिनराती<sup>२</sup>

तब कुम्भोग्मुख होकर उनसे धार्त स्वर में न बिसराने की प्रार्थना करने का रहस्य

(१) जग-सुहाय मिथ्या री सज्जणी होंबा हो मिट व्याती  
वरन करुणा हरि अधिनाशी म्हारी कास-व्यास ना खाती

—डाकोट, पृष्ठ ६५

(२) डाकोट, पृष्ठ १९

छिपा नहीं रहता।

मीरा ने हरि से यह नी प्रार्थना की है कि तुम 'श्रीपदी की साज रखी  
भीर बढ़ाया भक्त के कारण मरहुरि रूप धारण किया। ब्रह्मचर्य गुण यज्ञराज की रक्षा  
की—मेरी पीर हरो।' मीरा को पीर क्या थी? श्रीपदी की तरह उनके परि-  
वार में उनका अपमान हो रहा था। प्रह्लाद के समान उनके अपने कष्टमाने वाले  
लोग उन्हें मारना चाहते थे और यज्ञराज की तरह भव-सागर की माया में एक  
पीर उनका फँस गया था। इसी ने उन्हें घात बनाकर प्रभु की धार मोड़ा।

उक्त मीरामा मे वा निष्कर्ष निकलते हैं—

- (१) मीरा को वैषम्य की बाट का दुखद अनुभव था। (उन्हें काम-व्यास  
के प्रति रोष था।)
- (२) वैषम्य-जन्य दुख और परिवार के कष्टकारक बातावरण ने उनमें  
विरक्ति जगा दी थी और वे विशेष रूप से ईश्वरोन्मुख हो गईं।  
(धीरे धीरे यह भावना उनकी सहज अनुराग-बारा में मिल कर  
उदाकार हो गई।)

**मीरा का चितोड़ त्याग :**

रामान्वित परिवार में मीरा के संघर्ष की जरूर सीमा थी विषयान्वित जिससे  
वे बच गईं, परन्तु उस परिस्थिति में रहना उनके लिए समभव नहीं था। उनके पिता  
और ताऊ उस समय जीवित थे। अतएव उनके लिए मायके में घाबाना ही स्वाभाविक  
था। मीरा चितोड़ छोड़कर मड़ते में चक आई, इसका निर्णय दो-तीन बातों  
से हो जाता है। एक तो मीरा का कष्ट देने वाले मीरा के अपने घरों में भग्न  
संहारने वाले रामा विक्रमादित्य थे। इनका राज्यकास वा वि० सं० ११८८ से  
सं० ११९१ तक। इसी बीच कमी मीरा ने मड़ते के लिए प्रस्थान किया था। दूसरे,  
संवत् ११९१ में बहादुरशाह ने बुरही धार आक्रमण किया था। यह मुख चितोड़  
का दूसरा साका नाम से प्रसिद्ध है। इस लड़ाई में कई हजार रामपूत मारे गए  
और बहुत-सी स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए हाड़ी कर्दबती के साथ  
जोहर कर अपने प्राणों की आहुति दे दी।<sup>१</sup> क्यातों घाघि में १२००० रामपूतों

(१) डाक्टर, पृष्ठ ६९

(२) इसकी तिथि भी हुई नहीं है। इसके ठीक बाद बीसाख बरी ७, वि० सं०  
१५९२ को हुमायूँ ने बहादुरशाह का पीछा किया अतएव उक्त युद्ध  
का समय संवत् १५९१ निर्धारित किया गया है।

(३) बीर-विजोद भाग २, पृष्ठ ३१



का सवाई में वीर १३००० सिन्यों का बीहड़ में प्राण देना लिखा है।<sup>१</sup> यदि वीरों वहाँ होतीं तो अपनी साथ कर्मवती के साथ बीहड़ में समाप्त हो जातीं। कहा जाता है कि उस समय ब्रित्तीड़ बुने में राक्ष-परिवार की सिन्यों वही थीं नहीं थी, बिबबा वरुणी वीरों का बचन तो अर्धमय था। अतः उनका ब्रित्तीड़ धुन त्यागकर मेड़ता जाने का समय संवत् १५२१ के पूर्व ही चढ़ता है।

इधर विक्रम संवत् १२२१ में अमर्योक्त्युक्त को पराजित करने की चेष्टा धनमेर को न देने के कारण राजा साधवेक ने अजस्र होकर मेड़ता पर चढ़ाई कर दी, जिससे अमर्योक्त्युक्त वीरमदेव जी मेड़ता छोड़कर धनमेर जा गये।<sup>१</sup> अतएव वीरों के अपने हाथ वीरमदेव के पास मेड़ता पहुँचाने का समय संवत् १२२१ के पश्चात् किसी प्रकार नहीं हो सकता। इस प्रकार परिस्थितियों की दृष्टि से वीरों के ब्रित्तीड़ छोड़कर मेड़ते जाने का समय संवत् १५५१-६० के लगभग चढ़ता है।

### तीर्थयात्रा

#### झाकोर की यात्रा

वीर-काप की कुछ परबियों में वीरों के झाकोर में रत्नछोड़नी के मंदिर से सम्बन्ध होने के प्रमाण मिलते हैं पर वीरों की स्वीकृत पञ्चमूर्ती में इस प्राध्व का कोई उल्लेख नहीं है वीरों का कि अन्धश्रुत्वात् किया गया है, ये रचनाएँ वीरों के बहुत बाद की हैं। अतएव झाकोर की परबियों के रूप में प्राप्त वीर-काप के पर्वों के आचार पर तो वीरों की झाकोर-यात्रा के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। पर इस सम्बन्ध में नागरीबास का एक उल्लेख विचारणीय है। उन्होंने लिखा है कि "वीरों पंगारिक वीर्य करने के बाद नुस्बाबन घाई।" झाकोर में एक बूढ़ बसाधय है जिसे गोमती पंगा कहा जाता है। वीरों का नुस्बाबन के पार, पंगा के किनारे किसी तीर्थस्थान पर जाने का कोई उल्लेख नहीं है। पंगा के किनारे जतर-मदेव के प्रसिद्ध तीर्थ हैं। हरिदाट, प्रमाण वीर कापी। वीरों इनमें से एक भी स्थान पर नहीं गई थीं। अतएव नागरीबास बात उल्लिखित

(१) अजमेर राज्य का इतिहास खोसा, पृष्ठ १२२ (पृष्ठ ४)

(२) मुहम्मद गैरुनी ने परमारों को पराजित करने का उल्लेख किया है, पर उससे प्रस्तुत निष्कर्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता

(३) मारवाड़ का इतिहास रेड, पृष्ठ ११५

नैपारिक से डाकोर की गोंमती रंगमा आदि की ओर संकेत मानना ही ठीक होगा। नागरीदास के उक्त उन्मेष के आधार पर मीरा के डाकोर जाने का समय बुन्दावन यात्रा के पूर्व और बीरघ्न के बाद का ठहरता है। राजमन्मथ में एक परिपाटी है कि बिबबा जाने के पश्चात् पिता भयबा पितृ-कुल का कोई व्यक्ति लड़की को तीर्थ करवाने के बाद ही घर से जाता है। अतएव बीरघ्न के बाद मेड़ता जाने के पूर्व मीरा के लिए किसी तीर्थ-स्थान जाना आवश्यक था इस बात से उनके डाकोर जाने के उल्लेख की पुष्टि होती है।

### पुष्कर-यात्रा

मीरा के पुष्कर जाने के संबंध में एक अत्यन्त व्यापक जनश्रुति है।<sup>१</sup>  
 कुँवर के बोहों में भी मीरा के पुष्कर नहाने का उल्लेख मिलता है।<sup>२</sup>

### बुन्दावन की यात्रा

मीरा ने बुन्दावन की यात्रा की थी। इसके प्रमाण उनकी अपनी रचनाओं तथा अन्य भक्तों द्वारा दिए गए उल्लेखों में मिलते हैं।<sup>३</sup> पति का मृत्यु के पश्चात् ही कभी वे बुन्दावन गई थीं। सविता का भी उन्होंने बुझा लिया था और वे दोनों आनन्दपूर्वक बुन्दावन के रससेन के वर्णन करती छिट्टी करतान लेकर नाचों और बिमल हृदय से भक्तों से मिलीं।<sup>४</sup> वहाँ से उन्होंने कुछ-कुछ निहारे और बन-वन में अपने पद गाए।<sup>५</sup> इसी व्रज में उन्होंने जीव मोस्वामी को शिखा दी।

मीरा ने स्वयं भी कहा है "बुन्दावन बहुत नीका सदा कपोंक वहाँ घर-घर तुमरी और ठाकुर की पूजा हाती है और गोविन्दजी के वर्णन उपनम है।

(१) कुल की तारन ईश्वरी बेनी हैं, पुष्कर न्हाव'—सोव-मजिक, पृष्ठ १८०

पुष्कर भी मैं नहार्ई जाय, रानी बेनी घर छोड़ के।

बिन्दावन में पहुँची जाय रानी बेनी घर छोड़ के।

—वैपश्चित संग्रह से

(२) पुष्कर न्हाई मयन भन, बिन्दावन रतबेत

(३) परमप्रतपभासा, नागरीदास, प्रकीर्ण ३

"डाकोर में हरमन र्हाए है, गोंमती रंगमा नहए"—विद्यांतनय, चतुमहाभार, हस्तलिखित संक-संख्या १६१७, डाकीतली घरवा

(४) नरन नीमार्चली, भुवर्वात, (बेकिर, अम्बेयन के र्वाधार)

(५) राबोरीत ईत भक्तभासा की छीका, चर्चदास, १७८ वाँ प्रब

इनके प्रतिरिक्त यमुना का निर्मल नीर, बूझ-बही का जीवन धीर (सबसे बड़ी बात यह है कि) तुमसी का मुकुट बरकर ले (निरावर) स्वयं वहाँ विराजमान हैं।'

पुष्कर तथा कुन्दावन यात्रा का समय

बन्नावन में मीरा की भेंट जीवगोस्वामी से हुई थीर जीवगोस्वामी बन्नावन में संवत् १५६०-६१ में आए थे।<sup>१</sup> इसलिये मीरा का बन्नावन में हर वशा में संवत् १५६०-६१ या उसके बाद की ही बटना है।

मीराबाई चित्तौड़ के राधा के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर मेड़ते प्रा गई थी वहाँ उनके ताऊ बीरमदेव राज्य करते थे। संवत् १५६१ में राज मासदेव ने बीरमदेव से अग्रसप्त होकर पैठा धीर कपा की सम्पत्ति में मेड़ते पर सेना भेज दी।<sup>१</sup> यह देखकर बीरमदेव भी युद्ध के लिए तैयार हो गए। परन्तु अन्त में दोनों के समझाने से यह मेड़ता छोड़कर अजमेर चले गए धीर मेड़ते पर मासदेव की अधिकार हो गया। बीरमदेवजी ने जिस प्रकार मेड़ता छोड़ा उससे स्पष्ट है कि वे अपरिवार अजमेर गए। उस समय मीरा भी उनके साथ रही होंगी।

संवत् १५६१ के बाद बीरमदेव अजमेर में रहे परन्तु मासदेव ने उनका वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा धीर मारवाड़ के इतिहासकार राज के अनुसार उसी वर्ष मासदेव का अजमेर पर भी अधिकार हो गया। हरबिसास शारदा ने वि० सं० १५६२ में मासदेव का अजमेर पर अधिकार होना लिखा है।<sup>१</sup> कब भी हो इतना निर्विवाद है कि बीरमदेव का अजमेर पर बहुत बड़े दिनों अधिकार रहा।

अतः संवत् १५६१ में मीरा के सामने चार रास्ते थे—

(१) मेड़ते में रह जाना

(१) डाक्टर पद ८

(२) यही सम्भव —मीरा धीर जीवगोस्वामी के मिलने का समय

(३) डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है कि "सं० १५६५ में जोधपुर के राज मासदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया धीर वे भागकर अजमेर चले गए।" पं० परमुराम क्तुर्वेदी ने (मीराबाई की पञ्चवली—बूमिका पृ० २) भी यही लिपि लिखी है। सं० १५६५ तिथि का आचार दोनों में से किसी ने नहीं दिया। राज क्तु मारवाड़ का इतिहास (पृ० ११६), सायरा क्तु 'अजमेर' (पृ० १५७ कुजनीत) धीर मोना क्तु 'जोधपुर राज्य का इतिहास' (पृ० २५५) तीनों में संवत् १५६१ का उल्लेख है धीर इस विषय में इन विद्वानों का उल्लेख ही विवक्षणीय है।

(४) मारवाड़ का इतिहास, राज कृष्ण ११८-११९, (५) यही पृष्ठ ११९

(२) चित्तोड़ जाना

(३) बीरमदेव के साथ घजमेर जाना

(४) घग्गब कहीं जाना।

परिवार के साथ बीरमदेव के घजमेर जाने और उनके परम शत्रु मासदेव के मेड़ते के स्थायी बनने पर मीरा के लिए मेड़ते में रहने का प्रश्न ही नहीं था। बिप देकर मारने का पञ्चम करमेवास राणा के यहाँ चित्तोड़ में मीरा बीटना नहीं चाहती थी। यद्यपि उनके सामने अंतिम दो ही मार्ग थे। बीरमदेव को मड़ता बिन परिस्थितियों में भड़का छोड़ना पड़ा था उनमें मीरा का उनके साथ घजमेर जाना ही अधिक उर्ध्व-मूलक प्रतीत होता है। उनके पुंकर जाने के तत्पश्चात् से यह धीर भी प्रमाणित हो जाता है। बीरमदेव घजमेर में सन् १३६१ में थे। इसी वर्ष मीरा ने पुंकरबी में स्नान किया होगा।

घजमेर में बीरमदेव थोड़े ही दिन रहे थे कि मासदेव के कारण उन्हें वहाँ से भी पलायन करना पड़ा।<sup>१</sup> इसके पश्चात् कुछ समय तक उन्हें शहर-उपर घटकना पड़ा। मेड़ता तो बहुत समय तक वे नहीं पहुँचे। यही समय था जब मीरा बुन्दावन की तीर्थ-यात्रा पर निकलीं। इस प्रकार मीरा की बुन्दावन की तीर्थ-यात्रा का अन्त संवत् १३६२ में प्रारंभ हुआ है। सन् १३६०-६१ में जीव गोस्वामीजी बुन्दावन आ चुके थे। जीव गोस्वामीजी और समाधन गोस्वामी वहाँ थे ही। बुन्दावन में मीरा इन सबसे मिली थी। इस दृष्टि से भी मीरा का बुन्दावन जाने का समय संवत् १३६२ ठीक ही बैठता है।

### घरका की यात्रा

घरने जीवन की संघ्या में मीरा द्वारका में ही थी। यहाँ उनकी भौतिक जीवन-यात्रा का अंत हुआ था। प्रियादास नागरीदास बीजबदास आदि के सम्बन्धों और मीरा के घरने पक्षों से मीरा का द्वारका जाना सिद्ध है।

## भीरों के गुरु

भीरों के गुरु तीन थे, इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। भीरों की प्रसिद्धि होने पर अनेक सांप्रदायिक प्रचारकों और कुछ पुरोहित परिवारों ने भीरों के दीक्षा-गुरु के संबंध में अनेक कल्पनाओं और अनुमानों को सत्य के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। इससे समस्या और भी उलझ गई।

विभिन्न मतों द्वारा निम्नांकित व्यक्ति भीरों के गुरु अथवा साधना पथ पर प्रेरित करनेवाले माने गए हैं—

- |     |                                      |                         |
|-----|--------------------------------------|-------------------------|
| (क) | १-रामानन्द                           | २-रैवास                 |
|     | ३-कौई रैवासी संत—(विद्वत्)           | ४-हरिरास बर्जी (रैवासी) |
| (ख) | १-माधवपुरी (माधवेन्द्र पुरी या माधव) |                         |
|     | २-चैतन्य महाप्रभु                    | ३-रास भक्त (रघुनाथ रास) |
|     | ४-बीर गोस्वामी                       | ५-रूप गोस्वामी          |

इस सम्बन्ध में दो नाम और विचारणीय हैं—

- |          |         |
|----------|---------|
| १-रैवाजी | २-गजावर |
|----------|---------|

दो विभिन्न मतों के अनुसार भीरों को अपने बचपन में पिरिबर की पूजावासी मूर्तियाँ देवाजी तथा गजावर से मिली थीं। (क) और (ख) दोनों के संत भक्तों और इन दोनों से सम्बन्धित अनुष्ठितियों में अन्तर यह है कि इनके द्वारा भीरों के दीक्षा ग्रहण करने की नहीं केवल मूर्तियाँ प्राप्त करने या प्राथमिक संपर्क की बात की जाती है। अतः इन दोनों का उल्लेख अलग से किया गया है।

संप्रदाय की दृष्टि से विवेचन करने पर समस्त उल्लेख और अनुष्ठित अनुष्ठान दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। ये वस्तुतः दो भिन्न विचार-परंपरें हैं।

- (१) भीरों को रामानन्द रैवास अथवा रैवास-संप्रदाय का माननेवासी परंपरा और
- (२) भीरों को माधवेन्द्र पुरी द्वारा दीक्षित या चैतन्य-संप्रदाय का माननेवासी परंपरा।

## रामानन्द

राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग ३ में उद्धृष्ट गट नावर द्वारा प्रकाशित भीरों के पंथों में निम्नांकित यह भी है—

रामजी पधारे बनि भाज की बरी।

भाज री बरी बी भाज री बरी ॥ टेर ॥

गुरु रामानन्द और माधवाचार्य भीमार्जुन बिसन हरी ॥

मीरा के प्रभू हरि भवितापी पकड़ि पावै प्यासा प्रेम हरी ॥<sup>१</sup>

इसी पर की अभिव्यक्ति से यह संकेत उपसम्भ होता है कि रामानन्द मीरा के गुरु थे और माधवाचार्य तथा भीमार्जुन उनके समकालीन थे ।

यह पर रामसनेही संप्रदाय के एक मनीष गुटके का है और मीरा द्वारा 'राम सनेही सारिपो म्हांरी मयरी में उत्तरो भारी'<sup>२</sup> कहलाने वाले रामसनेही संप्रदाय के संतों की रचना है । गुरु रामानन्द संवत् १४६१-६२ के लगभग इह लोकातीत होकर स्वर्ग गये थे ।<sup>३</sup> माधवाचार्य विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बेटमाध्यकर्ता श्री सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता थे ।<sup>४</sup> सायणाचार्य का समय चतुर्दश शताब्दी का मध्य भाग है ।<sup>५</sup> भीमार्जुन का उल्लेख भी रामानन्द के समकालीन व्यक्तियों में किया जाता है ।<sup>६</sup> अतः इनमें से कोई मीरा के समकालीन भी नहीं ठहरते फिर मीरा के धार्मिक विवाह के समय वे कैसे उपस्थित हो सकते थे ?

संत रैदास

मीरा की सन्त रैदास की विख्यात माननेवाला मत अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है । जे० एन० फर्ग्यूसन<sup>७</sup> मीराबाई की सखाबती<sup>८</sup> के संपादक आदि अनेक विद्वान् इसी मत के पक्ष में हैं । श्री भा० नि० महेता<sup>९</sup> डा० बलदेव<sup>१०</sup> प्रो० नरोत्तम स्वामी<sup>११</sup> का झुकाव भी इसी मत की ओर है ।

(१) पृष्ठ २२२, पर १०, जीवनमंथार संपादित मीरा गुरु पर-संग्रह, पृष्ठ १३६ में भी यह पर दिया हुआ है

(२) मीरा गुरु पर-संग्रह, शब्दमय, पृष्ठ १३६-१३७

(३) रामानन्द की हिंदी रचनाएँ, प्रधान संपादक-डा० हुमायुन-अली खान, दिल्ली, रामानन्द का जीवन-चरित्र, पृष्ठ ४०

(४) भारतीय दर्शन, डा० बलदेव संपादित पृष्ठ ३६८

(५) भागवत संप्रदाय, डा० बलदेव संपादित, पृष्ठ ३६८

(६) उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पं० पद्मराज चतुर्वेदी, पृष्ठ १५८

(७) एन आउटलाइन ऑफ़ दी रिलीजस लिटरेचर ऑफ़ इंडिया, पृष्ठ ३०६

(८) जीवन-चरित्र, पृष्ठ २

(९) मीराबाई, पृष्ठ ५७-५८

(१०) हिंदी काव्य में निर्गुन संप्रदाय पृष्ठ ४३८, परिशिष्ट ३

(११) मीरा-संवादिनी प्रस्तावना, पृष्ठ ८

इस मत्त का मूल आधार मीरा-छाप के कुछ पदों की वे पंक्तियाँ हैं, जिनमें रैवास का गुरु रूप में उल्लेख है।

निम्नांकित दो बातों से भी अप्रत्यक्षतः इस मत्त को बस मिला है —

- (१) मीरा के नाम से प्रचलित संत-मत्त की धर्मव्यक्ति करनेवाले पदों से घीर
- (२) चितौड़गढ़ में मीरा के मंदिर के साधने रैवास की छठरी के वर्तमान होने से।

इस विषय में निम्नांकित बातें विचारणीय हैं

[१] स्वीकृत पदावली में रैवास का गुरु रूप में उल्लेख करनेवाला एक भी पद नहीं है। फिर भी इस प्रश्न के महत्व के कारण उन पदों पर विचार कर लेना आवश्यक है, जो मीरा के नाम से प्रचलित हैं और जिनमें रैवास का उल्लेख है।

रैवास के उल्लेख मीरा-छाप के जिन पदों में हैं उनका प्रस्तुत समस्या से सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

- (१) काशी नगरना चौकमा मने गुरु भिस्सा रोहीवास ।<sup>१</sup>
- (२) बाराणसी के बाट पे फिर गुरु भिस्सा रैवास ।<sup>२</sup>
- (३) मीरा ने योबिन्द भिस्सा जी गुरु भिस्सा रैवास ।<sup>३</sup>
- (४) म्हारी गुरु रैवास है सबभी म्हारी हे ।<sup>४</sup>
- (५) रैवास संत भिसे मोहि छठगुरु दीन्हा सूर्य सहवानी ।<sup>५</sup>
- (६) गुरु भिस्सा रैवास जी दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।<sup>६</sup>
- (७) गुरु रैवास भिसे मोहि पूरे, घुर से कमल निड़ी।

जिन पदों में ऊपर की पंक्तियाँ आई हैं उनमें से १, २, ३ और ४ की अप्रामाणिकता अस्पष्ट है।

(१) मीरा सावुरी, जबरनशाह, जूमिका

(२) एक गुजराती संत से प्राप्त

(३) मीराबाई की पदावली सं० परशुराम जगुबंदी, पृष्ठ १२-१३

(४) मीरा गृह्य पद-संग्रह, सारंगम, पृष्ठ ४

(५) मीराबाई की आध्यात्मिकी और जीवन, मेन्सेडियर प्रेस, पृष्ठ २०

(६) वही, पृष्ठ २५

(७) वही, पृष्ठ ३३

## प्रदन छत्तेस

“काशी गगरनां बीकमां मुक भिन्ना रैदास” — इस पंक्ति में भीरां के काशी जाने और वहाँ बीक में रैदास के मिलने का उल्लेख है। मीराबाई पश्चिम में ब्रज-भूम्दावन तक गई थी। उनके काशी जाने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। वहाँ तक कारी के बीक की स्थिति का सम्बन्ध है कई पीढ़ियों में काशी में निवास करनेवाले श्री ब्रजगुणदासजी का निम्नलिखित वक्तव्य उल्लेखनीय है— “कारी का बीक अपनी हज़ारों बना हुआ है। प्रायः दो शताब्दी पहले वहाँ तक महाजनमान समान होता था और अब स्नानागार बिनापक फलक के पास मौजूद ही है। मुसलमानों में वहाँ अद्यावत् स्थापित हुई थी का महास धर्म भी पुरानी अद्यावत् कहलाता है। आदमी बीक का छोटा रूप बीक भी मुसलमानों में प्रचलित हुआ है।”

इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि मीरां के समय काशी के बीक की स्थिति ही नहीं थी। २०० वर्ष पूर्व तक वह बना भी नहीं था। यह रैदास का बीक में मिलने का उल्लेख मीरां के बहुत बाद का पिछले २०० वर्ष में कभी का है और अत्यन्तिक है।

दूसरे, ये पंक्तियाँ ‘मीरां’ शब्द के प्रयोग के कारण ही मीरां-कृत मान ली गई हैं। वस्तुतः यह पद मीरां का नहीं बीकल भक्त का है। त० म० बिपाटी ने बृहद् काव्य बोधन भाग ७ में मृगिका-म्बरूप दिए गए मीराबाई निबंध में इन पंक्तियों को बीकल भक्त के पद के रूप में ही उद्धृत किया है।<sup>१</sup>

## द्वितीय छत्तेस

“बागमसी के घाट पै फिर गुरु भिन्ना रैदास” — यह पंक्ति जगन्नाथ रामोदरदास बिपाटी सायर नामक मुजराती संत-कवि की एक ‘मीरां’ नामक हिंदी कविता की है। ‘सायर साहब संत भक्ता की परंपरा के ज्ञानवासी संत थे १६३३ ई० में स्वर्णवासी हुए। बकौदे में उनके पुत्र अमीर हैं। सन् १६३३ में से उनसे भिन्ना था। उन्होंने अपने वैयक्तिक मंत्रों में से सायर साहब को मीरां-संबन्धी निम्नोक्ति दी थी—

“मीरां हो गई भगत मीरां हो गई भगत ।

बेला भक्तभगत धरा बिगताबिगत ॥

प्रभु बिगताबिगत गुरु बिगताबिगत

स्वयं बिगताबिगत मीरां हो गई भगत ॥ मीरां हो० ॥

(१) मीरां-भाबुरी पृष्ठ ७५

(२) पृष्ठ १६



घाने पूजी मीरां मक्ति सगुन को

सब बेधियां माया भिंतास

बोछलसी के घाट ये, फिर धुब निंमो रोहीबाव है ॥

सोयी-सोयी प्रीतु सगत-सगत ॥ मीरां हो ॥

घागे पूजी मीरां बाह्य' धुरत को

धन सी जेये निरं नाम"

सर्वदुःख-सोहब घनके निरंजन मैं नाहीं - मैं नाहीं-रामे है ॥

बांधी, बागी घमक ज्योत' जगत जमै ॥ मीरां हो ॥

बहु परे सांबर साहब की मृत्यु के पश्चात् पिछले २० वर्षों में ही मीरां

नाम के कारण उनके नाम से जलने लगा है ।

### तृतीय उत्सव

"मीरां ने गोविन्द मिस्त्राजी गुरु मिस्त्रा रौस" यह पंक्ति पं० भरदुल्लभ

चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरां-प्रकाशनी में २६ नं पर की है । कथोपकथन के रूप

में उपलब्ध मीरां-कथे की वे रचनाएँ, जिनमें मीरां स्वयं एक पात्र हैं, मीरां की रच-

नाएँ नहीं हैं । यह पर 'मीरां और मीरां की छिछोरे' के कथोपकथन के रूप में किसी

मीरां नाटक मध्यमी की रचना है । हो सकता है कि मोके-पीत के रूप में भी यह

प्रचलित रहा हो । मीरां के कामरेज मध्यमी के लिए पुस्तोत्तमदास पुरोहित

द्वारा लिखे गए मीरांबाई नाटक में भी यह संस धारा है ।<sup>१</sup> इस रचना की छंद

संज्ञा और कथोपकथन के सामान्य धीनित्व की दृष्टि से देखें, तो एक बात और

स्पष्ट हो जाती है कि यह पूरी रचना भी एक व्यक्ति की नहीं है । विशेषकर अन्तिम

की पंक्तियाँ तो निश्चित रूप से बाद की जोड़ी हुई लगती हैं ।

दृकांत	धर्मित-संख्या	१	मीरा	}	२, २
		२	मीरा		
		३	देव	}	३, ३
		४	मेव		
		५	काम	}	५, ५
		६	बाव		

७	बाब	}	ब, घ
८	बास		
९	बास	}	स, र
१०	सार		
११	काब	}	ब, र
१२	घार		
१३	काप	}	ब, घ
१४	रिपास		

स्पष्ट है कि ११ की धीरे १४ की पंक्तियों में किसी प्रकार का सामान्य नहीं है—न बापस में न होय रचना से।

मीरां बृहद पद-समूह में इस संवाद में सिद्ध मीरा के तथ्यात्मित पद को मीरां धीरे बास के संवाद के रूप में नहीं मीरां के सम्य सामान्य पदों के रूप में ही छापा है। इससे पता चलता है कि किस प्रकार कथोपकथन के रूप में किसी रचना का धीरे धीरे मनीषीकरण हुआ धीरे होता रहा है। फिर भी मीमती ध्वनन द्वारा उद्धृत पद की धर्मिण्यक्ति से स्पष्ट है कि इसमें भी व्यक्तियों के धार्मिकता को उद्देश्य किया गया है। इस पद का एक उदाहरण भी मीमती ध्वनन ने दिया है, जिसमें अन्तिम पंक्ति है—“मीरां धरणी राम के म्हाने गुरु मिलिमा रीवास”।<sup>१</sup> इस पद में ब्रह्मा मनन धीरे धामी (मीरां) हैं। इसकी धर्ममात्रिकता भी उसी प्रकार सिद्ध है जिस प्रकार कि इसके दूसरे पद की।

### चतुर्थ उत्तिष्ठ

‘महारो गुरु रीवास है सकली म्हाली री’—यह उल्लेख जिस पद में छापा है वह भी मीरां की रचना नहीं है। एक लोक-गीत है, जिसमें मीरां के जीवन की प्रमुख घटनाओं को सरल मेघ रूप में प्रस्तुत किया गया है। धर्म पुत्र में मगाधार मीरां का उल्लेख तो इस बात का प्रतीक है ही कि यह पद मीरां की रचना नहीं है। पद की अन्तिम पंक्ति में यह बात धीरे भी स्पष्ट हो जाती है। जिसमें इस धर्म के पढ़ने-लिखने पर फल (मुक्ति) मिलने की बात उसी प्रकार कही गई है,<sup>२</sup> जैसे कि प्रायः धार्मिक ग्रंथों—विशेषकर महान् पुण्यों के जीवन-चरित्रों के अन्त में

(१) मीरां बृहद-नवावली (बाधामार), पृष्ठ ९

(२) “फड़-मुने अल होम विष म्हाले धिरबाटी”, बही, पृष्ठ ८

कही जाती है। ध्यान से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना किसी व्यक्ति द्वारा लिखा गया मीरा-चरित्र है, मीरा का पद नहीं है।

सेप उल्लेख (५, १, ७) भी जिन पदों के हैं वे मीरा के किसी प्राचीन संग्रह में उपलब्ध नहीं हैं। विभिन्न संप्रदायों की ग्रन्थों में संकलित या लिपि बद्ध या हस्तलिखित पोथियों या उनपर आधारित प्रकाशित संग्रहों को देखने पर पता चलता है कि वारकरी रामदासी और चैतन्य संप्रदाय की पोथियों में इनका पूर्ण अभाव है। साम्प्रदायिक विचारों से मुक्त साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा लिपि-बद्ध प्राप्त पोथियों में भी ये पद नहीं हैं। इसके दो उदाहरण अविचलदास और बिनोदचन्द्र दासि के हस्तलिखित संकलन हैं। रामसनेही संप्रदाय की जिस पोथी में इनमें से दो पद मिलते हैं वह पोथी प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के पास सुरक्षित है और २० वीं सताब्दी की है।<sup>१</sup>

[२] मीरा-छाप के जिन पदों में "रैदास" का उल्लेख किया गया है उनमें यह बात पूरी तरह सही है कि "रैदास मीरा के पुत्र थे।" इससे भिन्न किसी अन्य प्रकार के रैदास का उल्लेख मीरा की प्रामाणिक रचनाओं में तो क्या मीरा-छाप के भी किसी अन्य पद में नहीं मिलता है। इससे पता चलता है कि बाल-बुद्धकर एक विशेष उद्देश्य से इस आधार की पंक्तियों को बाव में जोड़ा गया है।

मीरा-छाप के ऐसे पद मिलते हैं, जिनमें मीरा से पूर्व के अनेक भक्तों का आदर के साथ उल्लेख किया गया है, मगर उनमें से किसी भी पद में रैदास का नाम नहीं है। नीचे दिए गए पद दृष्टव्य हैं—

सुन लीजे बिलसी मोरी मैं सरन नहीं प्रभु छोरी ।  
 तुम हो पतित अनेक उषारे भव-सागर से तार्यो ।  
 मैं सबका तो नाम न जानों कोई-कोई भक्त बचानो ।  
 अम्बरिक सुबामा मामा पहुँचायो निज नामा ।  
 प्रभु जो पाँच बरस की बालक बरस दियो बनस्यामा ।  
 बना भक्त का छोट जमाया कबिरा बँस परमा ।  
 सेवरी के झूठे फस जाए, काब किए मन भाए ।  
 सबना धी सेना मारि को तुम लीगूहा अपनाई ।  
 कर्मा की जिज्झी तुम चारि, यमिक पार भवाई ।  
 मीरा प्रभु तुम्हारे रैक-राती जानत सब बुनियाई ।<sup>२</sup>

(१) यही प्रबंध, 'रचनाएँ' शीर्षक अध्याय

(२) मीराबाई की साध्यावली (वे० प्रे०), पृष्ठ ७०, शब्द ३४

बना, कबीर, सदाना सेना और कर्मा के ईश्वरीय सहायता प्राप्त होने की बात कहते हुए भी रैदास के विषय में मौन का क्या कारण है। विवेचनकर उस समय जब कि रैदास से सम्बन्धित इसी प्रकार की बटमाओं के अनेक उल्लेख अनेक संतों द्वारा उनके आधार को बढ़ाने के लिए किए गए हैं। मीरां जिसे अपना गुरु मानती हैं उसका उल्लेख न करके उसके साधियों की प्रशंसा के भीत गायी है यह आश्चर्य की बात है।

एक और पद इसी प्रकार का है —

म्हार नया धारो रहीओ जी ग्याम गोविन्द ।  
 दास कबीर घर बसद जो साया नामदेव का छान छन्द ।  
 दास बना को खेत उपजाओ गज की टेर मुनद ॥  
 भीमजी का बेर मुहामा का तुलस भर मुठ्ठी बुन्द ।  
 करमाबाई को बीच धरोम्यो होई परछण पावद ॥  
 सहस घोष बिज द्याम बिराजे ज्यों तार बिज चद ।  
 मर सतों का नाम सुभाय मीरां दूर रहंद ॥<sup>१</sup>

इसमें कबीर, नामदेव, बना और करमाबाई का उल्लेख है मगर रैदास भी गायब हैं। इसी तरह मीरांबाई की शब्दावली में एक और पद मीरां-छाप का है, जिसमें यत्र वीथ अनामिल और यणिका धारि पीठमिक मक्तों के साथ सदाना बना, पीपा के तारने का भी उल्लेख है।<sup>२</sup> एक अन्य पद में सदाना का उल्लेख है।<sup>३</sup> नरसिंह, कबीर का उल्लेख करनेवाले पद भी हैं।<sup>४</sup> यदि मीरां रैदास की धिम्मा होती तो अपने गुरु को बिना तरे न रहने देती।

### एक अपवाद

मीरां-छाप का केवल एक पद ऐसा मिला है जिसमें अन्य चत्तों और संतों के साथ रैदास का नाम है, पर इसके प्राचीनतर धातु ने तुलना करने पर इसके प्रसिद्ध धंस और विहृतियाँ स्वयं स्पष्ट हो जाती हैं।

पद इस प्रकार है —

(१) वही, पृष्ठ ३६, शब्द १३

(२) मीरांबाई की शब्दावली पृष्ठ २, शब्द ४

(३) वही, पृष्ठ ३२, शब्द ५

(४) श्री संतपात्रा में मीरांबाई के पद, पृष्ठ-संख्या १०३

सामु की संमत पाई, बो । आकी पुरन कमाई, बो ॥ कु० ॥  
 पिपा नामदेव घोर कबीरा । बीबी, मीराबाई बो ॥  
 केवल कथा मामक बासा । सेना जाति का नाई बो ॥  
 यमा भयत रोहीबास अपारा । लचना जात कसाई बो ॥  
 तिसोवन बर रहत भितिया । कुर्मा बिचड़ी खाई बो ॥  
 भित्तनी के घोर सुवामा के बाबल । खि-खि मोन लनाई है ॥  
 रंका-बका सूरदास भाई । बिबुर की भाजी खाई है ॥  
 ध्रुव प्रह्लाद घोर बिभीषण । उनकी क्या भखाई बो ॥  
 मीरां कहे प्रभु गिरिबर नागर । ज्योतिषे ज्योति मिनाई बो ॥<sup>१</sup>

इस घर का दूसरा पाठ

सामु की संमत पाई, ज्योकी पुरन कमाई ।  
 पीपा नामदेव घोर कबीरा । बबबी बनाबाई ।  
 रंका-बका घोर प्रीतीया, कर्मा की बिचड़ी खाई ।  
 मीरां के प्रभु गिरिबर नागर, ज्योत में जोत मिनाई ॥<sup>१</sup>

पहले पाठ में मीराबाई स्वयं अपना नाम भी महान् संतों के साथ बिगारी हैं । सीस की इस तरह से बन्धियां डकाने की-भारतका मीरां-बीबी नारी से नहीं हो सकती । दूसरे पाठ में मीराबाई के स्थान पर बनाबाई नाम है जो वर्तमान भूमिका में असंमत नहीं है । पिछले पद की निर्बक-सी पंक्तियाँ जैसे ध्रुव प्रह्लाद घोर बिभीषण उनकी क्या भखाई बो भी दूसरे पाठ में नहीं है । यद्यपि दूसरा पाठ अधिक बिस्वसनीय है और इस पाठ में रीवास का उल्लेख नहीं है ।

[१] बिभुख संत-मत की दृष्टि से निम्ने भक्तमासों में श्री, रीवास-मीरां सम्बन्ध-सम्बन्धी अनुल्लेख और बिरोधी संकेत हैं ।

रीवास के मीरां के गुरु होने का उल्लेख न तो नामादास ने अपनी भक्तमास में किया है और न प्रियादास ने उस भक्तमास की रसबोधिनी टीका में ।<sup>१</sup> बित्तोड़ की भाली रानी के रीवास का बिप्यत्य ग्रहण करने की बटना के उल्लेख करनेवाले प्रियादास का बित्तोड़ की दूसरी और अधिक प्रसिद्ध रानी मीरां का उल्लेख न करना अकारण नहीं हो सकता । फिर भी यह कहा जा सकता है कि ये दोनों वैप्यव ने और इसलिए इन्होंने इस सत्य को बचा दिया होगा । मगर बिभुख संत मत से

(१) बही, पद-संख्या ६४.

(२) रामदासी संज्ञोवन भूमिया, के एक हस्तलिखित ग्रंथ से

(३) भक्तमास 'कमकला' पृष्ठ ७१२-७१३

निन्दी मई रापीशस की भक्तमास और उसकी चक्रदास-मृत टीका में भी इस बात को नहीं कहा गया। इतना ही नहीं संत-मत के प्रचारक रापीशस के उल्लेख मीरां का रैवासी सम्प्रदाय का न होना ही प्रगट करते हैं। मीरां क सम्बन्ध में उनके कथन हैं—“मरिपिन की-मी प्रीति-रीति कमिकाम विचारि”

“नौवत भक्ति बुराई, पति-सा गिरिबर ही सवे।

“मीरां मई वैष्णु कहुर दीन्हा बानि कै।”

रैवामी न ‘गोपिन की-मी प्रीति-रीति’ का अनुसरण करत थे और न गिरिबर को पति मानकर भक्ति की नौवत बजाते थे।

इसके अतिरिक्त चक्रदास तथा हरिया साहब (बिहारवाले) के कथन भी उद्धृत किए जा सकते हैं जो इसी निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।

[४] संत रापीशस के उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त मीरां के उन पंक्तों के, जो लगभग १०० वर्ष पुरानी हस्तलिखित पोथियों में संगृहीत हैं बिस्मयपूर्ण करने पर पता चलता है कि मीरां की आराधना और रैवास की साधना-व्यक्ति में बमिल आसमान का अन्तर है। एक ‘बन्दावन में बिराजनेवाले स्वाम सुन्दर गोपीनाथ की मुरली के माधुर्य पर निछावर है कटि पर पीठावर घबर मुर्छी भारी गोकुल के बासी’ की बानी है,<sup>१</sup> दूसरा ‘उपमै जान जा करम नसाई’ का उपरस करता है निरपे निराकार की साधना में रत रहता है।

[५] मीरां के जीवन की निबिहार रूप से माध्य बटनाएँ भी उनकी विचार-बारा पर प्रकाश डालती हैं। “बुन्दावन के रस-खेतों” में बूमनेवासी और अपने जीवन की सध्या में ‘रणछोड़’ की के मंदिर में शरण लेनेवासी मीरां समुप कृष्ण की उपासिका के अतिरिक्त और क्या हो सकती हैं और, कोई समुप कृष्ण का भक्त ‘रैवासी’ हो सकता है — यह बात समझ में नहीं आती।

[६] मीरां और रैवास के जीवन-कालों पर दृष्टिपात करने से इस भ्रम का निराकरण अंतिम रूप से हो जाता है। काल की दृष्टि से भी मीरां की रैवास से बीधा लेने की संभावना नहीं है।

(१) संवत् १६८५ की विद्यासभा की पोथी सं० ४७७ क  
‘घावे गोकुल की निवासी’ — टेकवाला पत्र

(२) संत-बाणी, शब्द संग्रह (वे० प्रे०) रैवातजी, पृष्ठ ३५

रैवास रामानन्द के दिव्य वे ।<sup>१</sup> 'प्रसंग पारिजात' के अनुसार (यदि इसे प्रामाणिक माना जाय) रैवास रामानन्द कबीर, पीपा सेन आदि के साथ विद्यमान भी वे ।<sup>२</sup> रामानन्द की मृत्यु सं० १४६७ और १५०५ के बीच में कभी (१४२१-२२ वि० के लगभग) हुई थी ।<sup>३</sup> अतः रैवास का वि० १५ बीं सताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान होना सिद्ध होता है । मीरा का जन्म १६ बीं सताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था ।

रैवास बिठौर की शासी रानी के पुत्र थे । ये शासी रानी कुंभा की पत्नी थीं ।<sup>४</sup> राजा कुंभा (राज्य-तिलक सं० १४२० में) की पत्नी को गुद-मंथ देनेवासे रैवास उस काल में पुराने जाने-माने सिद्ध संत रहे होंगे । अतः कुंभा के पौत्र सांभा की पुत्र-वधू<sup>५</sup> मीरा को रैवास से बीसा लेने का अवसर काल ने दिया होगा यह बात समझ में नहीं आती ।

रैवास की छतरी के मीरा के मंदिर के सामने होने के संबंध में दो बातें उल्लेखनीय हैं (१) मीरा का मंदिर बस्तुतः अतिबराह का मंदिर है और राजाकुंभा द्वारा बनवाया गया था (२) छतरी कुंभा की पत्नी शासी रानी ने बनवाई थी ।

रैवास के मीरा के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध होने के कारण।

रैवास मीरा के पुत्र के रूप में क्यों प्रसिद्ध हुए, यह बात अकारण नहीं है । संतों तथा विशेषकर रैवासियों की सांप्रदायिक भावना द्वारा इसे बल मिला पर बस्तुतः तीन सही या समस्त जनश्रुतियों की परंपराओं के मिलने से इस बात का प्रचार हुआ । वे तीन जनश्रुतियाँ इस प्रकार हैं—

(१) भक्तमाल — रामानन्द कबीर सुख, सुरसुरा पद्मावती नखरि ।  
पीपा भावार्नव रैवास बना ॥”

(२) प्रकररत्नाम्न श्रीवास्तव स्वामी राघवानंद और प्रसंग पारिजात<sup>६</sup> लेख, हिंदुस्तानी संस्कृत १२३२, पृष्ठ ४०८-२; प्रसंग पारिजात की प्रामाणिकता डॉ० बबरीनारायण श्रीवास्तव के अनुसार सिद्ध है—  
अनुशीलन वर्ष ४ अंक १-१, पृ० १-५

(३) 'रामानंद की हिंदी-रचनाएँ' (प्रधान संपादक, डॉ० हजारीप्रसाद) में 'रामानंद का जीवन-चरित्र' लेख डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ ३३ से ५० तक

(४) डॉ०, राजस्थान, सैकड़, पृष्ठ २२३

(५) उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रो०, पृष्ठ २७२ से ३८७ तक

(क) नामावास कृत मस्तमाम की प्रियावास कृत टीका में उक्त रीवास की चर्चा के अन्तर्गत निम्नांकित दो उल्लेख हैं—

१— चित्तोड़ में एक शाही रानी बसती थी। नाम के बिना उसके कान खापी थे। यह भाकर रीवास की सिप्या हुई—<sup>१</sup>

२— अपनी राजधानी चित्तोड़ जाकर उसने रीवास को सविनय प्रार्थना किया और उसे स्वीकार करने रीवासजी चित्तोड़ गए।<sup>२</sup>

उक्त उल्लेखों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रियावास के पूर्व 'चित्तोड़ की शाही रानी' के रीवास की सिप्या होने की एक प्रथम जनश्रुति प्रचलित थी और इस बात को सत्य रूप में रीवासी संत ही नहीं भ्रम्य संप्रदाय के लोग भी स्वीकार करते थे। उस बात के उल्लेख-कर्ता प्रियावासजी स्वयं चैतन्य संप्रदाय के थे।

(ख) एक और जनश्रुति टोंड के राजस्थान में मिलती है। 'ऐनस्त ऑफ मेवाड़' में उन्होंने लिखा है कि चित्तोड़ के राजा कुंभा शासनाबाद के राजा की कन्या को से पाए थे। उसकी मैयनी मंडोर के राठोड़ राजकुमार के साथ हो चुकी थी। इस राठोड़ ने उस रानी के पास पहुँचने के अनेक प्रयत्न किए, पर वह 'शास के तो पार गया शास-पानी' तक नहीं पहुँचा। कर्नस टोंड ने इस घटना के वर्णन में किसी पुरानी कविता या लेख के कुछ अंशों का अंगरेजी अनुवाद करके उद्धृत किया है।<sup>३</sup> यद्यपि यह मानना अनुचित न होना कि किसी 'शासी-पानी' के राजा कुंभा की पत्नी होने का उल्लेख किसी पूर्व प्रचलित जनश्रुति या लेख या गीत के आधार पर टोंड ने किया था।

(ग) उक्त दो जनश्रुतियों के कुछ बाद ही एक और जनश्रुति अस्तित्व में आई। इसका प्रथम उल्लेख भी कर्नस टोंड के 'ऐनस्त एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान' में मिलता है। यह भी गीतों को 'राजा कुंभा की पत्नी मानना।' जैसा कि स्पष्ट किया गया है चित्तोड़ के किले में राजा कुंभा द्वारा निर्मित कुम ह्याम के मंदिर के पास गीराबाई के मंदिर के होने से यह भ्रम फैला था।

(१) श्री भरतमाल अपकला, पृष्ठ ४७७, अमृतदास की परचई में भी यह उल्लेख है।

(२) वही, पृष्ठ ४७८

मंदिर का गीराबाई के नाम से सम्बन्ध होने पर 'रीवास की छतरी' को बोल कर यह भ्रम और फैला कि गीराबाई रीवास की सिप्या थी -

(३) ऐनस्त एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान टोंड, सेकंड संस्करण, पृष्ठ २३३

(४) वही पृष्ठ २३२



इस प्रकार निम्नलिखित तीन जनश्रुतियाँ इस संग्रह में मिलती हैं—

१—बिस्तोड़ की शासी रानी रैवास की शिष्या हुई,

२—शासी रानी राधा कुंमा की पत्नी थी, और

३—मीराबाई राधा कुंमा की पत्नी थी।

स्पष्ट है कि पहली और दूसरी जनश्रुति के आधार पर यह जनश्रुति कैसी होनी कि राधा कुंमा की पत्नी धर्मात् बिस्तोड़ की रानी रैवास की शिष्या बनी। जब मीरा की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई और साथ ही यह भ्रम भी फैल गया कि मीरा कुंमा की पत्नी थी तो रैवासी सर्वों तथा कुछ अन्य लोगों में भी यह बात चलने लगी कि मीरा रैवास की शिष्या थीं। इस बात की प्रसिद्धि के साथ ही रैवास को गुरु रूप में विभित करनेवाली पंक्तियाँ मीरा-पदों में जोड़ दी गई और इस आधार के पूरे पदों की रचना भी कर दी गई।

### रैवासी सन्त विद्वत्

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने मीरा-साप के पदों में प्रयुक्त 'रैवास' शब्द का अर्थ 'रैवासी संप्रदाय के सन्त' समानाधिकारिक उचित माना है। रविदास को मीरा का गुरु मानना वे इसलिए ठीक नहीं मानते कि रविदास को मीराबाई के समकालीन मानने में कठिनाई पड़ती है। उनका कथन है कि 'संत रविदास के अनुमात्रियों को बहुत 'रविदास' या रैवास कहते हुए सम्बोधित भी सुना जाता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि मीराबाई के गुरु सम्भवतः रैवासी संप्रदाय के कोई ऐसे आचार्य रहे होंगे जो उनके समय में जीवित रहे होंगे। इस बात की पुष्टि एक और बात से होती है। भक्तमाल के रचयिता नामागस ने अपने एक पद में बीटुलदास भक्त को रैवासी कहा है और उन्हें पद-गान करते हुए मृत्यु को प्राप्त होनेवाला एवं अत्यंत प्रसिद्ध भी बताया है। इस बीटुलदास रैवासी का समय ज्ञात नहीं है और न निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि मीराबाई के साथ उनकी मेंट संबंध थी या नहीं। फिर भी इतना अनुमान कर लेने के लिए पर्याप्त आधार मिल जाता है कि मीराबाई की उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लिखित 'रैवासजी' या 'संत रविदास' शब्द किन्हीं ऐसे ही रैवासी के लिए व्यवहृत हुए होंगे।'

श्री जगन्नाथ पाण्डेय ने श्री बिटुलदास को निश्चित रूप से मीरा का गुरु माना है। उनका अनुसार कारण प्रत्यक्ष है कि 'यह श्री (बीटुल) उसी रैवास का

(१) उत्तर भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ २३६

(२) बिहार विमर्श, पृष्ठ ६६

वंशज अथवा अनुयायी रैवास है, जिसकी सिप्या शासी-रानी वी घोर अन्य पर पराधों की मूर्ति गुरु परंपरा भी चमती ही है। वृत्ते, बीटुसवास का जो परिचय प्राप्त हुआ है वह सर्वथा मीरा के गुरु के अनुकूल है। पाण्डेयजी ने भक्तमास के आचार पर, 'यह पढ़ते हैं परमोक गति' और 'भक्त-यद-रज-यतधारी'—बीटुस की इन दो विवेचताओं की 'यह पढ़ते हुए भी रणभोजनी में समा जाना' और 'भक्तों को पिता जानकर उर जगाना' मीरा की इन दो विवेचताओं के साथ समानता के आचार पर, इन दोनों के गुरु-सिप्या होने के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे दिया है।<sup>१</sup> हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के भूतपूर्व रिसर्च स्कॉलर महावीरसिंह महमोद न भी कुछ मजबूरी और अनिश्चितता के साथ (क्योंकि उनके अनुसार वृत्त कोई मत संभव नहीं है) इसी मत को दुहराया है।<sup>२</sup>

गुरु-परंपरा की जो बात पाण्डेयजी ने कही है वह यहाँ पर साम्य नहीं होती। राजाओं का यह परिवार 'एकलिय' की वा भक्त रहा है। राजा कुमा द्वारा कुंम-स्याम के मंदिर का निर्माण और गीत-मोर्चि की टीका की रचना उनके कुंम-मन्त्रि की ओर उन्मुख होने के प्रमाण हैं। इस कुस की एक रानी सत रैवास का सिप्यत्व ग्रहण करती है। इसी परिवार की एक दूसरी रानी (मटियाजी रानी) शारकानाथ के मंदिर के लिए भूमि-दान करती है।<sup>३</sup> यह तो रही मीरा के पिता कुस की बात। मीरा के पिता-कुस के पूर्वज जोधपुर के रायकुट (राठोड़) नरेशों में भी इस प्रकार से किसी एक सांप्रदायिक परंपरा को मानने का आग्रह नहीं था। विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। मानसिंहजी दीक्षित के अग्रभूत नाथ संप्रदाय को मानते थे।

दुसरी बात बीटुसवास जी के परिचय की है। बीटुसवास अगर भक्त पद-रजधारी होने के कारण मीरा के गुरु होने के अधिकारी हो जाते हैं तब तो मीरा के गुरु होने के अधिकारियों की संख्या काफी बढ़ जायगी। इससे धार्मिक साम्य रखनेवाले भक्तों के नाम इतिहास में उपलब्ध हैं। भक्तमास में ही एक 'बीटुसवास भाबुर मुकुट' का उल्लेख है। प्रियावास के अनुसार उनके पिता और बाबा राजा के पुरोहित थे।<sup>४</sup> बीटुस नाचते-गाते थे प्रेमबाध थे और जागरण करके हरि

(१) भक्तमास अध्याय १७७

(२) मीरा—जीवनी और काव्य, पृष्ठ ४७-४८

(३) जोधपुर राज्य का इतिहास, घोसा, पृष्ठ ६४०

(४) मारवाड़ का इतिहास, जोधपुर के रायकुट नरेशों का वर्णन, पृष्ठ २७

(५) श्री भक्तमास, कल्याण, पृष्ठ ५८१-५८६

कीर्तन करते थे। कोई रामा-सुता उनके पुत्र रंगीराय की शिष्या थी।<sup>१</sup> इस प्रकार इस ब्रिटुनबास की प्रशंसियों का मीरा के प्रशंसियों से साम्य ही नहीं था, रामा-परिवार से भी सम्बन्ध था। ध्रुवबास भी ने एक रामबास नामक भक्त का उल्लेख किया है। उनके प्राण हरिकीर्तन करते ही छूटे थे। वस्तुतः इस प्रकार के साम्य के आधार पर भुक्त्य का निर्णय कर लेना उचित नहीं है।

एक बात ध्यावर्त्यजनक है। महावीरसिंह गहसीत मीरा-छाप के वे पद अप्रामाणिक मानते हैं, जिनमें रैवास का उल्लेख है। उन्हें किसी प्राचीन प्रति में ये पद नहीं मिले। पर मीरा के 'रैवासी' सम्बन्धी उल्लेखों के आधार पर ही रैवासी संत (बीटुस) की कल्पना उन्होंने कर ली है।<sup>२</sup>

वस्तुतः पं० परशुरामचतुर्वेदी और पं० बंनबसी पाण्डेय का मत इस आधार पर आधारित है कि मीरा रैवास की शिष्या थीं और चूंकि उनका रैवास की शिष्या होना काल की दृष्टि से संभव नहीं है अतएव वे उन्हें किसी रैवास संत की शिष्या कहने के लिए मजबूर हैं। पिछले पृष्ठों में यह बात स्पष्टतः सिद्ध की जा चुकी है कि मीरा का रैवास की शिष्या के रूप में प्रचार तीन जनश्रुतियों के मिलने से तथा चित्तौड़गढ़ में रैवास की छतरी के कारण हुआ है और रैवास का मुक्त रूप में उल्लेख करनेवाले मीरा-छाप के पदों की अप्रामाणिकता अस्ति। इस बात के निर्वय हो जाने पर रैवास शब्द के आधार पर 'रैवासी संत' की कल्पना की बुनाइश ही नहीं रह जाती।

इन चीनों बिहानी को मीरा-छाप के पदों में बीटुस नाम नहीं मिला नहीं तो वे उसका उल्लेख संत साहस के रूप में भी अवश्य करते। संभव है कि इस मत के माननेवालों की संख्या के बढ़ने पर बीटुस को मुक्त रूप में चिह्नित करनेवाले पदों की भी रचना हो जाय। अतः 'मीरा-छाप' के समस्त (अप्रामाणिक तथा अप्रामाणिक) पदों में आए बीटुस शब्द पर विचार कर लेना धावश्यक है।

मीरा-छाप के जिन पदों में बीटुस का उल्लेख है उनमें बीटुस स्पष्टतः रूप्य का द्योतक है। बिद्यासमा की एक पोथी में एक पद में बीटुस का उल्लेख

(१) लैसेहि रामोबास की, बल्ल सुनी यह काग

पावत करत बमार हरि, गए छुडितन प्राण —बीबपालीसजीसह, पृष्ठ १५

(२) मीरा, बीबनी और काव्य, पृष्ठ ४१

है।<sup>१</sup> उसके अनुसार जो बीठस मीरा के मन में बस रहा है वह 'कान्हा' है 'गिरिधर नागर' है। वह रीदासी संत मही है।

मीरा छाप का एक पद भीर मिलता है जिसमें 'बीठल' छन्द धामा है,<sup>२</sup> पर वस्तुतः यह पद 'छीत स्वामी' का है जो सिपि-दोष के कारण किस प्रकार 'भीरा स्वामी' हुआ बन गया है, इसका विवरण 'पाठ' प्रकरण में दिया गया है।

मीरा के पदों के कुछ गुजरती संकमनों में 'नहि रे बिसाई हरि टेक का एक पद मिलता है, जिसमें छाप की पंक्ति इस प्रकार है— 'भीरा नहे प्रभु गिरिधर नामर, बिठल बर ने बरी'।<sup>३</sup>

इस पद में भी बिठल की बिरोपताएँ स्पष्ट कर दी गई हैं व हैं 'गोकुल बास पीसा पीताम्बर, बाकरी बामा कसर घाड़ध, मोर मुकुट काने कुंडल मुल पर मोरसी'—आदि और निरिपठ रूप से इन बातों का 'रीदासी' भ्रमदाय में किसी प्रकार का धार्मिक सम्बन्ध नहीं है।

१६ बीं घटी में महापद्य में ही नहीं गुजरत में भी बिठल छन्द का प्रयोग कृष्ण के लिए ही होता था। मरसिह मेहता भीम भावण नायर, कदाच सबकी रचनाओं में बिठल छन्द इसी अर्थ में धामा है।<sup>४</sup> अतः मीरा के किसी पद में यदि बिठल छन्द आता है तो उक्त साहित्यिक और धार्मिक परंपरा की भूमिका में रखे बिना उसका कोई अन्य स्वतंत्र अर्थ लगा देना उचित नहीं होगा।

एक आश्चर्यजनक और उत्प्रेक्षनीय बात है कि 'बिठल की मन्त्रि' के

(१) विद्यासभा, भद्र अहमदाबाद में सुरक्षित हस्तलिखित पोथी संख्या १५५८ में निम्नलिखित पद में बीठल का प्रयोग हुआ है—

बिठल रहो रे बली बन बिठल रहो रे बली ॥ टेक ॥

कामुखो काली नाप छे रे मारेकारख रहो रे बली ॥ मारे ॥

धोबीबीयो बलया करो बजने लौड पाबो छे बली ॥ मारे ॥

धोपेला बुरिजन लोक हरि मारि बातन बातो बली ॥ मारे ॥

मीराबाई केहे प्रभु गीरधर नागर तारा बरख कमल ने बली ॥ मारे ॥

(२) विद्यासभा भद्र अहमदाबाद में सुरक्षित पोथी, संख्या १

(३) मीराजी प्रेमवाणी, संपादक श्री मधुर, पृष्ठ ४, पद २

(४) मरसिह-कवच ठाकुर ने बीनकुं, बिठला ? कमलाना नाव । यदि शू बिचारो ? (हारतमेना पद), भीम : बंध बजावह बिठलु रे, तेपाई छंदा नाचह मारि ।

हरिलीला बौडसकल, पृष्ठ १५३

(द्येय अपठे पृष्ठ पर)

प्रबलतम समर्थक बारकरी संप्रदाय के ग्रंथों में मीरा-छाप के जो पद संक्षिप्त हैं उनमें एक भी पद में 'विदुस' को आराध्य के रूप में चित्रित नहीं किया गया। पर यहाँ यह बात महत्व की नहीं है। महत्व की बात है कि कहीं भी मीरा-छाप के प्राप्त पदों में विदुस शब्द के प्रयोग के साथ रैबासी संप्रदाय की भावना नहीं है।

### हरिदास दर्जी

लोक-गीतों के रूप में प्राप्त लघुकावित्व मीरा के एक पद की अभिव्यक्ति के आधार पर श्रीमती शबनम का मत है कि मीरा के गुप्त रैबास संत दर्जी जाति के थे। एक पद के उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'पदामिव्यक्ति से स्पष्ट है कि गुप्त 'हरिदास दर्जी' के कहने पर मीरा सफेद बस्त्र धारण कर 'बे नबारो' (बंके की चोट) अपने भाग पर बस बेटी है। उनका अनुमान है कि मीरा-छाप के पदों में जिन 'रैबास संत' का उल्लेख है वे यही हरिदास दर्जी हैं।'

बस्तुतः श्रीमती शबनम ने मीशिक परंपरा से प्राप्त उन गीतों को जिनमें मीरा शब्द आया है मीरा के पद मान लिया है। प्रस्तुत पद जिसे मीरा का पद कहा गया है इसी कोटि का है। जैसा कि 'अध्ययन के आधार' अध्याय में कहा गया है, वह गीत किसी हरिदास का लिखा हुआ है। इसमें मीरा के संघ्वास लेने की बट्ठा की नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। सब धीर तुम की जो अर्ध-गति धीर पंक्तिमों के हेरफेर इस बीच में है उससे पता चलता है कि बा तो यह पद अपने मूलरूप में नहीं है या फिर इसका लेखक हरिदास अत्यन्त साधारण कोटि का तुल्यक बा। यह भी संभव है कि दोनों बातें एक साथ ही सही हों। बीच की पंक्तिम चार पंक्तियों को बेचकर यह बात सरलता से समझी जा सकती है—

(पिछले पृष्ठ का शेवाँज)

भासवः बुद्धवनामी रे विदुलो, कतुर्मुन चारे माय (ब्रह्म लब्ध-  
पद १३ वाँ)

नाकरो बाहरह बडमे बीठला, तुं समरथ राह रलुछोड़ विरल पर्व,  
कड़ी ११

कोमला बलम बोरी गयो विदुलोसे बीठो, मूँ बास्या रे) कृष्णबीडी-  
काव्य पृष्ठ ४४

(१) मीरा—एक अध्ययन शबनम, पृष्ठ १३३—मीरा बुद्ध पद—संपद, शबनम  
पृष्ठ १०

“हरिदास दर्जी की बिनती बोनाबन्ध सिमाघो  
देर नयाहो भीरों बढ़ गई भाता हिपो मत हारोही ।  
बागों में बोयी बोधपी बन में दादुर मोर,  
भीरों ने गिरधर मिलिया भायर नंद किमोर ।”

भीरों की प्रार्थनाक पंक्तियाँ भी इसी वर्णमाला की छंदार हैं ।

यदि हरिदास भीरों के गुरु होने का भीरों किसी पद में उनका उल्लेख करने हुए कभी यह न कहती कि “हरिदास (गुरुजी) की बिनती है” । किंतु इन पंक्तियों में भीरों का प्रयोग धर्मपुत्र में है वे बच्चा नहीं हैं बल्कि का विषय है ।

समय इसी प्रकार की छोटमछास की एक रचना (भीरोंको मरवो) गुजराती में है <sup>१</sup> श्री जैतराम की हिंदी में ।<sup>२</sup> उनके धनेक धर्म भीरों की रचनाओं के रूप में प्रचलित होकर साक-भीरों की कोटि में आ गए हैं । ‘हरिदास दर्जी की बिनती’ की तरह ही छान्मदास की रचना में भी ‘छोटमछास की बिनती’ वाक्यांश का प्रयोग हुआ है । इस आशय पर न छोटमछास को भीरों का बुढ़ कहा जा सकता है और न हरिदास को ।

माधवपुरी :

उदयपुर के जयदीपजी के मंदिर में पूजायी (स्मार्त शास्त्र पं० चतुर्मुख के पुत्र रघुपन्धन) ने भीरों के बीला-गुरु के सम्बन्ध में निम्नांकित सूचना सेबक की है । इस मंदिर में भीरों द्वारा पूजित कृष्ण-मूर्ति रची हुई है । उसी को लेकर यह कथा प्रचलित है

“माधवपुरीजी जो बन्धनमर्दान के गुरु थे एक बाग में छोट में बीला के लिए ठहरे । भीरोंकी उनके यहाँ छापी-खाती थीं । बातिर कृष्ण शास्त्री के दिन वे बन्धन लेकर बने गए । भीरों ने धर्म त्याग दिया । माधवपुरी को मरवान् कृष्ण से स्वयं दिया । ब लौट आए भीरभीरोंकी मूर्ति भीरबीला बकर चिप्या बनाया । शाही में भीरों उसी मूर्ति को लेकर आई । धने कृष्णधन प्रवास काम में वे छिर माधवपुरीजी से मिली । वहाँ उनसे रामरायजी की बड़ी मूर्ति भी । वे

(१) भीरों एक धर्मपुत्र, पृष्ठ १३२

(२) यही प्रबंध पृष्ठ ३६

(३) रामदास के हिन्दी ग्रंथों की कोटि, जटनागर, भीरों-सम्बन्धी ब्रज, पृष्ठ २३२-२३६

जब द्वारका गई तो ये मूर्तियाँ रामेश्वरजी को दे गई। ये उस समय चित्तौड़ में रहते थे।”

वहाँ माधवपुरी से तात्पर्य कर्णाचित् माधवेन्द्र पुरी से है। इन्हीं के पास बस्तमाचार्य ने ११ वर्ष की अवस्था में अपना अध्ययन काशी में संपूर्ण कर लिया था।<sup>१</sup> माधवेन्द्र पुरी के आयुष्यकाल की निश्चित सीमाएँ तो ब्रजाल है, पर बस्तमाचार्य को ११ वर्ष की आयु तक शास्त्राध्ययन कराने के कारण इनका संवत् १५४६ तक सीमित रहना निश्चित है। ये महाप्रभु चैतन्य को वैष्णव वर्ग में बीक्षित करने-वाले आचार्य ईश्वरपुरी<sup>२</sup> के गुरु के घोर ईश्वरपुरी का जन्म सं० १४३६ (संवत् १४६३) में हुआ था।<sup>३</sup> अतः यह अनुमान लगाना अनुचित न होना कि माधवेन्द्र पुरी आयु में ईश्वरपुरी से बड़े होंगे और मीरा के जन्म के समय उनकी आयु अड़सठ वर्ष से अधिक हो रही होगी।

संभव हो सकता है कि मीरा के जन्मकाल की गिरिधर की मूर्ति के लिए मत्स्यनेवासी घटना से माधवेन्द्रपुरी का सम्बन्ध हो परन्तु मीरा<sup>४</sup> दुर्बाण ब्रज में मत्स्यनेवासी बात के सत्य होने की गुंजाइश अपेक्षाकृत बहुत कम है। कुछ सोच माधवेन्द्रपुरी का जन्म संवत् १४३७ वि० के आसपास मानते हैं। यदि इसे सत्य माना जाय तो उनके मीरा से मिलने की संभावना नहीं रहती।

माधवेन्द्रपुरी के एक शिष्य ‘माधव’ थे। पुलिनविहारी दत्त के अनुसार हरिराम व्यास भी माधवजी नामक किसी सम्पासी के शिष्य थे।<sup>५</sup> लालदास कृत भक्तमाल से भी इस बात की पुष्टि होती है।<sup>६</sup> यदि पुष्पाटी रघुनन्दन की अनुसृष्टि के ‘माधव’ पुरी का तात्पर्य इन माधव से है, तो काल की दृष्टि से कोई

- (१) बस्तकवि व्यासजी, पृष्ठ ३
- (२) चैतन्य को संन्यास की बीधा देनेवाले केन्द्रवाण्टी थे
- (३) माधवत् संग्रहाम, पृष्ठ ४६६
- (४) वही, पृष्ठ ४६६
- (५) बुन्दावन-कथा, एकादश परिच्छेद (बंमना), पृष्ठ १६६ (भक्त कवि व्यासजी, पृष्ठ ६५ से उद्धृत)
- (६) लालदास कृत भक्तमाल (बंमना) पृष्ठ ७२१

भीमन् माधवेन्द्रपुरी गीस्वामीर।

शिष्य भी माधव नाम शिष्य, मीर॥

तार शिष्य भीत हरिराम ये मोताइ।

धतएव तार बंध जाय्ही संग्रहाइ॥

कठिनाई नहीं पड़ती।

मीरा गिरिधर गोपाल के प्रेम में मग्न थी और माधवेन्द्रपुरी भी भी 'गोपाल' के अनन्य भक्त थे। उन्होंने बृन्दावन में गोपाल की मूर्ति की स्थापना की थी। चैतन्य के पूर्व बृन्दावन की आध्यात्मिक सरसता की महिमा को जागृत करने में उन्होंने अत्यन्त परिश्रम किया था। अतः उनसे या उनके शिष्य माधव से मीरा को गोपाल की मूर्ति मिलने की अनुमति सत्य हो सकती है। उनसे बीसा लेने का कोई उल्लेख नहीं है। माधवजी तो संन्यासी थे और संन्यासियों से वैष्णव लोग बीसा लेना पसन्द नहीं करते थे। अतः उनको बीसा लेने का प्रयत्न ही नहीं उठता।

मीर कृष्ण, दास-भक्त और जीवगोस्वामी :

जीवहरदनदास ने भक्त रघुनाथदास को मीरा का मुँह माना है। इस मत की पुष्टि में उन्होंने राग-कल्पद्रुम में संक्षिप्त मिश्रांकित पद उद्धृत किया है—

प्रब ली हरी नाम ली भायी ।

सब जय को यह माखन-बोर, नाम क्यों बैरागी ।

कहू कोकी यह मोहन मुनी कहूँ छोकी सब गोपी ।

मूढ़ मुझाय डोरि कटि बांधी माये मोहन दोषी ॥

माठ असोमति माखन कारण बाँध्यो बाको नाँव ।

स्याम किशोर भए नव पोरु चैतन्य बाको नाँव ॥

पीठान्तर को भाव बिछावे कटि कोपीन फसे ।

दास भक्त की बासी मीरा रसना कृष्ण बसे ॥<sup>१</sup>

जीवहरदनदास का कथन है कि चैतन्य महाप्रभु के छः पोस्वामी शिष्यों में रघुनाथ नाम के दो भक्त थे और इसी कारण जी रघुनाथदासजी दास भक्त या दास गोस्वामी के उपनाम ही से प्रसिद्ध थे।<sup>१</sup>

इस पद की प्रतिप पंक्ति का पाठ इस प्रकार भी मिलता है—<sup>१</sup>

(१) मीरा-माधुरी, पृष्ठ ७६ (राग कल्पद्रुम, कण्ठ २, पृष्ठ ३७, पद २)  
जीवहरदनदासजी ने शब्दों को कम गुंथ कर दिए हैं, पर इससे अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता।

(२) मीरा-माधुरी, पृष्ठ ७६-७७

(३) भजन संग्रह भाग ३, विद्योगी हरि, पृष्ठ ११३

मीराजी प्रेम-बाणी, पद २२७, पृष्ठ १२६

मीराजी भक्ति-गीतो, सं० बीबलीबेन मङ्ग, पृष्ठ ४७ (द्वितीय पद)



‘मीर कृष्ण की बासी मीरा रसना कृष्ण बरी ।’

इस पद के विषय में भिन्नभिन्नित तथ्य विचारणीय है —

(क) महाराष्ट्र में मीरा के पदों की प्रचलित प्रतिभित्तियों में यह पद नहीं है, न बारकरी संप्रदाय की और न रामदासी संप्रदाय की। गुजरात के पुराने संस्करणों में भी यह नहीं है—न प्राचीन काव्य-सूत्रा में और न बृहत् काव्य-बोहल के किसी भाग में। डाकोर और काशी की प्रतियों में ही नहीं, राजस्थान के राम-सनेही संप्रदाय की पोथियों में भी इसका अभाव है। यह पद संगीतराम-अक्षयधुम और उसकी सामग्री का उपयोग करनेवाले संस्करणों में ही मिलता है।

(ख) प्रियादासजी महाप्रभु कृष्णचैतन्य संप्रदाय के थे। उन्होंने इस संप्रदाय के अनेक भक्तों का उल्लेख करते हुए उनका चैतन्य के शिष्य होने या उनसे प्राप्त पाने का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> मीरा के विषय में विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए भी उन्होंने इस संबंध में कुछ नहीं कहा। चैतन्य-संप्रदायी वैष्णवदास के बृहत्त में भी जिसमें उन्होंने प्रियादास की टीका की कई भाग्यक बातों का स्पष्टीकरण किया है, इस विषय में कोई उल्लेख नहीं है। चैतन्य के भक्तों द्वारा किए गए मीरा-सम्बन्धी उल्लेखों में इस बात का अभाव अकारण नहीं हो सकता।

यहाँ तक मीरा के ‘दास भक्त’ की बासी होने का प्रश्न है यह बात संभव ही नहीं है क्योंकि दास भक्त (रघुनाथदास) महाप्रभु चैतन्य के बहुत बाने के पश्चात् ही बृन्दावन में आए थे। चैतन्य ने इह जीसा को सन् १५३३ में समाप्त किया था।<sup>२</sup> उसके पूर्व रघुनाथदास ने पश्चिमी प्रवेश की यात्रा भी नहीं की थी। अतः उनके मीरा से मिलने का एकमात्र संयोग मीरा के व्रजप्रसंग-काल में व्रज में ही हो सकता था और यह एक निश्चित सत्य है कि व्रज में जाने के समय तक मीरा की मक्ति-भावना का एक निश्चित स्वरूप बन चुका था। इतना ही नहीं उनकी भावना इतनी बृह और उनका विवेक इतना प्रीति हो चुका था कि वे निश्चित आत्मविश्वास के साथ जीवगोस्वामी जैसे पण्डित और भक्त को एक टीले ध्वज बाण से राह पर ला सकती थीं। जीवगोस्वामी जैसे पण्डित पर हावी हो जानेवाली यह महाप्राण भारी उस समय जब सनातन और जीव गोस्वामी के होते उनसे

(१) (घ) श्री कृष्णजी तथा श्री सनातनजी के विषय में—प्राज्ञा प्रभु (महाप्रभु चैतन्य) पाप पुनि गोपी-स्वर भने प्राय—पृष्ठ ५२३

(ख) महाप्रभु-पारबत पापेश्वरी अवभाष, पृष्ठ ६१६

महाप्रभु चैतन्य जू के पारबत-लोकनाथ पृष्ठ ६१७—इत्यादि

(२) वैष्णव दर्शन, पी. परधुराम अतुबेरी, पृष्ठ १०३

कम प्रतिभा और प्रतिष्ठा वाले उर्मी सप्रशय के एक धन्य आचार्य-मस्त से बीसा सने गई होगी यह बात बुद्धिमत्ता गयी है।

वहाँ तक महाप्रभु चैतन्य (श्री कृष्ण) के गुरु ऋषि में स्वीकार करने का प्रसंग है, इस विषय में अन्य कोई प्रमाण नहीं है। महाप्रभु के मेढठा या चिठीठ सड़ जाने का कोई उल्लेख नहीं है। मीरों के बृन्दावन घाट पर चैतन्य बृन्दावन में नहीं थे क्योंकि मीरों जीवगोस्वामी के समय में बृन्दावन गई थी और उस समय के पूर्व (जीवगोस्वामी के बृन्दावन आने के पूर्व) महाप्रभु इहलीला समाप्त कर चुके थे। इस तरह मीरों के चैतन्य महाप्रभु से साक्षात्कार होने की भी संभावना नहीं है।

### जीवगोस्वामी

कुछ बिड़ान् जीवगोस्वामी को मीरों का गुरु मानते हैं। आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने इस मत का आधार अपना इसके पक्ष में ठक नही दिए।<sup>१</sup> विद्योपी हरि का यह अनुमान 'मीरों-जीवगोस्वामी' की बृन्दावन वाली घटना पर ही आधारित है। वस्तुतः यह घटना तो मीरों की विजय का उद्घोष करती है। गुजरगती के कवि बयाराम ने इस बात को इस रूप में लिखा है—

“मीरोंबाई आम्हो बृन्दावनमा र प्रेम नीरक्या श्री वजराव  
श्री यमुना पय पान करुनि करी जीवपासाई न शिलाय ॥”

जीव गोस्वामी घाट में मीरों ने छाटे थे। जिस समय मीरों उनमें बृन्दावन में मिली थी उस समय उनके चाचा रूप और सनातन भी बृन्दावन में ही थे। वे उस समय तक भक्त के रूप में प्रसिद्ध भी हो चुके थे। अतः अगर मीरों को बीसा लगी हाठी ठी रूप या सनातन जैसे सख्य प्रतिष्ठित भक्तों से लेतीं न कि उस व्यक्ति से जिनने स्वयं 'नारियों का मुख न देखने का प्रण' मीरों के उद्घोषक बचनों से परास्त होकर छोड़ा था।

### पुरोहित गजाधर

मीरों-मूर्ति एवं में 'जनम जोगिय मीरों' के सेवक रामप्रसाद बहुगुणा न लिखा है— “कहा जाता है कि मीरों ने वास्यदास में अपना पुरोहित गजाधर

(१) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ५२

(२) मीरों-चरित्र बयाराम, ५६, ५७ की पंक्तियाँ

(३) पृष्ठ ४२

ऐसे पुराण धारि सुनै बे श्रीर बिबाह ही जाने पर बे उसे चितौड़ ले गई जहाँ उन्हें मुरसी बर के मंदिर की पूजा सीपी श्रीर व्यास की उपाधि के साथ-साथ एक हजार बीबा भूमि भी दान बी जो भाब भी बजावर के बंसब भोग रहे हैं ।" इस बात का धाबार सेखक ने नहीं दिया, श्रीर न उसे स्वयं शरण मानने का धाग्रह ही व्यक्त किया है । बजावर नामक व्यक्ति का कोई परिचय उपलब्ध नहीं है । भक्तमाल में छः व्यक्ति गदाधर या गदाधारी नाम के हैं<sup>१</sup> पर गजाधर नाम का कोई भक्त नहीं है ।

उदयपुर के बमबीसजी के मंदिर के पुजारी रघुनन्दनजी का कथन तो यह है कि मीरा अपने धाराध्य की मूर्ति रामेश्वरजी को देकर डारका गई थी । उन्होंने सेखक को यह भी बताया कि उनके पूर्वजों को 'व्यास' की उपाधि नहीं मिली थी कमा बीबने के कारण ही उन्हें व्यास कहा जाने लगा था पक्षी 'बोसी' (व्योतिषी) की थी । उनके अनुसार एक पक्ष भी मीरा ने उनके किसी पूर्वज को संबोधित करके कहा था । इस पक्ष में पुरोहित को 'बोसी' के नाम से ही संबोधित किया ।<sup>२</sup>

## दियाजी

कहा जाता है कि धामेर के बमठ शिरोमणिजी के मंदिर में मीरा द्वारा पूजित गिरिधर की मूर्ति है । मंदिर के वर्तमान पुजारी पं० गिरधारीलाल जी ने सेखक को बताया कि उनके पूर्वज बेबाजी का गिरिधर की मूर्ति रामानन्दजी से मिली थी । 'एक बार बेबाजी यात्री में बैठकर उस मूर्ति को ले जा रहे थे । रास्ते में किसीड़ में ठहरे । वही मूर्ति स्थापित की । मीरा वहाँ थीं । उन्होंने बाड़ी को सेवा । मीरा उस मूर्ति को गहनों में ले गई । धामेर के राजा मलसिंह ने भक्तर के साथ जब चितौड़ पर आक्रमण किया तब वे उस मूर्ति को छठा साए ।

बेबाजी के विषय में भक्तमाल में भी उल्लेख है । इस सम्बन्ध में धामे प्रकाश बताया है । बेबाजी रामानन्दी साधु के वैरागी संप्रदाय के कुम्भवास पयहारी के शिष्य थे । उनका संपर्क मीरा से चितौड़ में हुआ वे राजा के पुरोहित थे । उनके गुपुन रामदासजी का मीरा के प्रति व्यवहार कटु था । मीरा की

(१) भक्तमाल अष्टकाल, पृष्ठ ७४६ अ२२, ४६७ ३०४ ६६२

(२) 'क्यों वे कोनी बोसी भूने राजी मिलन कब होयी । —इत्यादि प्रकाशित ग्रंथों में भी यह पक्ष उपलब्ध है ।

भक्ति-भावना रामानन्दी संप्रदाय में प्रचलित भक्ति-भावना से ये दूसरे, उक्त उल्लेख में देवार्ची से मीरी के मूर्ति पान का ही पता चलता है, वत्स का नहीं।

इस ब्रह्मण्य की प्रामाणिकता को सिद्ध करनेवाला मीरी के काव्य का कोई अन्य उल्लेख उपलब्ध नहीं है, परन्तु जहाँतक देवार्ची और उनके दो पुत्र रामदास गरीबदास और उनकी बहन-भरपरा का सम्बन्ध है, यह बात निश्चयनीय है, क्योंकि आनेर के बपईवडी के मंदिर की पूजा का भार आज भी देवार्ची के पुत्रों के बंधों पर है, और उसका उत्तराधिकार प्रारम्भ से ही दोनों बंधों के दो उत्तराधिकारियों को मिलता रहा है।

अब प्रश्न यह है कि मीरी के बीरान-गुरु कौन थे।

(१) मीरी के गुरु के सम्बन्ध में ८४ और ७१२ वाक्यों के मीरी-सम्बन्धी उल्लेख एक स्पष्ट निर्णय दे देते हैं कि 'मीरी ने ब्रह्मन-संप्रदाय में बीरान नहीं ली। ब्रह्मन संप्रदाय के लोग मीरी को किसी न किसी प्रकार अपने मत में बीरान करने का प्रयत्न करते रहे। इस बात से अनुमान यह होता है कि मीरी ने किसी संप्रदाय में बीरान नहीं ली थी। किसी संप्रदाय में बीरान होने के बाद, बिना किसी विशेष कारण के लोग प्रायः संप्रदाय नहीं बदलते अन्य लोग भी उनके पीछे नहीं पड़ते—कम से कम बीरानों की उदारता उन्हें यह नहीं करने देती।

(२) मीरी के पुरोहित रामदास ने जब 'आचार्य महाप्रभु' का पद पाया तो मीरी ने दूसरा पद ठाकुरजी का गाने के लिए कहा किन्ती अन्य संप्रदाय के आचार्य का नहीं।

(३) इस विषय में मीरीबाई का एक पद विचारणीय है—

हेरी म्ही तो बरद दिवानी म्हीरा बरद न जान्यो सोय।

आयन की मति आनन जान्या हियरी अयन संजोय।

बीहर की मत बीहर जान्या क्या जान्या बिन सोय।

दरद री मानी बर हर होम्या बीह मिम्या ना काय।

मीरी री प्रभु पीर मिटीया जहि बीह सुबरो हो।

यह पद जोड़े में पाठ-जेद के माथ मन्त्री मन्त्रों में है। इसमें मीरी ने स्पष्टतः यह दिया है कि वे दण्ड के मारे (परमात्मा के विषय में उन्मत्त बेहता के कारण) हर-हर (जिसी-जिसी पोषी में बन-बन है) भुमकी किरी मगर कोई बीह (उम हरी का उनका बनाने वाला) नहीं मिला। इतना ही नहीं मीरी इस निष्कर्ष पर पहुँच

बई है कि उनका दर्द मिटाने के उपचार का संकेत भी सावधिया ही करेंगे।" वैद्य का कार्य है रोगी को रोग से मुक्त होने का उपाय बताना गुह का काम है सांसारिकता से पीड़ित व्यक्ति को इस भय-यातना से मुक्त होने का उपाय बताना। दोनों चरणागत की अस्वस्थता (एक शारीरिक और दूसरा धार्मिक) के निवारण और आनन्द की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यहाँ मीरा का कथन स्पष्ट है कि उन्हें कोई वैद्य (धार्मिक गुह) नहीं मिला और कृष्ण के प्रतिरिक्त किसी अन्य से (अप्य द्वारा मार्ग सुझाने से) मीरा की पीर नहीं मिट सकती।

'मूँरी री गिरिबर गोपाल दुसर न क्यूँ'—एक अन्य पद की टेक है। (अप्य कुछ सबहों में यह टेक इस रूप में मिलती है—'मेरे तो गिरिबर गोपाल दूसरे न कोई') इसी पद में उन्होंने आगे कहा है—'दुसर ना कोसी सांघा सकल सोक भूवा। इस पद में मीरा के कथन की व्यंजना यह है कि गिरिबर गोपाल के प्रतिरिक्त उनका अप्य कोई नहीं—गिरिबर ही उनके आराध्य हैं, गिरिबर ही उनकी आराधना के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा है। वक्त है धर्म-निवृत्त है समस्त सोक उन्होंने बेबा है मगर उन्हें ऐसा कोई और नहीं मिला। संप्रदायों में दीक्षित होनेवाले लोग तो संप्रदायों के मुख्यों को लगभग ईश्वर के समान मानते हैं और मोक्ष के लिए गुह का अनिवार्य महत्त्व स्वीकार करते हैं। कृष्ण-भक्तों में तो वह बात काफ़ी जोर पकड़ गई थी। किसी व्यक्ति की बई के मिटाने की शीघ्र बताने की असमर्थता का चित्रण यह बताता है कि गुह रूप में भी मीरा कृष्ण को स्वीकार करती हैं, किसी नाम रूपवादी नीतिक जगत् के व्यक्ति को नहीं। एक अन्य पद में उन्होंने कहा है—

राबरो बिरह म्हाणे रहो जागां पीकत म्हारो प्राण।

संघा छनेही से नहीं म्हाणे न कोई बरपा सकल ज्ञान।

मीरा दाडी बरबा करता म्हाणे सहारे न प्राण।

इसमें भी मीरा ने स्पष्टतः कहा है कि 'मेरा अप्य कोई सहारा नहीं है'—

(१) डाकोर की प्रति पद १—इसी आक्षेप के कई अन्य पद भी हैं—

(क) "बड़ी चीन ना बहकां ये बरतन बिन मोय

बायल री घुंघा बिरो म्हाणे बरब ना जायदा कोय

मीरा रे प्रभु कबो दिसोपां ये मिस्या सुख होय—डाकोर २१

(ख) हरि म्हाणा जीवन प्राण अघार

और आसरो ना म्हाणा ये बिना तीनों लोक बँधार—डाकोर,

पद १२

सगा सनेही भी नहीं है और इस जहान में किसी का बरन भी नहीं किया । मीरा के युग में संत ही नहीं कृष्ण-भक्त भी गुरु और गोविंद को एक समान मानते थे ।<sup>१</sup> पुरु के रहते हुए कोई भक्त अपने को असहाय बिना सहारे का कैसे रह सकता था ?

मीरा के पदों में एक और उत्सव इस समय की धोर संकेत करता है । उन्होंने बारबार यही कहा है कि 'मुझको गिरिधर मिले यह मेरा पूर्व जन्म का माय्य है ।'—'मेरी कृष्ण की प्रीति जनम-जनम की है ।'—'उनको प्रभु ने बरसन इस लिए दिया है कि पूर्व जन्म में कौल कर दिया था ।' इससे इस जन्म में किसी पुरु द्वारा प्रीति की ज्योति जगाने का प्रयत्न ही नहीं उठता ।

मीरा को कृष्ण से चिर-वचन में दीखने का कार्य स्वप्न में हुआ था । वैसे कि मीरा ने स्वयं कहा है—

माई ग्हातो सुपना मो परक्या दीनानाथ ।

छप्पन कोट्य जना पधादयां बुझो छिरी बबनाथ ॥

सुपना मो ग्हातो परन गया पाबा धचन महाय ।

मीरा रो मिरबर मिल्या बुझ जनम रो भाग ॥<sup>२</sup>

इस बात के प्रमाण हैं कि अनेक भक्त और संतों ने स्वप्न में ही दीक्षा ग्रहण की और दीक्षा देनेवाले को मुक्त भाव से स्वीकार कर लिया । हितहरिबंधी से संबद् १५६२ की भावों मुदी ६ को परमानन्ददास जी को स्वप्न द्वारा दीक्षा प्राप्त हुई । स्वप्न में श्रीकृष्ण ने बिना किसी माय्यम के सीध ही मीरा का हाथ पकड़कर उन्हें अचल गुहाग की स्वामिनी बना दिया था ।

(१) —पुरु गोविन्द दोनों एक समान

बेद पुराण कहत मायगत ते नु बचन प्रमाण —

भक्तकवि व्यासजी पृष्ठ १६१

—"तमने (चतुर्भुजदास) कहपुं सुरदासजी से बहुत भावद्वय बर्नन कयीं अने लहसावधि पर कयीं पद की महाप्रभुजीनी पद बर्नन कयीं नहि । से लाली सुरदासजी बोस्या में तो सबसी पर की म्हाप्रभु-जीना न गुन धारारी कयीं छे । बुदा बुदा बेजती होई तो बुदा-बुदा पर कर्षं मारे तो बने एकज स्वक्य छे" —बोरारी दीपवली बार्ता अहमदाबाद पुनराली पृष्ठ १६३

(२) डा० पद ३६ पृष्ठ ८६

(३) पद १३

(४) पद ३६

भक्तों तथा सन्तों से मीरा का संपर्क :

मीरा का संपर्क साधु-संतों और भक्तों से विशेष था ।<sup>१</sup> राजाधों के यहाँ भक्त पहुँचते भी काफी हैं ।<sup>२</sup> इसपर मीरा स्वयं उज्ज्व कोटि की भक्त की और भक्तों को पिता जामि उर माती<sup>३</sup> और उनका विशेष आतिथ्य और सम्मान करती थीं । भूत उनके यहाँ भक्तों का बराब स्वाभाविक ही था ।<sup>४</sup> वैष्णव की चार्वा<sup>५</sup> का साक्ष्य है कि मीरा के यहाँ वैष्णव काफी संख्या में पहुँचते थे पहुँचते ही नहीं बस-बस पन्नाह-पन्नाह दिन उल्लूते भी थे और अन्त में भेंट लेकर बिदा होत थे ।<sup>६</sup> इन वैष्णवों में कदाचित् हितहरिदास और हरिराम व्यास की कोटि के साहित्यिक भक्त भी थे, जिनका उस युग में व्यापक मान था । सांप्रदायिक मत भेद होने के बावजूद बल्लभ-संप्रदाय के गोविंद बुढ़े साबौरा ब्राह्मण और कृष्ण दास (अष्टाक्षरी) जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी मीरा के यहाँ पहुँचने का मोम संवरन नहीं कर सके थे ।

मीरा कीर्तन करती थी तो संत आकर बैठते थे । 'वैष्णवनि की सतसंग' करती थीं । आरती और कीर्तन में स्त्री और पुरुष दोनों भाग लेते थे और उनमें कोई पर्दा नहीं था ।<sup>७</sup> मीरा के घर पर तो यह हास था ही जब सीख करने निकलीं

(१) (क) सायाँ संग बैठ-बैठ लोक लाज भूषा, भगत बैचरात्री रह्यो अपव  
बेख्या कया । डाकोट, पृष्ठ १

(ख) सायाँ संगत हरि सुख पारु बग झूँ दूर रह्या, डाकोट, पृष्ठ ६०

(ग) सायाँ संगत हरि सुख भास्या—काशी पृष्ठ ५४

(२) भक्त ठाठे भूषन के द्वार

उसकत झुलत वीरियन डरपत, पाय-बजाय सुनावत तार ।

कहियो पाय बना इत प्रोहित हमाहि गुबार भी बार ।

झिन-झिन करत बिदा की बिगती उपवन कोटि बिकार ।

'व्यास व्यास जगि मठ बाँबर ज्यो नाकत बेस जतर ॥

—भक्तचरित्र व्यासजी, पृष्ठ-संख्या १३१

(३) कृष्णदास अधिकारी तिनकी चार्वा, स० बे० पृष्ठ ३४२

राधादास हूत भक्तमान—'भूत छप्पय के साथ का भगहर'

(४) पद-संभव-आला मीरापाई प्रसंग १

(५) सिद्धनपद संग्रह का मीरा का चित्र

तब भी 'सत्संग' को उन्होंने नहीं छोड़ा। जब में जाने पर जीवस्वामी का प्रण सुझा कर वे 'सब सौं गुरु योगिबलत सममान सत्यसय करि द्वारिका की बसी।' जब में गिरधर की मूर्ति के सामने नृत्य करने धीरे पद गाने वाली मीरी द्वारका जाकर बस नहीं गई होंगी।

वस्तुतः मीरा के मीतिक कण्ठों का बहुत-कुछ कारण यही सामु-संपर्क था। राजपूती ग्रह इस बात को सहन नहीं कर सकता था कि उसके कुस की नारी बाहरी व्यक्तियों के संपर्क में घाबे धीरे वह भी राजसी मर्यादाओं का उल्लंघन करके। मगर मीरा ने इसकी उपेक्षा की उपेक्षा के कटु परिणाम को सहर्ष भोगा और भक्ति-आशना का संबन्ध लेकर शासना के लौकिक दृष्टि से कटकाकीर्ण पर मधुर पद पर बढ़ती रही।

सामान्यतः मीरा का संपर्क वैष्णवों धीरे संतों से था राजनीतिक इतिहासों में इन लोगों के नाम का कोई जेहा नहीं है। साहित्यिक उल्लेखों से पता चलता है कि मीरा से मिलने वाले मन्त्रों में निम्नलिखित नाम भी थे —

### देवाजी

भावेर के जगत् चिरोमणि जी के मधिर के वर्तमान पुजारी देवाजी के संबंध हैं। उनमें से गिरधारीभास ने अपनी परंपरागत बहियों और पारिवारिक अनुष्ठानों के आधार पर लेखक को सन् १९५९ में जो सूचनाएँ दीं उनसे देवाजी और मीरा के पुरोहित रामदास के भक्त के भक्तों जीवन पर प्रकाश पड़ता है और कई भक्तों कवियों का सम्बन्ध ज्ञात होता है। सूचनाओं का सार इस प्रकार है— देवाजी रामात्मजी सामु थे। वे चित्तोज्ज्वल के पुरोहित थे। चित्तोज में इन्होंने गिरधर की एक मूर्ति मीरा की भी। जब भामसिंह गिरधर सात की मूर्ति चित्तोज से भावेर जाए तो उस पड़ के पुजारी देवाजी को साथ में ले जाए। देवाजी १०१ वर्ष हुए थे। उन्होंने दो विवाह किए। उनके दो पुत्र थे—(१) रामदास धीरे (२) मरीबदास।—इस समय दोनों के संबंध छ-छ महीने जगत् चिरोमणि जी के मंदिर में पूजा करते हैं।

देवाजी के विषय में नामादास हस्त भक्तमाल में भी उल्लेख है—देवाहित चित्त केस प्रतिज्ञा राखी बनकी<sup>१</sup> भियादास जी ने सूत्र का तीन कवियों में विस्तार करके देवाजी की साज रखने के लिए चतुर्मुखाजी के द्वारा अपने बेटों को स्वतः

(१) पद प्रसंग भासा, मीराबाई पुनः अन्य प्रसंग (३)—

(२) श्री भक्तमाल कम्पना, पृष्ठ ४३०



करने और चित्तोज के राणा को बर्षन न करने की आज्ञा दण्डस्वरूप देने की वटना का वर्णन किया है।<sup>१</sup> इससे इतना पता लग जाता है कि सचमुच देवाजी अपने समय में प्रसिद्ध भक्त थे और चित्तोज के राणा के यहाँ पीरोहित्य करते थे।

भक्तमास में कृष्णदास पयहारी के, कीन्हेदेव अग्रदेव आदि २४ शिष्यों में देवाजी का नाम भी है।<sup>२</sup> पयहारीजी बीरागी थे। उन्होंने यमता में रामानन्दी संप्रदाय की माय्य गद्दी स्थापित की थी। घामेर के राजा पुष्पीसिंह ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था।<sup>३</sup> उनके शिष्य तथा देवाजी के गुरुभाई अग्रदास का घामेर के राजा मामसिंह पर बहुत प्रभाव था। अतः देवाजी को मामसिंह द्वारा प्रथम बिया नामा स्थापना की ही है। इस प्रकार भक्तमास त्रियादास की टीका और चार्त-साहित्य के उल्लेख तथा पयहारी का जीवन-चरित्र इन सबसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर परीक्षा करने पर देवाजी के बहनों से उपलब्ध सूचनाएँ सत्य सिद्ध होती हैं।

देवाजी का संपर्क मीरा के साथ चित्तोजगढ़ में हुआ था। वे वहीं राज-मंदिर में पूजा करते थे। उनकी तथा मीरा की उभयनिष्ठ विशेषता 'भक्ति' ही थी। वे रामानन्दी के घर 'सठकोष' (सम्मानवार) के 'सहस्रमीत' से प्रारम्भ होनेवाली सरस रामभक्ति की धारा की निकसित 'रसरीति' का परिचय उन्हें 'रसिक परम पयहारी' से हो चुका था। मीरा गिरिधर के रंग न रँबी हुई थी। उनकी भक्ति रसिकराम कृष्ण के प्रति थी। देवाजी के परिवार से प्राप्त विवरण के अनुसार मीरा ने देवाजी के जाने पर उसके पास गिरिधर की मूर्ति की चर्चा सुनी थी और एक बत्ती द्वारा उस मूर्ति को मँगवाया था। इससे पता चलता है कि देवाजी के संपर्क के पूर्व मीरा की भक्ति भावना का स्वरूप बम चुका था।

### रामदास

देवाजी के पुत्र रामदास थे। पिता की तरह वे भी चित्तोजगढ़ में मीरा परिवार के पुरोहित थे। वे बल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हो गए थे और ८४ वैष्णवों के सम्मान्य वर्ग में गिने जाने लगे थे। गुजराती कवि पयाराम ने भी 'चोराजी

(१) वही, पृष्ठ ४३४-४३७

(२) वही, पृष्ठ ३०५

(३) रसिक प्रकाश भक्तमास जीवराम गुप्त प्रिया पृष्ठ १३

(४) भागवत संप्रदाय डा० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ २७७

(५) रामभक्ति में रसिक संप्रदाय डा० जगन्नीमदाय सिंह, पृष्ठ ७९, ८०

बैष्णव' नामक कविता में इनका उल्लेख किया है— 'रामदास मीरासा प्रोहित रे ।

रामदास मीराबाई के ठाकुरजी के घासे घाम करते थे । मीराबाई से इन्हें वृत्ति भी मिलती थी । बन्धन-संप्रदाय का होने के कारण वे मुद्द-मोबिन्द को एकही मानते थे । मीरा का आग्रह था कि कबल ठाकुरजी (गिरियर) के घर भाग्यो । इसपर रामदास ने मीराबाई की वृत्ति त्याग दी और महाप्रभु के प्रति उनका समान न होने के कारण उनके बुलाने पर भी नहीं लौटे । बातचीत में रामदास द्वारा जिन शब्दों का मीरा के लिए प्रयोग कराया गया है उनमें संप्रदाय का महत्त्व प्रकट करने का बुद्धिहीन प्रयास है, क्योंकि उनमें संप्रदाय की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती ।

### गोविंद बुढे साधोरा बापूरा

गोविंद बुढे ईदर राज्य के बडाभी गाँव के निवासी थे । श्री महाप्रभु बल्लभाचार्यजी ने उन्हें श्री ग्यामसुन्दर जी की सेवा का भार सौंपा था । यह स्वल्प इस समय ईदर में है । ८४ बार्ता में कहा गया है कि 'एक समय गोविंद बुढे मीराबाई के घर गृहे । वहाँ मीराबाई का भगवद्भक्ति करत घटके । ' बुढेजी मीराबाई के यहाँ बहुत दिन ठहरे थे । उनके ठहरने की बटना की सूचना आचार्यजी तक पहुँची (यह महीं कहा जा सकता कि आचार्यजी उस समय कहीं से पर वे निश्चित रूप से मीरा के गाँव में नहीं थे । बदायित् ने घरेलू काजी या घर में रहे होयें) और उस समाचार को पाकर उन्होंने उन्हें बुलाने का आदेश दिया । ४०० वप पहले पाठापाठ के साधनों को वेष्टत हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोविंद बुढे १०-१२ दिन से कम न ठहरे होंगे । गोविंद बुढे मीरा ने कब मिले इसकी तिथि का कहीं उल्लेख नहीं है । मगर बार्ता का प्रमाण है कि आचार्य महाप्रभु उस समय जीवित थे और बिदुम इस योग्य हो गए थे कि श्लोक लिखकर भेज सकें । बल्लभाचार्य ने मघत् १२८७ में इहमीला समाप्त की और श्री बिदुमनाथ मुर्छाईजी से संवत् १२७२ में जन्म लिया था । घत्र-तक बटना-काल की दो मीमांसे हो जाती हैं मघत् १२७२ और संवत् १२८७ । श्लोक लिखकर

(१) औरंगाबी बैष्णवजी की बार्ता लक्ष्मी बैकरोबर संस्वान, पृष्ठ १९१

(२) पुररती बार्ताओं में तो स्पष्ट लिखा है—

"बडाभी साधोरा साई ने बैकलीक दिवसना ह्या कई पहुँच्यो—", ८४ बैष्णवजी बार्ता देसाई पृष्ठ २४

(३) 'तब श्री आचार्यजी ने मुनी को गोविंद बुढे मीराबाई के घर उतरे हैं तो घटके हैं तब श्री मोर्छाई जी ने एक श्लोक लिखी बढायी —"

मेजते समय अगर बिठुलजी की आयु १३-१४ वर्ष भी मात्र सें (१२ से अधिक तो यह नहीं हो सकती क्योंकि महाप्रभुजी तक इस भोक में नहीं से धीर १३-१४ तक कम मानना भी तर्क-संगत नहीं है) तो योविष बुढ़े के मीरा के घर जाने का समय संवत् ११८७-८९ के आसपास ठहरता है। मीरा उससे पूर्व विधवा हो चुकी थीं धीर पूर्ण रूप से भक्ति-भाव में डूब चुकी थीं।

### कृष्णदास अधिकारी

वस्नमाचार्य जी के शिष्य वे जो घण्टकण्ठ भ थे। इनका जन्म गुजरात के बिसौतरा नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे हारका से सौंदर्य के समय मीराबाई के गाँव आए, वहाँ थोड़ी देर रुके धीर मीरा द्वारा प्रवृत्त भट को टुकटाकर (चम) चले गए।

कृष्णदास के व्यवहार से स्पष्ट है कि वे जान-बूझकर मीरा का अपमान करने सनके घर गए थे। यह वस्नम-संप्रदाय वालों की असफलता वन्य प्रतिभिया भी जो रोप बनकर व्यक्त हुई। मीरा धीर कृष्णदास की इस भट का समर्थ निरिच्छ नहीं है पर यह वस्तुतः मीरा की भक्ति-भावना की प्रसिद्धि के समय ही घटी होगी।

### हित हरिबंस और हित हरिराम व्यास

'४४ बार्ता' में 'कृष्णदास अधिकारी' की बार्ता में उल्लेख है कि किस समय कृष्णदास जी मीरा के गाँव में पचारे, उस समय वहाँ हरिबंस व्यास आदि के विसेप सह वैष्णव हुते सो काहू को धामे आठ दिन काई को धामे दस दिन काह को धामे पंद्रह दिन मये हुते। यहाँ हरिबंस से तात्पर्य निश्चित रूप से राजा वस्नजी संप्रदाय के प्रवर्तक महात्मा श्री हितहरिबंसजी से है और उनकी संप्रभिक के कारण 'व्यास' से निर्भिबाव रूपेण 'हरिराम व्यास' ही अभिप्रेत हैं। चरत उल्लेख से स्पष्ट होता है कि हरिबंस और व्यास के सम्बन्ध मीराबाई के साथ घण्टे थे। वस्नम संप्रदाय की-सी कटुता वही वर्तमान नहीं थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल "डा० रामकुमार वर्मा" तथा श्री विद्योषी हरि आदि विद्वानों के अनुसार व्यासजी ने हित हरिबंसजी का शिष्यत्व संवत् १६२२ के लगभग ग्रहण किया था। हित हरिबंस जी का निधन संवत् १६०१ की प्राप्ति

(१) हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८०

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५११

—(३) बल-आपुरी सार, "हितहरिबंस का परिचय," पृष्ठ ६४

माम की शारदीय पूजिमा के दिन हो गया था। उस दिन श्री हितजी के निर्गुन प्रवेश करने पर श्री बनबल्लभ सोस्वामी गद्दी पर बैठे इसका उम्मेद मंदिर की (राधा बस्ती) बंधावनी में है।<sup>१</sup> श्री उत्तमदासजी की बाणी तथा श्री बयकुण्जजी की बाणी से भी हमी मृत्यु की पुष्टि होती है।<sup>२</sup> 'घत' व्यासजी का हरिवंशजी से संबन्ध १९२२ में सिध्दपत्र ग्रहण करने वाली बात किसी प्रकार सत्य नहीं कही जा सकती। श्री हितहरिवंश जी का बुन्दावन धाममन-दास 'भीहित चरित्र' और 'भीहित-मुखाधामर' के विभाग के अनुसार कार्तिक शुक्ल १३ मंसत् १५६३ माना जाता है परन्तु यह सिद्ध नहीं है। ये अपने पिता के स्वर्गवास के पदवात् संबत् १५६० में ब्रजभूमि में आए थे। मगवत् मुद्रित की कृत 'रसिक-व्यंग्यमाता' में कार्तिक शुक्ल १३ मंसत् १५६० को ही हरिवंश जी का बुन्दावन धाम का उल्लेख है। उनी के अनुसार सन्ताने मंसत् १५६२ भावों शुक्ल नवमी को परमानन्ददास को स्वप्न द्वारा दीक्षा दी थी।<sup>३</sup>

एक स्थल पर परमानन्ददास और परमानन्ददास के वात्सल्य की इस बीमारी से कि 'यह एक मन की पथ पायी। व्यासजी कड़ी सुधर्ष बसायी। पता चलता है कि परमानन्ददास जी से पूर्व ही व्यासजी हितहरिवंश से दीक्षा ले चुके थे।

इस प्रकार व्यासजी का हितजी के प्रथम बार संपर्क में आने और दीक्षा लेने का समय संबत् कार्तिक शुक्ल १३ मंसत् १५६० से भावों सुदी ६ मंसत् १५६२ के बीच ठहरता है।<sup>४</sup> व्यास जी के चरित्र में लिखा है कि — 'कार्तिक मसत बुन्दावन आए। मगवत् रसिक संघ मिष्ट मुहाए।' उपर्युक्त दोनों सीमाओं में कार्तिक मास मंसत् १५६० और १५६१ में ही मगवत् हो सकता है। मंसत् १५६० के कार्तिक

(१) रामावस्तम संग्रहाय लिखात और साहित्य, डा० बिजयेन्द्र स्वस्तक, पृष्ठ १९४

(२) वही, पृष्ठ १२२

(३) पत्रहू से बालन भावो सुब। मगवत् बीला नई नई मुख  
—रसिक व्यंग्य माता (परमानन्द जी का चरित्र) अस्ति कवि व्यास, पृष्ठ ५६ से उद्धृत

(४) ही सचता है कि व्यासजी ने हितजी से दीक्षा न ली हो और यह बात राधा बस्तीम संग्रहाय के लोगों ने व्यासजी के हितजी के प्रति धारद भाव की देखकर गड़ सी हो, परन्तु इतना सत्य है कि व्यासजी हितजी के संपर्क में आए थे, उनसे प्रभावित थे उनकी रस-नीति के प्रति यद्वा-विश्वासमय भक्तिभाव रखते थे और उनके साथ उन्होंने तीर्थ यात्रा भी की थी।

की समाप्ति के समय तो स्वयं हितजी ही ब्रह्मावन धाए। इस प्रकार 'कार्तिक नवत' बाना पदांश संवत् १५६१ के कार्तिक के लिए ही उपयुक्त बैठता है। उभावन्तमजी का पाटोत्सव संवत् १५६१ में हुआ था। इसी समय व्यासजी का हितजी से प्रथम संपर्क मानना तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

ब्रह्मावन धाने के बाद हितजी जीवन भर ब्रज भूमि से बाहर नहीं गए।<sup>१</sup> यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि मीरा संवत् १५६१ में बिलौड़ गया चुकी थी। फिर व्यासजी से मिलने के पूर्व ही ब्रजामय के पर्याप्त व्रज मन्त्रण से कभी बाहर न जाने जाने की हितजी मेकता या बिलौड़ में कृष्ण दास जी को कैसे मिल गए? की हितजी और मीरा में कई दृष्टि से समानता भी है। दोनों मधुर माव के भक्त थे। दोनों को स्वप्न में बीछा मिमी थी मीरा को कृष्ण द्वारा और हितजी को राधा द्वारा। दोनों विचारों में सवार थे साम्प्रदायिकता का भाव ह। उनमें नहीं था। व्रज में धाकर मीरा हितजी से अवश्य मिली होती। हो सकता है कि वहीं मीरा के यहाँ हितजी तथा व्यासजी को या हितजी के यहाँ मीरा को देखकर कृष्णदास जी दुखी हुए हों। बार्ताप्यों के कुछ संस्करणों में हितहरिबंध और व्यास का नाम इस प्रसंग में नहीं है।

### जीव मोस्वामी :

भक्तमास की भक्तिरसबोधिनी टीका और पद-वसंत-भाषा के अनुसार 'मीरा ब्रह्मावन धाई, जीव गुसाई से मिली और चलका 'मिया-मुल न देखने' का प्रश्न छुड़ाया। प्रियादास और नाथरीदास के उत्तु सत्सेव को धाने के मेवकों ने बोड़े बहुत अन्तर के साथ पस्तबिठ कर दिया है। निम्नांकित प्रसंग ही अधिकोष्ठ संघों में मिलता है<sup>२</sup>—

'ब्रह्मावन में साधुओं और भक्तों का बर्तन करती हुई मीराबाई जीव गुसाई के स्थान पर उनके बर्तन को गई परन्तु जीव गुसाई ने उनको बाहर ही कहसा मेवा कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। इसपर मीराजी ने जवाब दिया कि ब्रह्मावन में मैं सबको सबी रूप जानती थी और पूर्ण नेत्र मिलिबर ज्ञान की ही सुना था पर धाव मानूम हुआ कि उनके एक और पट्टीवार हैं। इन प्रेमरस से भिरे हुए वचन

(१) श्री हितहरिबंध संप्रदाय और साहित्य जलियावरण मोस्वामी पृष्ठ ३५

(२) भक्तमास कथकता पृष्ठ ७९१

पद-वसंत भाषा, नागरीवत — मीराबाई-संघी तीसरा प्रसंग

को मृनकर मुसाई जी धति सज्जित हुए धीर गये वीर बाहुर आकर मीराजी को बड़े आदर और भाव से अपने स्वान में ले गए ।<sup>१</sup>

श्री स्वकृष्णजी का कथन है कि मीरा ने प्रसिद्ध महात्म्या रूप तथा सनातन मास्वामी के दर्शन किए धीर जीब गोस्वामी के दर्शनों की अभिलाषा की ।<sup>२</sup> उसके पश्चात् उक्त चरमा बटी ।

भक्त-प्रकाश में जीब गोसाईं के बदल रूप गोसाईं नाम आया है ।<sup>३</sup> श्री चिधिर कुमार बोप ने भी उक्त बटना के पात्रों के रूप में रूप स्वामी धीर मीरा को प्रस्तुत किया है ।

(१) इस संभव में प्राचीनतम प्रमाण नागरीदास धीर प्रियादास के उत्पन्न ही हैं । वे उत्पन्न स्पष्ट हैं । बैष्णवदास ने अपने दृष्टांत में प्रियादास के इस कथन का समर्थन किया है । उन्होंने 'मीरा-व्यकरण' के मिसने के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न अपने दृष्टांत से किया है । यद्यपि हम सम्भव में भी कोई भ्रम होता तो वे उसका भी उल्लेख अवश्य करते ।

(२) जीब गोस्वामी के स्वान पर रूप गोस्वामी को इस बटना का नायक माननेवाले उल्लेख प्रियादास धीर नागरीदास के बहुत बाव के हैं । इतना ही नहीं वे अधिकार में बंधाल के हैं । भक्त प्रकाश में उनका अनुकरण मात्र है । अब

(१) मीराबाई की सम्भावनी धीर जीवन-वृत्त पृष्ठ ५ । अन्य प्रश्नों में बीड़े-बहुत परिवर्तन के साथ यही कथा दी हुई है । उदाहरण के लिए— मीराबाई — भा० नि० मेहता (गुजराती) ने पृष्ठ ६१-६२ पर मीराबाई सेने मलबाने कहेबडावुं के, बाहू म्हााराज । हजी तने स्त्रीपुस्वना सेदमां बरमी राहा छे ? फीकर नहि, आपणी बेंनी बच्चे पडरो राखी आपसे बातो करी शुं मीराजीसीब इच्छा जीई तेबे कजुल क्यूं । सेदने मीराबलबा गई, ने प्रणाम करी तेबे बहूई, "महाराज, आपबल मां आबो छेक उल्लेख छे के, 'वासुदेव (प्रमाणिक) स्त्री भयभीतरउज्जयन् । सेदने बजमां तो मात्र वासुदेव गिरधर पुरुष छे, बीबी बधी स्त्रीछो के गोपीछो छे । तो आपबुम्बा बजमां बसीने पुरुष ही रीत राहा छी तेबे मने आश्चर्यमय लागे छे । पाजे ब ने जावुं के, वासुदेव बिना बीबा पुरुष पच बजमां बसे छे ।" या धार्मिक सान्त्वना ब जीबा गोसाईंछे पडरो घसेबाबो नाख्यो घने मीरा बाबे खुस्ने बिग हरिणी कथा करी धार्मिक कीयो ।

(२) 'श्री मीराबाई जी पृष्ठ ४३-४४

(३) मीराबाई भा० नि० मेहता, पृष्ठ ६२ से उद्धृत

की घटना के सम्बन्ध में सुबूरवर्ती बंगाल की अधोशा प्रज की उत्प्रेक्ष-परंपरा अधिक विश्वसनीय है। पुजरात में भी दयाराम के समय तक जीव गोस्वामी को ही इस घटना से संबद्ध माना जाता था। उस समय तक रूप गोस्वामी के नाम को इस घटना से जोड़ने वाला कोई उत्प्रेक्ष नहीं भी नहीं मिलता।

(३) सबसे महत्व की बात यह है कि इस घटना के वर्णन में गोस्वामी की जिस विशेषता (स्त्रियों का मुख न देखने का प्रण) का उल्लेख है वो कहना चाहिये कि गोस्वामी की जिस विशेषता पर सारी घटना आधारित है और जिसे निष्कास देने पर घटना का अस्तित्व ही नहीं रह सकता वह विशेषता निर्विवाद रूप से जीव गोस्वामी की थी रूप गोस्वामी की नहीं। श्री वैद्यन्य जट्टियावती में कहा गया है कि श्री धनुष-सनय स्वामी श्री जीवजी का वैद्यन्य परमोत्कृष्ट था। ये धामम्ब बहूपारी रहे। स्त्रियों के वर्णन तक नहीं करते थे।<sup>१</sup>

रूप गोस्वामी बंगाल के मठाब हुसैनसाह के प्रधान मंत्री के पद पर रहे थे गृहस्थ-जीवन भोग चुके थे। उनका स्त्रीमुख देखने या न देखने के सम्बन्ध में कोई प्रायश्च या प्रण नहीं था।

श्रीराई और जीव गोस्वामी के मिलने का समय :

जीव गोस्वामी वैद्यन्य महाप्रभु की आज्ञा से नृन्वाचन नहीं आए थे। वे मितवानव जी की आज्ञा से काटी आए। वहाँ श्री मधुमदन बाबुल्लिखित चार वर्ष तक अध्ययन किया और फिर वैद्यन्य महाप्रभु के गंगा-नाम के पश्चात् जब मैं आया। अतः इस प्रकार जीव गोस्वामी के जब मैं आने का समय महाप्रभु के गंगा-नाम के समय से कुछ याद का है। वैद्यन्य महाप्रभु ने संवत् १५६० वि० (सन् १५९३) में गंगा-नाम किया था।<sup>२</sup> अतएव जीव गोस्वामी का जब मैं आने का समय १५६० वि० के बाद ठहरता है। 'त्रिम बिभास' नामक प्राचीन काव्य के आधार पर विमोचकसेन सेन ने 'जयनारायण' नामक अष्टौ सिद्धांत के एक महान् विद्वान के सम्बन्ध में एक घटना लिखी है कि 'जयनारायण' रूप और सगा-तन के पास शास्त्रार्थ करने पहुँचे पर वैद्यन्य परिपाटी के अनुसार बौद्धिक चर्चा में नहीं उससे और विनय का परिचय इस सीमा तक दिया कि 'जयपत्र' लिख दिया। इसपर जीव गोस्वामी शास्त्रार्थ में इनसे उलझ पड़े और इन्हें परास्त करके वापस

(१) अनुवत्त बहूपारी कृत - अध्या ५, पृष्ठ २४६

(२) द वैद्यन्य सिद्धरेखर प्रॉफ मंडीबम बंगाल, विमोचकसेन सेन, १८१७, पृष्ठ ४१

मेधा । रूपनारायण ने बुन्दावन सबत् १५६१ में जोड़ा था । 'अतः जीव गोस्वामी के साथ यह घटना १५६१ के बाद नहीं घटी होगी ।' इस प्रकार जीव गोस्वामी के जन्म में पहुँचने का समय सबत् १५६ - ६१ ठहरता है और मीरा तथा जीव गोस्वामी का विवाह स० १५६१ वि० के बाद कभी हुआ होगा । मीरा की राज यात्रा सबत् १५६२ के लगभग हुई थी । अतः जीव गोस्वामी के साथ यह घटना भी इसी समय घटी होगी ।

**रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी :**

रूप-सनातन जीव गोस्वामी के पिता बल्लभ (या धनुषम) के प्रपन्न थे । चैतन्य मत स्वीकार करके बुन्दावन में आ गए थे और प्रचार के प्रतिरिक्त चैतन्य मत को शास्त्रीय रूप देने और विभिन्न विद्याओं की व्यवस्था करने और भक्तिशास्त्र के सिद्धांतों के निर्धारण का कार्य कर रहे थे । सब में इनका बड़ा मान था ।

'सनातन अत्यन्त वैराग्य परायण थे इनकी कुटी तो भी ही नहीं परन्तु यह एक बृक्ष तले भी एक रात्रि व्यतीत नहीं करते थे । उस पर भी पाण्डित्य और आध्यात्मिकता का सेहमात्र गर्व उन्हें नहीं था । रूप गोस्वामी पाण्डित्य एवं कवित्व

(१) बही, पृष्ठ ४७

(२) डा० सुशील कुमार के अनुसार बंगाल में ऐसी प्रतिष्ठि है कि जीव गोस्वामी का जन्म उनके १४४५ (सं० १५००) और मृत्यु उनके १५४० (सं० १६०५) में हुई थी ।

'कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि उनकी जन्म-तिथि संवत् १५७० है ।' (मीराबाई जीवृत्तमाला ३०) इस आधार पर डा० श्रीकृष्णमालका कथन है कि 'जीव गोस्वामी उस समय न प्रसिद्ध भक्त थे और न मीरा से बड़े थे । अतः मीरा उनसे मिलने गई, मिली होगी, यह बात सही नहीं हो सकती । वे रूप-सनातन से मिलने गई होंगी ।

इस बात को किसी ने नहीं कहा कि मीरा रूप सनातन से नहीं मिलीं या उनसे मिलने नहीं गई थीं । तीनों गोस्वामी आसपास रहते थे इसलिए रूप-सनातन से भी अवश्य मिली होगी । रूप-सनातन का कथन इस विषय में बहुत संगत है कि 'मीरा ने प्रसिद्ध महारत्ना रूप और सनातन के दर्शन किए और जीव गोस्वामी से मिलने की प्रतिज्ञा प्राप्त की और तभी उक्त घटना घट गई ।'



सक्ति में ध्वितीय थे।<sup>१</sup> जब मैं पहुँचने पर जीव गोस्वामी के द्वार पर पहुँच जाने वाली मीरा का रूप-सनातन जैसे प्रसिद्ध निस्पृह विद्वान् श्रीर निरभिमान भक्तों से मिलना स्वामाधिक ही था। कुछ विद्वानों ने तो रूप गोस्वामी द्वारा मीरा के शीघा सेने का भी उल्लेख किया है।<sup>२</sup> इस पर 'मीरा के मुँह' शीर्षक के भक्तवैत विचार किया जा चुका है।

### जंभाजी

बिस्नोई सप्रदाय के संस्थापक जंभाजी (संवत् १५०५-१५८२) जोध पुर के नामीर इलाके के पयासर बाँव के रहने वाले थे।<sup>३</sup> मीरा के पितामह राज बूदाजी से इनका विशेष सम्बन्ध था। बॉम्बे मनीट्रियर के अनुसार जंभाजी ने बूदाजी को एक सक्की दी थी जिसके सहारे उन्होंने मुझ में विजय प्राप्त की। इससे पता चलता है कि बूदाजी से इनका विशेष भारतीय संबंध था।

जंभाजी तथा मीरा के संबंध के रूप की रचना मिलती है,<sup>४</sup> उससे इनके संपर्क की स्पष्ट व्यंजना होती है। परन्तु जंभाजी के 'धो सबब सोहं प्राप भन्तर जपे सबबा जाय' का कोई प्रमाण मीरा पर दिखाई नहीं पड़ता।

### भाबवेनर तथा भावव :

इनके संपर्क में आने की संभावना प्रबल है। इसका उल्लेख 'मीरा के मुँह' प्रकरण के भक्तवैत किया गया है।

### रामलाल, रामानन्द और भाववाचारज :

'मीरा के मुँह' ग्रंथ में सिद्ध किया गया है कि ये मीरा के समकालीन नहीं थे। इनके मीरा से मिलने के उल्लेख बाँके पद अप्रमाणित हैं।

### अजय कुँवरिबाई

२५२ वीं जन्म की वार्ता में एक श्रीर नाम है, जिसका संबंध मीराबाई से जोड़ा गया है। वह नाम है अजय कुँवरिबाई। पक्षे संस्करण के अनुसार "धो वे

(१) बंप्ता साहित्य की कथा, डॉ० शुक्रवार सेन, १००२, पृष्ठ १४

(२) भाववत सप्रदाय, डॉ० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ५०७

(३) हिंदी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १४७

(४) रेखिए 'अध्ययन के आधार' 'मीरा जंभाजी संबंध' पृष्ठ ८३

अजब कुँवरबाई येइते में रहती हती मीराबाई की बेबरानी हती” दूसरे संस्करण के अनुसार ‘बे नाम-बिबवा हती सो मीराबाई के पास रहती ।’ उनको विद्वान् डा. पीछा देने की जर्जा भी की गई है। इस जर्जा में कहा गया है कि ‘पीछे भेंट करि के दरसन करिके सुरत ही मीराबाई तो फिरी। तब मुसाई जी ने कही जो यह भेंट ता हम नाही राखे। हमारे काम की नहीं। अन्य वैष्णवों ने मीरा को यह बताया कि ‘ये तो अपने मेकक बिना काहु की भेंट राखे माही है। जब अजबकुँवरि ने कही मीराबाई जों जो तुम कहो तो हों इनकी सेवाकिनि होऊँ। तब मीराबाई ने नाहीं करी। —अन्त में अजबकुँवरि मीरा की बात न मानकर विद्वान् का शिष्यत्व ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार २१२ वार्ता के अनुसार मीराबाई की भेंट मुसाई जी से भी हो जाती है।

वार्ता के प्रथम संस्करण के उल्लेख के अनुसार अथवा ‘अजबकुँवरि बाई’ मीराबाई की बेबरानी समझी जाती थी तो उन्हें चित्तोड़ के राधा-परिवार में रहना चाहिए था मीरा के मायके में नहीं। बिबवा होने पर भी (वैसा कि तीन वन्स की सीमा भावना वाले संस्करण का उल्लेख है) उन्हें उदयपुर, चित्तोड़ या अपने मायके में रहना चाहिए था।

उदयपुर के इतिहास में केवल एक अजबकुँवरि का नाम मिलता है। ये महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं। राज प्रशस्ति सरगाठ ब्लोक ३७-४३ के अनुसार इनका विवाह बांधवगढ़ (रीवा) के बनेसा राजा अंगुपसिंह के कुँवर भावसिंह के साथ विक्रमी संवत् १७२१ मार्ग शीर्ष वदी ८ को हुआ था। इसमें कोई संदेह नहीं कि संवत् १७२१ में विवाहित होने वाली ये अजबकुँवरि मीरा की समकालीन नहीं थीं। प्राचीन राजस्थानी साहित्य के पण्डित कविराज मोहनसिंह जी ने बताया कि अजबकुँवरि राजा उदयसिंह की पुत्री अथवा उनके पुत्र की स्त्री थीं। दोनों में किसी रूप में भी इस अजबकुँवरी का मीरा की बेबरानी होना सिद्ध नहीं होता। फिर जो उदयसिंह स्वयं मीरा से लगभग बीस वर्ष छोटा था उसकी पुत्री या पुत्र-वधू मीरा के साथ की होनी यह एक स्पष्ट अक्षर्य है।

विद्वान् :

वहाँ तक विद्वान् के वर्णन करने का प्रयत्न है यह बात अक्षर्य स्पष्ट कर दी गई है कि विद्वान् जी के किसी भी गुजरात-यात्रा के समय मीराबाई या क्या मीराबाई के ठाऊँ का परिवार भी मेड़ता में नहीं था और जिन अयमल की बहिन के विद्वान् से बीछा लेने का जिक्र किया जाता है वह मीराबाई न हाकर नामदेव के पुत्र वैमल की बहिन थी।

मीराबाई के भक्तकुँवरों के साथ रहने और बिदुस से मिलने से सम्बन्धित उससे बहुत बाध कहीं और मीरा के प्रति सम्प्रदाय के रोष और विरोध की भावना से प्रेरित होकर बम्पना द्वारा सँघार किए गए हैं, और ठीक उसी प्रकार मीरा को अपमानित करने की दृष्टि से रचे गए हैं जिस प्रकार कृष्णदास बार्ता के उत्तेज ।

सारांश यह है कि प्रसिद्ध संतों और भक्तों में मिश्रांकित के संपर्क में मीरा आई थी —

- |     |                     |  |
|-----|---------------------|--|
| (क) | रामानन्द संप्रदाय   | देवाजी   |
| (ख) | वसन्त संप्रदाय      | देवाजी के पुत्र पुरोहित रामदास<br>गोविन्द दुबे साधोरा ब्राह्मण<br>कृष्णदास अधिकारी |
| (ग) | रामाबस्वामी         | हिरहरिचंड़ी<br>हरिराम व्यास (इनके संप्रदाय क विषय में मतभेद है)                    |
| (घ) | चैतन्य संप्रदाय     | जीव गोस्वामी<br>कप गोस्वामी<br>सनातन गोस्वामी तथा अन्य                             |
| (ङ) | विष्णोई संप्रदाय    | जंगनाथ   |
| (च) | माधवेन्द्र तथा अन्य | माधव   |

इसके अतिरिक्त भक्तकुँवर बाई के साहचर्य और बिदुस के वर्चनों के उत्पन्न भी हैं जो इतने अधिक संदिग्ध हैं कि अप्रामाण्य कह जा सकते हैं । रामानन्द, माधवाचार्य और गीरामन्द से मिलने के उत्तेज निश्चित रूप से अप्रामाण्यिक हैं ।

### असौक्य घटनाएँ :

आध्यात्मिकता और भक्ति स्वयं अलौकिक हैं । अतएव इनके क्षेत्र में प्रतिष्ठा पानेवाले व्यक्तित्व के चारों ओर अलौकिक घटनाओं का जाल अनावार फैल जाता है । अद्याविसासमयी धार्मिक जनता और अलौकिक रस के साधक संत और भक्त सब प्रायः धनवाने ही और कभी-कभी ज्ञान-भूषण प्रति प्राकृतिक घटनाओं का सर्वत्र वर्णन करते हैं । मीरा की प्रसिद्धि के साथ उनकी जीवनी में अलौकिकता का आ जाना संभव ही नहीं स्वाभाविक भी था । उनके जीवन से संबद्ध कुछ अलौकिक घटनाएँ इस प्रकार हैं —

- (१) नदी में एक पाने में से मीरा प्रसट हुई। (जन्म)<sup>१</sup>
- (२) चार मुन्नाबी ने मीरा के हाथ से दूध पिया।<sup>२</sup>
- (३) मीरा रंग महुल में गिरिबारी से बाँध कर रखी थी राधा को मात हुआ तो वह वहाँ उसबार स कर पहुँचा पर उसे गिरिबारी बिलाई नहीं पड़े। ललियाकर वह सीट भागा।<sup>३</sup>
- (४) राधाजी ने लङ्ग सँभारी और मीरा को मार दी पर मीरा एक की हज़ार हो गई।
- (५) हर कमरे में राधा को मीराबाई ही दिखाई पड़ी।<sup>४</sup>
- (६) मीरा के बिप-यान से मयबान् कृष्ण की रणछोड़की की मूर्ति का कंठ कृष्ण हो गया।<sup>५</sup>
- (७) मीरा रणछोड़की की मूर्ति में समा गई।

मीरा के साथ वैसी धार्मिक बटनाएँ संबद्ध नहीं हैं जैसी कि संप्रदाय के प्रवर्तक गुरुओं के साथ जुड़ी रहती हैं। (जैसे किसी कपूत्र को बीरम-प्रदान करना किसी को रोम-मुक्त बट्ना यापि चमत्कारपूर्ण कार्य करना) इनके प्रभाव का कारण यही है कि मीरा के प्रचार के साम्प्रदायिक प्रयत्न नहीं हुए। संप्रदाय के प्रचार प्रसार के लिए गुप्त या साम्प्रदायिक भक्तों में सामाजिक कल्याण की निस्सीम सामर्थ्य सिद्ध करने का प्रयास होता है 'शिष्य न मड़ने वाली' 'हरद दिवानी' मीरा के पीछे कोई ऐसी शक्ति नहीं थी।

उक्त धार्मिक बटनाओं पर लौकिक दृष्टि से विचार करने पर तीन बातें प्रकाश में आती हैं। (१) मीरा सैद्य से ही भक्ति की ओर प्रवृत्त थीं।

(१) आदर्श भक्त धर्मात् मीराबाई पुरोहित, पृष्ठ १२

(२) शम्भू भाव बया की बाँधी से

करके कृपा मेरा भूष घरोपा मन में प्रति सुख पाई मैं।

—आदर्श भक्त धर्मात् मीराबाई पुरोहित, पृष्ठ १५-२४

(३) भक्तमाल 'मियादात हुत डीका' कपटला पृष्ठ ७१८

(४) राधा की खूब सँभारियाँ ली लाड़ो तरवार। कितनी मीराने राधाजी मारली हो गई एक हज़ार — राजस्थानी लोक-गीत (शोक-पत्रिका, जून १९५२ में मीरा के भक्तों के भजन में भी इसी आशय का उल्लेख है।)

(५) लोट-गीतों में

(६) मीराबाई भा० गि० मेहता, पृष्ठ ४०

(७) भक्तमाल, कपटला पृष्ठ ७२२

(२) राणा भीर भीरा का संघर्ष भीरा की मक्ति भीर साधु-सत्संग को लेकर बना था भीर महाप्राण भीरा जसमें न झुकी भीर न टूटी—उन्हें पराजित नहीं किया जा सका। (३) भीरा का अन्त द्वारका में इस प्रकार हुआ कि उनके शव का पता नहीं लगा। अन्त के रूप में भीरा का यद्यप्य व्यापक था भीर जगता उन्हें धार की दृष्टि से देखती थी।

कुछ अप्रामाणिक प्रसंगोन्तैस क्या '२५२ वैष्णवन की बार्ता' में उल्लिखित 'जैमल की बेन' भीराबाई थीं ?

२५२ वैष्णवन की बार्ता में मेरठा निवासी हरिदास बनिए की एक बार्ता है। उसमें लिखा है कि मेरठ के राजा जैमल स्मार्त थे। एक बार मुबरात बार्ते समय गुसाई बिदुसनाथ की मेरठा घाम म लके भीर हरिदास के यहाँ पधारे। 'जैमल की बेन' को 'बारी' में से उनके दर्शन हुए और उसके बाह पर्व में रहने के कारण उन्होंने पत्र द्वारा बीसा ली। अन्त में बहन की मेरठा से जैमल भी वैष्णव हो गए।" वह क्या धरमन्त सामान्य मेह के साथ २५२ वैष्णवन की बार्ता के 'महमदाबाद के मुबराती' तथा 'झाकोर के हिंदी' संस्करणों में मिलती है। 'तीन अन्य की लीला भावनावली' बार्ता (मुद्राईत ऐकडमी काँकरोली द्वारा हिंदी में प्रकाशित) में यही कथा विस्तार से है। कुछ बड़ा-सा अन्तर है। उसमें जैमल को 'सैब' कहा गया है।

धरतक हिंदी के माध्य विद्वान् तथा विदुषियां भी" इन जैमल को भीराबाई के ठाठ भीरमदेव के पुत्र मेकृतिमा अयमल से अभिन्न मानकर सारी समस्या

(१) प्रस्तुत प्रसंग में एक ही नाम के दो व्यक्तियों के उल्लेख बार-बार हुए हैं। अतएव भ्रम बर्ताने के लिए २५२ बार्ताओं में उल्लिखित जैमल के लिए 'जैमल' तथा भीरा के भाई जैमल या नयमल के लिए अयमल शब्द का प्रयोग किया गया है।

(२) २५२ वैष्णवनी बार्ता जसनुभाई कमलाल बेताई द्वारा प्रकाशित पृष्ठ ५६-५७

(३) २५२ वैष्णवन की बार्ता वैष्णव रामदासजी द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ६४ ६५

(४) भीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृष्ठ २४

भीरा-साधुरी, श्री बजरत्नदास पृष्ठ २३

भीरावर्मान प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव पृष्ठ ९३

भीरा—एक अध्ययन भीमती शास्त्रम, पृष्ठ ३४ इत्यादि

का विवेचन करते रहे हैं और ऐतिहासिक घटनाओं के प्रस्तुत होने पर मीरा के जीवन-वृत्त से संबंधित प्रश्नों का समाधान अनुमान द्वारा करते आए हैं। यद्यपि इस बात की ऐतिहासिक दृष्टि से मीमांसा करके किसी निर्णय पर पहुँचाना प्रायः संभव है।

वस्तुतः मारवाड़ का इतिहास कं धनुषीमान से ज्ञात होता है कि बाताघों में उल्लिखित जैमल जीराबाई के ठाठ बीरमदेव के पुत्र जयमल नहीं थे बल्कि राजा मालदेव के पुत्र 'जैमल' थे।

जयमलबाई के पुत्र विठ्ठलनाथ जी स्वर्ण के प्रचार के लिए छ बार मुबारक गए थे—सं० १६१३, १६१६, १६१८, १६२३, १६३१ और सं० १६३८ में।<sup>१</sup> यद्यपि इतना निर्दिष्ट है कि 'जैमल की बेन' को उनका दर्शन इन्हीं वर्षों में हुआ होगा और वे पत्र के द्वारा सं० १६१३ और १६३८ के बीच ही कनी पुष्टि मार्ग में दीक्षित हुई होंगी।

सं० १६१० में मालदेवजी ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया था। उस समय बीरमदेव के पुत्र जयमल राजा उदयसिंह के साथ चले गए और राजा मालदेव ने अपने पुत्र जैमल तथा बीरवर बेबीबास को मेड़ते की सुरक्षा तथा शासन के लिए नियुक्त किया।<sup>२</sup> एक बार संवत् १६१३ में 'कुछ दिनों के लिए' महाराजा उदय सिंह की सहायता से जयमल फिर मेड़ते के अधिकारी बन गए, पर केवल कुछ दिनों के लिए ही।<sup>३</sup> उसी साल जैसे ही वे हाजीरों के विरुद्ध महाराजा उदयसिंह की सहायता के लिए युद्ध करने गए<sup>४</sup> जैसे ही मालदेव ने मेड़ते पर फिर अधिकार कर लिया। युद्ध में जीतने पर मेड़ते में मालदेव का अधिकार स्थापित हो उदयपुर चले गए।<sup>५</sup> तब उदयपुर के राजा ने उन्हें बहनोर की वासीर दे दी। सं० १६१६ में उन्हें बहनोर भी छोड़ना पड़ा क्योंकि जीतावत बेबीबास ने बातोरा जीतकर बहनोर पर आक्रमण कर दिया। संवत् १६१८ में धक्कर की सहायता करके वे फिर मेड़ते के अधिकारी बन गए, पर जैसे मेड़ते का अधिकार समझे प्रायः में ही नहीं था। अधिकार के तुरन्त बाद ही उन्हें धक्कर के सरदार धरपट्टीन (जिसने वास्तव में

(१) २५२ बीरमजी बाताघ, प्रकाशक, स० छ० बेसाई, पृष्ठ ३

(२) मारवाड़ का इतिहास रेंड पृष्ठ १३४, १३५

(३) वही, पृष्ठ १३६

(४) वही, पृष्ठ १३७, १३८

(५) उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रोता, पृष्ठ ४०८ (काल्पना वही ८, १६१३ को युद्ध हुआ था।)

मेड़ठा जीता था) क साथ मागोर जाना पड़ा। वहाँ उसका सरफदीन से सगका हो गया। इस पर वे उसे छोड़ कर चित्तोड़ चले गए और उसका प्रतिवार्थ परिचाम यह हुआ कि फिर से अकबर का अधिकार मेड़ते पर हो गया।<sup>१</sup> अन्त में जयमल संवत् १६२४ में अकबर के विरुद्ध युद्ध करते हुए चित्तोड़गढ़ में वीरगति को प्राप्त हो गए<sup>२</sup>।

उक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि संवत् १६१३ और संवत् १६१५ के बीच वीरमदेव के पुत्र और मीरा के माई जयमल मेड़ते के स्वामी संवत् १६१३ में कुछ दिनों के लिए हुए रहे थे। उसके पश्चात् संवत् १६१८ में वे एक बार मुझ करने वहाँ गए थे पर उस समय कम-से-कम सपरिवार वहाँ रहने का अवसर उन्हें नहीं मिला। इसके अतिरिक्त उस अवधि में वे मेड़ते में कभी नहीं रहे रहे क्या गए भी नहीं।

संवत् १६१८ में मीरा के माई जयमल के मुसाईबी में मिलने का कोई प्रस्न ही नहीं है क्योंकि न मुसाईबी इस वर्ष गुजरात गए थे और न जयमल का परिवार मेड़ते में था। वे अकेले अकबर की सेना के साथ मुझ के लिए वहाँ गए थे और मुझ के बाद ही मागोर चले गए।

संवत् १६१३ में वीरमदेव के पुत्र जयमल कुछ दिन ही मेड़ते में रहे थे। वे संवत् १६१० में ही सपरिवार बचने चले गए थे। संवत् १६१३ में मेड़ते में उनका अपिनाग अवस्थ हो गया था परन्तु जब उसी वर्ष वे हाजीबी के मुझ से लौटे तो मेड़ते में मालदेव के पुत्र जयमल का अधिकार देखकर बिना मुझ किए ही मझराबा के पास वापस लौट गए। इससे यही पता चलता है कि संवत् १६१३ में उनका परिवार वहाँ न था। वृत्त, 'टीन जम्म की सीला भाबनावासी २३२ बाठी' में मुसाईबी क जयमल क गम्म-जम्म में दो बार मेड़ते जाने का उल्लेख है। इस प्रकार संवत् १६१ और १८ के बीच वीरमदेव-पुत्र जयमल केवल संवत् १६१३ में कुछ दिनों के लिए मेड़ठा रहे थे (उनका परिवार उस समय वहाँ नहीं था) और इतने कम समय में उन दिनों गुजरात की दो यात्राएँ जब से नहीं हो सकती थी। अतः वीरमदेव के पुत्र और मीरा के माई जयमल क परिवार के किसी व्यक्ति का विद्रुल द्वारा मेड़ते में बीसा प्राप्त करना संभव ही नहीं था।

इस, मालदेव के पुत्र जयमल संवत् १६१० से संवत् १६१८ तक (संवत् १६१३ के कुछ दिन छोड़कर) मेड़ते के शासक रहे थे। इसी बीच में दो बार

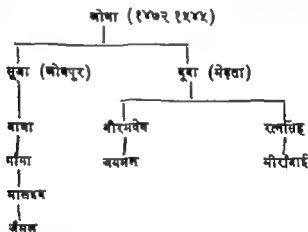
(१) मारवाड़ का इतिहास, रेड, पृष्ठ १४०

(२) जयपुर राज्य का इतिहास भोसा, पृष्ठ ४१३-४१५

गुसाईंजी बुधरात गए थे धीर कथाचित् चार बार मेड़ते से मुक्रे होंगे ।

जोधपुर के नरेशों ने बीरमत को बहुत प्रभय दिया है ।<sup>१</sup> उन्होंने बस्सम-संप्रदाय का भी विशेष समर्पण किया था । अबतक बस्सम-संप्रदाय वालों के अधिकार में कई गाँव चले आते हैं । तीन जन्म की मीमा-भाबना वाली २५२ बार्ता में बीरमत को परम 'बीर' कहा है, बाद में वे पुष्टिमार्गी हो गए थे । बीरमदेव के पुत्र जयमत निश्चित रूप से बेध्याब थे । भक्तमान इसका प्रमाण है ।<sup>२</sup>

घट यह निश्चित है कि बिठूर द्वारा दीक्षित होनेवाले बीरमत जोधपुर नरेश मानदेव के पुत्र थे । मेड़तभी मीरा के ताऊ बीरमदेव के पुत्र नहीं धीर इस लिए २५२ बार्ता में उल्लिखित बीरमत की बेन (बहन) मेड़तभी मीरा नहीं थी । वैसे मानदेव पुत्र बीरमत भी उसी राठोड़ बंध के थे जिसके कि बीरमदेव-पुत्र मेड़तिया जयमत धीर मेड़तभी मीराबाई थे । उनका सम्बन्ध निम्नलिखित चार्ट से स्पष्ट हो जायगा —



धरुवर, तामसेन धीर मीरा

प्रियादास इत 'भक्ति-रस-बोधिनी टीका' में एक स्थान पर निम्न लिखित उल्लेख है—

रूप की निकाई भूप धरुवर भाई हिये

भिए मंत्र तामसेन देखिये को प्रायो ॥ ।

(१) भारवाड़ का इतिहास, रोज पृष्ठ १७

(२) भक्तमान, कपकला पृष्ठ ७१०



भिरखि निहाल भयो छवि गिरबारी नाम

पद सुखवास एक तन ही बढ़ायो है ।<sup>१</sup>

इसके आधार पर इस भ्रम को जन्म मिला कि भक्तवर तानसेन को लेकर भीराई की भक्ति और उनके सौंदर्य से प्रभावित होकर उनसे मिलने गया ।<sup>२</sup> (भीरुवर रूप का तो यह भी अनुमान है कि भक्तवर ने गुजरात में जाकर सन् १६२६ में भीराई के दर्शन किए, मेवाड़ में नहीं) और उनसे मिलने पर तानसेन ने उनकी प्रशंसा में एक पद गाकर उनका प्रसवा उनके बिरबर का अभिनन्दन किया था । इतना ही नहीं 'भीराई' के नाम से एक पद की रचना भी हो गई है, जिसमें भीराई द्वारा स्वयं भक्तवर के तानसेन सहित जाकर उनसे मिलने की बात कहसा भी गई है ।<sup>३</sup> इसके साथ एक किंवदन्ती भी जुड़ गई कि 'भक्तवर ने भीराई को एक कीमती हार भेंट किया । भीराई ने उसे अपने पास नहीं रखा । फिर भी राजा को जब इस चटना का पता लगा तो उसके हृदय की चमत्कारी घाग और प्रज्वलित हो उठी ।'<sup>४</sup>

भक्ति-रस-ओजिनी टीका की इन पंक्तियों को यदि ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट है कि भक्तवर गिरबारीनाम की छवि को देखकर निहाल हुआ था भीराई की नहीं और उन्हीं गिरबारीनाम के रूप की निकाई से प्रभावित होकर उन्हें देखने गया था ।

त्रियावास के पीछे वैष्णववास ने अपने 'भक्तमान-वृष्टान्त' नामक ग्रंथ में इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है । 'रूप की निकाई भक्तवर नाई' पंक्ति के स्पष्टीकरण में वे कहते हैं—

"तब तिस बुजबासी मंद आस को करबन्ध एक कन्हैया नाम है जाके रूप के समर धनेक स्त्री बाबरी भई हैं । उनके मर में भी कन्हैया सुन्दर है सो देखन को भक्तवर पात्साह तानसेन समेत गिरबारी जी की छवि को मगन हो गया ।"

"पदसुखवास एक तनही बढ़ायो है" पंक्ति के स्पष्टीकरण में वैष्णव वास ने उस पद को ही उद्धृत कर दिया है, जिसे तानसेन ने बिरबर के सामने गाया था । इस पद में भीराई के उस शृंगार का वर्णन है जिसके साथ में वे 'सुकाम प्रीति-हार' भूँबे हुए पावस की लकी के समान बिरबर से मिल गई ।<sup>५</sup>

(१) भक्तमान, रूपकला, पृष्ठ ७२१

(२) 'भीरावादाई की राजबावली और जीवन-चरित्र' पृष्ठ १

(३) —भीराई —बृहद्-पद-संग्रह, श्रीमती प्रबलन, पृ० ११०

(४) भीरावादाई, भा० नि० मेहता, पृष्ठ ४६

(५) संतुर्न पद, यही प्रबलन पृष्ठ ४६

वैष्णव प्रियावास के नासी थे। वज्र ही के मकतों से उनका विशेष संपर्क था। प्रियावास के संपर्क में तो वे थे ही। मीरा के समय के प्रियावास की टीका के 'प्रफ़्फ़र-तानसेन' वाले विवरण की धर्म-सम्बन्धी अस्पष्टता उन्हें अचरम खसी होती। इसीलिए उन्होंने उस प्रसंग को ठीक प्रकार से स्पष्ट किया जिससे बाद में भ्रम के कारण बहुत धर्म लगाकर लोग एक असत्य पर विश्वास न कर बैठें पर उनके दृष्टी का प्रचार न होने के कारण यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका।

उक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उस समय तक मीरा बिबं गत हो चुकी थी और उनके कृष्ण-मूर्ति में मिल जाने की कथा को काफी प्रचार मिल गया था। साथ ही उनकी माधुर्यभावकी शक्ति और उनके गिरिधर प्रेम इतना प्रसिद्ध हो गया था कि प्रफ़्फ़र को भी उस गिरिधर की मूर्ति देखने की सासना हुई। प्रफ़्फ़र की धार्मिक जिज्ञासा तथा उदार बुद्धि बीनइलाही मत के ज्ञाने (संवत् १६१२ वि०) के समय से कुछ पूर्व बहुत प्रबल थी। मथुरा गजेटियर के अनुसार प्रफ़्फ़र स० १६२७ में बुन्दावन के गोसाइयों से मिलने गया था और वहाँ पर उसकी आँखें बन्द कर उसे मिथुवन (वास्तविक बुन्दावन जिसके आचार पर नगर का नाम बुन्दावन पड़ा है) में लाया गया और वह उस दृश्य से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उस स्थान की पवित्रता को स्वीकार किया। इस जटना की मादमार में उसके मातहत राजाओं ने उसकी अनुमति और सहायता से योगिन्न्देव गोपी नाथ कुमलकिशोर और मदनमोहन के चार प्रसिद्ध मंदिरो का निर्माण किया।<sup>१</sup> हो सकता है कि मीरा के गिरिधर की मूर्ति के दर्शन प्रफ़्फ़र ने संवत् १६२७ में अपनी इसी प्रजयाजा के समय किए हों।

संवत् १६२४ में प्रफ़्फ़र ने बिलौड़ के किले को जीता था। सम्भव है कि उस समय तानसेन उसके साथ हों अथवा बिजय के उपरान्त तानसेन को भी उसने अपने पास बुला लिया हो और तब बिलौड़पड़ में स्थित मीराबाई के मंदिर में उसने गिरिधर की मूर्ति के दर्शन किए हों और वहीं तानसेन ने पव माया हो। प्रफ़्फ़र की उदार कर्मप्रियता और मुण-ग्राहकता को देखते हुए यह जटना भी असंभव नहीं लगती।

महासिद्धन्तमरा के अनुसार प्रफ़्फ़र ने अपने राज्य-काम के सातवें वर्ष अर्थात् सन् १५९२ या संवत् १६१६ में तानसेन को राजा रामचन्द्र बघेला के यहाँ से बुलाकर अपने दरबार में रखा।<sup>२</sup>

(१) गजेटियर ऑफ मथुरा, पृष्ठ १२१

(२) समसामुहीता आज़ुनबाब खाँ (अकबरनवाक) महासिद्धन्तमरा, हिंदी भाषा १ पृष्ठ ३३० (अनु० बाबू कजरामदास)

निरखि निहास भयो छवि गिरबारी साज

पद सुपनास एक तन ही बड़ायो है ।<sup>१</sup>

इसके आधार पर इस भ्रम की जन्म मिला कि भक्त्यर तानसेन को लेकर मीरा की भक्ति और उनके सर्व्व से प्रभावित होकर उनसे मिलने गया ।<sup>२</sup> (बी. कृष्ण का तो यह भी अनुमान है कि भक्त्यर ने गुजरात में जाकर संवत् १६२१ में मीरा के दर्शन किए, मेवाड़ में नहीं) और उनसे मिलने पर तानसेन ने उनकी प्रार्थना में एक पद वाक्य उनका अथवा उनके गिरिधर वा अभिमन्युन किया वा। इतना ही नहीं 'मीरा' के नाम से एक पद की रचना भी हो गई है जिसमें मीरा द्वारा स्वयं भक्त्यर के तानसेन सहित आकर उनसे मिलने की बात कहला भी गई है ।<sup>३</sup> इसके साथ एक किम्बदन्ती भी जुड़ गई कि "भक्त्यर ने मीरा को एक कीमती हार भेंट किया। मीरा ने उसे अपने पास नहीं रखा। फिर भी राणा को जब इस चटना का पता लगा तो उसके क्रोध की जलती आग और प्रज्वलित हो उठी ।"<sup>४</sup>

भक्ति-रस-बोधिनी टीका की इन पंक्तियों को यदि ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट है कि भक्त्यर गिरबारीसाज की छवि को देखकर निहास हुआ वा मीरा की नहीं और उन्ही गिरबारीसाज के रूप की निकाई से प्रभावित होकर उन्हें देखने गया वा ।

प्रियादास के पौत्र वैष्णवदास ने अपने 'भक्तमाल-दृष्टान्त' नामक ग्रंथ में इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। 'रूप की निकाई भक्त्यर आई' पंक्ति के स्पष्टीकरण में वे कहते हैं—

"तब मिला मृजवासी नंद ग्राम को करवन्ध एक कन्हैया नाम है जाके रूप के ऊपर अनेक स्त्री बाबरी गई हैं। उनके मत में भी कन्हैया सुन्दर है सो बेचन को, भक्त्यर पादसाह तानसेन समेत गिरबारी भी की छवि को भगत हो गया ।"

"पदसुपनास एक तनही बड़ायो है" पंक्ति के स्पष्टीकरण में वैष्णवदास ने उस पद को ही उद्धृत कर दिया है जिसे तानसेन ने गिरिधर के सामने गाया था। इस पद में मीरा के उस शृंगार का वर्णन है जिसके साथ में वे 'सुकाम प्रीति हार गूँचे हुए पावस की मरी के समान गिरिधर से मिल गई' ।<sup>५</sup>

(१) भक्तमाल, उपकला, पृष्ठ ७२१

(२) 'मीराबाई की अख्यावली और जीवन-चरित्र', पृष्ठ १

(३) —मीरा—बृहद्-पद-संग्रह, धीमती अखण्ड, पृ० ११०

(४) मीराबाई, भा० नि० अंश, पृष्ठ ४६

(५) संपूर्ण पद, यही अखण्ड पृष्ठ ४६

दीप्यमान प्रियादास के जाती थे। सब ही के मकतों से उनका विशेष संपर्क था। प्रियादास के संपर्क में तो वे थे ही। मीरा के समय के प्रियादास की टीका के 'धरुवर-दानसेन' नामे विवरण की अर्ध-सम्बन्धी व्यस्पष्टता उन्हें अवश्य बखी होगी। इसीलिए उन्होंने उस प्रसंग को ठीक प्रकार से स्पष्ट किया जिससे बाद में भ्रम के कारण गलत अर्थ समझकर लोग एक असत्य पर विश्वास न कर बैठें, पर उनके दुष्टांत का प्रचार न होने के कारण यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका।

उक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उस समय तक मीराँ दिवस मठ हो चुकी थी और उनके कृष्ण-मूर्ति में मिल जाने की कथा को काफी प्रचार मिल गया था। साथ ही उनकी माधुर्यभावकी भक्ति और उनका विरिचर प्रेम इतना प्रसिद्ध हो गया था कि धरमर को भी उस विरिचर की मूर्ति देखने की आसता हुई। धरमर की धार्मिक जिज्ञासा तथा उदार वृत्ति बीनइलाही मठ के बसाने (संवत् १९१२ वि०) के समय से कुछ पूर्व बहुत प्रबल थी। मधुप गवैटियर के अनुसार धरमर सं० १९२० में बृन्दावन के मोसाइयों से मिलने गया था और वहाँ पर उसकी धार्मिक बन्द कर उसे निबुवन (वास्तविक बृन्दावन जिसके आचार पर नगर का नाम बृन्दावन पड़ा है) ले जाया गया और वह उस रूप से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उस स्थान की पवित्रता को स्वीकार किया। इस घटना की यादगार में उसके मातहत राजाधर्मी ने उसकी धनुमति और सहायता से गोविन्ददेव मोदी-नाथ जुमसकिशोर और मदनमोहन के चार प्रसिद्ध मंदिरों का निर्माण किया।<sup>१</sup> ही सचता है कि मीराँ के विरिचर की मूर्ति के दर्शन धरमर ने संवत् १९२० में अपनी इन्हीं ब्रजयात्रा के समय किए हैं।

संवत् १६२४ में अकबर ने जितौड़ के किले को जीता था। सम्भव है कि उस समय तानसेन उसके साथ ही अथवा बिजय के उपरान्त तानसेन को भी उसने अपने पास बुला लिया हो और ठक जितौड़कण्ड में स्थित भीराबाई के मंदिर में उसने गिरि नर की मूर्ति के दर्शन किए हों और वहीं तानसेन ने पद धाया हो। अकबर की उदार चरित्रमयता और बुध-प्राहुण्यता को देखते हुए यह बटना भी असंभव नहीं लगती।

महासिंहलुत्तरा के अनुसार धक्कर ने अपने राज्य-काल के सातवें वर्ष अर्थात् सन् ११६२ या संवत् १६११ में तामसेन को राजा रामचन्द्र बघेला के यहाँ से बसाकर अपने दरबार में रखा ।<sup>१</sup>

गिरिजि निहान भयो छबि गिरिधारी लाल

पद सुपवास एक तन ही चढ़ायो है ।<sup>१</sup>

इसके आचार पर इस भ्रम को जन्म मिला कि भक्तवर तानसेन को लेकर मीरा की भक्ति और उनके सौंदर्य से प्रभावित होकर उनसे मिलने गया ।<sup>२</sup> (भी कुँवर कृष्ण का तो यह भी अनुमान है कि भक्तवर ने मुबरात में जाकर सन् १६२६ में मीरा के दर्शन किए, मेवाड़ में नहीं) और उनसे मिलने पर तानसेन ने उनकी प्रशंसा में एक पद गाकर उनका धन्यवाद उनके गिरिधर का अभिनन्दन किया था । इतना ही नहीं 'मीरा' के नाम से एक पद की रचना भी हो गई है, जिसमें मीरा द्वारा स्वयं भक्तवर के तानसेन सहित आकर उनसे मिलने की बात कहवा दी गई है ।<sup>३</sup> इसके साथ एक किशकन्ती भी जुड़ गई कि 'भक्तवर ने मीरा को एक कीमती हार भेंट किया । मीरा ने उसे अपने पास नहीं रखा । फिर भी राजा को जब इस घटना का पता लगा तो उसके हृदय की जलती आग और प्रवर्धित हो उठी ।"<sup>४</sup>

भक्ति-रस-बोझिनी टीका की इन पंक्तियों की यदि ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट है कि भक्तवर गिरिधारीनाम की छवि को देखकर निहान हुआ था मीरा की नहीं और उन्हीं गिरिधारीनाम के रूप की निकाई से प्रभावित होकर उन्हें देखने गया था ।

प्रियावास के पीन वैष्णववास ने अपने 'भक्तमान-वृत्त' नामक ग्रंथ में इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है । 'रूप की निकाई भक्तवर भाई' पंक्ति के स्पष्टीकरण में वे कहते हैं—

"तब निज बुझवासी गंध ध्यान की करवन्ध एक कन्हैया नाम है जाके रूप के ऊपर अनेक स्त्री बावरी गई हैं । उनके मत में भी कन्हैया सुन्दर है सो देखन को भक्तवर पावसाह तानसेन समेत गिरिधारी जी की छवि को मयन हो गया ।"

"पदसुखवास एक तबही चढ़ायो है पंक्ति के स्पष्टीकरण में वैष्णव वास ने उस पद की ही उद्धृत कर दिया है जिसे तानसेन ने गिरिधर के सामने गाया था । इस पद में मीरा के उस श्रु गार का वर्णन है जिसके साथ में वे 'मुकाम प्रीति' हार गूँबे हुए पावस की नदी के समान गिरिधर से मिल गईं ।"<sup>५</sup>

(१) भक्तमान, कम्पकतः, पृष्ठ ७२१

(२) 'मीराबाई की सम्बन्धनी और जीवन-चरित्र', पृष्ठ १

(३) —मीरा—बृहद्-पद-संग्रह, कीमती सङ्ग्रह, पृ० १३०

(४) मीराबाई, भा० नि० मोहता, पृष्ठ ४६

(५) संपूर्ण पद, यही प्रबन्ध पृष्ठ ४६

वैष्णव प्रियादास के माती थे। जब ही के भक्तों से उनका विधाय संपर्क था। प्रियादास के संपर्क में तो वे थे ही। मीरा के समय के प्रियादास की टीका के प्रकवर-तानसेन' वाले विवरण की धर्म-सम्बन्धी अस्पष्टता उन्हें अवश्य लगी होगी। इसीलिए उन्होंने उस प्रसंग को ठीक प्रकार से स्पष्ट किया जिससे बाद में भ्रम के कारण यत्न धर्म भयाकर भोग एक असत्य पर विश्वास न कर बैठें पर उनके श्रुत्युक्त का प्रचार न हाने के कारण यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका।

उक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उस समय तक मीरा दिवंगत हो चुकी थी और उनके कुण्ड-मूर्ति में मिल जाने की कथा को काफी प्रचार मिल गया था। साथ ही उनकी मातृभार्यकी भक्ति और उनके गिरिधर प्रेम इतना प्रसिद्ध हो गया था कि प्रकवर को भी उस गिरिधर की मूर्ति देखने की जालसा हुई। प्रकवर की सामिक जिज्ञासा तथा उदार बुद्धि बीनझमाही भक्त के बचाने (संवत् १६१२ वि०) के समय से कुछ पूर्व बहुत प्रबल थी। मथुरा गजेन्द्रियर के अनुसार प्रकवर सं० १६२७ में बुन्दावन के गोसायनों से मिलने गया था और वहाँ पर उसकी दाँतें बल कर उसे निधुवन (वास्तविक बुन्दावन जिसके आचार पर नगर का नाम बुन्दावन पड़ा है) ले जाया गया और वह उस वृक्ष से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उस स्थान की पवित्रता को स्वीकार किया। इस घटना की यादगार में उसने नाट्यत राजाओं ने उसकी अनुमति और सहायता से मोहिन्दरेव गोपीनाथ कुमसकिशोर और मदनमोहन के चार प्रसिद्ध मंदिरों का निर्माण किया।<sup>१</sup> हो सकता है कि मीरा के गिरिधर की मूर्ति के दर्शन प्रकवर ने संवत् १६२७ में अपनी इसी वजयाबा के समय किए हों।

संवत् १६२४ में प्रकवर ने चितौड़ के किले को जीता था। सम्भव है कि उस समय तानसेन उसके साथ हीँ बचवा बिजय के उपरान्त तानसेन को भी उसने अपने पास बुला लिया हो और तब चितौड़गढ़ में स्थित मीराबाई के मंदिर में उसने गिरिधर की मूर्ति के दर्शन किए हों और वहाँ तानसेन ने पद गाया हो। प्रकवर की उदार धर्मप्रियता और मुक्त-आह्वता को देखते हुए यह घटना भी असंभव नहीं लपटी।

मघासिद्धन्-उमरा के अनुसार प्रकवर ने अपने राज्य-काम के सातवें वर्ष अर्थात् सं० १५६० या संवत् १६१६ में तानसेन को राजा रामचन्द्र बबेला के यहाँ से बुलाकर अपने दरबार में रखा।<sup>२</sup>

(१) गजेन्द्रियर छोड़ मथुरा, पृष्ठ १६१

(२) समसामुद्गीता साहजबाज जी (अमरुज्जाक) मघासिद्धन्-उमरा, हिंदी भाग १, पृष्ठ १३० (अनु० बाबू अमरलदास)

अनुष्ठान में अकबर-दरबार में तानसेन ने प्रवेश की घटना का वर्णन करते हुए कहा है कि 'इस वर्ष (सन् १५६२) तानसेन ने उपस्थित होकर सहंसाह को सत्ताम बजाया और स्वयं भी आधराभित्त हुए ।' तानसेन की मृत्यु स० १६४६ (२६ अप्रैल १५८६ ई०) में हुई थी ।<sup>१</sup> अतः सन् १६२४ या १६२७ में तानसेन के साथ गिरिधर की मूर्ति के दर्शन को जाने की बात असंभव नहीं हो सकती ।

२५२ बार्ता का विश्वास किया जाय तो अपने जीवन की संघा में तानसेन की विद्वत् तथा उनके अनुयायियों से अनिष्ट आत्मीयता का होना सिद्ध होता है । उसके अनुसार उन्होंने 'बादशाह के इहां से जायको आयको छोड़ द्यो और श्री गुसाईं के पास रह आए' ।<sup>२</sup> इस बात से तानसेन और अकबर के संपर्क के प्रारम्भिक काल में ही उक्त घटना के घटने की संभावना पुष्ट हो जाती है । कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि यह घटना हर हालत में स० १६१६ और सन् १६४६ के बीच ही घटी थी और मीरा उस समय इस लोक में नहीं थीं ।

### सुस्तसीदास और मीराबाई

गौस्वामी तुलसीदास के पास मीराबाई द्वारा पत्र भेजने का सर्व प्रथम उल्लेख 'बेनीमाचबबास' के 'मूल गुसाईं-वरिच' में मिलता है—

छोरहूँ छोरहूँ लगी कामव गिरि दिन जाव ।

मुनि एकान्त प्रवेश महीं आये सूर सुबास ॥

बसै पाति गए बस सूर कबी । उर में पकराय के त्याग लबी ॥

सब आयी मेवाड़ ते बिप्र नाम सुखपास ।

मीराबाई पथिका आयो प्रेम प्रवास ॥ ३१ ॥

पढ़ि पाटी उत्तर जिन्हो गीत कबित्त बनाय ।

सब लजि हरि भविषो बली कह दिव बिप्र पठाय ॥ ३२ ॥

इस कवचका तात्पर्य यह है कि सन् १६१६ में सूरदास तुलसीदाससे मिलने

(१) अकबरनामा, भाग १ पृष्ठ २७६, २८०

(२) वही, भाग ३ पृष्ठ ८१६

(३) २५२ बीजबन की बार्ता पृष्ठ ४७६ ४७७ -गुजराती, सहस्रनाम का संस्करण, पृष्ठ ३०७-३०८

(४) मूल गुसाईं-वरिच बे० भा० दास तीता प्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण पृष्ठ १५

मए । उनके बाते ही भर्षात् सं० १६१६ में या सं० १६१७ के प्रारम्भ में मेवाड़ स मीरों का पत्र मकर मूकपास नामक कोई विग्र तुलसीदास के पास पहुँचा और उन्होंने "वीर धीर कविता" में 'सब तब हरि भज' उपदेश देकर बिदा किया । मेनवेडियर प्रेस से प्रकाशित मीरोंबाई की सम्पादनी धीर जीवन-चरित्र के सपासक धीर मेवाक ने सुतपास द्वारा प्रेषित पत्र में लिखे गए पद को भी यहीं से खोजकर उद्धृत कर दिया है, जो इस प्रकार है—

धी तुलसी सुख-निधान कुछ हरन मुसाई ।  
बारहि बार प्रनाम कहे धब हर सोक समुसाई ॥  
घर के साजन हमारे जेते सबन उपाधि बड़ाई ।  
सामु संय धर भजन करत मोहि बंत कमस महाई ॥  
बासपने में मीरों कीन्ही गिरिबरनाम भिताई ।  
सो तो सब छूत नहि क्यों हूँ लागि मगन बरिसाई ॥  
भरे मात पिता क सम ही हरि भक्त मुसाई ।  
हमको कहा उचित करिबी है, सो लिखियो ममसाई ।<sup>१</sup>

मूल मुसाई-चरित्र के अनुसार इस पत्र का उत्तर तुलसी ने वीर धीर कविता में दिया था । पद धीर सबैया इस रूप में उद्धृत किए जाते हैं—

पद—आक प्रिय न राम बदेही ।

तजिए ताहि काटि बीरु सम यद्यपि परम सनेही ॥  
तज्या पिता प्रह्लाद, विनीपन बंधु, भरत महतारी ।  
बसि मुख तज्या कत बज बनिता भवे सब भयसचारी ॥  
मातो नेह राम सो मनियत सुहृद मुसेभ्य कहाँ सी ।  
प्रजन कहाँ प्राँच जी पूँ बहुरक कहाँ कहाँ सी ॥  
तुलसी सी सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारे ।  
बासों हौम मनेह राम पद प्रेमी यती हमारे ॥

सबैया—सो बननी सो पिता सोइ भात मो भागिन मो भुत सो हित मेरो ।

मोई सगो मो सखा मोई सेवक मो गुरु सो मूर साहिब मेरो ॥

सा तुलसी प्रिय प्राण समान कहाँ ली बडाइ कहाँ बहुतरो ।

जो तजि नेह को येह नी नह सनेह सो राम का हौम सबेरो ॥

(१) पृष्ठ ४—इस पद का एक धीर पाठ भी मिलता है जिसकी प्रथम पंक्ति है, "स्वस्ति धी तुलसी मुनयूयन बृज हरन मुसाई" । इसमें उपरिलिखित पद की ५ वीं और ६ वीं पंक्तियाँ नहीं हैं, शेष पद उसी प्रकार हैं ।



उक्त पत्र और सबैया गोस्वामी तुलसीदास की ही रचनाएँ हैं<sup>१</sup> परन्तु मीरा की रचनाओं के किसी भी संग्रह में मीरा द्वारा लिखित कहे जानेवाला पत्र उनकी कृति के रूप में संगृहीत नहीं है। केवल जीवमियों और संवर्णों की भूमिकाओं में इसका उल्लेख मिलता है। प्रियादास नागरीदास वैष्णवदास और चन्द्रदास ने अपने समय में प्रचलित मीरा-सम्बन्धी जनश्रुतियों को निम्नलिखित किया है। उन्होंने मीरा के ब्रजवायमन द्वारकायमन जीवगोस्वामी आदि से मिलने के प्रसंगों को लिखा है। अब, विशेषकर तुलसी के पास एक दूत भेजकर उनसे पत्र द्वारा राग लेने की घटना के अनुल्लेख से यही सिद्ध होता है कि शायद एक एक इस किंवदन्ती को जन्म ही नहीं मिला था और अगर यह प्रचलित हो गई थी तो वे सन्त इसकी सत्यता में विश्वास ही नहीं करते थे।

जिस ग्रंथ में इस पत्र-लेखन की घटना का उल्लेख है उसकी अप्रामाणिकता निश्चित रूप से सिद्ध हो चुकी है।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त विक्रमीय २० वीं शताब्दी के पूर्व के किसी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

तुलसी की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् संवत् १६८१ में भयवानबाह्यन के पुत्र श्रीकृष्णदास द्वारा लिखित 'गीतम चरित्रा' में दिए तुलसी-संबन्धी वृत्तान्त से प्रस्तुत प्रसंग पर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसमें कहा गया है—

मरत जेनीबासहुँ आए। सुपर सूर मीराँ कृत माए ॥

सुनि तुलसीबानी अनुपामी। सुपर कृष्ण पद गावन बागी ॥<sup>३</sup>

गीतम चरित्रा में तुलसी के संपर्क में आनेवाले अत्यन्त साधारण व्यक्तियों का भी उल्लेख करने वाले और तुलसी को निकट से जानने वाले श्रीकृष्णदास का मीरा का तुलसी के पास पत्र भेजकर उनसे राग लेने का उल्लेख न करके उनका पद बाए जाने का उल्लेख करना अकारण नहीं है। वस्तुतः प सूर तुलसी के पास गए थे और न मीरा ने पत्र भेजकर निर्दोष माँगा था। तुलसी के जीवन-काल में ही इन दोनों के पद इतने प्रसिद्ध हो गए थे कि तुलसी के सामने जाएं चाहे वे और कदाचित् तुलसी को उनसे प्रेरणा मिलती थी। इसी सत्य को अविज्ञान रूप में गीतमचरित्रा में कह दिया गया है। मूल गोसाई-चरित्र के लेखकने इतने-से साधारण पर अत्यधिक

(१) तुलसी प्रभावली, दूसरा खण्ड (भा० भा० कपूर) सितम पत्रिका, पृष्ठ ५५१ कवितावली, पृष्ठ २११

(२) तुलसीदास डा० माताप्रसाद मुन्ता पृष्ठ १४०

(३) गीतम चरित्रा में तुलसीदास का वृत्तान्त, पं० विद्यानाथ प्रसाद निध-ना० ब० पत्रिका वर्ष ६०, प्रंक १ से पुनर्मुद्रित, पृष्ठ १०

बटनाओं का आसार बढ़ा कर दिया है।

नरसी मेहता और भीरों के बीच पत्र-व्यवहार :

सन् १९२२ में समाज विकास मासा के अन्तर्गत एक पुस्तक प्रकाशित हुई 'नरसी मेहता'। उसके लेखक को कहीं से पता चला कि नरसी मेहता और भीरों-बाई के बीच पत्र-व्यवहार हुआ था। उन्होंने इस किंवदन्ती को अंकित कर दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक महत्वपूर्ण नहीं है। बालकों और कम पढ़े-लिखे प्रौढ़ों को नरसी के जीवन का परिचय कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। फिर भी जिस बटना का उसमें उल्लेख हुआ है वह प्रस्तुत विषय से महत्वपूर्ण सम्बन्ध रखती है। उससे एक नई किंवदन्ती की परंपरा को जन्म मिला रहा है। भविष्य में जिसका भीरों के जीवन में सम्बन्धित अध्ययन पर अनिवार्य प्रभाव पड़ेगा। अतः इस बटना की भीमसा यहाँ अनुपेक्षणीय ही नहीं आबरूपक भी है।

"नरसी मेहता" के लेखक का कथन है कि "कहा जाता है कि जब भीरोंबाई उदयपुर में अपने बरवालों के सठाने से तब धा गई और वर छोड़कर बुन्दारन में जाकर भजन करने का विचार करने लगीं तब उन्होंने दो पत्र लिखे। एक संत तुलसीदास को और दूसरा मल नरसी को। उन्होंने उनसे पूछा कि क्या करें। तुलसी ने जैसा उत्तर दिया उनी तरह का उत्तर नरसी ने भी लिखकर भेजा। उन्होंने लिखा था—

"नारायणनू नामन लेना बरे तेने तजिए रे।  
मनसा बाबा कर्मजा करीने लक्ष्मी बरने भजिए रे।  
कुलने तजिये कुटुम्बने तजिये तजिये माने बाप रे।  
ममिनी मृत शरणे तजिये जम तजे कबुकी सौन रे।  
प्रथम पिता ग्रहणादे तजियो गव तजियु हरिनु नाम रे।  
मरत धनुषने तजी जनेता गव तजिया भी राम रे।  
अपि पत्नी भीहरिले बाजे तजिया निज मरपार रे।  
तेमां तेनु कहिये मयुं, पामी पदारत चार रे।  
ब्रजब्रजिता बिदुषने कामे मर्य तजी बन जासी रे।  
भजे नरसीपी बुन्दारनमा मोहन साज महासी रे।"

(नारायण का नाम लेनेसे रोकनेवाले का त्याग करना चाहिए और मन बचन तथा कर्म से सारंगीयि का भजन करना चाहिये। कुल कुटुम्ब माता-पिता

बहन बेटा पत्नी को (यदि वे रोकते हों तो) इस प्रकार छोड़ देना चाहिए जिस प्रकार साँप केंचुनी उतार कर रख देता है। पहले के समय में प्रह्लाद ने अपने पिता को छोड़ दिया परन्तु हरि का नाम भेना न छोड़ा। भरत भीरु सन्मुख ने अपनी माता का त्याग किया पर राम को न छोड़ा। श्रुति-मूर्तिर्या ने श्रीहरि के कारण अपने पतियों को छोड़ दिया इससे उनका क्रुद्ध न बिगड़ा और वे चारों पदार्थ (धर्म धर्म काम मोक्ष) पा गई। प्रबन्धमिताएँ (गोपियाँ) भी विद्रुम के कारण वन को दी गई। नरसी कहते हैं कि इस प्रकार वे मोहन के साथ जीवन का धामन्य पा सकी।)

जहाँ तक उद्धृत पद का संबंध है, यह नरसी की रचनाओं में मिलता है।<sup>१</sup>

विक्रमीय १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही नरसी मेहता के जीवन की अनेक घटनाओं को कवि विष्णुदास ने निपिबद्ध कर दिया था। उसके पदवाच कई गुनगुनी कवियों ने नरसी का जीवन-चरित्र काव्य में लिखा और उन्होंने नरसी द्वारा किए गए मीर-संबंधी सस्सेब को भी उनमें सचेतनतापूर्वक स्थान दिया, मगर उनमें से किसी ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया।<sup>२</sup>

ऊपर के पद को यदि ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि यह किसी नारी को संबोधित करके नहीं लिखा गया। नरसीजी कहते हैं, 'कुम कुटुब माटा-पिता बहन बेटा और पत्नी को इस प्रकार छोड़ देना चाहिए जैसे साँप केंचुनी उतार कर रख देता है। मीरों के पुत्र नहीं था। वे स्वयं पत्नी थीं उन्हें पत्नी के त्यागने का नहीं पति के त्यागने का संदेह देना चाहिए था।

वस्तुतः तुलसी-मीर-मन-म्यबहार की काव्यमयिक घटना के प्रसिद्ध हो जाने पर किसी मौलिकता-प्रेमी कल्पनाशील शोधशास्त्री या नरसी-मक्त ने नरसी के उक्त पद पर, सरलता से जम जानेवाली घटना को जन्म देकर प्रचारित कर दिया। संभव है कि नरसिंह मेहता प्रेमार्नव और वत्सल के नाम से ग्रंथ के ग्रंथ लिखकर प्रकाशित करनेवालों<sup>३</sup> में से किसी को इस कथा के जन्म देने का श्रेय हो।

(१) नरसी मेहता कुल काव्य-संग्रह (संपादक - इ० स० देसाई) भक्तिप्रामवा पत्री, पृष्ठ ४२२

(२) विक्रमाय बानी ने संवत् १७०८ में और प्रेमामन्य ने संवत् १७४० में 'मामेरु' की रचना की थी।

(३) गुजरात पुण्ड इहस सिटरेवर (नोट भी- बबडोवा औरजरीब) के० एम० मुंशी, पृष्ठ २७६-७७

मीरा की अंतरंग सेविकाएँ और सखियाँ :

मीरा की सेवा करने वाली कई सखियों के उल्लेख मिलते हैं। कहा जाता है कि चंपा धीर जमेनी को राधा ने मीरा का ध्यान (उनकी गतिविधि पर नियमन) रखने के लिए रखा था पर वे बाद में मीरा की भक्त हो गईं।<sup>१</sup> नामरीदास ने भी एक इसी प्रकार की सखी सेविका का उल्लेख किया है—

“तब एक समें राधा ने अपने अंतहपुर की एक स्त्री को पठाई कह्यो कि प्राची राति उपरांत जहाँ वे होय तहाँ चली जाई जाइये काहु की हटकी मत सहिये सोबानें बैसे ही कियो मीराबाई छटोरी पर सोई सोई बाग्य ही सौ हैं चक्रमा को बेपि देपि हरि प्रीतम के अंतराय को बिरह सह सहत हों उनकी भावना करि करि परी उदास भेत ही इतने ही ये जाय छकी गई, ताकुं मीराबाई कह्यो उनकेके बैठिकें हमारो दुप सुनीं या समें हमहुं पुन बड़े ओटा मिले सो जखपि यह बिजाती ही परंतु क्यों कोऊ अति अचीर अनुरागी होय ताकुं बिजाती सजाती को ध्यान नाही रहें बहि अपने पित की कहें सो कहें ही कहें यातें बाके धामें बाही घेर एक पव बनाय के गावन लगी सो पव सुनि इनकी अवस्था बेपि यह आई हुती सो परम अनुराग में मूर्च्छित हुबें गयी इनकी ही निकटवर्ती परम ब्रह्मण्य गई, फिर राधा के अंतहपुर में न गई—”<sup>२</sup>

मिथुना मीरा से संबंधित जिस सखी के नाम की विशेष चर्चा मिलती है, वह मिथुना है। शिवकर्म ने माहेरो में कहा है कि ‘मीरा-मिथुना-संबाह के रूप में जो कथा बहुत बार कही जा चुकी है वे उसे यहाँ नहीं कह रहा।

रतनाबायी हृत माहुरो की कथा मीरा-मिथुना संबाह में है रभीजा के मीरादास ने भी इन्हीं के संबाह स्वयं अपना माहेरो लिखा। मीरा-छाप से प्राप्त कई पवों में भी मिथुना का उल्लेख विद्यमान सखी के रूप में किया गया है। कुछ पद तो मीरा-मिथुना-संबाह के रूप में भी मिलते हैं। यद्यपि इन पवों की प्रामाणिकता संदिग्ध नहीं है, तो भी वे पद धीरे माहेरो इस संबंध में प्राचीन तथा व्यापक जनमुक्ति के वर्तमान होने की ओर सन्देह करते हैं।

ललिता पर, मीरा की जिस विषयस्त धीर भक्त सखी का निरवधारक उल्लेख मिलता है, वह ललिता है। यह ललिता कौन थी? इस प्रश्न के अनेक

१ मीराबाई, बी माइफ एंड टाइम्स, एच० गोइन्ज, पृष्ठ ६७

बर्नल प्राय मुजरात रिस्त्रिब्यूटोरी, मिस्र १८ सं० २, पृष्ठ १, १९५६ से पुनर्मुद्रित

२ पर-अर्पण-माला, मीरा संबंधी प्रसंग ६, पृष्ठ १६६

उत्तर कल्पना से मड़ लिए गए हैं। इस संबंध में सबसे प्राचीन उल्लेख भुवरास का है और उन्होंने केवल इतना ही कहा है कि मीरा 'ललिता' का भी बुसाकर साईं थी। उससे मीरा को अत्यन्त प्रेम था। वे दोनों वज्र में साय-साय बूमी थीं।<sup>१</sup>

हरिदास-साहित्य के अध्येता डा० गोपालचन्द्र शर्मा ने लेखक को बताया कि मीरा के प्रसंग में इस ललिता का अर्थ हरिदास है, क्योंकि वे ललिता सबी के अक्षरों से माने जाते थे। भुवरास ने भी उन के लिए 'ललिता' का प्रयोग किया है।<sup>२</sup> पर, मीरा-संबन्धी प्रस्तुत प्रसंग में ललिता से तात्पर्य हरिदास से नहीं है।

भुवरासजी का कथन है—ललिताहूँ सायी बोलि कै ( ललिता हूँ मैं बोलि कै) पाठ भी मिलता है) में इस 'साई' से व्यंजना इसी बात की होती है कि मीरा स्वयं तो साईं ही थीं ललिता को भी बुसाकर साईं थीं। हरिदासजी के विषय में प्रसिद्ध है कि वे बुम्बावन में धाने के बाध उसे छोड़कर फिर कहीं नहीं गए और यह भी निर्विवाद है कि हरिदास को मीरा वज्र में नहीं साईं थीं। वे स्वयं संबत् १११४ वि० में बुम्बावन आए थे।<sup>३</sup>

श्री हितहरिवंशजी के तृतीय पुत्र श्री हितगोपीनाथजी के परम कुपापात्र पिप्प भी भुवरासजी मीराबाई का हरिदास के संपर्क का उल्लेख करें और अपने संप्रदाय के आदि आचार्य और अनन्य रस रसिक हित हरिवंश के संपर्क के विषय में मौन रहें यह बात स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती और विशेषकर उस समय जबकि मीराबाई के हितहरिवंश-संपर्क की बात संप्रदाय के लिए सम्मान की थी और अन्य संप्रदाय के लोग भी इसका उल्लेख कर चुके थे। वस्तुतः भुवरास द्वारा उल्लिखित मीरा-द्वारा बुसाई गई 'ललिता' मीरा की सबी 'ललिता' थी हरिदास नहीं।

ललिता मीरा की सबी और बाकी जितनी में बनी या भेड़ता में इस बात का निर्णय अनुमान के आधार पर ही करना होगा क्योंकि सीधे उल्लेख इस विषय में नहीं मिलते। मीरा का सुख चित्तीड़-बास बोड़े ही कास का था वही उनका काफ़ी समय संघर्ष में बीता था। अतः उस काल में उनकी सहजरी उनकी अंतरंग व्यथा को समझने वाली संगिनी राजरोप से संतप्त और लौकिक दृष्टि से दुर्भाग्य

(१) श्री बपालीत लीला, जगत नामावलि लीला, श्री हित भुवरास, पृष्ठ १४ १५

(२) सर्वोपर राधा कुंवरि प्रिय प्राणन के प्राण ललितादिक सेवत तिगहि अति प्रवीन रत जान ।

—श्री बपालीत लीला भुवरास पृष्ठ ११

(३) श्री केसिमाला, श्री स्वामीजी महाराज का जीवन-चरित्र पृष्ठ १५

पूर्व जीवन के साथ अपने भाग्य की ओर जो बाँध रहे वाली उसकी सखी उनके विवाह के बाद साथ होनेवाली राधा के राज-परिवार की कोई वासी होगी इस बात की संभावना बहुत कम है। विवाह होने पर प्रायः माँ-बाप कन्या के साथ उसकी कोई ऐसी प्रिय और व्यवहार कृपल तथा चतुर दासी को भेजते हैं जिसपर किसी भी विषय पर स्थिति में विश्वास किया जा सके और जिसके कारण पतिगृह के अपरिचित बातावरण में उसे किसी प्रकार का एकाकीपन न सने और उसके संकोच की सुरक्षा होते हुए भी उसके मन की बातें अभिव्यक्ति पाती रहें और होती रहें। राज परिवारों में यह और भी आवश्यक था क्योंकि अनेक रानियों की स्थिति और राज नीतिक सावधानियों के संघर्ष के कारण अनेक बार उनकास कुछकों के केंद्र बन जाते थे। इसलिए यह मानना अनुचित नहीं होगा कि समिता उनके यहाँ बचपन से रहनेवाली उनकी निरवस्त दासी भी और मेकते से ही मीरा के साथ बिल्लाई गई थी।

यह समिता दासी भक्ति की अजस्र निर्मल कम्पोजिनी मीरा के सहवास में स्वयं भी भक्ति के रस में डीपकर 'परम वैष्णव' बन गयी थी और मीरा के समस्त कार्यों में सहायता देती थी। मीरा के पदों के संग्रह का कार्य भी इसी के द्वारा हुआ था। मट्टजी द्वारा प्रो० ललिताप्रसाद सुकुन को समिता के सम्बन्ध में जो हाल मौखिक रूप से उपलब्ध हुआ उसके अनुसार समिता बुन्दावन के जाने के पहले स्वयं थी। बुन्दावन पहुँचते ही उसे बमे के रोग से ही मुक्ति नहीं मिल गई वरन् उसकी काया कँचन हो गई। उसने स्वयं कहा है—

बोत जगम ना म्हारो कोई श्याम तुम्हारी माया  
बुन्दावनरो बरसम पायी कचन हो गई काया ।<sup>१</sup>

इस कथन का कोई पुष्ट आधार नहीं है। अतएव इसकी निरवस्तनीयता अवश्य सीमित है। प्रो० सुकुन के अनुसार कहा जाता है कि 'रघुछोड़की के महिर में मीरा ने समाधिस्व होकर अपना शरीर छोड़ा था। उसकी पहली ही रात में जब विवाहिता का शृंगार करके वह मीरा के सामने उपस्थित हुई थी और उन्हें अन्तिम प्रणाम करके समुद्र की लहरों में समा गई।'।<sup>२</sup> मायरीदास के उल्लेख से प्रकट है कि उनकी 'चतुर सखी' उनके साथ उनके जीवन के अन्तिम दिन तक रही थी।<sup>३</sup> इसने मीरा के जीवन-काल में ही समिता के प्राणान्त की इस व्यापमयी रोमांटिक घटना के सत्यासत्य की परीक्षा हो जाती है।

(१) मीरा स्मृति ग्रंथ पदावली परिचय, पृष्ठ ८, छ

(२) वही पृष्ठ छ

(३) नागर-समुच्चय पद-प्रसंगमाला, नागरीदास मीरा-संबंधी प्रसंग ५

समिठा-छाप का निम्नांकित पद लेखक को मिला है—

परिया (हरियो ) मन की खोरि,

प्रभुजी हरियो मन की खोरि ।

भिलनी तारी बगका तारी तोरी पाप की खोर ।

घाई प्रभुजी सरन तिहारे भगतबछस रनिछोर,

जान भगति कुछ भानत नाही प्रभुजी भाजन खोर,

समिठा वासी भगत खरन की बगती खीनी छोर ।

मीरा-छाप के पदों में एक पद ऐसा उपलब्ध है जिसमें 'समिठा वासी' शब्द आया है। इसमें 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर' को पद की छाप न मानें और 'मीरा' के प्रभु को 'गिरिधर नागर' का विशेषण मानकर धर्म इस प्रकार लगाएँ 'हे मीरा-प्रभु गिरिधर नागर' तो यह पद समिठा नामक वासी का ही रहा हुआ सिद्ध होगा। हो सकता है कि ये समिठा वासी मीरा की सखी और समिठा ही हो क्योंकि ये 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर' के चरनों में ध्यान लगाए हैं।

पद इस प्रकार है—“घावो बी मीरी समिधन में बमस्याम

पिछवारे तें हेरा बीखी समिठा वासी नाम

पैसा परत हूं भित्ति करति हूं नाहिन मान-मुमान

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, खरन में निव ध्यान ।

बृहत् मीरा-पद-संग्रह में इसी का एक रूपान्तर है। श्रीमती चबनम ने उसे अप्रामाणिक नहीं, मीरा-कृत माना है।

'समिठा' नाम 'भगत खरन की वासी' और भक्तबछस रनछोर की सरन' आदि शब्दों से लगता है कि मीरा के साथ द्वारका में रहने वाली मीरा की वासी-सखी समिठा ही थी।

श्री० समिठाप्रसाद सुकुल की संदेह है कि बाकोर की प्रति में 'वासी मीरा' सास गिरधर' छाप के जो जोड़े पद हैं वे मीरा-कृत न होकर समिठा कृत हैं, क्योंकि इन पदों की भावश्री प्रायः मीरा के व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है।<sup>१</sup> बाकोर की प्रति में ऐसे तीन पद हैं (संख्या २६ १७ व ६६)। इस संदेह को निश्चय की कोटि तक न जानेवाला कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पदों में समिठा की छाप नहीं है 'मीरा-वासी' का धर्म 'समिठा' हो सकता है पर मीरा ने स्वयं अपने लिए अनेक स्थानों पर 'मीरा वासी' या 'वासी मीरा' का प्रयोग किया है अतः 'समिठा' धर्म लगाकर कोई निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं होगा। यह बात भी अनुमा

नामित है कि मीरा के पर्वों में 'माई' संवाचन मसिठा के लिए है।

कहा जाता है मसिठा वाली मीरा के पद भिखारी चलती थी। उनके हाथ की सिखी पोषी का क्या हुआ कोई नहीं जानता। कुछ विद्वानों का कथन है कि द्वारका के रणछोड़जी के मंदिर में मीरा के पर्वों की हस्तलिखित प्रति मौजूद है। क्रम-से-क्रम इस समय मीरा के पर्वों की कोई हस्तलिखित पोषी द्वारका के रणछोड़जी के मंदिर में नहीं है। झांकोर के रणछोड़जी के मंदिर में भी इस प्रकार की कोई पोषी नहीं है।

मीरा की मृत्यु कहाँ कैसे और कब ?

मीरा की मृत्यु कहाँ और कैसे हुई, इस विषय में प्राचीन स्रोतों के सभी साक्ष्यों का एक ही उत्तर है—'मीरा द्वारिका में रणछोड़जी के मंदिर में मूर्ति में सघटीर समा गई।

नागरीवास<sup>१</sup> और शिवाबास<sup>२</sup> जैसे सगुणवादी वैष्णव ही नहीं निर्गुणवादी संतों में भी उनके 'पत्थर की प्रतिमा में समा जाने की बात' प्रचलित है।"

शोक-गीतों का भी साक्ष्य है कि 'जाय द्वारका बर-बर हुई मंदिर छुं न डली।"

भक्तों के प्रसीकिकता के प्रति सहज बिश्वासी मन में मीरा के रणछोड़जी की मूर्ति में सघटीर समा जाने की बात आश्चर्य नहीं अच्छा उत्पन्न करती है। तर्कहीन भ्रष्टा-बिश्वास का यह मान-सोक ही धीर है। संसार के कार्य-कारण के शास्त्र नियम नहीं नहीं समझे प्रेम-इच्छा से काम चलता है परन्तु इस वैज्ञानिक युग की तर्कमयी बुद्धि इस बात को इसी रूप में स्वीकार नहीं कर सकती।

कहा जाता है कि मीरा सबसेरे उठकर स्नान करके मंदिर में कीर्तन करती थीं। अन्तिम दिन भी वे उठी-धीरे उसके पश्चात् पठा यह सगा कि मीरा सघटीर परलोक सिंवार गईं। भक्तों ने कहा 'रणछोड़जी ने उन्हें अपने में समा लिया।

इस घटना की मौखिक और तर्कमयत व्याख्या से यह संकेत मिलता है कि मीरा मंदिर में पूजा के लिए गई थीर वहाँ से कहीं अदृश्य हो गईं, बाहर में उनका कहीं पठा नहीं लगा।

(१) नामर समुच्चय, पद प्रसंग भाषा पृष्ठ १२५

(२) भक्तिरस बोधिनी टीका श्री भक्तमाल उपरुता, पृष्ठ ७२२

(३) प्रेम साहज गरीबदास पृष्ठ २७०

(४) शोक पत्रिका, भाग ३ पृष्ठ ४, पृष्ठ १७७



समिता-छाप का निम्नांकित पद लेखक को मिला है—

परिया (हरियो) मन की बोरि,  
प्रभुबी हरियो मन की बोरि।  
मिसली तारी गनका तारी तोरी पाप की बोर।  
घाई प्रभुबी सरन तिहारै भगतबख्त रनिछोर,  
ज्ञान-भगति कुछ धायत नाही प्रभुबी माखन बोर,  
समिता बासी भगत चरन की जगती बीनी छोर।

मीरा-छाप के पद्यों में एक पद ऐसा उपलब्ध है जिसमें 'समिता बासी' शब्द धाया है। इसमें 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर' को पद की छाप न मानें और 'मीरा' के प्रभु को 'गिरिधर नागर' का विशेषण मानकर अर्थ इस प्रकार समझें 'हे मीरा-प्रभु गिरिधर नागर' तो यह पद समिता नामक शायी का ही रहा हुआ सिद्ध होना। हो सकता है कि ये समिता बासी मीरा की सखी और समिता ही हो क्योंकि ये 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर' के चरणों में ध्यान लगाए हैं।

पद इस प्रकार है— 'धायो बी मोरी पलियन में बनखान  
पिछवारे सैं हेरा बीस्यों समिता बासी नाम  
पैना परत हूं बिनति करति हूं नाहिन मान-भुमान  
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरणनमें निव ध्यान।'

बृहद मीरा-पद-संग्रह में इसी का एक रूपान्तर है। श्रीमती बचनम ने उसे अप्रामाणिक नहीं मीरा-कृत माना है।

'समिता' नाम 'भगत चरण की बासी' और 'भगतबख्त रनिछोर की सरन' आदि शब्दों से समिता है कि मीरा के छात्र द्वाराक में छाने वाली मीरा की बासी-सखी समिता ही थी।

प्रो० समिताप्रसाद मुकुल को संदेह है कि बाकोर की प्रति में 'बासी मीरा सात गिरधर' छाप के जो जोड़े पद हैं वे मीरा-कृत न होकर समिता कृत हैं क्योंकि इन पद्यों की सामग्री प्रायः मीरा के व्यक्तित्व की घोर संकेत करती है।<sup>१</sup> बाकोर की प्रति में ऐसे तीन पद हैं (संख्या २६, ६७ व ६८)। इस संदेह को निरूपण की कोटि तक ले जानेवाला कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पद्यों में समिता की छाप नहीं है 'मीरा-दासी' का अर्थ 'समिता' हो सकता है, पर मीरा ने स्वयं अपने लिए अनेक स्वार्थों पर 'मीरा दासी' या 'दासी मीरा' का प्रयोग किया है अतः 'समिता' अर्थ लगाकर कोई निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं होगा। यह बात भी अनुमा

नामित है कि मीरा के पदों में 'माई' संवाधन समिता के लिए है।

कहा जाता है समिता वाली मीरा के पद मिछटी चलती थी। उनके हाथ की सिन्धी पोषी का क्या हुआ माई नहीं जानता। कुछ विद्वानों का कथन है कि द्वारका के रणछोड़जी के मंदिर में मीरा के पदों की हस्तलिखित प्रति भीखूद है। कम-से-कम इस समय मीरा के पदों की कोई हस्तलिखित पोषी द्वारका के रणछोड़जी के मंदिर में नहीं है। डाकोर के रणछोड़जी के मंदिर में भी इस प्रकार की कोई पोषी नहीं है।

मीरा की मृत्यु कहाँ कैसे और कब ?

मीरा की मृत्यु कहाँ और कैसे हुई, इस विषय में प्राचीन स्रोतों के सभी साक्ष्यों का एक ही उत्तर है—'मीरा द्वारका में रणछोड़जी के मंदिर में मूर्ति में सघटीर समा गई।

नामदीबास<sup>१</sup> और प्रियाबास<sup>२</sup> जैसे भगवत्वादी वैष्णव ही नहीं निर्मूलकारी संतों में भी उनके 'पत्थर की प्रतिमा में समा जाने की बात प्रचलित है।'

लोक-गीतों का भी साक्ष्य है कि 'जाय द्वारका बर-बर झूड़ी मंदिर सँ न टनी।

भक्तों के धर्मोक्तिता के प्रति सहज विश्वासी मन में मीरा के रणछोड़जी की मूर्ति में सघटीर समा जाने की बात आश्चर्य नहीं बल्कि उत्पन्न करती है। तर्कहीन झूठा-विरवास का वह भाव-लोक ही और है। संसार के कार्य-कारण के ज्ञात निबन्धन वहाँ नहीं लगने प्रेम-इच्छा में काम चलता है परन्तु इस वैज्ञानिक युग की तर्कमयी बुद्धि हम बात को इसी रूप में स्वीकार नहीं कर सकती।

कहा जाता है कि मीरा सबेरे उठकर स्नान करके मंदिर में कीर्तन करती थीं। अन्तिम दिन भी वे उठी—और उनके पश्चात् पता यह लगा कि मीरा सघटीर परलोक सिंघार गई। भक्तों ने कहा 'रणछोड़जी ने उन्हें अपने में समा लिया।'

हम बटना की लौकिक और तर्कमग्न व्याख्या में यह संकेत मिलता है कि मीरा मंदिर में पूजा के लिए गई और वहाँ से कहीं भ्रष्ट हो गई, बाद में उनका कहीं पता नहीं लगा।

(१) नामर समुच्चय, पद प्रसंग भाग, पृष्ठ १६५

(२) भक्तिरस बोधिनी टीका, श्री भक्तमाल, कपकभा, पृष्ठ ७२२

(३) ग्रंथ साहस्य घरीबवास पृष्ठ २७०

(४) लोक पत्रिका भाग ३ अंक ४, पृष्ठ १७७

मीरी पुरोहितों के आग्रह से व्यथित थीं, उनके धनधान की बमकी ने उन्हें हिंसा दिया था। ब्रह्म-हत्या का पाप कोई भी भक्ति सेना नहीं चाहेगी और वह भी तीसरेपन में। उदयपुर सौटने की कल्पना से ही उनके रोंगटे खड़े हो जाते होंगे क्योंकि राजा के पिछले क्रूर व्यवहार की दुखद याद उनके मन में बुझती थी। कृष्णों के बिना निष्पूरधातनामय नातावरण से उन्हें निष्कृति मिल गई थी उसमें फिर पहुँचने की कल्पना भी उन्हें सहा नहीं होगी। मागरीबास का उत्प्रेषण है कि 'हीतीम' बिना पुरोहितों के आग्रह में बीते। इन्हीं दिनों मीरी के जीवन में मानसिक संकट अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था—वस से सहेरे छठी स्नान-स्नान के लिए और 'ससरीर' परलोक सिंघार गई। मंदिर से भद्रकृष्ण होने के पश्चात् जनका पदा नहीं गया। कदाचित् सागर की विद्याल उबार बस-राशि ने उन्हें ससरीर इहलोक के पार उतारकर रणछोड़ के धर्मन्त धर्मौत्तिक रसलोक में प्रविष्ट करा दिया। ससरीर मुप्त हो जाने से यही स्थिति होता है।

इसी प्रकार की एक दुसरी घटना हमारे सामने है और वह भी मीरी के ही युग की है। वैतम्य महाप्रभु ने एक दिन कालिन्दी कुस की बल श्रीका की कथा सुनी। उन्हें दिन-मर नहीं बीता स्मरण होती रही। दिन बीता, रात आई, उनकी विरह बेचना बढ़ती गई। किसी प्रकार वे सागर के तट पर आ गए। वहाँ बसवि की विद्याल तरंगों में फिरनों की श्रीका को देखकर उनके हृदय में रस-बीता का सुमधुर संगीत स्वतः जाग उठा और धार की सुहानी छबरी में वे धारम-विस्मृत होकर तरंगों में डूब पड़े। महाप्रभु का शब्द संयोग से एक मकूर के बाल में उलझ गया और यद्यपि उसमें बिड्डति आ गई थी पर विप्लवों ने उसे पहचान दिया।<sup>१</sup> यदि बाल में सब न फँसता तो उनके ससरीर 'परलोक-गमन' की कथा क्या बनती कहा नहीं जा सकता।

मीरी के जीवन में उस समय गिरिधर की बीता का धारम प्रमुख था या उदयपुर के सौटने और न सौटने की समस्या का ब्रह्म-हत्या की बमकी से उत्पन्न घसड़ा व्यथा या तीनों यह नहीं कहा जा सकता पर इतना सत्य है कि वैतम्य महाप्रभु के शब्द की तरह उसका शब्द नहीं मिला और उसके न मिलने के कारण मठाबाग्न भक्त हृदयों ने यह बात कहकर संतोष कर लिया कि वे 'रणछोड़' में समा गई। और कोई चारा भी नहीं था।

(१) श्री वैतम्य चरितावली, खण्ड ५, प्रमुदल सहाचारी, 'समुद्र वतन तथा मत्पुत्रभा'

## मीरा की मृत्यु-तिथि

साहित्यकारों के अनुमान

(क) मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्धारण उनके जीवित रहने या न रहने की सम्भाव्य परिस्थितियों के आधार पर किया गया है। इस तरह से विचार करनेवाले विद्वानों में एक बग है जो मीरा की मृत्यु संवत् ११७५ के लगभग मानता है। कुछ उल्लेख इस प्रकार हैं—

कृष्णदास माहूनदास क्षत्री गुजराती साहित्यतां मार्गमूचक स्तंभो  
६७ वर्ष पर मन् १४७० में

बयमुक्तदास जोषीपुरा साधरमासा (सन् १४७०) ११२७  
बिक्रमीय

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष ११२७ बिक्रमीय

मोक्षिंदराम त्रिपाठी ११२७ बिक्रमीय

इच्छाराम मूर्धराम देसाई बृ० का० दो० भाग २ ११२६ बिक्रमीय

इसी कोटि में गिबसिंह सरोजधर प्रियदर्शन और कर्नल टॉड भी आते हैं। यद्यपि इन विद्वानों ने मीरा की निश्चित मृत्यु-तिथि का उल्लेख नहीं किया पर ये सभी मीरा की कुमा की पत्नी मानते हैं और सभी ने उनका विवाह सं० १४७०-७१ के लगभग माना है।

इस वर्ग के विद्वानों का मत समुक्त कर्नल टॉड के इस उल्लेख पर आधारित है कि मीरा राना कुमा की पत्नी थीं। कर्नल टॉड ने मीरा की मृत्यु-तिथि नहीं दी परन्तु राना कुमा के ऊपर द्वारा निबन्ध का वर्ष उन्होंने स० ११२१ लिखा है। कर्नल के उल्लेखों के आधार पर मीरा की मृत्यु-तिथि निर्धारण करनेवाले विद्वानों ने उसके (मीरा की मृत्यु के) राना कुमा की मृत्यु के कुछ बाद एक-दो वर्ष बाद—संवत् ११२७ (सन् १४७० ई०) के आसपास घटित होने की सम्भावना का अनुमान किया है।

जैसा कि चम्पक मिश्र किया था चुका है मीरा कुमा की पत्नी नहीं कुमा के प्रवीण भोजराज की पत्नी थीं। अतः कुमा की मृत्यु-तिथि के कुछ बाद ही मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्धारण ऐतिहासिक तथ्य का अङ्ग है।

(ख) मीरा की मृत्यु-तिथि का संवत् १६२० और १६३० के बीच मानने वाला विद्वानों का एक बड़ा वर्ग है। इस वर्ग के कुछ विद्वानों का मत इस प्रकार है—

(१) भाग्येन्द्र हरिद्वज 'नविवचन मुषा'—१६२०-१६३० वि०

(२) मीराबाई की शय्याचली और जीवन-चरित्र—सं १६२०-१६३०

(३) रामगुजराम मगमगुजराम त्रिपाठी—बृ० का० दो० भाग ७—

१६२०-१६३० विक्रमी

- (४) डॉ० रामकुमार बर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—१६२०-१६३० विक्रमी
  - (५) डॉ० श्रीकृष्णसाह मीराबाई—सं० १६२९ के बाद सं० १६३१ के आसपास
  - (६) श्रीमती सबनम मीरा—एक अध्ययन—संवत् १६३०
  - (७) रेवासंकर सोमपुर 'मीरा सासी बनम-धनम की'—सं० १६३०
- इस सूची में ऐसे ही अनेक और नाम गिनाये जा सकते हैं।

भारतेन्दुजी का निर्णय 'उदयपुर दरबार की सम्मति' से हुआ था। उदयपुर के इतिहास-विभाग में इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं है। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार बीरबिनोदकार तथा मोक्षाजी से अधिक उदयपुर के इतिहास की सामग्री से परिचित व्यक्ति अभी तक किसी को नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के उत्प्रेक्ष्य भारतेन्दुजी द्वारा उद्धृत उदयपुर दरबार की सम्मति से भिन्न हैं। एक का मत भी इस 'सम्मति' के पक्ष में नहीं है।<sup>१</sup>

बेनबेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीराबाई की सम्भावनी धीर जीवन-चरित्र' में इस मत को स्वीकार इसलिए किया गया है कि "संस्कृतमान में इन दो बातों का प्रमाण पाया जाता है—

(१) अकबर बादशाह तानसेन के साथ इनके दर्शन को आया

(२) गुजराई तुलसीदासजी से इनका परमार्थी पत्र-व्यवहार था—

धीर मीरा को सन् १५४९ (संवत् १६०३) में मृत मानने पर ये दोनों बातें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उक्त समय अकबर (जन्म सन् १५४५) की आयु ४ वर्ष की भी धीर तुलसीदास की १४ की। (धीर यह न तो अकबर को सामु-वर्धन की उम्रम बटने की अवस्था मानी जा सकती है धीर न गुजराई जी की व्यक्ति धीर कीर्ति की प्रसिद्धि का समय कहा जा सकता है।)<sup>२</sup>

अस्य यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों प्रसंग काल्पनिक हैं।

(१) लेखक ने उदयपुर आकर नाबूनाल व्यास, डॉ० मेनारिया इत्यादि उन व्यक्तियों से इस विषय में पूछताछ की है, जो वहाँ के इतिहास-विभाग की सामग्री से विशेष परिचित माने जाते हैं पर वेसी किसी सामग्री का बहाना नहीं है।

(२) वे उत्प्रेक्ष्य अक्षतमान में नहीं, उसकी विधादास कृत रसबोधिनी टीका में हैं।

घर 'मीराबाई की शय्याबली' में दिए 'जीवन-चरित्र' में जो तर्क मत के पक्ष में दिए गए हैं वे निराधार हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का कथन है कि ८४ बार्ता के अनुसार कुम्भवास अधिकारी को ब्यास और हितहरिवंश मीरा की तरफ से मिले। 'सं० १९२१ के आसपास मुग़ाई (ब्यास) हितहरिवंश से शास्त्रार्थ करने जाकर उनके शिष्य हो गये थे। घट-ये सं १९२३ के बाद ही मिले होंगे और इस प्रकार मीरा संवत् १९२२ के बाद तक जीवित अवश्य रही होंगी।' ब्रह्मा कि पिछले पृष्ठों में 'ऐतिक अनन्य-माल' के आचार पर स्पष्ट किया जा चुका है ब्यासजी का हितहरिवंश की शिष्यता स्वीकार करने का प्रमाण काव्यिक संवत् १३६१ का है संवत् १९२२ का नहीं। दूसरे, हितहरिवंश जी की निजुब-नाम की तिथि सं० १९०६ है। घट-संवत् १९०६ के पश्चात् तो हितजी का किसी व्यक्ति से मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में अलग आचार्यों पर मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्णय किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता।

डॉ० रामकृष्ण बर्मा ने 'प्रियादास मणिमर विनियम्य और 'मीराबाई की शय्याबली और जीवन-चरित्र' के मतों को स्वीकार करते हुए माछान्द हितचन्द्र के निर्णय को स्वीकार किया है।<sup>१</sup> वस्तुतः डॉ० बर्मा की यह स्वीकृति दो बातों पर आधारित है—(१) ग्रन्थ किसी मत के पक्ष में प्रमाणामात्र (२) घर-बार-नुसखी-मीरा प्रसंगों के उल्लेख। दूसरी बात की प्रामाण्यिकता तो सिद्ध ही है और प्रथम कारण 'प्रमाणामात्र' है।

घाटों के उल्लेख —

मीरा की मृत्यु के काल के सम्बन्ध में घाटों के तीन उल्लेख मिलते हैं—

(१) मूचबे का भूरखान घाट — मूचबी बहीप्रसार ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' में लिखा है—'छठों का एक घाट जिसका नाम भूरखान है यह मूचबे परगने मारोठ इलाके मारवाड़ में रहता है उसकी बहानी मुना यथा कि मीराबाई का देहात् सं० १९०३ (१३४९ ई०) में हुआ था और वहाँ हुआ यह मान्य नहीं।'<sup>२</sup>

(१) मीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ २२

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५८०

(३) पृष्ठ २९, 'मीराबाई का देहात्' तीर्थक के नीचे

इतिहास और साहित्य के अधिकारी बर्तित इसी तारीख को सही मानते हैं—

—शोध अगस्त पृष्ठ ३४

१९२०-१९३० विक्रमी

- (४) डॉ० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—१९२०-१९३० विक्रमी
- (५) डॉ० श्रीकृष्णलाल मीरजीव—सं० १९२२ के भाग स० १९३० के आसपास
- (६) श्रीमती शबनम मीरजी—एक अध्ययन—सं० १९३०
- (७) रेवाछंकर सोमपुर, 'मीरजीव जीवम-वनम की'—सं० १९३०

इस सूची में ऐसे ही अनेक और नाम बिनाये जा सकते हैं।

भारतेन्दुजी का निर्णय 'उदयपुर दरबार की सम्मति' से हुआ था। उदयपुर के इतिहास-विभाग में इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं है। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार बीरबिनोदकर तथा भोक्ताजी से अधिक उदयपुर के इतिहास की सामग्री से परिचित व्यक्ति अभी तक किसी को नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के सम्बन्ध में भारतेन्दुजी द्वारा उद्धृत उदयपुर दरबार की सम्मति से भिन्न हैं। एक का मत भी इस 'सम्मति' के पक्ष में नहीं है।

बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीरजीव की राज्यावली और जीवन-चरित्र' में इस मत को स्वीकार इसलिए किया गया है कि "भक्तमाल में इन दो बातों का प्रभाव पाया जाता है—

(१) अकबर बादशाह तानसेन के साथ इनके वर्तन की भाषा

(२) गुर्जरों तुलसीदासजी से इनका परमाची वन-ज्वलहार का—

और मीरजी को सन् १५४९ (सं० १९ ३) में मृत मानने पर ये दोनों बातें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उस समय अकबर (जन्म सन् १५४२) की आयु ४ वर्ष की थी और तुलसीदास की १४ की। (और यह न तो अकबर को साबू-दरम की उम्र के उठने की अवस्था मानी जा सकती है और न गुर्जरों की कीर्ति और कीर्ति की प्रशंसा का समय कहा जा सकता है।)<sup>११</sup>

अप्यय यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों प्रसंग काल्पनिक हैं।

(१) लेखक ने उदयपुर जाकर नागूलाल व्यास, डॉ० मेनारिया इत्यादि उन व्यक्तियों से इस विषय में पूछताछ की है, जो वहाँ के इतिहास-विभाग की सामग्री से विशेष परिचित माने जाते हैं, पर ऐसी किसी सामग्री का वहाँ पता नहीं है।

(२) ये उल्लेख भक्तमाल में नहीं उसकी प्रियादास द्वारा रसबोधिनी टीका में हैं।

घर 'मीराबाई की शम्भाबनी' में दिए 'जीवन-चरित्र' में जो तर्क तब के पक्ष में दिए गए हैं वे निराधार हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का कहना है कि ८४ वार्ता के अनुसार कृष्णरास धर्मिकारी का व्यास और हितहरिवंश मीरा की जर बैठे मिले। 'सं० १६२१ के भासपास गुसाई (व्यास) हितहरिवंश से सास्नाई करने आकर उनके सिध्द हो गये थे।' घट-ये सं १६२३ के बाद ही मिले होंगे और इस प्रकार मीरा संवत् १६२२ के बाद तक जीवित अवस्था रही होगी।<sup>१</sup> बीता कि पिछले पृष्ठों में 'उसिक घनन्य मास' के आशार पर स्पष्ट किया जा चुका है, व्यासजी का हितहरिवंश की सिध्दता स्वीकार करने का प्रसंग वार्तिक संवत् १५६१ का है संवत् १६२२ का नहीं। दूसरे, हित हरिवंश भी की निजुंज-नाम की तिथि सं० १६०६ है। घट-संवत् १६०६ के पश्चात् तो हितजी का किसी व्यक्ति से मिलने का प्रसंग ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में चलत आचारों पर मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्णय किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'प्रियादास भगिनियर बलियम्ह और 'मीराबाई की शम्भाबनी और जीवन-चरित्र' के मतों को स्वीकार करते हुए माछेन्नु हरिवंश के निर्णय को स्वीकार किया है।<sup>२</sup> वस्तुतः डॉ० वर्मा की यह स्वीकृति दो बातों पर आधारित है—(१) अन्य किसी मत के पक्ष में प्रमाणान्तर (२) प्रक-बद-नुसखी-मीरा प्रसंगों के उल्लेख। दूसरी बात की अप्रामाणिकता तो सिद्ध ही है और प्रथम कारण 'प्रमाणात्मक' है।

माछेन्नु के उल्लेख —

मीरा की मृत्यु के काम के सम्बन्ध में माछेन्नु के तीन उल्लेख मिलते हैं—

(१) मुंशवे का भूखान भाट — मुंशी बेबीप्रसाद ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' में लिखा है—'उठोड़ों का एक भाट जिसका नाम भूखान है माँव मुंशवे परगने मारोठ इसाके मारवाड़ में रहता है उसकी खबानी सुना गया कि मीराबाई का बेहान्त सं० १६०३ (१५४६ ई०) में हुआ था और कहाँ हुआ यह मान्य नहीं।'<sup>३</sup>

(१) मीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ २२

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५८०

(३) पृष्ठ २६, 'मीराबाई का बेहान्त' टीका के नीचे

इतिहास और साहित्य के अविभाज्य संबंध इसी तारीख को तही मानते हैं—

—श्रीव अमले पृष्ठ ४६



१६२०-१६३० विष्णुमी

- (४) डॉ० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का भाषोच्चरान्तक इतिहास—१६२०-१६३० विष्णुमी
- (१) डॉ० श्रीकृष्णलाल मीराबाई—सं० १६२२ के बाद सं० १६३० के आसपास
- (९) श्रीमती सनम मीरा—एक अध्ययन—सं० १६३०
- (७) रेवाचंकर सोमपुर, 'मीरा बाई जन्म-जन्म की'—सं० १६३०

इस सूची में ऐसे ही अनेक और नाम मिनाये जा सकते हैं।

भास्करजी का निर्णय 'जयपुर दरबार की सम्मति' से हुआ था। जयपुर के इतिहास-विभाग में इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं है। जयपुर राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार बीरबिनोदकर तथा मोसाजी से अधिक जयपुर के इतिहास की सामग्री से परिचित व्यक्ति सभी एक किसी को नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के सम्बन्ध भास्करजी द्वारा उद्धृत जयपुर दरबार की सम्मति से भिन्न हैं। एक का मत भी इस 'सम्मति' के पक्ष में नहीं है।<sup>१</sup>

बैलबेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीराबाई की सम्बन्धी और जीवन-चरित्र' में इस मत को स्वीकार इसलिए किया गया है कि "भक्तमाल में इन दो बातों का प्रभाव पामा जाता है—

(१) अकबर बादशाह तानसेन के साथ इनके दर्शन को प्राप्त

(२) गुलामी सुनसीबासजी से इनका परमाधीनत्व-व्यवहार था—

मीरा मीरा को सन् १५४६ (संवत् १६०३) में मृत मानने पर ये दोनों बातें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उस समय अकबर (जन्म सन् १५४८) की आयु ४ वर्ष की थी और सुनसीबास की १४ की। (मीरा यह न तो अकबर को साबू-बर्खन की समझ रखने की अवस्था मानी जा सकती है और न गुलामी की की शक्ति और कीर्ति की प्रसिद्धि का समझ कहा जा सकता है।)<sup>२</sup>

अतएव यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों प्रसंग काल्पनिक हैं।

(१) लेखक ने जयपुर आकर नाबूलाल व्यास, डॉ० जेम्स रिवा इत्यादि उन व्यक्तियों से इस विषय में पूछताछ की है, जो वहाँ के इतिहास-विभाग की सामग्री से विशेष परिचित पामे जाते हैं पर ऐसी किसी सामग्री का यहाँ पता नहीं है।

(२) ये सम्बन्ध भक्तमाल में नहीं, उसकी प्रियादास कुल रसबीबिनी टीका में हैं।

घट 'मीराबाई की शब्दावली' में दिए 'जीवन-चरित्र' में जो तर्क मत के पक्ष में दिए गए हैं वे निराधार हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का कथन है कि ८४ वार्ता के अनुसार कृष्णदास प्रविक्रमी को व्यास और हितहरिबंध मीरा की चर बैठे मिले। 'सं० १६२३ के घासपास मुनाई (व्यास) हितहरिबंध से साक्षात् करने जाकर उनके सिष्य हो गये थे। घट में सं० १६२३ के बाद ही मिले हंगि और इस प्रकार मीरा संवत् १६२२ के बाद तक जीवित अवस्थ रही होगी।' जैसा कि पिछले पृष्ठों में 'उत्तर धनन्य नाम' के आधार पर स्पष्ट किया जा चुका है व्यासजी का हितहरिबंध की सिष्यता स्वीकार करने का प्रथम वार्तिक संवत् १३६१ का है संवत् १६२२ का नहीं। दूसरे, हित हरिबंध की कीर्तिपुत्र-नाम की तिथि सं० १६०६ है। घट संवत् १६०६ के पश्चात् तो हितजी का किसी व्यक्ति से मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में रामन आचार्य पर मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्णय किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'प्रियादास मंगियर विनियम्य और 'मीराबाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र' के अर्थों को स्वीकार करते हुए भाटेन्दु हरिचन्द्र के निर्णय को स्वीकार किया है।<sup>१</sup> वस्तुतः डॉ० वर्मा की यह स्वीकृति दो बातों पर आधारित है— (१) अथ किसी मत के पक्ष में प्रामाण्यता (२) धरु-वर-दुलसी-मीरा प्रसंगों के उल्लेख। दूसरी बात की अप्रामाणिकता तो सिद्ध ही है और प्रथम काव्य 'प्रमाणात्मक' है।

भाटों के उल्लेख—

मीरा की मृत्यु के काल के सम्बन्ध में भाटों के तीन उल्लेख मिलते हैं—

(१) मूँचवे का मूरदान घाट — मूँची बेबीप्रसाद ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' में लिखा है— 'उठोई का एक घाट जिसका नाम मूरदान है याँच मूँचवे परगने मारोठ इलाके मारवाड़ में रहता है उसकी बबानी मुना क्या कि मीराबाई का बेहान्त म० १६०३ (१२४६ ई०) में हुआ था और वहाँ हुआ यह मान्य नहीं।'<sup>२</sup>

(१) मीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ २५

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५८०

(३) पृष्ठ २६ 'मीराबाई का बेहान्त' शीर्षक के नीचे

इतिहास और साहित्य के प्रविकीरित इतिहासी तारीख को सही मानते हैं—

—सोब अगले पृष्ठ ५६

१६२०-१६२० विष्णुमी

(४) डॉ० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का भाषावैज्ञानिक इतिहास—१६२०-१६३० विष्णुमी

(१) डॉ० श्रीकृष्णदास भीरवी—सं० १९२९ के बाद सं० १९३१ के आसपास

(६) श्रीमती सचनम भीरवी—एक अध्ययन—सं० १९३०

(७) रेवाचंदकर सोमपुर, 'भीरवी दासी जन्म-जन्म की'—सं० १९३०

इस सूची में ऐसे ही अनेक भीर नाम मिलाने जा सकते हैं।

भाट्टेन्दुजी का निर्णय 'उदयपुर दरबार की सम्मति' से हुआ था। उदयपुर के इतिहास-विभाग में इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं है। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार बौरविनोदकर तथा घोसाजी से अधिक उदयपुर के इतिहास की सामग्री से परिचित व्यक्ति अभी तक किसी को नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के सम्बन्ध भाट्टेन्दुजी द्वारा उद्धृत उदयपुर दरबार की सम्मति से भिन्न हैं। एक का मत भी इस 'सम्मति' के पक्ष में नहीं है।<sup>१</sup>

बेसब्रेडियर प्रेस से प्रकाशित 'भीरवी' की अव्याख्यान 'भीर जीवन-चरित्र' में इस मत को स्वीकार इसलिए किया गया है कि "अन्तर्गत में इन दो बातों का प्रमाण पाया जाता है—

(१) अकबर बाबसाहू तामसेन के साथ इनके बर्तन की प्राप्ति

(२) गुर्दाई दुमसीबासजी से इनका परमाणी पत्र-व्यवहार था—  
भीर भीरवी को सन् १३४६ (सन् १६०३) में मृत मावने पर ये दोनों बातें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उस समय अकबर (जन्म सन् १३४८) की आयु ४ वर्ष की थी और दुमसीबास की १४ की। (भीर यह नहीं अकबर को साबू-बर्तन की उम्र सन्ने की अवस्था मानी जा सकती है और न गुर्दाई जी की मक्ति और कीर्ति की प्रतिष्ठि का समय कहा जा सकता है।)<sup>२</sup>

अस्य यह चिन्त किया जा चुका है कि ये दोनों प्रसंग काल्पनिक हैं।

(१) लेखक ने उदयपुर आकर माधुलाल व्यास, डॉ० जेनारिया इत्यादि उन व्यक्तिओं से इस विषय में पूछताछ की है, जो वहाँ के इतिहास-विभाग की सामग्री से विशेष परिचित माने जाते हैं, पर ऐसी किसी सामग्री का वहाँ पता नहीं है।

(२) ये उल्लेख अन्तर्गत में नहीं, उल्लेखी विषयवाचक कृत रसवीथिनी टीका में हैं।

यत 'मीराबाई की सच्चाबत्ती' में दिए 'जीवन-चरित्र' में जो एक मठ के पक्ष में दिए गए हैं वे निराधार हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का कथन है कि ८४ वार्ता के अनुसार कृष्णदास अधिकारी को ब्यास घोर हितहरिबंध मीरा के घर बैठे मिले। 'सं० १६२३ के घासपास गुवाई (ब्यास) हितहरिबंध से सास्त्रार्थ करने आकर उनके सिष्य हो गये थे।' यत 'ये सं० १६२३ के बाद ही मिले होंगे और इस प्रकार मीरा संवत् १६२२ के बाद तक जीवित अवश्य रही होंगी।' बीसा कि पिछले पृष्ठों में 'ऐसिक धन्य नाम' के आधार पर स्पष्ट किया जा चुका है ब्यासजी का हितहरिबंध की सिष्यता स्वीकार करने का प्रसंग कार्तिक संवत् १३८१ का है संवत् १६२२ का नहीं। दूसरे, हित हरिबंध जी की निर्झुंज-लाल की तिथि सं० १६०८ है। यत संवत् १६०८ के पश्चात् तो हितजी का किसी व्यक्ति से मिलने का प्रसंग ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में यतत आधारों पर मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्णय किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता।

डॉ० रामकृष्ण बर्मन ने 'प्रियादास मॉनियर ब्रिटिशम्व घोर 'मीराबाई की सच्चाबत्ती घोर जीवन-चरित्र' के मठों को स्वीकार करते हुए भाटेनु हरिचन्द्र के निर्णय को स्वीकार किया है।<sup>१</sup> वस्तुतः डॉ० बर्मन की यह स्वीकृति दो बातों पर आधारित है— (१) धन्य किसी मठ के पक्ष में प्रमाणाभाव (२) प्रक-वर-दुलसी-मीरा प्रसंगों के उल्लेख। दूसरी बात की अप्रामाणिकता तो सिद्ध ही है और प्रथम कारण 'अप्रामाणिक' है।

भाटों के उल्लेख —

मीरा की मृत्यु के काल के सम्बन्ध में भाटों के तीन उल्लेख मिलते हैं—

(१) लूचने का भूखान भाट — मुष्ठी देवीप्रसाद ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' में लिखा है— 'उठोड़ों का एक भाट जिसका नाम भूखान है पाँच लूचने परगने मारोठ इलाके मारवाड़ में रहता है उसकी बखानी सुना दया कि मीराबाई का दहान्त सं० १६०३ (१३४६ ई०) में हुआ था और वहाँ हुआ यह मामूला नहीं।'<sup>२</sup>

(१) मीराबाई, डॉ० श्रीकृष्णलाल पृष्ठ २५

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५८०

(३) पृष्ठ २६, 'मीराबाई का देहान्त' टीका के नीचे

इतिहास और साहित्य के अधिकारी बंदिश इसी तारीख को सही मानते हैं—

—दोब धपले पष्ठ ६६

१६२०-१६३१ विष्णुजी

- (४) डॉ० रामकृष्णराम वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—१६२०-१६३० विष्णुजी
- (५) डॉ० श्रीकृष्णभास 'मीराबाई'—सं० १६२२ के बाद सं० १६३० के आसपास
- (६) श्रीमती सखनम मीरा—एक अध्ययन—सं० १६३०
- (७) रेवाचंकर सोमपुर, 'मीरा वासी जनम-जनम की'—सं० १६३०

इस सूची में ऐसे ही अनेक और नाम मिलाये जा सकते हैं।

भारतेन्दुजी का निर्णय 'उदयपुर दरबार की सम्मति' से हुआ था। उदयपुर के इतिहास-विभाग में इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं है। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध इतिहासकार बीरबिनोबकार तथा प्रोफेसरी से अधिक उदयपुर के इतिहास की सामग्री से परिचित व्यक्ति सभी तक किसी को नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के उत्प्रेक्ष्य भारतेन्दुजी द्वारा उद्धृत उदयपुर दरबार की सम्मति से भिन्न हैं। एक का मत भी इस 'सम्मति' के पक्ष में नहीं है।<sup>१</sup>

बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीराबाई की राज्यावली और जीवन-चरित्र' में इस मत को स्वीकार इसलिए किया गया है कि "मकतमाल में इन दो बातों का प्रभाव पाया जाता है—

(१) अकबर बादशाह तामसेन के साथ इसके दर्शन की घाटा

(२) मुसाई तुमसीदासजी से इनका परमार्थी पत्र-व्यवहार था—

मीरा मीरा को सन् १५४६ (सं० १६०३) में मृत मानने पर ये दोनों बातें सम्भव नहीं हैं क्योंकि उस समय अकबर (जन्म सन् १५४८) की आयु ४ वर्ष की थी और तुमसीदास की १४ की। (मीरा यह न तो अकबर को सामू-दर्शन की समझ दर्ज की प्रवृत्ति मानी जा सकती है और न मुसाई जी की भक्ति और जीति की प्रसिद्धि का समय कहा जा सकता है।)<sup>२</sup>

अन्त्य यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों प्रसंग काल्पनिक हैं।

(१) लेखक ने उदयपुर जाकर माधूनाथ व्यास, डॉ० मेनारिया इत्यादि उन व्यक्तियों से इस विषय में पूछताछ की है, जो वहाँ के इतिहास-विभाग की सामग्री से विशेष परिचित जाने जाते हैं परन्तु ऐसी किसी सामग्री का वहाँ पता नहीं है।

(२) ये उत्प्रेक्ष्य मकतमाल में नहीं, उसकी प्रियादास हस्त रसबोधिनी टीका में हैं।

घटना 'मीराबाई की सत्याग्रही' में दिए 'जीवन-चरित्र' में जो तर्क मत के पक्ष में दिए गए हैं वे निराधार हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का कथन है कि ८४ वार्ता के अनुसार कृष्णराव अधिकारी को ब्यास घोर हितहरिबन्ध मीरा की तरफ से मिले। 'सं० १९२३ के आसपास मुंबई (ब्यास) हितहरिबन्ध से वास्तव्य करने आकर उनके सिध्द हो गये थे। घटना से १९२३ के बाद ही मिले होंगे और इस प्रकार मीरा संवत् १९२२ के बाद तक जीवित अवस्थ में होंगी।' बीसा कि पिछले पृष्ठों में 'ऐतिहासिक-सामान्य' के आधार पर स्पष्ट किया जा चुका है ब्यासजी का हितहरिबन्ध की सिध्दता स्वीकार करने का प्रसंग वार्षिक संवत् १९२१ का है संवत् १९२२ का नहीं। दूसरे, हितहरिबन्ध जी की निरुद्ध-नाम की तिथि सं० १९०६ है। घटना संवत् १९०६ के पश्चात् तो हितजी का किसी व्यक्ति से मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में घटना आधारों पर मीरा की मृत्यु-तिथि का निर्णय किसी प्रकार सही नहीं कहा जा सकता।

डॉ० रामकृष्ण बर्मा ने 'प्रियादास मॉनियर बिलियम्स घोर 'मीराबाई की सत्याग्रही' घोर जीवन-चरित्र' के मर्तों को स्वीकार करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नियम को स्वीकार किया है।<sup>१</sup> वस्तुतः डॉ० बर्मा की यह स्वीकृति दो बातों पर आधारित है—(१) भव्य किसी मत के पक्ष में प्रमाणानुसार (२) अन्त-द्वन्द्व-मीरा प्रसंगों के उल्लेख। दूसरी बात की अप्रामाणिकता तो सिद्ध ही है और प्रथम कारण 'अप्रामाणिक' है।

बातों के उल्लेख —

मीरा की मृत्यु के काल के सम्बन्ध में बातों के तीन उल्लेख मिलते हैं—

(१) मूम्बे का मूरखान भाट — मूम्बे रेबीप्रसाद ने 'मीराबाई का जीवन-चरित्र' में लिखा है—'छठों का एक भाट जिसका नाम मूरखान है पाँच मूम्बे परमने मारोठ हलाके मारवाड़ में रहता है उसकी खजानी मुना गया कि मीराबाई का देहान्त सं० १९०३ (१९४६ ई०) में हुआ था और कहाँ हुआ यह मान्य नहीं।'<sup>२</sup>

(१) मीराबाई डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृष्ठ २२

(२) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५८०

(३) पृष्ठ २६, 'मीराबाई का देहान्त' धीरे-धीरे के नीचे

इतिहास और साहित्य के अधिकारों पर इसी तारीख को सही मानते हैं—

—श्री ४५ पृष्ठ पर

सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी ने लेखक की मीरा की मृत्यु-तिथि 'मोसदा इका-वडी मार्गशीर्ष संवत् १६०३ बताई थी। इसका आधार भी किसी माट का कब्र ही था। चतुर्वेदीजी ने पुरोहित हरिनारायणजी के साथ मीरा-सम्बन्धी खोज-कार्य किया था। उन्होंने बताया कि धातिर में पुरोहितजी भी इसे ठीक मानते थे। बगम सम्बन्धी सूचना की तरह यह सूचना भी किस प्योतिपी बारछ या माट से मिली यह चतुर्वेदीजी को उस समय बगनावस्था के कारण याद नहीं था।

(२) राणीमंगा माट — जगदीशसिंह जी गहमोत की राणीमंगा के माटों की बहियों से मीरा की मृत्यु-तिथि संवत् १६०५ चैत्र सुदी ३ जात हुई है।

(३) मेड़ठा के चतुर्भुजाजी के मंदिर में मीराबाई की जो मूर्ति डीवना के मयनीराम रामदुमार जागड़ द्वारा स्थापित कराई गई है उसमें उनका निर्माण-काल संवत् १६०७ दिया गया है। इस वर्ष के देने का कारण भी माटों में प्रचलित अनुसृति ही है।

माटों से उपलब्ध तीनों उल्लेखों की विवेचना यह है कि दिन एक में भी नहीं दिया। अतः भगनावा कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मीरा की मृत्यु राजस्थान से दूर हारका में हुई थी और उसका कोई राजनीतिक महत्व नहीं था। अतएव इस संबंध में राजस्थानी माटों के बख्शे विशेष विश्वसनीय भी नहीं हैं।

इस प्रकार मीरा के जीवन के काल के विषय में कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बाह्य साक्ष्य के आधार पर उनके मृत्यु-काल की सीमाएँ निर्धारित की जा सकती हैं। गुजराती कवि विष्णुदास इठ 'जुंबरबाईनु'

विश्लेषे पृष्ठ की छिप्पड़ी का प्रेषास—

के० का० शास्त्री कवि-चरित्र, पृष्ठ १७६

के० एम० मुंशी गुजरात एंड इट्स मिजरेजर, पृष्ठ १०३ (अन् १५४० अर्थात् संवत् १६०३-४)

रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८५

मोतीलाल नेमरािया राजस्थान का पिपल साहित्य, पृष्ठ ५६ (नेमराियाजी का कथन है — विजय-पत्रिका की रचना गोस्वामीजी ने अ० १६५३ में की थी जब मीराबाई को मरे ५० वर्ष हो गए थे।)

पी० ही० श्रोत्रा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ३६०

हरविभास नारदा, महाराणा सांगा, पृष्ठ ६६

ठा० चतुरसिंह वर्मा चतुरकुसुम-चरित्र, भाग १, पृष्ठ ३०

(२) ऐतिहासिक संकीर्ण विवरण—अंक ६ पृष्ठ २६

मोसाळू में मीराई के बिप के समुत होने की घटना का उल्लेख है। यह उल्लेख इस प्रकार कराया गया है कि मार्गे मीराई कोई पुषण पुष्य हों। इससे इतना निश्चित है कि मोसाळू की रचना के समय मीराई गुजराती कवियों में इस कोटि में रत्नी बानी लगी थी। अतः मीराई की मृत्यु की तिथि मोसाळू के रचना-काल के पूर्व मानना लक्ष-संगत ही है और ऐसा कि पहले कहा जा चुका है, मोसाळू का रचना काल संवत् १६२४-२८ है। इस प्रकार मीराई की मृत्यु की परवर्ती सीमा संवत् १६२४-२३ के पूर्व मानी जा सकती है।

साहित्यिक उल्लेख के आधार पर किए गये इस सीमा के निर्णय की पुष्टि राजनितिक इतिहास से भी होती है।

सम्वत् १६२४ से संचर ता० १२ रबीउलमासी हि० सं० ६७३ (मार्गशीर्ष वदि ६ वि० संवत् १६२४) को किले के पास पहुँचकर डेर डाला।<sup>१</sup> यह हि० सं० ६७३ ता० २९ शाबान (वि० संवत् १६२४ वीच वदि १३) को बिजयी हुआ।<sup>२</sup> इस युद्ध में महाराजा उदयसिंह बचपन और सिंहासिपा कला की नियत कर मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया था। इसी युद्ध में जयमल मार गए।<sup>३</sup> इसके बाद वि० सं० १६२८ में महाराजा उदयसिंह का भी देहान्त हो गया।<sup>४</sup> इस बीच उसका (राजा का) सारा समय अपने को उदयपुर में व्यवस्थित करने में लप गया। अतः इतना निश्चित है कि मीराई को बुलाने की सुविधा और इच्छा का अवसर अमर राजा उदयसिंह के जीवन में कभी था तो संवत् १६२४ के पूर्व ही था उसके बाद नहीं।

मीराई की मृत्यु-तिथि की दृष्टि सीमा संवत् १६६३ है क्योंकि वे संवत् १६६३ में वन में थीं। द्वारका पहुँचने में एक मास तप बीतना सरस ही था। अतः उनकी मृत्यु निश्चित रूप से संवत् १६६३ और संवत् १६२४ के बीच ही कभी हुई होगी।

मीराबाई का जयमल से विशेष स्नेह था। दोनों बचपन में साथ-साथ खेलते थे और प्रकृति से धार्मिक थे। अनुमान यह है कि जयमल की ही प्रेरणासे ही राजा उदयसिंह ने मीराई को द्वारका से बुलाया था। मीराई के द्वारका जाने के पूर्व से ही चित्तोड़ तथा मेड़ता के ऊपर बिरावियों की विशेष क्रूर दृष्टि थी। संवत् १६१०

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४१३

(२) सफरनामे का रीगरेजी अनुबाध कोसूम २, पृष्ठ ४७५-७६

(३) उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४१३

(४) बीरबिनोय भाग २ पृष्ठ ४०-४१



में माकदेव ने मेड़ते पर आक्रमण करके उसे बेर लिया । पहली बार सफलता नहीं मिली दूसरी बार फिर आक्रमण किया । इसी बीच राधा उदयसिंह खबर से भा निकसे धीरे जयमल की समझा-बुझाकर अपने साथ ले लिया । इससे माकदेव का मेड़ते पर अधिकार हो गया । इस प्रकार संवत् १६१० में जयमल उदयसिंह के साथ खूने लगे वे धीरे संवत् १६१३ तक उन्हीं के यहाँ थे ।

मीरा ने अपने एक पद में कहा है कि—

बीठा नुमसां भासां बीठा, पंढर री म्हात्ता कस ।

मीरा के प्रभु कबरे मिलोवै लज सां नगर नरेस ।

केटी के 'पंढर' पड़ने का कोई समय तो निश्चित नहीं है पर प्रायः जिस स्वर में यह बात कही गई है, उससे जीवन के कलने का संकेत मिलता है । संवत् १६१०-१३ में मीरा लगभग ३०-३३ वर्ष की हो गई थीं ।

इस प्रकार मीरा की मृत्यु की निश्चित तिथि निर्धारित करना तो संभव नहीं है पर परिस्थितियों के साक्ष्य के आधार पर उसे संवत् १६१० धीरे १६१३ के बीच माना जा सकता है ।



## मीराबाई की रचनाओं के संग्रह-केंद्र

विष्णु की सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में राजस्थान की साहित्यिक सामग्री को सुरक्षा के लिए निम्नलिखित धामय मिले—

- (१) राजकीय प्रभावार
- (२) नाटिक-सांस्कृतिक परिघा
- (३) लेखनजीवी तथा साहित्य-व्यवसायी वर्गों की बारम्बारों और भाटों के संग्रहानय
- (४) साहित्यिक जमीन-मैदा प्रचलन समशील सङ्ग्रहस्थों के घर
- (५) जनस्मृति

[१] प्रथम धामय मीरा की रचनाओं को नहीं मिला । उनकी कृतियों के तीन राजकीय केंद्रों में सुरक्षित रखे जाने की विशेषसंभावना थी— (क) कुङ्की और मेड़ता, (ख) जोधपुर तथा (ग) चित्तौड़ और उदयपुर क्योंकि उनका सम्बन्ध मीरा के पिता तथा पति-परिवारों से था ।

(क) मीरा के पिता मेड़ता राज्य के अन्तर्गत कुङ्की के १२ गाँव की छोटी-सी बागीर के स्वामी थे । वे राजकीय नगर प्राम् युद्धों से आशान्त रहते थे । मीरा के जीवन-काल में ही जोधपुर-नरस राज मातदेव और मेड़ता-स्वामी राज बीरमदेव की शत्रुता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि संवत् १५६१ में मातदेव ने मेड़तिया राठौड़ों के राज-परिवार को नहीं हो बलायत करने के लिए विवश कर दिया और अपूर्वबाजी के मन्दिर को छोड़कर वहाँ के सभी मयन ध्वस्त कर दिए । इनके पदचात् १०-१२ वर्षों के लिए मेड़ता फिर मीरा के ताऊ राज बीरमदेव और उनके पदचात् उनके पुत्र बयमल के हाथ में आ गया था पर उनका अधिकार वहाँ स्थायी नहीं रहा । संवत् १६१६ के पदचात् तो उन्होंने उसे पुनः अधिकृत करने का प्रयास हो छोड़ दिया । साथ ही मीरा के चचेरे भाई बयमल के बंधन बदनेर में हैं मेड़ता में नहीं । यद्यपि वहाँ पर राजकीय प्रयत्न द्वारा मीरा के जीवन में या उनके स्वयंवास के जोड़े समय पदचात् ही उनकी रचनाओं का संघर्ष और संरक्षण सम्भव नहीं था ।

(क) जोधपुर मीरा के पूर्वज राजाओं के एक शक्तिशाली राज्य का केन्द्र था परन्तु वहाँ के स्वामियों में मेकतिनों के निरुद्ध रोष था। कुसरे, जोधपुर में महा राजा मानसिंह (सं० १५३६-सं० १६००) द्वारा "पुस्तक-प्रकाश" की स्थापना के पूर्व साहित्यिक छायावी के संग्रह की कोई अच्छी व्यवस्था भी नहीं थी। अतः जोधपुर के शासकों ने मीरा की रचनाओं के संग्रह के प्रति ज्येष्ठा दिखाई और फसस्वरूप थाव वहाँ पुस्तक-प्रकाश में सुरक्षित कुछ संगीत गुटकों के परि-रिक्त मीरा के पदों की कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती।

(ग) मीरा के इसदुर-कुस का राज्य-केन्द्र संवत् १६२४ तक चित्तोड़ था। चित्तोड़ के पतन के पश्चात् जयपुर राजधानी बना। इन दोनों में से कहीं भी राजकीय संग्रहालयों में मीरा की रचनाएं न होने के दो प्रमुख कारण हैं—

(घ) मीरा के चित्तोड़ छोड़ने के बाद ही वह युद्ध की विभीषिकाओं से नष्टप्राय हो गया। राज-परिवार विपन्न होकर नहीं बसाई हुई राजधानी जयपुर बना गया पर शक्ति वहाँ भी नहीं रही। वहाँ के प्रारम्भिक राजाओं का जीवन अत्यन्त विपन्न घम्भबन्धित और अछान्त परिस्थितियों में बीता। वे स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तत्कालीन शासकों के निरुद्ध दमनक संघर्ष में लगे रहे और जो समय इससे बचा वह बापसी हागलों में बीत गया। साहित्यिक संग्रह का कार्य उनके लिए उन परिस्थितियों में संभव ही नहीं था।

(आ) चित्तोड़ और बाद में जयपुर के राजा-परिवार के प्रमुख व्यक्ति मीरा को बहुत समय तक अपने कुल का कलंक मानते रहे। अतः मीरा के प्रति उनमें रोष और बीस का भाव था जिसका सहज परिणाम हुआ मीरा तथा उनकी रचनाओं के प्रति ज्येष्ठा।

[२] मीरा ने कोई शिष्य नहीं भुंजा इस प्रभाव में ऐसी धार्मिक-सां-प्र-दायिक गहिर्यामी स्थापित नहीं हुई, वहाँ उनकी रचनाएं आग्रहपूर्वक सुरक्षित रहतीं। वे स्वयं भी किसी विशेष संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुई थीं। अतएव उन्हें किसी पूर्ण प्रवर्तित संप्रदाय के पोषण का तो प्रसन्न ही नहीं था कुछ सम्प्रदाय के लोग तो उनसे इतने रुष्ट थे कि 'बारी राई' के विरोधियों से ही उनका स्वागत करते थे। जब मीरा का महत्त्व जनता में प्रतिष्ठित हो गया तब विभिन्न संप्रदायों की पोषियों में उनके पदों की स्थापन मिलने लगा वह भी जोड़-तोड़ के साथ।

[३] मीरा के युग के सेखनजीबी और साहित्य-व्यवसायी वर्गों ने भी तत्कालीन साहित्यिक छायावी को संरक्षण प्रदान किया था पर ये वर्ग (चारण घाट इत्यादि) राज्याधिकार थे। अतएव राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा रचित प्रभाव उनके सम्मान में लिखित साहित्य को ही इन बैचारों ने महत्त्व

रिपा। उनकी जीविका के लिए आवश्यक भी यही था। ऐसी दशा में राजनीतिक महत्त्व से सून्य, सामंतवर्ग द्वारा उपक्षिता और बर्बाद-बर्बाद कमकमी तक कही जाने वाली के अनपेक्षित भक्ति-गीत सत्प्रभावी राजस्य वर्ग पर प्रामित और उनके शृंगार तथा वीरता के गीत याकर वेद भरने वाले चारण और भागों द्वारा सुरक्षित कैसे रहे जा सकते थे ?

[४-५] मीरा की रचनाएँ जनता का बहुत भाई। वे लोक-मानस में छा गईं। मधुर मन्त्रि भावना के साथ ही लोक-रसक संगीतात्मकता और सरल साहित्यिकता के कलात्मक सम्मिश्रण के कारण साहित्य-संगीत प्रेमियों तथा भक्ति-प्राप्त सद्गुरुहृत्ओं के वैयक्तिक संग्रहालयों में उन्हें प्रादुर्भावपूर्ण स्थान मिला। मीरा के गीतों में एक विशेषता और है। उसमें नारीत्व व्यक्त मधुर और उदात्त स्वरों में अपनी लौकिक और भौतिक व्यवसाय के साथ सम्मिश्रित हुआ है। यद्यपि भक्तों के साथ नारी वर्ग में उनका विशेष प्रथमता हुआ। यही क्षमता उन्हें नाम के कुर कुरों से बचाती रही।

प्रमुख प्रकाशित संग्रह और उनके आधार :

मीराबाई की रचनाएँ मुद्रित होकर दो रूपों में सामने आई हैं —

(१) लोक रूप से उद्धारम स्वरूप मीराबाई के जीवन और काव्य पर प्रकाश डालने वाले ग्रंथों तथा लेखों में।

(२) मुख्य रूप से नीचे—

(क) संतों भक्तों या कवियों के सम्मिश्रित सङ्कलनों में।

(ख) मीराबाई के स्वतंत्र पद-संग्रहों में और,

(ग) पत्र-पत्रिकाओं लोक-रिपोटों तथा स्मृति-संचारि में लोक भूचलाओं के रूप में।

पहले प्रकार के ग्रंथ वस्तुतः मीरा की रचनाओं के संग्रह नहीं हैं और उनमें प्रायः मीरा के पदों के पूर्वप्रकाशित संग्रहों की सामग्री का ही उपयोग मिलता है परन्तु इस कोटि की कुछ प्रारम्भिक कृतियों में मीरा के पदों के उद्धारम प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों अथवा पूर्ण प्रकाशित मौखिक परंपराओं अथवा दोनों से लिए गए हैं। उन ग्रंथों का आधार प्रकाशित सामग्री है जो कुछ ग्रंथों में मौखिक और महत्त्वपूर्ण भी है और बाद के अधिकतर प्रकाशित संग्रहों में उनकी सामग्री का उपयोग किया गया है।

यद्यपि हम अध्याय में मीरा के प्रकाशित पद-संग्रहों पर विचार करते समय, (वर्ष १९०० के आसपास) प्रकाशित उन जीवन की और काव्य-सम्बन्धी ग्रंथों पर

मी प्रकाश बनाया गया है, जिनके द्वारा किसी नए स्वतंत्र स्रोत की सम्प्रकाशित सामग्री प्रकाश में आई है। पत्र-पत्रिकाओं, शोध-रिपोर्टों तथा स्मृति-ग्रंथों में शोध सूचनाओं के सम्बन्ध प्रकाशित मीराई के पत्रों का महत्व तो स्पष्ट ही है।

मीराई की रचनाओं के १६ संग्रहों का पता यथा है। उनमें से जिन संकलनों को किसी रूप में महत्व मिला है, उन्हीं का विवेचन हमने पुष्ठों में किया गया है। प्रमुख प्रकाशित संग्रह तथा उनके आधार इस प्रकार हैं —

(१) १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ३२ वर्ष परिचय करके जयपुर के एक बौद्ध ब्राह्मण कृष्णानन्द व्यास देव राजसागर ने 'संगीत राग-कल्पद्रुम' नामक संगीत-संबन्धी ग्रंथ का प्रकाशन किया, जो पहली बार सन् १८४२ में प्रकाशित हुआ।<sup>१</sup> मीराई के पत्रों का सर्व प्रथम मुद्रित रूप इसी ग्रंथ में मिलता है। इसमें 'उन्हीं के उदाहरण-स्वरूप 'मीराई' काप के या मीराई का उल्लेख करनेवाले ४६ पद दिए हुए हैं। इनमें से २ पद तो वस्तुतः बस्तावर कवि के हैं। एक पद जिसमें पौतम्ब का उल्लेख है कुछ पाठभेद के साथ दो स्थानों पर दिया हुआ है। इस प्रकार मीराई के कुल ४० पद रह जाते हैं।<sup>२</sup> संगीत राग-कल्पद्रुम की सामग्री का उपयोग प्रिन्स-सैन बियोबी हरि धीर बभरमदास आदि अनेक विद्वानों ने किया है। इसमें दिए गए पद भारत के विभिन्न भागों से एकत्र किए गए हैं और उनके संकलन में गीतों की आनागिकता की अपेक्षा उनके संगीतप्रत्येक स्वस्व पर अधिक ध्यान रखा गया है।<sup>३</sup> इसीलिए 'म्हारे हिररे निकयो जी हरि नाम' जैसे लोक-गीत भी इसमें संयुक्त हैं।

(२) गुजरात में १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में इच्छाराय सूर्यराम देवार्द नामक साहित्य प्रेमी शोधक ने प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर गुजराती काव्य का संग्रह प्रारंभ किया, जिसके फलस्वरूप 'बृहत् काव्य-बोहन' नाम का काव्य-संग्रह १० भागों में प्रकाशित हुआ। नरसिंह मेहता तुलसी प्रेमचन्द असा नामक बल्लभ, बीरी आदि गुजराती के अनेक कवियों के साथ मीराई की रचनाएँ भी उसमें संकलित हैं। इस ग्रंथ के पहले, दूसरे, पाँचवें छठे तथा सातवें भागों में क्रमशः मीराई-काप के १ १७ १५, ३ और ११६ पद संयुक्त हैं। प्रथम भाग में 'रत्न आभासुं कस्तूरु' नामक पद्य एक लघु कथात्मक गेय रचना भी दी हुई है। इस प्रकार

(१) इसका द्वितीय संगीतित संस्करण १९१४ में बंशीधर साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित हुआ था। प्रथम संस्करण अनुपलब्ध है।

(२) डा० श्रीकृष्णलाल ने इसमें मीराई के ४५ पद होने का उल्लेख किया है।

(३) राधाचंद्र एंड राधिनिक, सी० जी० संयोगी, पुष्ठ १७

बृहत् काव्य-दोहन में कुल मिलाकर १५६ पद और एक श्रव्य रचना संकलित है। इस संग्रह के उक्त विभिन्न भागों के प्रथम संस्करण सन् १८८७ और सन् १९११ के बीच प्रकाशित हुए थे।

बृहत् काव्य-दोहन के पदों का आधार गुजरात में प्राप्त मीरों के पदों की क हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। किसी समय ये प्रतियाँ गुजराती प्रेस बम्बई के संग्रह में थीं। गुजरात के हस्तलिखित ग्रंथों की संकलित यादी से पता चलता है कि इनमें से 'मूस प्रत' दो ही थीं, चार अन्य प्रतियाँ गुजरात के विभिन्न स्थानों में पाई गईं प्रतियों की 'नकलें' थीं।

(३) लड़ीबोभी प्रवेश में सबसे पहले सन् १८६७ में केरठमें पं० ईश्वरी प्रसाद रामचन्द्र ने 'मीरोंबाई के मजन' नामक एक छोट्टी-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी। इसमें कुल ५२ मजन थे जिसमें से २० मजन मीरों की छाप के थे और दोष घूट, तुलसी तथा नरसी श्यामि मक्तों के। ये मजन 'मक्तों के मुख से सुनकर' एकत्र किए गए थे। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् १९०५ में प्रकाशित हुआ, जिसकी मूमिका से ज्ञात होता है कि 'छेठ मुल्लानमल प्रिंटिंग प्रेस नौमच बालों' ने इस पुस्तक में प्रकाशित नरसी तुलसीदास आदि सब कवियों के मजनों में मीरोंबाई के मजन की छाप जाल-जाल कर' एक नए रूप में उन्हें प्रकाशित कर दिया।

(४) सन् १९०१ में 'मीरोंबाई बाँव जवेपुर' नामक पुस्तक एक बंगाली लेखक श्री जयन्तनाथ मुखोपाध्याय ने मिली जिसमें मीरोंबाई के साथ कुछ और मक्तों के पदों को बंगाली अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया।

(५) सन् १९०३ में काविकप्रसाद ज्ञानी कृत 'मीरोंबाई का जीवन-चरित्र' काशी से दूसरी बार प्रकाशित हुआ।<sup>१</sup> यद्यपि इसमें प्रमुख रूप से मीरोंबाई की जीवनी देने का प्रयास है पर जवाहरलाल-स्वयं मीरोंबाई के २१ पद भी इसमें दिए गए हैं। अतः मीरों के तत्कालीन वह-संग्रहों के धाकार को देखते हुए इसे भी उस कोटि में रखा जा सकता है। ज्ञानी जी ने स्वयं मूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि "इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है उसका अधिकार्थ बाँवबेध वैकुण्ठबासी महा राजाधिराज रघुपति सिंह जू देव के संग्रह से संगृहीत है।"

(६) सन् १९०५ में मृषी बेबीप्रसाद कृत 'महिला मुदु बाणी' काशी-नामदी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई। इसमें 'काव्य कुशला कविकांताओं की काव्य-रचना और जीवन-चरित्रों का वर्णन' है। इसमें दिए हुए मीरों के पद विशेष

(१) प्रथम संस्करण उपलब्ध नहीं हुआ।

टप्प इत्यादि हैं कि उनका आधार अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय है। मू० बेबी-  
त्राय जी को मीरा के दो पत्र तत्कालीन जोधपुर नरेश भी सोहनसिंह से धीर  
म जोधपुर के राजकीय संग्रहालय 'पुस्तक-प्रकाश' में संगृहीत पोबियों से प्राप्त  
[ १ ]। भी सोहनसिंह जी के पत्रों का मूल आधार भी 'पुस्तक-प्रकाश' में सुरक्षित  
[ २ ] है।

(७) इसी वर्ष श्री भक्ति सिरोमणि मीराबाई के भजन नाम से एक  
ग्रंथ भी विश्वेश्वर प्रेस बनारस से भी प्रकाशित हुआ। इसमें मीरा के १४ भजन  
[ ३ ] हैं। इनका आधार मौखिक परंपरा तथा पूर्ण प्रकाशित संग्रह है। इसमें  
[ ४ ] विमुक्त आधुनिक परिनिष्ठित कड़ी बोली के पत्र भी हैं जैसे 'मीरा का प्रभु  
भी दासी बनायो झुठे बंधों से मेरा फंदा कुड़ाया। धर्मोपदेश मित-मति सुनयी  
भनकुबास से भी बरती हूँ।' आदि।

(८) समान ही समय 'मीराबाई के भजन' नामक एक छोटीसी  
[ ५ ] त्रिका नवसकिछोर प्रेस नवलगढ़ से प्रकाशित हुई। इसकी दूसरी आवृत्ति सन्  
[ ६ ] १९११ में प्रकाशित हुई थी। इसकी कोई प्रति लेखक की देखने नहीं मिली।  
[ ७ ] तब डॉ० श्रीकृष्णदास का मत है कि इसका आधार मौखिक रूप से प्रचलित  
[ ८ ] ही है कोई विशिष्ट पोबी नहीं।

(९) जिस समय मुजरात में बृहत् काव्य-सोहन के संपादन का कार्य  
[ ९ ] सु रैसाई कर रहे थे धीर रामस्वान में मुंबई बेबीप्रसाद भी मीरा-सम्बन्धी  
[ १० ] में रत थे तबत्रय इसी समय श्रवणक हरी भाटे महाराष्ट्र में मराठी सन्तों की  
[ ११ ] लाघों को संगृहीत और संपादित कर रहे थे जिसे उन्होंने एक संवत् १८९०  
[ १२ ] (सन् १९०८) 'माया पंचक' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसके  
[ १३ ] 'सन्त बाबा' नामक ग्रंथ में कबीर, कमास गुरदास नरसिंह मेहता सजन  
[ १४ ] (बना) कसाई, लतिबहासा आदि अठारह सन्तों के साथ मीराबाई के १५९ पत्र  
[ १५ ] हैं। ये पत्र प्रसिद्ध ज्ञानेश्वरी भाषान्तरकार श्री नाना महाशय साखरे के संग्रह  
[ १६ ] पुरानी हस्तलिखित पोबियों से लिए गए हैं। प्रतियों का भरण बिबरन इसमें  
[ १७ ] दिया। इसका निश्चित है कि ये प्रतियाँ बारकरी संप्रदाय के सन्तों द्वारा लिखि-  
[ १८ ] थीं। साखरे जी का जीवन-कास बिक्रमीय संवत् १८२५ से संवत् १९०९  
[ १९ ] का धीर थे बारकरी संप्रदाय के प्रमुख आधार हैं।

(१०) सन् १९०९ में प्रयाग में पंडित सुधाकरद्विवेदी के आग्रह से बैलबेडियर  
[ २० ] को धीर से प्राचीन सन्तों धीर महात्माओं की बाबी का संक्षेप कार्य प्रारम्भ

हुमा और इसके कलस्वस्व 'सप्तशती पुस्तक-माला' प्रकाशित हुई। इनमें से एक ही मीराबाई की सप्तशती जिसमें मीरा के ३८ छन्द (पद) विभिन्न प्रसन्न वा नक्तन' करके पाई गई प्रतियों के आधार पर प्रकाशित किए गए। जो छन्द छूटकर मिसे उनमें सर्व साधारण के उपकारक छन्दों को भी उसमें सम्मिलित कर दिया गया। इसीमें क मीरा के बीच छन्द लेकर बा नवीन छन्दों के साथ सन् १९१५ में सप्तशती संग्रह भाग २ (छन्द संग्रह) में प्रकाशित किए गए। मीराबाई की सप्तशती में संगृहीत ये छन्द प्रचलित सत्-मत् की धीमियों से लिए गए प्रतीत होते हैं क्योंकि उनमें से प्रविधान में मीरा की भावना को कट्टर सत्-मत् के अनुकूल प्रस्तुत करने का प्रयत्न स्पष्ट है।

(११) सन् १९२२ में महाराष्ट्र में मीराबाई के पदों का एक बृहत् संग्रह प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास हुआ। श्री वाकिराब मोराबा कामेंकर ने 'मीरा-बाई भजन भाषा धर्मोत्तरी मीराबाई इत पद रत्न संग्रह नामक ग्रंथ संपादित करके 'जगदीश सापासना विरमाव बाबाई' से प्रकाशित कराया। इसमें २५ पृष्ठ की भूमिका के साथ मीराबाई के ३५२ पद संगृहीत थे। इस संग्रह के पूर्व मीरा के १५६ से अधिक पद किसी एक ग्रंथ में नहीं आए हैं। इसी में सन् १९४८ तक (जज-रत्नबास द्वारा संपादित मीरा-भाषा की प्रकाशन काम तक) इतना बड़ा संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था और मुंबराती में यद्यत्क मीरा की इसी रचनाएं एक स्थान पर पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं हुई हैं। "मीराबाई भजन-भाषा" के संपादक ने 'पुष्कलविषय अनेक ठिकानी शोब' करके इन पदों का प्राप्ति किया था। ये पद 'हिन्दुस्थानी न मुंबराती' भाषाओं में थे। इस ग्रंथ में मीरा के साथ से प्राप्त हर पद को स्थान दे दिया गया है। संग्रहकर्ता ने संपादन का कार्य नहीं किया उसने न प्राप्त धीमियों में बिने विभिन्न पाठों की तुलना की और न पाठ-येद देने की चिन्ता की है। उसकी दृष्टि भी उसी साहित्यिक नहीं थी जिसकी कि बृहत् काव्य-सोहन के संपादक की पर साथ ही उसी सांप्रदायिक भी नहीं थी जिसकी कि गाथापर्वक के संकलनकर्ता की। इन पदों का आधार बृहत् काव्य-सोहन और गाथापर्वक में प्रकाशित तथा बारकरी संग्रहाय क कुछ स्पष्ट गुटकों के पद हैं।

(१२) लगभग इसी समय प्राचीन काव्य-मुद्रा नामक संकलन ५ भागों में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक तथा संकलनकर्ता ज श्री छगनलाल मिश्राबास रावत। इसके प्रथम द्वितीय तथा तृतीय भागों में मीराबाई के कव्य १६ १४ मीरा १ पद संगृहीत हैं। इनका आधार मुंबराती की वे प्रतियाँ हैं जिसका विवरण 'छंद पुष्पलतन विधान भाषा' का संग्रह धीरे-धीरे के दाने दिया गया है। बृहत् काव्य-सोहन में संगृहीत पदों को छोड़कर केवल अप्रकाशित पदों को ही इसमें स्थान



दिया गया है। बाद के समय सभी "मीर-मह-संग्रहकर्ता" गृह्य काम्य-बोहन् तथा प्राचीन काम्य-सूत्रा से ही गुजराती पद संकलित करते रहे हैं।

(१३) प्राचीन काम्य-सूत्रा के पहला 'सिसेनसम्प्रदाय' नामक संकलन बम्बई से प्रकाशित हुआ जिसका संपादन ५० ज० ज० सारापोरवाला ने किया था। इसमें मीर-छाप के १०६ पद अन्त में दिए गए हैं। इन पदों को उन्होंने गृह्य काम्य-बोहन् से ज्यों-का-त्यों उतार लिया है।

(१४) सन् १९३० में वो संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुए। एक था "मीर-मह-संग्रह" जिसे बियोगी हरि ने संपादित किया था और वो 'प्राची हिन्दी-पुस्तक-भंडार' प्रकाश से प्रकाशित हुआ। इसमें मीर के संकलित ३६ पद संयोजित के जो पूर्व प्रकाशित संग्रहों में से चयन करके रख दिए गए थे। अतः इस संग्रह का महत्व सुवर चयनिका के रूप में ही है।

इसी वर्ष का दूसरा संग्रह था "मीर-मन्दाकिनी" श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० द्वारा संकलित और संपादित। यह संस्करण भागरथ से प्रकाशित हुआ था। यह संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि परवर्ती संग्रहों में इसको भी आधार रूप में ग्रहण किया गया है। इस संग्रह में कुल १६१ पद हैं। संपादक के अनुसार 'इस संकलन का पाठ एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर निश्चित किया गया है। यह पौषी नरोत्तमदास स्वामी के अपने संग्रह की है। इसमें कबीर, नारायण नामदेव जनहरिदास साधुराम नन्ददास मानवदास आदि अनेक कवियों का विधान मंच है। विधि-क्रम इसमें नहीं दिया गया है परन्तु रामचनेही प्रकाश में लिपिबद्ध इस पौषी में संत रामचरण जी के कुछ वाद के कुछ सन्तों के पद भी हैं जिससे प्रतीत होता है कि यह स० १९३० के आसपास संभवतः उसके बाद ही लिपिबद्ध हुई है। श्री धर्मचन्द नाहुटा जी इसका लिपिकाव २० बी सतगुरु गते हैं।'

संपादक ने इसी प्रति को 'मीर-मन्दाकिनी' का आधार बनाया है पर उसमें स पौषी में दिए गए पदों की जाया अनेक स्थानों पर 'धुल' कर दी गई है। उदाहरण के लिए मूल प्रति में दिए गए एक पद की प्रथम पंक्ति "राम मिलन की बनी उमावो न उठ जोड़।" मीर-मन्दाकिनी में "राम मिलन रो बनी उमावो न उठ जोड़।" बनकर प्रकाशित हुआ है।' अन्त पदों में भी ऐसे भाषा-सम्बन्धी परिवर्तन कर दिए गए हैं।

१) राजस्वान से हिंदी पदों की शोध, अतुर्थ जाय, पृष्ठ ३०

२) पर ६५, प्रथम पंक्ति

(१५) सन् १९३१ में वियोगी हरि ने मञ्जन-संग्रह (तीसरा भाग) संपादित किया जिसमें मीरों के ६२ पद संकलित हैं। इस संग्रह की विशेषता 'सम्बन्ध' देने और राग तथा ताल के अनुसार पदों को रखने में है। सामग्री की मौलिकता की दृष्टि से यह उपादेय नहीं है।

(१६) सन् १९३२ में एक महत्वपूर्ण संग्रह साहित्य-सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें प्रो० परशुराम चतुर्वेदी ने २०१ पद संकलित किए हैं। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि "पुछनी हस्तलिखित मूल प्रतियों के आधार में केवल कुछ के आधार पर छपी प्रतिनिधियों के सहारे ही इसमें पाए हुए पदों के कम निश्चित करने पड़े हैं। इसके अधिकांश पद मीरों-बाई की सम्बन्धी (बिनबेजियर प्रेस) तथा मीरों-मंवाकिनी (नरोत्तमस्वामी) के आधार पर दिए गए हैं। अप्रयुक्त पदों के समस्त पद चतुर्वेदी जी ने नहीं लिए और साथ ही कुछ नवीन पद भी संगृहीत किए हैं।

सन् २०१४ (सन् १९५७) में इस संग्रह का सप्तम संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें पिछले संस्करणों की सामग्री में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। पिछले संस्करण के ७७-७८ पद छोड़ दिए गए हैं और उनके स्थान पर नए पद रख दिए हैं। पिछले संस्करण के उन पदों के सम्बन्ध में, जो संग्रह के रूप में हैं या संत-मत से विशेष प्रभावित हैं संपादक ने अपना मत व्यक्त किया है और यथा संभव बाकोर की प्रति राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (तृतीय भाग) पहुँचोड़ की 'मीरों' और 'बृहत् मीरों-पद-संग्रह' के पदों के पाठों के आधार पर पाठ निर्धारित किए हैं। यह संग्रह मीरों के पदों का एक सुंदर संकलन है किसी निश्चित कोश की मामूली का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

(१७-१८) सन् १९३४ ई० में श्री मुरलीधर श्रीवास्तव द्वारा संपादित 'मीरों-बाई का काव्य' नामक संग्रह साहित्य मञ्जन लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित हुआ।<sup>१</sup> इसमें मीरों के १३६ पद थे। इसी वर्ष मुबनेकर नाथ भाबव का 'मीरों की प्रेम साधना' नामक ग्रंथ बापी मंदिर प्रेस छपरा से प्रकाशित हुआ। इसमें अन्त में मीरों के १२६ पद भी दिए गए थे। इन दोनों संग्रहों में पूर्व प्रकाशित पद ही संकलित थे। बाद में सन् १९४६ में 'मीरों की प्रेम साधना' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया<sup>२</sup> जिसमें पदों की संख्या २१६ कर दी गई इनका आधार भी कोई

(१) प्रो० श्रीवास्तव का कथन है कि यह संग्रह १९३१ में तैयार हो गया था।

(२) सन् १९५७ में इसका तृतीय परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ, पर पदों की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है।

प्राचीन या नवीन लिखित हस्तलिखित पोथी-परम्परा न होकर पूर्व प्रकाशित संग्रह ही रहे। इसमें पं. परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीराबाई की पद्यावली के पुराने संस्करण तथा बेनबेडियर प्रेस की मीराबाई की छायावली के पाठ का ही अनुसरण किया गया।

(१६) संवत् १९३५ (सन् १९३८) में ज्ञानदेव मण्डल-नरनारायण मंदिर, बम्बई द्वारा 'मीराबाई' नामक एक संग्रह प्रकाशित करवाया जिसमें १०५ गुजराती और १३१ हिंदी के पद संगृहीत हैं। इस समय तक मीरा के पदों का इतना बड़ा संकलन हिंदी और गुजराती में प्रकाशित नहीं हुआ था। कुछ काव्य-बोझ तथा प्राचीन काव्य-सुधा के प्रतिरिक्त किन्तु किन् प्रकाशित-अप्रकाशित प्रतिमों का उपयोग इसमें किया गया है वह कहना संभव नहीं है।

(२०) श्रीमती बिष्णुकुमारी बीबास्ठव 'मंजू' ने हिंदी मगन लाइोर से 'मीरा-पद्यावली' का प्रकाशन करवाया। इसका चौथरा संस्करण सन् १९३८ में निकला था। जिसमें कुल २०१ पद संगृहीत हैं। पद की शुद्धि में संपादक ने स्पष्ट कर दिया है कि उसे कोई भी हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं हुई थी। उसके द्वारा संपादित पदों का आधार निम्नलिखित संग्रह हैं—

- (१) मीराबाई बयाबाई सहजोबाई का पद-संग्रह (श्री बिजोजी हरि)
- (२) मीराबाई की छायावली (बेनबेडियर प्रेस)
- (३) मीरा-मंदाकिनी (श्री नरोत्तमस्वामी)
- (४) मीरा की प्रेम साधना (श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र)

(२१) सन् १९४३ में मीरा बीबनी और काव्य नामक पुस्तक बनारस से प्रकाशित हुई जिसके लेखक और संपादक वे महाधीरसिंह बहुमोल। इसमें अंग्रेजी में मीरा के १०८ पद दिए गए हैं। लेखक के कथनानुसार इनमें से ४० पद इस ईश से पूर्व प्रकाशित नहीं हुए थे। लेखक ने पदों का आधार नहीं दिया पर वस्तुतः वे राजस्थान में विभिन्न लिखित तथा अलिखित स्रोतों से एकत्र किए गए हैं।

(२२) सन् १९४८ में बनारस से ही डा० कैमरलदास द्वारा मिलित और संपादित 'मीरा माधुरी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। मीरा के इतने अधिक पद एक स्थान पर इससे पूर्व प्रकाशित नहीं हुए थे। मीरा-माधुरी के पदों का मुताबिक निम्नलिखित सामग्री है—

- (१) महिला मृदुवाणी (मुंशी बेबीप्रसाद)
- (२) मीरा-मंदाकिनी (नरोत्तमस्वामी)
- (३) मीराबाई की छायावली (बेनबेडियर प्रेस)
- (४) पुस्तक-त्रयास में सुरक्षित 'मीरा के पद-सौरभ के पद' नामक

हस्तलिखित पोथी ।

(३) बृहद् काव्य-सोहन (भाष्य ७ पं)

(६) पद-प्रसंगमासा में बिष्ट मीरों के पद

सं० २०१३ में 'मीरों-माबुरी' का पुनर्प्रकाशन हुआ । इसमें प्रथम संस्करण की पदावली में ३० भए पद बढ़ा दिए गए, जिनमें १० बाकार की प्रति क १४ काशी की प्रतियों के (मीरों-स्मृति-ग्रंथ में प्रकाशित काशी की प्रति क) ४ सं० १५६२ की बिद्या भन्ना की प्रति के धीरे ६ बर्गकठ धर्मा द्वारा प्रकाशित पद हैं ।

(२३) सन् १९४९ में बंशीधर द्विवेदी परिवर्द्ध कमकता की धोर से मीर-स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित किया गया । इसके अन्त में ललितप्रसाद मुकुन ने 'मीर-पदावली' दीर्घक में १०३ पद प्रकाशित किए हैं । इनमें के पहले ९९ पद बाकीर के गोवर्धनदास मट्ट की प्रति में मय काशी की प्रति से उद्धृत हैं । पाठ की दृष्टि से इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है ।

(२४) सन् १९५२ में लोक सेवाक प्रकाशक बनारस से 'मीरों-बृहद् पद-संग्रह' प्रकाशित हुआ । इनकी संपादिका श्रीमती पद्मावती रावतन है । इनमें मीरों के नाम से प्रकाशित धीरे प्राप् ३६० पद संश्लिष्ट हैं । पदों को विषय धीरे भाषा के अनुसार वर्गीकृत करके रखा गया है । प्रत्येक पद के सम्बन्ध में उसके अन्त में ही कई टिप्पणियों के कारण संग्रह का महत्त्व धीरे भी बढ़ गया है ।

पद-संग्रह की दृष्टि में 'मीरों-बृहद् पद-संग्रह' का आचार निम्नलिखित है—

१ मीरोंबाई की पदावली व परगुणम जगुर्वेदी (पुराना संस्करण)

२ मीरों-माबुरी बाबू सखतगदास

३ लोक-मीर-संग्रह से प्राप् १४ पद जो पहल इसी लेखिका की 'मीरों-एक अध्ययन' नामक पुस्तक के अन्त में प्रकाशित हो चुके थे ।

४ की मूर्धनारायण जगुर्वेदी द्वारा सङ्गृहीत २०० पद

५ वं परगुणम जगुर्वेदी द्वारा बिनी दास पंथी संग्र क हस्तलिखित संग्रह के प्राप् ९२ पद — इसमें से १२ पद ही नवीन हैं । यह प्रथम ४ स्रोतों के ही हैं ।

(२५) प्राफेसर मुरलीधर श्रीवास्तव ने सन् १९५६ ईस्वी में मीरों-दार्ज नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसके अन्त में उन्होंने 'आचार्यिक पदावली' के रूप में १ ३ पद दिए हैं । ये पद मीरों-स्मृति-ग्रंथ में प्राफेसर ललितप्रसाद मुकुन द्वारा प्रकाशित 'बाकीर' और 'काशी' की प्रति पर आधारित पदावली के ही हैं ।

(२१) मीरों सुभा विभु—श्री मीरों प्रकाशन समिति भीमबाड़ा (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित, संपादक—स्वामी आनन्दस्वयम्, वर्ष २०१४ (सन् १९५७) में स्वामी जी ने मीरों के पदों का एक विशद संग्रह प्रकाशित किया है। इसमें १३१२ पद हैं। अभी तक इतना बड़ा संग्रह और कोई प्रकाशित नहीं हुआ है। स्वामी जी की दृष्टि संग्रहात्मक और भविष्यदा है। अतएव 'मीरों' काप की समस्त उपलब्ध रचनाओं को इसमें स्थान दिया है। एक बार मीरों नाम से प्रचलित समस्त सामग्री का सामने आ जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह एक स्तुत्य प्रयत्न है।

लेखक ने श्री मीरों के पदों का संकलन किया है। लिखित तथा मौखिक परंपराओं से प्राप्त 'मीरों-रूप' के इन समस्त पदों और गीतों की संख्या १४०७ है। अस्तुतः अभी तक मीरों के पदों का पाठानुसंधान नहीं हुआ है। जैसा कि आगे स्पष्ट किया गया है कि शायद कवियों की कम से कम ७३ रचनाएँ मीरों के नाम पर चल रही हैं। उनके एक-एक पद के अनेक रूपान्तर और बहुत से मीरों-संबंधी लोक-गीत भी उनके स्वतंत्र पदों के रूप में प्रचलित हैं।

स्ट्रुट रूप में पत्र-पत्रिकाओं तथा खोज-रिपीटों में प्रकाशित मीरों के पद :

(१) 'राजस्थानी' ग्रंथ १ जुलाई १९३९ में नरोत्तमदास स्वामी की हस्तलिखित पोथी के आधार पर 'मीरों के कुछ अप्रकाशित पद' बीकानेर से मीरों के १० पद दिये गये हैं। पोथी का लिपि-रूप अज्ञात है।

(२) 'राजस्थानी' ग्रंथ २ (अक्टूबर १९३९) में जसी सौरभ से श्री रंजन शर्मा आचार्य ने मीरों के ९ पद प्रकाशित किये हैं। लेखककोशो० नरोत्तमदास स्वामी से ज्ञात हुआ कि इनका आधार राजस्थान से प्राप्त हस्तलिखित पोथियाँ हैं। पोथियों का विवरण तथा लिपि-रूप अज्ञात है।

(३) भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित 'भारतीय विद्या' के एक ग्रंथ में दो पद प्रकाशित हैं। मुनि विमलविजयजी ने लेखक को बताया कि वे लगभग १२० वर्ष प्राचीन गुटके में मिले थे।

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित पंथों की खोज तृतीय भाग (उपनिह मटनागर) के परिशिष्ट में विभिन्न गुटकों के आधार पर ३३ पद प्रकाशित हैं। इनमें से ८ पद संवत् १८७९ में लिखित एक गुटके के हैं। दो का लिपि-रूप अज्ञात है। दोप जिस गुटके के हैं वह रामदास बीसीबावड़ी उदयपुर में सुरक्षित हैं। इसमें संवत् १९२५ में रचित शिक्षण का 'अक्षतस्तन राज कौशल मर

सिंह महता को माम्हीरो' भी लिपिबद्ध है। इससे ज्ञात होता है कि गुटका संवत् १६२२ के बाद किसी समय लिपिबद्ध हुआ था।

ग्रन्थ :

(क) भीरौ-मंथनी घालोचनात्मक लेखों तथा ग्रंथों में भी भीरौ के कुछ ऐसे पद उद्धृत हुए हैं जो बहुत-से संग्रहों में नहीं मिलते या किसी अन्य रूप में महत्व पूर्ण हैं। उदाहरण के लिए —

(१) नायरीदास कृत पद-मसंगमाला में भीरौ के छ पद उद्धृत हुए हैं।

(२) मैकालिफ ने अपने ग्रंथ 'सिल रिसेजन' में बानी के गुदप्रपसाहब में आये हुए एक अत्यन्त प्राचीन पद का अनुबाध दिया है।

(३) सन् १८६७ में मिले हुए मूँधी बेबीप्रसाद कृत भीरौबाई के जीवन-चरित्र में भीरौ के तीन पूरे और एक अधूरा पद संकलित हैं। इनका आधार जोधपुर के पुस्तक-प्रकाश की सामग्री है।

(४) "भीरौ-स्मृति-ग्रंथ" में डॉ० जयवीर गुप्त ने भीरौ के ८ पदों को प्रकाशित किया है। य गुजरात बिद्या समा, मद्रा प्रहमदाबाद के म १९६५ में लिपिबद्ध एक गुटके के आधार पर दिए गए हैं।

(क) भीरौ-मंथनी नाटक और उपन्यासों में भी भीरौ के पद उद्धृत हैं। इनमें से सबसे उल्लेखनीय है पं० पुण्योत्तमदास पुरोहित कृत 'आदर्श भक्त' अर्थात् 'भीरौबाई' (नाटक)। पुरोहित जी मेड़ता में नायब हाकिम रहे थे और उन्होंने भीरौ की अन्तर्भूमि मेड़ता की मौखिक परंपरा से पद एकत्र किए थे।

उक्त विवरण और विवेचन से स्पष्ट है कि भीरौबाई की रचनाओं के प्रकाशित संग्रहों के जोत निम्नलिखित हैं—

१—(क) गुजगढी ग्रंथ में मुरलित इच्छाराम भूर्पराम देसाई द्वारा उपलब्ध हस्तलिखित पोथियों की प्रतिनिधि (२ मूल पोथी ४ ग्रन्थ पोथियों की मकल)

(ख) श्री पुण्योत्तम विद्याय भावजी के वैयक्तिक संग्रह में मुरलित प्रतिमाँ (छ० वि० राजन् के प्रयत्नों द्वारा संगृहीत)

२—पुस्तक-प्रकाश जोधपुर में मुरलित हस्तलिखित गुटके

३—रघुराजसिंह देव के संग्रह में मुरलित सामग्री

४—बारकरी मर्मदाय के संत नागा साहब सावरे के संग्रह के पोथियाँ

५—रामसनेही मर्मदाय की पोथियाँ

(क) मरोत्तम स्वामी के संग्रह में मुरलित एक पोथी

- (क) रामदास मोनीबाबकी, उदयपुर में सुरक्षित गुटके
- ६- पं० परमुराम चतुर्वेदी द्वारा उपसम्भ बाबू संग्रहाय की एक पोनी की प्रतिलिपि
  - ७- बाकोर तथा काशी की ललिताप्रसाद सुकुन द्वारा उपसम्भ प्रतिलिपियाँ
  - ८- बिद्या-सभा मन्त्र महमदाबाद का एक गुटका
  - ९- नामरीदास छत्त पद प्रसंग मासा में उद्धृत पद
  - १०- मौलिक परंपरा-विशेषकर संतों की स्मृति के आधार पर लिखित सामग्री
  - ११- अन्य सैकड़ों स्फुट गुटके जिनका स्पष्ट सम्बन्ध कही नहीं मिलता पर विवेचन करने पर उनकी सामग्री के उपयोग का अनुमान होता है ।

इस सामग्री के प्रयोग के विषय में सबसे अधिक उत्प्रेक्षणीय बात यह है कि इसका उपयोग विभिन्न संग्रहकर्तारों द्वारा अलग-अलग स्वतंत्र रूप से हुआ है। सुलनात्मक अध्ययन का बिल्कुल प्रयास नहीं हुआ ।

इनके अतिरिक्त हिन्दी, गुजराती और मराठी क्षेत्रों में पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित मीराबाई के पदों के लगभग २७ संग्रह और इस लेखक को प्रस्तुत हुए हैं, परन्तु पदों की नवीनता या आधारभूत सामग्री की दृष्टि से उनका महत्व नहीं है ।

ये संग्रह प्रायः तीन प्रकार के हैं —

- १ (क) विद्याविधियों के लिए पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रस्तुत संग्रह-इनमें पदों का आधार पूर्व प्रकाशित पद-संग्रह ही है ।
- (ख) शालिक दृष्टि से 'अथन-संग्रह' के रूप में प्रकाशित संग्रह - इनमें मीरा के प्रसंसकों की रचनाएं और लोक-गीत भी सम्मिलित करने का प्रयास मिलता है ।
- (ग) साहित्यिक दृष्टि से प्रकाशित संग्रह - इनमें शोध की दृष्टि नहीं है । साहित्य और अतिरिक्त के आस्वादन को ही संग्रह करते समय ध्यान में रखा गया है । यद्यपि इनमें अध्ययन की विशेषता तो मिलती है पर मूल स्रोतों के शोधन की प्रवृत्ति का अत्यन्त अभाव है ।

## मीरा के पदों की हस्तलिखित प्रतियाँ

दिखा-सना, मज, धातुवावाह में सुरक्षित हस्तलिखित पोथियाँ

संग्रहालय

सिपि-कास

पद संख्या

विशेष

की

पोथी-संख्या

३१० म सं० १७०१ पोथि बहि ३ पद 'होता मारई बजपई' भी इस  
सोमवार पोथी में है। उसी के पीछे

सं० १७०१ दिया हुआ है।

४७७ क सं० १९११ आवध सुदि ८ पद अविचलवास द्वारा निदिबद्ध।  
१२ छविवाह

१७७

—

४ पद रामानंदी संग्रहालय के अनुनाय

स्वामी के शिष्य द्वारा सिपि-

बद्ध प्रथम १०२ पृष्ठों

में मज्जा की रचनाएं, बाह

में मामा कबीर, गरसी

ग्रीष्म धादि की रचनाएं।

६८१ म सं० १७२९ मोस बद्ध, २ पद संत-मठ की एक कबीर का  
बद्ध जिसमें मीरा का

उल्लेख, सुरदास भवनमोहन

सुकाशव आदि के पद।

८२६ सं० १७१३

६ पद

प्रारंभिक पत्रों में सं० १७१३

।

- अंतिम पत्रों में हिबरी सं०

११४० का हिसाब उर्दू

में गरसी बूट-नामदेव

कबीर धादि के पद।

१०९१

—

२ पद

वस्त्रम संग्रहालय की पोथी।

१ पद वस्तुतः छीतस्वामी

का है।

१७४१ सं० ११०६ आवध

२१ पद

संत-मठ की पोथी, मनीम

पुद् १

साम्प्रदायिकता का विशेष

ब्रमाण।



१७४८	सं० १८८३	४ पद	मल्हम सम्प्रदाय में लिपिबद्ध,
		५	हिंदी-गुजराती अक्षर मिसे हुए ।
१७४९	सं० —	२३ पद	पोथी संख्या १७४६ से विशेष साम्य है ।
१७५८	—	१८ पद	संज्ञ-सम्प्रदाय में लिपिबद्ध रामानंद का रामरिक्ता राम-दास की साखी संज्ञ-सम्प्रदायी के वमाराय के पद आदि
१७५९	—	१ परबी	—
१८९०	—	६ परबी	हाथ का कागज नवीन प्रति ।
१८९२	—	६ परबी	पोथी संख्या १८९० से विशेष साम्य ।
१८९३	सं० १८२३	४ परबी	महीना परबी तथा अक्षरों तथा का संग्रह ।
		१ मीरा	
		सम्मान्य	
		गीत	
८७९	सं० १८०२ ज्येष्ठ शुक्ल	४ पद	रामकृष्ण बल कबीर, नामक राखे के पद मेहेकास कुत अक्षर पीठा आदि ।
	छप्पमी गुस्सासरे		

### छद्मी भक्तानी सायबोरी नाटिकाय का संग्रह

वर्ष—प्रश्न	लिपिकाय	पद-संख्या	विशेष
१९१२	सं० १८५१	५ पद	कबीर, मुरदास नरसिंह मेहता के पदों तथा प्रेमामंद-कृत हुंरी आदि के साथ मीरा के पद भाषा पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट
१९१६	—	३ पद	बोधिब कृत 'तस्यवामानु ब्रह्म' नरसिंह मेहता कबीर, प्रीतम पुष्पोत्तम के साथ

२१५	सं० १८६०	२ पद बयाराम, पुष्पोत्तम मुरबास रजछोड़ के साथ मीरीं क भी
१०१८	—	४ पद पांवी बयाराम के काल के बाद की निमित्त पत्रे छटे हुए ।
१११३	—	४ पद —
१२१४	—	६ पद नवीन पोषी मीरीं के कुछ पद पौंसन स छीर कुछ नवीन स्वाही से लिखे गए हैं ।

नोट बंडल १०१७ पोषी में मीरीं के एक पद का उल्लेख पोषी में है, पर वस्तुतः वह पद उसमें नहीं है । पांवी का निष्पिकात सं० १८८० है ।

### कार्यस मुजराती समा सम्बन्ध सुपलित इस्तमिन्नित संघ

पोषी-संख्या	निष्पिकात	पदसंख्या	विशेष
१७५	—	१ पद छत्तर नापरी भावा मुजराती, हिंदी समयम १२ वर्ष पुरानी	
१८	सं० १८२६	१ पद बूढ़, तुलसी कबीर, मरसी नंददास के पद नग्नेराम के काफी पद हैं ।	
८२	१८२४ आख्यान बरी ७ भीमवार	१ पद रामकृष्ण तुलसी मूढ़ प्रेमानंद आदि के पद	
७१	—	२ पद— कबीर, प्रीतम नरमी, रामकृष्ण १ मरसी बनाबी तुलसी के पद	
१०७	सं० १८११	२ पद छत्तर मुजराती	
२०१	सं० १७२८ की एक कृति हममें संगृहीत है ।	१ पद— छत्तर मुजराती मीरीं रणछोड़ रामकृष्ण मरसिंह बहानंद आदित्यराम के पद । सुकरेव आख्यान (गयकून) भी	
३०	—	३ पद मूखराम हरिदास मीरीं रामे, — इत्यादि — पुरानी मंगली हैं ।	

१११	प्रकीर्ण पद्योपने भजन ३ पद्य	—
११२	पद्य मुटका ५ पद्य	—

### श्री शैठ पुस्तकालय विभाग नागवली का वैयक्तिक संग्रह

इस संग्रह की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्राचीन काव्य-सूत्र का संपादन हुआ था। इनका विवरण श्री के० का० शास्त्री द्वारा संपादित 'मासी' के आधार पर दिया जा रहा है।

#### पुस्तक मासी की संख्या

#### विवरण

१५	वयाराम केवल भोलाबास, मीरबाई, भीम रामकृष्ण, मोहनबास, ऊदो मन्ननोबीना पद्यो
१६	मीरबाई, ज्योतिराज भीतम प्रामदास नरसिंह, मीठो, वयाराम देवानंद सूरदास आदि के पद्य
१७	भीम सूरदास मन्दास नरसिंह मीरबाई आदि के पद्य
१८	मीरबाई नरसिंह राम रविदास कोसीवो बंसवली सूरदास राधाबाई आदि के पद्य
२०	नरसिंह मीरबाई राजे ने पुस्तोतमना पद्यो
४८	हरिदास नरसिंह ने मीरबाई ने निरसुनो पद्यो
५१	नरसिंहने मीरबाईना पद्यो
७३	वयाराम केवल भोलाबास मीरबाई भीमा तुमसीदास हरिदास नरसिंह के गुजराती ब्रजभाषा के पद्य
१७१	कबीर, सूरदास (गुज० पद्य) नरसिंह मीरबाई (गुज० हि० १) राजे रामकृष्ण कवि जयदेव आदि के पद्य
२०४	मीरबाई नरसिंह, राजे रामकृष्ण जोगीदास भाजन बोरे ना हिंदी गुजराती पद्यो

### रामदासी संजीवन (जन्म), (५० सामवेद्य)

संग्रहालय की संख्या	पद्य	पौबी संरक्षण का मूल स्थान	। विरोध
संश्लेष	संख्या		
१०	१	डाकनी मठ का संग्रह	

## रचनाएँ

६२	१	डोगगाँव मठ का संग्रह	
६२	१		
११४	१	साधनाराम बुवा का संग्रह	
१२७	१	"	
१३२	२	करमा बुवा का संग्रह	
१४३	२	दुर्गाबाई का संग्रह	
१७७	१	सडवले मठ का संग्रह	
१८३	२	"	
१८७	१		शक संवत् १७०८
१९४	१	"	
१९८	१	"	
१९९	१	"	
२३६	१	"	
२६०	१	बाबरी मठ	
४१०	२	मालगाँव मठ	
४६८	१	हंदुर मठ	(प्राचीन) लगभग २६० वा १०० वर्ष पुरानी
४६९	२	"	
४७०	२	"	
४८७	१	"	
६२०	२	गिरगाँव का संग्रह	
६६४	३	"	
६०१	३	संकीर्ण संग्रह	
६०६	१	"	
६७७	१	बीड मठ	
७६३	२	बीड मठ	एक यह उभयनिष्ठ है भीरौ-कृत नरसी मेहता की हुंदी इसमें है ।
८४६	१	स्वानुमैव दिनकर कारी	
९७७	१	स्वानुमैव दिनकर कारी	
१२०९	४	नीलने का संग्रह	श्री हनुमंत स्वामीयांचा पुण्य दिनस फास्वुस धुस्स सप्तमी बुधवार

१२०५	१	संवावर प्रीत का संग्रह	
१२१६	२	"	
१२५४	१	"	शक १७५२ विहृती कातिक शु० ५ सुववार
१४४६	१	"	
१५०६	१		
१५१२	४	विदर्भ प्रीत का संग्रह	
१५८६	२		
१६२६	१	"	
१६३६	२	मोहिन्य कासीनाब बांदोरकर	(प्राचीन)

मुजराती प्रीत बन्वाई का संग्रह (ई० सु० बैसाख का वैयस्तिक संग्रह)

यह संग्रह भव विवरण मया है । इसमें संकोक्ष प्रीतियों का प्रतीतिपियों के आधार पर क० का० बी० के पद प्रकाशित हुए हैं । वे मूल प्रीतियाँ तो उपलब्ध नहीं हैं, पर इनकी प्रतीतिपियाँ मिलती हैं । यह इनका विवरण 'मुजराती हज्र प्रोनी संकलित यादी' (संपादक के० का० धारणी बहीरा) के आधार पर दिया जा रहा है —

प्रीती संख्या	विवरण
६३ ग	नरसिंह मातलजी मीरों बल्लभ राजे बवेरेमा पदो (मकल)
२४७	बनो बीमगदास रणछोड़ मीरों गजपत हरिकृष्ण बेगरे मा पदो (मकल)
२०७	मीरों हरदास परमानन्द कृष्णदास मोहनदास त्रैमानन्द बेनेरला गूज० बन० पदो (मकल)
२६२	प्रकीर्ण गूज० पदो (मूल प्रत)
१६०	शूरदास मीरों, बीरो तुलसी रणछोड़ धनस बवेरे मा पदो (मूल प्रत) क० का० बी० पृष्ठ
छद्म	'प्रत' का विवरण इस यादी में नहीं है ।

मुजराती-प्रकाश बोधपुर का संग्रह

(१) मीरों के पद पद ३, राज सोरठ

इसके अतिरिक्त समीत गूटका संख्या ७ मिथ २ १ ३ मिथ १ बाती  
गूटका सं० १२ काव्य-गूटका मिथ ८ १२ ११ में भी मीरा के पद हैं ।

इनमें कुल पदों की संख्या १८ है । इसमें महत्वपूर्ण प्रति राग सोरठ की ही  
है ।

### नामरी प्रचारिणी सभा (काशी) में संगृहीत धोबियाँ

- | धोबी का नाम                                 | लिपि-काल | विशेष विवरण   |
|---|----------|---|
| (१) मीराबाई के पद                           | —        | पूरी प्रति की प्रतिलिपि नहीं है, विस्तृत<br>विवरणिका मात्र है इसमें उदाहरण<br>स्वरूप आदि धीरे अन्त के ८ पद दिये<br>हुए हैं ।                    |
| (२) मीराबाई के पद                           | १८८८     | पूरी प्रति की प्रतिलिपि नहीं है विस्तृत<br>विवरणिका मात्र है उदाहरण स्वरूप—<br>३ पूरे पद धीरे अन्त के ४३ पदों की प्रथम<br>पंक्तियाँ की गई हैं । |
| (३) कबीर प्रभावणी                           | —        | मीरा-काव्य का एक पद   |
| (४) मीराबाई की<br>बाती                      | १८१२     | इसमें आदि धीरे अन्त के १ पद दिए<br>गए हैं ।   |
| (५) पदावली-मीरा<br>धुनात मागक<br>मीरा के पद | १८४०     | मंत सम्प्रदाय की प्रति नामादास का<br>का छाप्य मीरा के नाम से दिया<br>गया है ।   |

### साहित्य सम्मेलन संग्रहालय (प्रयाग) में संगृहीत धोबियाँ

- |                                  |   |   |
|----------------------------------|---|---|
| (१) पद संघ                       | — | भूषी से प्राप्त प्रति मीरा के १ पद      |
| (२) गूटको मीराबाई<br>के, भजना की | — | कोटा से उपलब्ध प्रति मीरा का एक<br>पद । |

### प्राण्य विद्या मंदिर, बड़ोदरा

गूटका — सं० १८६२ भावय मुरी १४ हो पद धबूरे हैं सतर धस्यट है

### रामदास बोलीबाबड़ी उदयपुर

गूटका १ ७ १ — ४३ पद रामसनेही सम्प्रदाय की  
प्रति, कदाचित् सं०  
१९२३ के बाद  
लिखित ।

मृटका विविध संग्रह — १०४ पद रामसनेही सम्प्रदाय की प्रति विक्रम की २० वीं शती में सिपिबद्ध।

### पुरस्तुत मंदिर, जोधपुर

हस्त लिखित प्रति संख्या १०८६४ — १ पद  
३४६६ — २ पद  
१०८४५ — १ पद  
१२२० — ४ पद  
१५८२ — १ पद  
१०८६१ — १ पद

### स्कृत प्रतियाँ

मरीचनराज स्वामी की प्रति	१०वीं शती	१६१ पद	रामसनेही सम्प्रदाय में सिपिबद्ध
रमण देसाई की प्रति	सं० १८६१	६८ पद	अष्टांगप्रबन्धिका, नागरी अक्षर, कबीर, गुरु, गच्छी आदिके पद, नवीन प्रतीत होती है।
विनोदचन्द्र की प्रति	सं० १७०७	९१ पद	बीच-बीच में हरिदास गुरु आदि के पद।
रमसदास धनवास की प्रति	—	३ पद	हीसी पर बाने भागों के लिए अनेक कविओं के हीसी खंभवी पद, पोथी लगभग १०-१० वर्ष पुरानी है।
गुप्तोत्तमराज मेनारिया की प्रति	—	२ पद	पोथी लगभग १०० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है।

प्रो० ललितप्रसाद सुकुल द्वारा प्रकाश में आई गई पोथियाँ

प्रो० ललितप्रसाद सुकुल ने मीराँ अभिनन्दन ग्रन्थ<sup>१</sup> में 'पदावली परिचय' धीरे-धीरे के अन्तर्गत निम्नलिखित पोथियों का उल्लेख किया है —

(१) बाकोर के गोवर्धनदास की भट्ट की दो प्रतियाँ

(क) संवत् १६४२ की — ६६ पद

(ख) संवत् १८०३ की — १०३ पद

(२) काशी की ४ प्रतियाँ

(क) सेठ सात गोपालदास के संग्रह की सं० १७२७ की प्रति

(ख) नागरी प्रचारिणी की ४ प्रतियाँ

(३) कानपुर की २ प्रतियाँ

(४) रामचरणी की २ प्रतियाँ

(५) मधुरा की ३ प्रतियाँ

(६) कायपुर और उदयपुर की ५ प्रतियाँ

इनमें से कायपुर उदयपुर और काशी की प्रतियों का स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया जा चुका है। कानपुर की १ और रामचरणी तथा मधुरा की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। बाकोर की दोनों प्रतियों की (काशी की गोपालदास के संग्रह की और कानपुर की) प्रतिनिधि प्रो० ललितप्रसाद सुकुल के पास थी। मूल इनका भी उपलब्ध नहीं है।

### बी हरिनारायण पुरोहित जयपुर का संग्रह

इस्तिसिखित ग्रंथों के संग्रह की पुष्टि स जयपुर के स्वर्गीय श्री हरिनारायण जी पुरोहित का कार्य स्तुत्य है। उन्होंने लगभग २००० ग्रंथ एकत्र किए थे। मीराँ बाई के ग्रंथों का संकलन वे अत्यंत उत्साह से कर रहे थे कि इसी बीच में इस लोक से अलौकिक गये। उन्होंने मीराँ के जीवन-परिचय के सम्बन्ध में भी काशी ललितप्रसाद की श्री और सामग्री एकत्र की थी। अन्तिम अंश में मीराँ के विषय में उनका ज्ञान सबसे अधिक था।

निम्नांकित विवरण तैयार करते समय हरिनारायण पुरोहित की समस्त सामग्री उनके पुत्र रामगोपाल पुरोहित के पास कई बस्तियों में बँट थी। रामस्वाम क लोक-साहित्य के अध्येता श्री पुस्तोत्तम मन्गारिया के साथ मिलकर ने पुरोहित जी के घर पर ही यह विवरण तैयार किया था।



मीरा की रचनाओं से सर्वप्रथम निम्नलिखित हस्तलिखित ग्रंथ उनके संग्रह में थे —

- (क) मीराजी के पद — २ पद
- (ख) मीराबाई के पद — १ पद
- (ग) पद संग्रह—नरसी तुमसी आह हुसेन कवि अमृतानन्द बामराजी  
रामछोड़ बन तुमसी आदि के साथ मीरा के पद
- (घ) पद संग्रह—मीठाजी नरसी मुक्तानन्द बरनाबर, सुरदास के साथ  
मीरा के पद
- (ङ) नरसीजी को माहेरो ~ २ प्रतियाँ

पुरोहितजी को कितने पद कहीं से मिले इसका उल्लेख उन्होंने अपने मोदस में स्पष्ट किया है। उनके संग्रह के आधार निम्नलिखित हैं —

- (क) स्वसंग्रह की हस्तलिखित प्रति से — २ पद  
स्वसंग्रह से (अखिल) २ पद  
अन्य प्रतियों से १ पद
- (ख) अन्य ग्रंथों तथा प्रतियों से संकलित
  - (१) संवीत राग कम्पजुम
  - (२) नामदीपास के हस्तलिखित ग्रंथ
  - (३) मीरा मन्वाकिनी तथा अन्य मुबारसी पुस्तकें
  - (४) आदर्श मीराबाई नाटक (पुरोहितमदास द्वारा)
  - (५) मीराबाई जी (कमकमीजी)
  - (६) राजस्थानी पत्रिका
  - (७) कल्याणीजी के गृहके
  - (८) मीरा जीसा
  - (९) मास्टर हरिनारायण जी की हस्तलिखित पोथी
  - (१०) बीनाबाब के मंदिर की पोथी
- (ग) व्यक्तिगत से प्राप्त।
  - (१) जमादार हजारीराम
  - (२) भवानी चकरावा

पुरोहित रामचोपास जी ने इन पदों की प्रतिनिधि नहीं करके ही क्योंकि वे अस्वास्थ्य से घोर स्वयं व्यक्ति बैठ नहीं सकते थे। दोनों संग्रहों में पद अखिल नहीं थे।

- (३) पुजारी मामूनायन  
(४) मूर्ध्नि भारयगजा दावीन  
(५) एक 'मन्त्र' तथा

(६) काका कामसकर द्वारा प्रणित पद

उनके हस्तलिखित संग्रह में कुल मिलाकर १२१ पद थे ।

अप्य पद्यों की हस्तलिखित प्रतियाँ

उपयुक्त पेशियों के प्रतिरिक्त मीरा रचित कहीं जाने वाली निम्नलिखित कृतियों की हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं —

- |                         |              |
|-------------------------|--------------|
| १- नरमी मेहता का माहुरो | - ७ प्रतियाँ |
| २- सत्यनामाजीनू कसन     | - २ प्रतियाँ |
| ३- नरसिमहताचि हुंदि     | - १ प्रति    |
| ४- करीत (चरित)          | - १ प्रति    |

इन प्रतियों का विवरण सबन्धित रचनाओं की प्रामाणिकता सम्बन्धी समीक्षा के माब से दिया गया है ।

### मीराबाई की रचनाएँ

'मीरा-कूठ' बही जानेवाली रचनाएँ जो पूर्ण या अपूर्ण रूपमें प्राप्त हैं पद्यवा मिलके उल्लेख मिलते हैं निम्नलिखित हैं —

- (१) गीत गोविन्द की टीका<sup>१</sup>
- (२) नरमी जी का मायग अथवा माहुरा<sup>२</sup>
- (३) फुटकर पद<sup>३</sup>
- (४) राम सोरठ का पद संग्रह - राम भारदा का पद<sup>४</sup>
- (५) ममार राम<sup>५</sup>
- (६) राम गोविन्द<sup>६</sup> अथवा रामगोविन्द<sup>७</sup>

- (१) हिंदुई साहित्य का इतिहास, तामी, धनु० बापुजैय, पृष्ठ २१३ 'रामपूताने में हिंदी पुस्तकों की जोख मुंशी बेबीप्रसाद स० १९६८, वृ० ५ संख्या ४९
- (२) वही संख्या १०७ (३) वही, संख्या ५६ (४) वही, संख्या २४९
- (५) मापरी प्रकाशित सभा, खोज-रिपोर्ट, तनु १९०९, विवरण संख्या २४९
- (६, ७) उदयपुर का इतिहास, भाग १, घोडा, पृष्ठ ३६०
- (८) मीराबाई या० नि० मेहता पृष्ठ ८३ चिर्बाहि सरोज प्रिन्सिपल सेंसर, पृष्ठ ४८०

- (७) सतमामामुं कसब<sup>१</sup>  
 (८) मीरी नी घरबी<sup>२</sup>  
 (९) कसमणी मंगस<sup>३</sup>  
 (१०) नरसी मेहता नी हुंजी<sup>४</sup>  
 (११) बरीत (बरिब)<sup>५</sup>

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन रचनाओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं —

- (क) टीका-ग्रंथ (१)  
 (ख) प्रबंधात्मक रचनाएं (२, ७, ९, १०, ११)  
 (ग) स्पष्ट पद तथा अन्य मुक्तक (३, ४, ५, ६, ८)

(क) टीकाग्रन्थ

मीर बोबिल की टीका — इस रचना का प्रथम उल्लेख विक्रम की १६ वीं शताब्दी में महाराजा की मानसिंह जी (जन्म सं० १८३९, मृत्यु सं० १९००) के दरबार के कबीर जोसी (ज्योतिषी) संभुबल जी द्वारा महाराज के सामने किया गया था। इस उल्लेख के अनुसार यह ग्रंथ महाराज मानसिंह के समय में जोधपुर के राजकीय प्रकाश 'पुस्तक प्रकाश' में था।<sup>१</sup>

- (१) बृहत् काव्य-बोहल, भाग १, पृष्ठ २४५, पीठर्न बर्नार्डसुन्तर लिब्रेरर प्राँव सिबुस्तान, प्रिण्टिंग पृष्ठ ६९, कवि-चरित को० का० आसनी, पृष्ठ १९५  
 (२) मृचरती साक्षरपना मार्गसूचक स्तंभो, कु० ओ० लबेरी, पृष्ठ ३२, विद्यास्थान, अम्भदाबाद पोषी-संख्या १९९०, १९९२, १९९३  
 (३) पं० सुर्य नारायण कतुबेडी से प्राप्त मुद्रणा के आधार पर  
 (४) श्री रामदासी संशोधन (द्वितीय खण्ड) हस्तलिखित ग्रंथ-विवरण, सं० ७५६  
 (५) राजबाड़ी संशोधन मण्डल, बुनिया के हस्तलिखित पोषी-संग्रह की एक प्रति  
 (६) एक बेर जोधपुर के महाराजा की मानसिंह जी की समा में वे नकली पद पाए जाते थे उनकी सुनकर एक समास ने कहा कि मीरी स्वयं में पाई होगी या नरक में। महाराज ने पूछा, क्यों? तो कहा कि पहले पद-पद पर बलि की निवा पार्श्व है जैसे—

अब नहीं रूँ राणाजी हटकी मन भागो विरहर सं॥१॥

राणा नी मेबाबो म्ही की काई करती ॥२॥

हयनेबो रांघा संग जुड़ियो विरहर जर पठरली ॥३॥

—बोव अगले पृष्ठ पर

इस ग्रन्थ के विषय में निम्नलिखित बातें उत्तेजनीय हैं —

(१) स्वयंकाश मीरों-द्वारा 'गीत-गोविन्द की टीका' की कोई पूरी या प्रचुरी हस्तलिखित या प्रकाशित प्रति नहीं मिलती।

इसके उत्पन्न के समय की सामग्री 'पुस्तक-प्रकाश' में सब भी मौजूद है। मीरों के पदों का १ पदों का एक छाटा-सा हस्तलिखित मसह्र भी वही है। कुछ ग्रन्थ मुद्रकों में भी मीरों के पद हैं पर मीरों का गीत-गोविन्द की टीका नहीं है।<sup>१</sup> मुछी बर्वाणसाह ने शम्भुलाल जी के कथन के आधार पर ही इसका उत्पन्न किया है। प्रोफेसर ने भी इसका जिक्र नहीं किया। जयपुर राज्य के इतिहास के पंडित और पुस्तक-प्रकाश तथा पुरातत्व-विभाग के मुखपूरुष ग्रन्थालय की रजिस्ट्री ने सेवक को बताया कि पुस्तक-प्रकाश में इन नाम की रचना कभी नहीं दली।

वस्तुतः पुस्तक-प्रकाश में मीरों-द्वारा 'गीत-गोविन्द की टीका' नामकी कोई रचना नहीं थी। मीरों ने गोविन्द सम्बन्धी पद या गीत लिखे थे। पुस्तक-प्रकाश में संगृहीत संगीत-मुद्रकों में एम कई पद मिलते हैं।<sup>२</sup> इन्हीं में से किसी मुद्रक में मीरों-द्वारा के गोविन्द-सम्बन्धी पदों (पद) को लिखाकर संभवतः जोशी ने राधा मानसिंह का प्रसन्न कर दिया होगा।

कई हस्तलिखित पाण्डित्यों में मीरों के ऐसे पद मिलते हैं जिसमें राधा-कृष्ण के संयोग और विषय की व्याख्या है। विद्या सभा की संवत् १९६१ की एक हस्त-लिखित प्रति में राधा का मूर्ति के पदवाच का वर्णन है।

यह इन प्रकार है —

भनीं तु बनीं वृषभान नंदनी प्रातःसमि रण जीत प्रादि

मुख पर स्वर भ्रमक मट छूटी मधुरी जाति यवपति सत्रादि ॥१॥

विद्वान्ने वृष्ट के लिपिणी का ध्यान—

महाराज ने कबालू जोशी शम्भुलाल जी की तरफ देखा तो उन्होंने धर्म की—प्रवचनवाली इस माह के ये सारे पद मोड़ों के (साधों) पड़े हुए हैं। मीरोंबाई तो बड़ी सती और पतिव्रता थीं। वे कब यों ऊँस बलूल बहने लगीं थीं। उन्होंने 'गीत गोविन्द' की टीका बनाई है। वह 'पुस्तक प्रकाश' में से मंगाकर धन-लोचन कर लीजिएगा—महाराजा ने वह धन मंगाकर देखा तो उसमें सेवमात्र भी इन भक्तों का आश नहीं पाया। —महिला मूढाची

(१) जिन प्रतिषों में मीरों के पद हैं उन सबका विवरण पिछले पृष्ठों में दिया हुआ है।

(२) सर्पाक्ष-मुद्रक नं० २, ९, ७ (मिष) १२ इत्यादि

मोहन छेम छत्रीसे नागर मुरत ही बोरीया सुसठ बाबि ।  
 बोट सुमट रणपेल महारत भासत मयल ठोर नहि पाबि ॥२॥  
 हरि के मख खिच उषय बिराजीत विन ताराबली हार बेछावैत ।  
 मीरा प्रभु बिरीधर छवी सिरधत बदन कोटि रवि जाति नबावैत ॥

इस प्रकार की राधाकृष्ण-भूगार के पदों परबरा गोविन्द के प्रथम गीतों के कारण मीरा को गीत-गोविन्द की टीकाकार माने जाने लगा हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

महाराजा कुंभा ने गीत-गोविन्द पर 'रसिक प्रिया' टीका लिखी थी ।<sup>१</sup> मीरा ने भी 'गोविन्द का गुण' गाया था । दोनों साहित्य संपीठ और धर्म की ओर विशेष प्रवृत्त थे । चित्तोड़ के दुर्ग में कुंभस्वाम (महाराजा कुंभा द्वारा निर्मितमंदिर) के समीप ही मीराबाई का मंदिर है । दोनों के सामीप्य और सादृश्य के कारण टीका ने मीरा को राधा कुंभा की पत्नी मान लेने की भूल की थी और जब भी कुछ मोर उस भ्रम को ठीक नहीं पाए हैं । इतना ही नहीं इसी आधार पर कुंभा के मीरा द्वारा काम्य-मेरणा और शिक्षा प्राप्त करने तक का अनुमान किया जाने लगा । यत यह भ्रममय नहीं है कि मीरा को गीत गोविन्द की टीका का रचयिता मान लेना भी उपर्युक्त परिस्थिति से ही उत्पन्न भ्रम हो ।

एक यह भी अनुमति है कि मीराबाई ने गीत-गोविन्द की टीका नहीं की थी महाराजा कुंभा कुछ टीका की व्याख्या की थी ।<sup>२</sup> वस्तुतः यह मान्यता भी उपर्युक्त परिस्थिति से उत्पन्न संयोग का परिणाम है ।

मीरा का काम्य भक्ति-प्रतिष्ठा प्रावेशपूर्ण कर्णों की प्रयासहीन बाणी है । वे अपने प्रिय धाराध्य में इतनी लग्नय थी कि बैठकर ब्रंथ रखने का धनकाध उन्हें न था । टीका और टीका की व्याख्या न उनकी भक्तिसंयुक्त भावना के अनुकूल थी और न उनके कित्युह वैराग्यपूर्ण स्त्री-स्वभाव के ।

(१) चित्तोड़ के दुर्ग में स्थित कीर्ति-स्तंभ की प्रशस्ति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है :—

सेनाकारि भुवारेत्तंगतिरत्तप्रत्यभिनी नमिनी  
 कृतिव्याहृतिबाहुरीनिरतुसा श्रीपीतपोषिदके ।

(२) मीरा साधुरी, चक्ररत्नभास, पृष्ठ ॥॥

(स) प्रबंधात्मक रचनाएँ

[१] मरघीमी का भावरा (माहेरो)<sup>१</sup>

हिन्दी में इस ग्रंथ का सबसे पहला उल्लेख मुंशी बेबीप्रसाद कृत 'महिता मुहुराजी' में मिलता है। उसमें याद, मय्य और अमृत की १८ पंक्तियाँ भी दी गई हैं। १० परपुराम चतुर्वेदी<sup>२</sup>, बानू प्रबलसहास<sup>३</sup> और डॉ० श्रीकृष्णलाल<sup>४</sup> आदि विद्वानों ने इसी ग्रंथ का उपयोग किया है। हरपी एच० डी० के लिए स्वीकृत कतिपय छोट-बड़ों में भी इस रचना के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार किया गया है। इनमें उल्लेखनीय है डॉ० मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थान का पितृ साहित्य'<sup>५</sup> और डॉ० सावित्री सिन्हा का 'मध्यकाशीन कवयित्रियों'<sup>६</sup>। डॉ० मेनारिया का कथन है कि 'इनमें (माहेरो की प्रतियों में) कहीं भी कृत होने का संकेत नहीं है। वस्तुतः माहेरो की हज़ारों पोथी में उसके भीतर कृत होने के संकेत ही नहीं उल्लेख भी है। डॉ० सिन्हा के अनुसार माहेरो की भीतर की रचना न मानना व्यापकमत नहीं है। उन्होंने डॉ० श्रीकृष्णलाल के 'अनुमान' का अपने अनुमान से काटा है कोई तर्क नहीं दिए है।

मुबारक के प्राचीन लेखक जैसे एच० एच० मेहता<sup>७</sup> या० नि० मेहता<sup>८</sup> आदि ने माहेरो का उल्लेख मात्र किया है। उन्होंने इसकी प्रामाणिकता पर विचार नहीं किया। आशुतोष के कुछ मुजराती विद्वान् तो इस मत के हैं कि मध्मी रचनाएँ भीतर कृत हैं ही नहीं।<sup>९</sup> प्राचीन मुजराती साहित्य के प्रसिद्ध सम्पादक के० का० आरसी बंबई से प्रकाशित माहेरो को ही भीतर कृत मानते हैं।<sup>१०</sup>

इसने मध्मीग्रन्थ के कारण यह आशयक हो जाता है कि इस ग्रंथ की प्रांश-रिक्त परीक्षा हो।

(१) इस ग्रंथ का नाम 'मरघीमी रो माहेरो' भी मिलता है

(२) बीरबाई की पदावली, पृष्ठ १४

(३) बीरों भापुरी, पृष्ठ ६० (४) बीरबाई, पृष्ठ ८० (५) पृष्ठ ६२

(६) पृष्ठ १३१

(७) ए मोतीलाल ऑल बीरबाई सम्पाद १६ पृष्ठ १०३

(८) बीरबाई पृष्ठ ८३

(९) मुजरात एंड इट्स लिटरेचर, के० एम० मुंशी पृष्ठ १८३

(१०) कविचरित पृ० १६५

इस र्वय की निम्नलिखित हस्तलिखित पोथियाँ सेलक को मिली हैं ।

क्रम	पोथियों का प्राप्तिस्थान	लिपि काम	लिपि स्थान	संग्रहण (जिसके संकलन में यह पोथी का संग्रहण हुआ)	विशेष विवरण
(क)	काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी	ईसाख कृष्ण पंचमी बुधवार १८१३ वि०	बजार मध्ये श्री सरस्वतीनाथजी के मंदिर में	रामानुज	(१) नेत्रवद्वारिका वास की पुस्तक से 'उत्ताड्यो' । (२) पोथी पूर्ण है ।
(ख)	साहित्य सम्मेलन संप्रदाय प्रयाग	ज्येष्ठ शुक्ल च मीन कार सं १२१० वि०	नागापुर (मीनवाँ) बूढ़ी एम्प	—	पूर्ण पोथी
(ग)	ब्राह्म विद्या मंदिर उज्जैन	वाकच शुद्धी ५ सं १२१२	रणीबा	रामानुज	पूर्ण पोथी
(घ)	महाराज परमेश्वरधाम झांझौर	—	—	रायानंदी संप्रदाय (श्रीबीबानी बाबा)	अपूर्ण पंक्ति ५० पृष्ठ नहीं बीच में श्री ५० पंक्ति ५० पंक्ति ५०

(४) श्री हरिनारायणजी पुरोहित का व्यक्तिगत गंगाहास्य (बो पोटियों की प्रति-मिपि)

(१) बंदगढ़ की प्रति

घासोज बही १३  
सं १२१२

जयपुर (महाराज  
मानसिंह राज्य मध्ये)

-

जर्म

(२) नरोत्तमदासजी की प्रति

-

-

-

जपूने

(५) श्रीमालीजी उदयपुर, के पास सुरभीत छाँटि आभय की प्रति

-

-

रामानुज

जपूने ४ (२)

पोषी ऐ अभिज

(६) तटस्वती भांडार, उदयपुर

-

-

-

मुझे देखने को नहीं  
मिली, श्रीमालीजी  
से पना सजा कि  
छाँटि आभय वाली  
प्रति से मिलती है ।

(७) मुंसी देवीप्रसाद द्वारा उन्मिश्रित संक्ष

बिस्तकी बाजारपुल पोषी कीनजी भी यह तो प्रजा है, परंतु उन्मिश्रित संक्ष बोड़े-  
बाहुल भँटर के साथ समग्र हास्य पोषियों में प्राप्त है ।



उपर्युक्त पोथियों में सामान्य मधुखियों और प्रारम्भ तथा अन्त की पंक्तियों में कुछ थोड़ा-थोड़ा के अतिरिक्त शायद किसी प्रकार का विशेष भेद नहीं मिलता। सामग्री की इस एकता के अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण साम्य उनमें और हैं (१) वे सब सं० १६०० बिक्रमीय के आसपास लिखित हुई हैं। (२) उनमें लिपिकार या उन्हें सुरक्षित रखनेवाले जोश रामानन्द या रामानुज सम्प्रदायी सन्त महन्त रहे हैं।

अपर नरसी मेहता के सम्बन्ध में के० एम० मुंशी का मत मान लिया जाय तो यह माहेरो मीरों कृत हो ही नहीं सकता क्योंकि उनके अनुसार नरसिंह के काल की मर्यादा सं० १५६६ से पूर्व और सं० १६६० के बाद नहीं जाती। माहेरो की कथा नरसिंह मेहता के बुढ़ापन की वजह है, जो नरसिंह के संबंध में उक्त मत के मान लेने पर किसी हिसाब में संवत् १६१६-२ के पहले की नहीं हो सकती और मीरों उस समय इस बरती पर नहीं उठी थी। पर, इस मत से गुजराती विद्वान् संतुष्ट नहीं हैं।<sup>१</sup> अतः माहेरो तथा उसको मीरों के काल तक पहुँचानेवासी सामग्री की परीक्षा आवश्यक है।

प्रस्तुत माहेरो के प्राचीन रचना होने के अम का एक कारण 'नरसी मेहता को मावेरो' नाम से प्रसिद्ध एक और ग्रंथ है। इसकी कई हस्तलिखित पोथियाँ प्राप्त हैं।<sup>२</sup> इसके एक प्रकाशित संस्करण को देखकर गुजराती के प्रसिद्ध धर्मपथ विद्वान् पं० के० का० शास्त्री ने इसको मीरों कृत मान लिया है<sup>३</sup> और इसे पढ़कर हिन्दी के एक धर्मपथ की उद्योगसिंह मटनामर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'विक्रम संवत् १६१६ और आतिबाहल सं० १४८१ में इसकी रचना पूरी हुई।'<sup>४</sup>

शास्त्री जी का अनुमान तो केवल व के नाम पर ही आधारित है। ग्रंथ

(१) गुजरात एंड इट्स लिटरेचर, के० एम० मुंशी, पृष्ठ १८५, २००

(२) कविचरित, के० का० शास्त्री, पृष्ठ ४५

(३) एक 'रामद्वारा जोनी बापड़ी उद्योगपुर' संग्रह के मुद्रके में भी है। इसका नाम इस प्रकार दिया हुआ है 'मल्लकस्तन राग कोमुहल नरसिंह अन्ता को धाम्हेरो शिखरकर कर्त'

(४) कवि चरित, के० का० शास्त्री, पृष्ठ १६५

(५) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की ओर 'तृतीय भाग' पृ० ११०

कीपुष्पिका तथा बीच-बीच में 'रतना छाती' तथा 'शिवकर्म' की छाप' से ही उनके अनुमान और सत्य का अन्तर स्पष्ट हो जाता है ।

भटनागर जी का निष्कर्ष उस ग्रंथ की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो या न हो लेकिन यह हमारे आलोच्य ग्रंथ की दृष्टि से अवश्य विचारणीय है क्योंकि उसमें एक स्थान पर इसका ('मीरा-मिथुना' संवाद में मिले माहेरो का) इस प्रकार उल्लेख है कि मानो यह उससे काफ़ी पुरानी रचना हो ।<sup>१</sup> यदि उस माहेरा का रचना-काल १६१६ मान लिया जाय (जैसा कि भटनागर जी का मत है) तो मीरा कृत कह जानेवाले माहेरा का रचना-काल इससे पूर्व का मानना पड़ेगा और ऐसी स्थिति में उसके मीरा कृत होने की संभावना ही अधिक प्रतीत होने लगेगी । पर सत्य यह नहीं है । 'मक्तवत्सल बिरहराग कौतूहल नरसी मेहता को माहेरो' के रचना-काल पर विचार करने से यह भ्रम तुरन्त दूर हो जाता है ।

जिम रूप में यह रचना (मक्तवत्सल बिरहराग कौतूहल नरसी मेहता माहेरो) आज हमारे सामने है उस रूप में उसमें रतना छाती कृत ग्रंथ बहुत ही कम है । जो है उनके मूल अधिकृत होने का प्रमाण नहीं है । वर्तमान ग्रंथ तो निश्चित रूप से किसी 'प्राचीन प्रति' और 'द्विज गणेश शीकर तणी प्रादि नीड़ कुल सार' के मुख से गुजर उतार ग्रंथों के आधार पर इन्दौर-निवासी रामचरण शिवकरन ने संवत् १८२३ में रचा या और 'प्रकाश राम साव (सागर) छापाखाना में छपवाया था ।' इसी की प्रतिलिपि एक गुटके में किसी ने की और यह गुटका किसी तरह 'रामदास' जयपुर के पौबी-नगढ़ में पहुँच कर प्राचीन ग्रंथों में स्थान

(१) महिमा मर्महरा तपी, छाती कही बघाय'

• • •  
'छाती रतनो यूँ जने पड़े सहस्रफल होय'

(२) मीरा मिथुना बहुत बछानी । सो बहु कथा, इहाँ नहि धानी—मक्तवत्सल बिरह राग कौतूहल नरसी मेहता को माहेरो

(३) यह ग्रंथ मूलतः रतना छाती (बड़ई) ने लिखा था । इस कृति से जो क्यान्तर मिलते हैं उनमें धरा भी धनेक स्थलों पर रतना छाती की छाप मौजूद है ।

(४) ग्रंथ पुरातन प्राचिनी परत मिली मनमथ ।

प्रति महिमत बहु कष्ट से सोपव कइयो तरब ॥

द्विज गणेश शीकर तणी, साव नीड़ कुलसार ।

कंड हुती बोही मिली मुख तै सपी उतार ॥

( धीरे धीरे पृष्ठ पर )

पा गया। बाब में यह ग्रंथ कई जगह प्रकाशित हुआ। शिवकर्ण के अपने कवन से ही स्पष्ट है कि इसमें मूल रूप भी अधिकृत या प्रामिषित नहीं रहा है। और कुछ भी हो, हमारा प्रयोजन तो सं० १६१६ बि० तिथि से है। यह तिथि दोहों में रखी गई है और शिवकर्ण ने स्पष्टतः कह दिया है कि 'बोहा सकल भवे बरे है।' अतः प्राचीन मूल ग्रंथ की स्थिति मान लेने पर भी इतना तो निश्चित ही है कि 'तिथि' वाला ग्रंथ गनीन है। अगर वह बात शिवकर्णजी ने न भी कही होती तो भी संवत् १६१६ को इस छति का रचना-काल मानने का कोई कारण नहीं था क्योंकि जिन ग्रंथों में यह तिथि है वे माहेरो के रचना-काल की ओर नहीं कृष्ण भगवान् द्वारा नरसी की ओर से माहेरो भरने की बटना के काल की ओर संकेत करते हैं। एक उद्धरण से यह बात स्पष्ट है —

माघ मास सुद सप्तमी आश्विन अरु रविवार ।  
माहेरो नरसी तर्फी सावन मयो अंबार ॥  
सोसा छे सोसा तर्फी विक्रम संवत् शान ।  
बबदाई इक्ष्वासिनी श्राफ साविबाहान ॥  
भक्तों के हित कारण अरु हरि बाँधो मौड़ ।  
माहेरा में कपिया सागा छप्पन कोड़ ॥

अतः यह स्पष्ट है कि रतनाकाटी द्वारा रचित और शिवकर्ण द्वारा संशोधित माहेरो अपने वर्तमान रूप में सं० १६२५ की रचना है, न कि सं० १६१६ की और इसमें 'मीर-मिबुना' संवाद के रूप में प्रचलित माहेरो के उल्लेख का इतना ही अर्थ है कि यह ग्रंथ सं० १६२५ के आसपास काफी प्रचलित था और इसकी मौखिक तथा लिखित परंपराएँ प्राप्त थी।

पिछले पृष्ठ का शेषार्थ :

अपनीसी पन्नीस ब सेवसर विक्रम की ।  
छाफे सावासी गड अंन गुड कीन्हों हैं ॥  
कह शिवकर्ण सुकसारथ प्रकाश राम ।  
साध छापाबाता में छपस्य त्पार कीन्हों हैं ॥"—पृष्ठ १०१

(१) "कह पद भये जगत्प्रकट, आगने भये सुधार  
भये भिजाये अन्तरे, असुभ भये सब द्वार  
बोहा सकल भवे बरे अरु सोरठा गनीन  
गुनि भग मायन भक्त हरि सबहि रसिक कर लीन ॥"—पृष्ठ १०५

(२) यही, पृष्ठ १०० ।

शिवकर्ण द्वारा सन्तोषित उपर्युक्त माहुरों के सम्प्रेष की अपेक्षा अधिक भ्रम उत्पन्न करनेवासी निम्नलिखित बातें हमारे आभोग्य माहुरों में ही हैं जिनके कारण प्रायः हमें मीराँ कुत मानने की भूल हाती रही है—

(१) समस्त कथा मीराँ के मुख से कहलवाई गई है और इसकी ओता है 'मिथुसा' जो मीराँ की सखी मेविका और मंगिनि कहती जाती है।<sup>१</sup>

(२) चरित्रतर पोथियों की पुष्पिका में "मरली केरो माहुरो गावे मीराँ-राम" दिया गया है।<sup>२</sup>

(३) १, १, ७ और ८ में प्रकाशों में मीराँ की छप के कुछ पद भी हैं।

(४) माया में कहीं-कहीं राजस्थानी तथा गुजराती की मिलावट है।

पर इनमें से किसी तर्क के कारण माहुरों को मीराँ-रूत खिन्न नहीं किया जा सकता। इस विषय में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं —

[१] अपभ्रंस में संवादों के रूप में कथा प्रस्तुत करने की परिपाटी रही है। हिंदी में भी पृथ्वीराज रासो और मानस जैसे ग्रंथ संवादों के रूप में हैं। कथाओं को आभारपत्र पनु-पद्धियों देवी-व्यवस्थाओं और पौराणिक तथा पूर्ववर्ती पुराणों के संवाद के रूप में प्रस्तुत करने की परिपाटी है। अतः इससे तो यही अनुमान लगाना उचित होना कि यह रचना मीराँ के बाद उम्र समय की है जब उनके चरित्र में पौराणिक अलौकिकता का समावेश हो चुका था।

[२] इसमें दिए गए मीराँ-छाप के पद बस्तुतः मीराँ रूत नहीं हैं। वे चरित्रतर मध्यभारत और राजस्थान व लोक-गीत हैं जिनमें मीराँ की छाप लगा दी गई है। नरसिंह मेहता के मुख से कहलाए पदों की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। वे उनके प्रामाणिक पद-संग्रहों में नहीं मिलते। एक स्थान पर तो मरलीजी मीराँ के बिप को प्रमत्त करने की बात का भी उल्लेख करते हैं।<sup>३</sup> मीराँ स्वयं इस प्रकार की बात उनमें कैसे कहलवाई सक्ती बा?

[३] पञ्चवर्ती गुजराती संघों में तुलना करने पर तो निश्चित हो जाता है कि यह माहुरों वादी बाद की रचना है।

(१) प्रथम प्रकाश के धारम में ही — "मरली की माहुरो गावे मीराँवासी" माहुरों की हस्तलिखित पोथी (घ) तथा "मैं मीराँ हम उबक" माहुरो ह. नि. पोथी (क)

(२) कहीं-कहीं 'मीराँवासी' भी मिलता है।

(३) "मीराँ" तो बारी बात का लफट, बात तोना बिबदा पीदा "

कथा-संगठन की दृष्टि से प्रस्तुत माहेरो के दो भाग किए जा सकते हैं —

(क) पहले में भरसी महता के पूर्व जन्म की कथा रखी जा सकती है, जिसमें लेखक ने बसात पीपा और रामानन्द की कथाओं को जोड़ दिया है। पीपा और रामानन्द के महत्व की प्रतिष्ठा के इस संघेदन प्रयत्न से समझाई कि इसके रचयिता का सम्बन्ध पीपा के राजवंश या वर्मवंश से सम्बन्ध होना। यह धंस विभिन्न पोषियों में कुछ कम-अधिक है।

(ख) दूसरा भाग 'माहेरो' की मूल कथा का है।

कथा-संगठन की दृष्टि से यह दूसरा भाग गुजराती कवि विष्णुदास कृत 'कुँवरबाईनु मोसाळु' (सं० १६२४ के आसपास की रचना) बिस्वनाथ बानी कृत 'मोसाळु' (रचनाकाल सं० १७८८) और प्रेमामन्द कृत 'कुँवरबाईनु मामेब' (रचनाकाल सं० १७४६) की परंपरा में आता है।

हमारे आसौख्य माहेरो में कथा का मूल ढाँचा ही प्रेमामन्द से नहीं लिया उसकी पंक्तियाँ तक कर्मों की र्यों रखी हैं। उदाहरण के लिए

प्रेमामन्दकृत आमेब

हमारा आसौख्य माहेरो

- |  |   |
|--|---|
| (१) बहु मानी मोटी गार, मध्यपमा मळी         | बहु मानी मोटी गारि, मध्यप तरियां छ          |
| गरि छानी बाकी बात साकल पियमछे <sup>१</sup> | करे बाकी छानी बात साकर पेंवनी <sup>२</sup>  |
| (२) सोहें अघर उपर बेसरमा मोती <sup>३</sup> | सोहें अघर ऊपर गात बेसर ना मोती <sup>४</sup> |
| (३) माला मोतीहार उपर लजके छे               | माला मोत्यानु हार ऊपर सतफ छ                 |
| बदाव चुडलो हाथ कंकण बलके छे                | सोह जवानु चुडो हाथ कंकड लमक छ <sup>५</sup>  |
| (४) क्या छेठ छे सारंगपाणि रे               | छठि बाये कु सारंगपाणी                       |
| साबे लक्ष्मी क्या छेठानी रे। <sup>६</sup>  | संय लक्ष्मी आई छेठानी <sup>७</sup>          |
| (५) छेठतां बोत्या सुंदर त्याम रे           | मिसता न बात्या सुंदर त्याम                  |
| माई प्रवट न लेखो नाम रे। <sup>८</sup>      | म्हारो प्रवट न लेख्यो नाम <sup>९</sup>      |

(१) 'संबत सतर घाठ अग्निबा' — 'बीर कवि अग्निवार' — भरसी मेहेरानु आख्याय — 'माहामेरा अग्नि' , संपादक, ही० वि० पारेल, पृष्ठ ७३

(२) 'संबत सतर अंगणबासमो आतो सुदि नवमी रविवार बी' — 'कुँवरबाईनु मामेब', संपादक नवलराम पृष्ठ ४५

(३) कवच ११-३४२, ३४३

(४, ६, ८) ५वाँ विधाम ह० वि० पोषी (क) (५) कवच ११-३४५

(७) कवच ११-३४८, ३४९ (८) १३-४५५ (११) १३-४६५

(१०, १२) छठा विधाम, (ह० वि० पोषी) — (क)

इस सन्देह के लिए कोई युग्मादय नहीं है कि प्रमानन्द ने धार्मिक माहुरों की पंक्तियाँ बुरा ली होंगी। प्रमानन्द माहुरों में ही प्रमानन्द की पंक्तियों के विरुद्ध कम मिसल है। फिर प्रमानन्द जैसे प्रसिद्ध धार्मिक रसमित्र कलाकार से माहुरों जैसी रसहीन साधारण कोटि की हिम्मी-रचना की नकल की संभावना भी नहीं हो सकती।

[४] इस माहुरों पर उमचरितमानस की बोहा-बीपाई वाली पद्यति तथा उसकी धम्मावली का भी काफी प्रभाव है। यद्यपि काशी मापरी प्रचारिणी की हस्तलिखित पोथी में छन्द के शीर्षक के रूप में 'बीपाई' शब्द मिसला है पर छन्द 'बीपाई' ही है क्योंकि उसमें १५ मात्राओं का ही निर्वाह किया गया है। इन बीपाइयों के बीच-बीच में दोहे और तोरटे रखे गए हैं। बीपाइयों और दोहों की संख्या में कोई नियम नहीं मिला। तीसरा प्रकाश<sup>१</sup> के पन्नाव् बोहा-बीपाई छन्दों के साथ कुछ पद तथा अन्य छन्द भी रख दिए हैं धन्वु।

तुलसी का प्रभाव माहुरों की रचनावली में और भी स्पष्ट है। उदाहरण के लिए निम्नांकित संक्षेप प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

बूढ़ साहि यह ठिब नहि पावें । तै घर अरु छि नरक में जावें ॥  
कुल सब माठ-पिता छै मामी । बूढ़ मुझाय भयै हैं स्वामी ॥

‘आकी कछी भावना तपी वरछन होय  
‘मिल ही नागर मण्डप जेठा । गए बहु प्रभु रूपानिधेता ॥’

—इत्यादि

[५] रचयिता — माहुरों को देखने से यह और पता लगता है कि इसका रचयिता रामानन्द या रामानुज के संप्रदाय से अथवा सम्बन्धित रहा है क्योंकि (१) माहुरों की लगभग सभी प्राप्त पोथियाँ रामानन्दी या रामानुज संप्रदाय के मंत्रियों या गुरुओं से संबंधित व्यक्तियों द्वारा ही लिखित हुई हैं। (२) संक्षेप में रामानन्द की विशेष और आश्चर्यपूर्ण प्रणति की गयी है। वीर-मन्वन्दी बटनाएँ रामानन्द की ही महानता की चीज हैं।

कपीला गिर में सोमामन्दी गुरुस्तरवार के मंदिर के पास रामानुज मय-धाम का एक कोण है। वे लीय धन भी सखी-भाव से मयकान् को भजत हैं। उनी धानु बरिबार में एक मल कृपानिवास हुए थे। उन्हीं के शिष्य मीरबास ने इस माहुरों की रचना की। माहुरों के धर्म में इस बात की सूचना भी

(१) उर्जंग की ह० लि० पो० में द्वितीय प्रकाश  
(२) ह० लि० पो० (क) पृष्ठ २१

कथा-संगठन की दृष्टि से प्रस्तुत माहेरो के दो भाग किए जा सकते हैं —

(क) पहले में परसी मेहता के पूर्व जन्म की कथा रखी जा सकती है जिसमें लेखक ने बजाव पीपा और रामानन्द की कथाओं को जोड़ दिया है। पीपा और रामानन्द के महत्त्व की प्रतिष्ठा के इस सचेतन प्रयत्न से लगता है कि इसके रचयिता का सम्बन्ध पीपा के राजवंश या वर्मवंश से सम्बन्ध होया। यह संशय विभिन्न पंक्तियों में कुछ कम-अधिक है।

(ख) दूसरा भाग 'माहेरो' की मूल कथा का है।

कथा-संगठन की दृष्टि से यह दूसरा भाग गुजरती कवि विष्णुदास कृत 'कुँवरबाईनु मोसाळु' (सं० १६२४ के आसपास की रचना) त्रिस्वनाथ बानी कृत मोसाळु- (रचनाकाल सं० १७०८)<sup>१</sup> और प्रेमानन्द कृत 'कुँवरबाईनु मामेव' (रचना-काल सं० १७४६)<sup>२</sup> की परंपरा में आता है।

हमारे आलोच्य माहेरो ने कथा का मूल बाचा ही प्रेमानन्द से नहीं लिया उसकी पंक्तियाँ तक क्यों की त्यों रख दी हैं। उदाहरण के लिए

प्रेमानन्दकृत मामेव

हमारा आलोच्य माहेरो

- (१) बहु नानी मोटी नार मध्यमा मळी बहु नानी मोटी नारि, मध्यम ठरिमा छ  
करि छानी बाकी बात साकल पिबसळे<sup>३</sup> करे बाकी छापी बात साकर पेंबनी<sup>४</sup>
- (२) सोई धयर उपर बेसरना मोती<sup>५</sup> सोई धयर ऊपर गात बेसर ना मोती<sup>६</sup>
- (३) नासा मोटीहार उपर लमळे छे नासा मोत्यानु हार ऊपर लमळ छ  
जबाब नुबनो हाथ कंकण लळळे छे<sup>७</sup> सोह जबाब नुबो हाथ कंकड ललळ छ<sup>८</sup>
- (४) क्या शेठ छे सारंगपाणि रे उठि बाये नु सारंगपाणी  
साये लक्ष्मी क्या शेठाणी रे।<sup>९</sup> संघ लक्ष्मी आई शेठाणी<sup>१०</sup>
- (५) घेतता बोस्या सुंदर स्पाम रे मिमता न बोस्या सुन्दर स्पाम  
मार्च प्रपट न लेखो नाम रे।<sup>११</sup> म्हारो प्रपट न लेख्यो नाम<sup>१२</sup>

(१) 'संस्कृततर छाठ अमिमबी' 'कैल कवि अमिचार' — 'परसी मेहतानु आख्याण — माहामेरा चरीत्र', संपादक, ही० मि० पारेक, पृष्ठ ७३

(२) "संस्कृततर धोगवचासयो आतो सुवि लक्ष्मी रचिचार बी" — 'कुँवरबाईनु मामेव' संपादक लक्ष्मीराम नृप ४५

(३) कडबुं ११-३४५, ३४३

(४, ५, ८) ५वाँ विधाय, ह० मि० पोली (क) (५) कडबुं ११-३४५

(७) कडबुं ११-३४५, ३४६ (८) १३-४५५ (११) १३-४६५

(१०, १२) छठाँ विधाय, (ह० मि० पोली) — (क)

इस सत्यह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है कि प्रमाणम्ब ने धामोष्प माहरो की पंक्तियाँ बुरा ली होंगी। धामोष्प माहरो में ही प्रमाणम्ब की पंक्तियों के विद्वत् रूप मिलत हैं। फिर प्रमाणम्ब जैसे प्रसिद्ध मौखिक रसमिद्ध कलाकार स माहरो जैसी रसहीन साधारण कोटि की हिम्मी-रचना की गदग की संभावना भी नहीं हो सकती।

[४] इस माहरो पर रामचरितमानस की दोहा-बौपाई वाली पद्धति तथा उसकी धम्मावली का भी काफी प्रभाव है। यद्यपि काफी नामरी प्रभारिणी की हस्तलिखित पोथी में छन्द के दीर्घ के रूप में 'बौपाई' शब्द मिलता है पर छन्द 'बौपाई' ही है क्योंकि उसमें १६ मात्राओं का ही निर्वाह किया गया है। इन 'बौपा'इयों के बीच-बीच में दोह और सोरटे रजे गए हैं। 'बौपाइयों' और बाहों की संख्या में कोई नियम नहीं मिलता। तीसरे प्रकाश के पन्चाय दोहा-बौपाई छन्दों के साथ कुछ पद तथा अन्य छन्द भी रक्त दिए हैं धस्तु।

तुलसी का प्रभाव माहरो की धम्मावली में और भी स्पष्ट है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित ग्रंथ प्रस्तुत किए जा सकन हैं—

सुख साहि यह दिन नहि पावें । ते जर अचछि जरत में जावें ॥  
कुस सब मात-पिता छे नामी । भुङ भुङाय जये हैं स्वामी ॥

आकी लसी जाबना लयी दरघन होय  
मिल ही नामर मणाय जता । गए यह प्रभु कृपानिदेता ॥

[५] रचयिता — माहरो को बचने स यह और पता लगता है कि इसका —इत्यादि

रचयिता रामानन्द या रामानुज के संप्रदाय स प्रवरस सम्बन्धित रहा है क्योंकि (१) माहरो की समयम सभी प्राप्त पोथियाँ रामानन्दी या रामानुज संप्रदाय के मंदिरों या गढ़ियों से संबंधित व्यक्तियों द्वारा ही लिखित हुई हैं। (२) ग्रंथ में रामानन्द की विवेच और माहरोपूर्वक प्रशस्ति की गयी है। पीताम्बम्बनी पटनाय रामानन्द की ही महानता की घोषक हैं।

रत्नाया पाँच में मामामम्ब की बृहस्पतरवर के मंदिर के पास रामानुज मंत्र-दाय का एक कोठ है। वे लोग सब भी मन्त्री-यात्र से मयनाय को मजते हैं। जमी साबु बरिबार में एक मछ कृपानिवाह हुए थे। जहाँ के शिष्य मीरादास ने इस माहरो की रचना की। माहरो के श्रव में इस बात की सूचना भी

(१) उज्जैन की ह० लि० पो० में द्वितीय प्रकल्प  
(२) ह० लि० पो० (क) पृष्ठ २१



है।<sup>१</sup> रणौजा में इन साधुओं की प्राचीन परंपरा का विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है। मिथबंशु-बिनोद में मातंगा के एक मीरदास का उल्लेख है<sup>२</sup> जिन्होंने संवत् १६१५ में नरसी महता का मामेरा लिखा था।

[६] रचना-काल—मेमानन्द के रचना-काल के विषय में कोई मतभेद नहीं है। मेसक ने कृति के अन्त में स्वयं लिख दिया है। आशोक माहेरो की रचना सं० १७४६ वि० के आरंभ में ही कभी हुई होगी। माहेरो के रचना-काल की परवर्ती सीमा सं० १८२७ है। प्राप्त प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रंथ का लिपिकाल यही है। इसकी पुष्पिका में लिखा है "वैष्णव आरिकादास जी का पुस्तक चूँ उठाएयो"।<sup>३</sup> इससे

• १८२७ से पूर्व लिपिबद्ध ग्रंथों का अस्तित्व सिद्ध होता है। समय-वृत्त इसी समय इस पोली का नैनवी (बूंदी) और रणौजा (मध्यभारत) में लिपिबद्ध होना और आकोर में पहुँच आना भी इस बात की पुष्टि करता है। अतः सम्भावना यही है कि इसकी रचना सं० १८२७ से आठ-पौष दशाब्दी पूर्व अथवा दो वर्ष होनी। मिथबंशु-बिनोद में दिया हुआ संवत् ठीक मानना उचित नहीं होगा।

वस्तुतः मीर-मिथुभा संवाद में लिखा माहेरो सं० १७४६ और सं० १८७६ के बीच की रचना है। अधिक संभावना यह है कि यह सं० १८०० के आसपास या १९ वीं शताब्दी (विज्जनीय) की पूर्वाद्ध में लिखा गया होगा। मेसक की मीर की कृति यह नहीं है।

[७] सतमामानु कछनु (सत्यभामाजीनु कसथ)

सतमामानु कछनु (२०-४) अस्सी चरणों की एक संक्षिप्त रचना है।<sup>४</sup> यह कछनु सबसे पहले किसी हस्तलिखित पोली के आधार पर बृहत् काम्य बोलन में प्रकाशित हुआ।<sup>५</sup> हिन्दी में सबसे पहले श्री बजरत्नदास ने मीर-माधुरी में 'सत्यभामा का रोप' शीर्षक देकर इसे मीर की रचनाओं के अन्तर्गत रखा था।<sup>६</sup> मीर-माधुरी में प्रकाशित रचना 'बृहत् बोहन' से ही उद्धृत है। श्रीमती "धनगम" ने मीर-बृहत् पद्यावली में इसे प्रभूप

(१) मम बिनि बुद्धि प्रभाव हरिगुण कृपानिवात

नरसीकोरी माहेरो दाबै मीरदास ॥ बही, पृष्ठ २७, ४४

(२) 'मिथबंशु बिनोद' — प्रथम भाग नाम (२०७३।१)

(३) काजी नाथरी-प्रचारिणी सभा की प्रति (क)

(४) २१ चरणों का यही जैसा कि डॉ० मोतीलाल बनारिया का कथन है।

(५) ४ वा संस्करण, पृष्ठ ८८५

(६) बही, पृष्ठ ६६

प्रकाशित किया है।<sup>१</sup> वहाँ उसे एक स्वतंत्र प्रबन्धनमक रचना मही पदक रूप में दिया गया है। हिंदी के संघों में इस रचना को लेकर बिनाप कर्षा मही हुई। कबल डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इसका उत्पन्न धीर उसके बल्लभ हुन होने का अनुमान किया है।

इसकी वा हस्तलिखित पोथियाँ लेखक को मिली हैं —  
(क) सरस्वती भण्डार पुस्तकालय 'उदयपुर' में  
(ख) महाराज परमस्वरवास 'ठाकोर' क संघ में

पोथी (क) में १ छोटे-छाटे घण हैं। प्रस्तुत रचना "सत्यमामाजीनु क्स्वपु" शीर्षक से "डोला माक की बात" क पदवाए पुष्ठ २ ७ स २१६ तक लिपि-बद्ध है। इसकी पुनिक्रम से ज्ञात होता है कि यह रचना संवत् १९३३ के बैसाख बही ७ गुरुवार को किमी बिबाकी ने लिपिबद्ध की थी।<sup>२</sup> पोथी (ख) अनुर्ण है। उसमें भीरी मूर नरनी भासण धादि क पदा के साथ यह रचना संपूर्ण है। लिपि-काल इसमें मही दिया हुआ है।

इन संघ के विषय में डॉ० मेनारिया का कथन यह है कि "उदयपुर के सरस्वती भण्डार की जिस गुटकाकार प्रति में यह रचना मिलती है उसी में पध्याजीनु क्स्वपु नाम की एक बूछरी रचना भी है। उसक रचयिता का नाम बल्लभ दिया हुआ है। इन संघ की मापा-वैसी उपर्युक्त सत्यमामाजीनु क्स्वपु की मापा-वैसी से पूर्वत मिलती है। इसलिए अनुमान होता है कि सत्यमामाजीनु क्स्वपु का कर्ता भी बल्लभ ही है।"<sup>३</sup>

इन विषय में धासिक रूप से लखक का निष्कर्ष भी मही है जो डॉ० मेनारिया का — कि 'क्स्वपु भीरी-कृत् मही है परन्तु डा मेनारिया के जो तक धीर अनुमान हैं उनमें लेखक सहमत मही हैं।

मेनारिया जी ने सत्यमामाजीनु क्स्वपु धीर 'पध्याजीनु क्स्वपु' को पास-पास लिपि-बद्ध बेलकर ही दोनों को एक ब्यक्ति की रचना मान लिया है। वस्तुतः इन गुटकों में घनक ब्यक्तियों की रचनाएँ पास-पास संक्रमित हैं। इस आधार पर उक्त निष्कर्ष अनुचित है।

- (१) बही पुष्ठ २७२, ३९ बाँ पद
- (२) सरस्वती भण्डार पुस्तकालय उदयपुर — हस्तलिखित पोथी, संख्या ८८५
- (३) राजस्थान का विपल साहित्य, मेनारिया, पुष्ठ ६३

प्रस्तुत रचना निश्चित रूप से बल्लभ-कृत नहीं है। इसके कारण निम्न लिखित हैं—

(१) इस रचना में बल्लभ की छाप नहीं है। बल्लभ द्वारा लिखे बितने भी परवा और गरजियाँ हैं उन सबमें उसकी छाप मिलती है।<sup>१</sup>

(२) बल्लभ-कृत एक गरजा है 'सत्यमामागो गरबो'।<sup>२</sup> उसमें बल्लभ की छाप स्पष्ट है। बल्लभ की दृष्टि से प्रस्तुत 'स्वभु' और 'सत्यमामागो गरबो' में विमल मेह नहीं है। दोनों सत्यमामा के कठने और कृष्ण हाथ उन्हें बनाने की बटना पर आधारित हैं। परन्तु धर्मव्यक्ति-कीर्तन भाषा-ब्रह्म आदि की दृष्टि से इतने मिल हैं कि एक व्यक्ति की रचनाएँ नहीं हो सकती। दृष्टव्य है कि—

(क) राजा नु स्वभु में जोन सख की आनुति हर परबमें है और तुकान्त छंद पर आधारित है। 'सत्यमामानुस्वभु' में एक पंक्ति छोड़कर आनुति है और वह तुकान्त का आधार नहीं है।

(ख) 'सत्यमामाजीनु स्वभु' के प्रवाह में संवरता है "पद्यानु स्वभु" में उसके बिच्छ तब अधिक है।

(ग) राजानु स्वभु में धस्त में राजा-माहुरम्य दिया है। 'बैज्ज बगनों दास' कहकर संप्रदाय की छाप लगा दी है अर्थात् उसमें बालिकता का संकेतन प्राप्त बहुत अधिक है।<sup>३</sup> सत्यमामाजीनु स्वभु काव्यात्मक ढंग से ही समाप्त हो गया है, इसमें काव्यात्मक नाटकीयता का ध्यान अधिक है। बालिकता का आग्रह नहीं है।<sup>४</sup>

(१) बु० का० हो० भाग १ अतुर्ब सामाजिक आनुति पृष्ठ ६८४ से ६९३ तक बही, सामाजिक आनुति भाग २, पृष्ठ ६८० से ७०१ तक।

बही, भाग ४ पृष्ठ ६६३ से ६८२ तक

उदाहरण के लिये, धन्यवारगो घरबो — 'कहुबल्लभ मेबाहे—'

कलिकालगो गरबो — 'बल्लभ गुतामली बिकती'

महाकालीगो गरबो— 'घरबो पाए से बल्लभ—'

(२) बु० का० हो० भाग ४, पृष्ठ ६९३

(३) "दास हरिरत कया अमान के के धनेष के रे लीन  
तेहने कया करे रे भगवान छेर गर्म संघन करे रे लीन  
बल्लभ बैज्ज बगनों दास के हरि घरमे नले रे लीन।"

—सरस्वती भण्डार की हस्तलिखित पोथी, पृष्ठ २१७

(४) श्रीराम लक्ष्मी रे लीन पधारिये रे लीन

सत्यमामागो बीजल कीर्ण कय जो।

—बु० का० हो० भाग १, ख० का० आनुति, पृष्ठ ५५७

(ब) सतभामाजीनु क्यपुं भयभाहृत धार्मिक भावुकतापूर्ण कोमल लम्बा-बनी में लिखा गया है।

यदि बस्सन की यह रचना प्रकाश में न आती तब तो मेनारिया जी क धनुमान के लिए भयकाय या पर इस रचना के मिलने पर इस धनुमान की निराधारता स्पष्ट है।

कुछ मुजराजी विद्वानों ने मुझे को मिला है कि यह क्यपुं "मोक्षिन्द" कवि इन है पर मोक्षिन्द इन "क्यपुं" एक भिन्न रचना है। वह बिद्या समा के कई हस्त-लिखित संघों में संगृहीत मिलती है।

"सतभामाजीनु क्यपुं" के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें भी ध्यान देने योग्य हैं —

(१) यह रचना एक गरबा है। गरबा के तीन संघों में से एक को मिल है। उनमें भीरों की छाप के गरबा भीर गरबी हैं। उनमें भी भीरों की छाप की यह रचना नहीं है। किसी धर्म्य प्राचीन पोबी में भी यह रचना नहीं मिलती। बन्सुठ बस्सन भट्ट ही यह व्यक्ति या जिसने काव्य में गरबा-गरबी का प्रथम बार प्रचलन किया, भीर वस्त्रय का समय समू १७०४ के आसपास अर्थात् भीरों के लगभग २५० वर्ष बाद का है।

(२) इस रचना में भीरों की प्रचलित छाप नहीं है। कबल इतना है —

सतभामाजीनां पीवन कीबा धर्म्य जो ।  
हममें 'मोर्दानोस्वामी' रचयिता की छाप न होकर कबल 'हृष्य' बाची है। जब यकों को अत्यन्त प्रमिडि मिल जाती है तो उनके नाम का प्रयोग इस प्रकार से कर लिया जाता है जैसे मुरदास के स्वाम नरनी के साबलिया तुलसी के राम धारि ।

(१) किन हस्तलिखित पोबियों में रचना संगृहीत है उनकी संख्या इस प्रकार है—

(क) ५१७ (भीरों की छपी)

(ख) ६३३ (लिपि-काल सं० १८११)

(ग) ६७३ ई०

(घ) ६८३

(२) 'ये कविओ मुजराती कबितामां पहेला गरबा-गरबी वालन कीर्ता के ।

बृहत् काव्य बोधन भाग १ (१८९५ ई०) पृ० ६८४

(३) मुजरात एंड इट्स लिटरेचर, के० एम० मुंजी, पृष्ठ ९९७

(१) इसकी भाषा "मीर-नरती" युग की भाषा नहीं है। उसके काफी बाद के (विष्णु की १८ वीं शताब्दी और बाद के) प्रयोग भी इसमें हैं, सवाहरण के लिए —

(क) इस रचना की छाप में "मीरानो स्वामी" आया है। जो सम्बन्ध कारक का चिह्न है और इसका प्रयोग प्राथमिक गुजराती में होता है। मध्ययुगीन गुजराती और पश्चिमी राजस्थानी में सम्बन्ध के निम्नांकित रूप प्रचलित थे—

केरत तरात नर रत रहैं

प्राचीन गुजराती में 'नो' न आकर 'नर' रूप आना चाहिए था।

(ख) रचना का प्रथम शब्द है 'जाय्यु'। अपभ्रंश और पुरानी गुजराती में 'जाय्या' का रूप १३ वीं शताब्दी तक 'जायियत' था। बाद में मध्यकाल में 'जायित' हुआ। 'जाय्यु' प्रयोग १८ वीं शती और उसके बाद प्रचलित हुआ है।

(ग) इसी प्रकार 'सावे' शब्द प्राथमिक गुजराती है। इसका मध्यकालीन रूप था 'सावि' सं १६१५ की हस्तलिखित पोथी में जिसमें मीर के ८ पद भी हैं 'सावि' प्रयोग है 'सावे' नहीं।

इस क्लृप्ति में ऐसे अन्य घनेक शब्द हैं जिनके प्राथमिक होने के विषय में संदेह नहीं है जैसे बरताव (प्राचीन रूप बरताह) सत्यों प्राचीनरूप (उत्तरित) आदि।

अतः यह कहा जा सकता है कि 'सतनामानु क्लृप्ति' भवना सत्यमायावी नु क्लृप्ति अपन प्रस्तुत रूप में मीर की रचना नहीं है। मीर की क्या मीर के युग की भी रचना नहीं है।

[३] "नरसि महतापि हुंही"

बुनिया के रामदासी संशोधन मंदिर में एक हस्तलिखित पोथी में "नरसि महतापि हुंही" नाम की एक रचना सुरक्षित है। यह पोथी संप्रसूतों को बीड-मठ से प्राप्त हुई थी। इसके कुछ अंश खंडित हैं। भीतर रचनाओं की लिखावट और कागज आदि के आधार पर अनुमान यह है कि यह पोथी १५० वर्ष पुरानी अवश्य होगी।

'नरसि महतापि हुंही' के विषय में यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह 'मीर' छाप की वह रचना है जिसकी भाषा गुजराती और ब्रजभाषा मिश्रित है और जो मराठी-प्रवेश के एक गुटके में मराठी-भाषी द्वारा लिखित मिली है। इससे इतना निश्चित है कि गुटके में वह रचना किसी लिखित परंपरा से आई होगी।

यह "हुंही" १८ कवियों की एक छाटी-सी रचना है। इसमें "हुण" द्वारा द्वारका में नरसिंह मोहना की दो हुई एक हुंही को मकारने की घटना का सरल भाषा में वर्णन है। इसके प्रारंभिक तथा अंतिम अक्षर इस प्रकार हैं—

प्रारंभ      नरसिंह भहना जुनामइ नाम ।  
 हरि भक्तिना हउ विनाम ।  
 रात विषम कर हरिना नाम ।  
 हरिनो नाम बिना भीर नहीं नाम ।

•                      •                      •

अंत      कायल छह निषी जग  
 हुहि दळे नैषा छवों मान  
 बायो पुनारे रहबाम  
 बिन्ना ज्ञाना हरिनाशय  
 भहना ना मारु राम राम कहियो  
 यहि काम श्री द्वारका  
 यहि हुंहि मीरी नाम ।  
 मावन मावन परम पण पाव ।  
 हरि नरसिंह भहनाओं हुंहि समान ।

श्री हरिचरित मन्त्रक ।

काव्य-रचना भीर काव्य-रस की दृष्टि से यह रचना महत्त्वपूर्ण नहीं है पर इसमें हरि भक्ति के अति बड़े विरहाम भीर विरह-राग हरि-नाम-रस की महत्ता का एक सामान्य ध्वन्या के द्वारा सुन्दर व्यंजना की गई है।

'मीरी' नाम का प्रयोग इस हुंही में हुआ है। यह प्रश्न यह है कि इस रचना की प्रकृति मीरी कौन सी ? क्या यह बही मकतली की ओ 'पिरियर पागल' की माधुर्य-भक्ति के अरस भीर प्राप्त हुए द्वारका में गंगा-तीरे के घाटों में सोम हो गई ? या फिर यह काह अन्य भक्ति या विषये "हरिभक्त के प्रकाश" के विना शक्य न बन गया। इस कविता की अंतिम पंक्तियों में मीरी के साथ 'मावन-मावन' मिलकर रचनाकार ने स्पष्टतः मकतली मीरी का जोर ही संकेत

कर दिया है पर यदि मीरा ने यह कविता लिखी होती तो वे अपने "परमपद" पाने का उन्मुख कैसे करती ?<sup>१</sup>

**चरीत (चरित्र)**<sup>२</sup>—“राजबाही संशोधन मण्डल बुनिया” के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह में सुरक्षित एक पाणी में लिपिबद्ध है। पोथी में इस रचना का शीर्षक नहीं दिया हुआ है परन्तु अन्त में लिखा है “॥ इत चरीत संपूर्ण ॥” प्रारम्भ में भी कहा गया है — ‘रामानन्द को भविर धानत सुनो चरीत सुपराई ॥१॥’ उसी आधार पर प्रस्तुत रचना को ‘चरीत’ शीर्षक दे दिया है।

यह रचना ८४ पंक्तियों में है। इसमें पीपाजी का चरित्र वर्णित है। उन्होंने ब्रज में लकड़ी काटकर धीरे धीरे चरकर साधनापूर्ण जीवन बिताया केवल इसलिए कि सव्गुरु (रामानन्द) के बर्णन हो जायें। वहाँ वैरागियों ने अनेक प्रकार से उनकी परीक्षा की। यहाँ तक कि एक बार उनके एक बूटा मारा। मगर पीपाजी ने बूटा उठाकर केवल यह कहा कि “मेरे कठिन शीश ने जूति पुसाई।” तब कहीं ‘उससे सव्गुरु का हृदय भर और उन्होंने कृपा के नयन छबारे। फिर भी उन्होंने परीक्षा करने के लिए उन्हें कुर्छे में तन बांधने की आज्ञा दी। उसका पीपा जी ने तुरन्त पालन किया। तब ‘भी रामानन्द जी ने शीश पर हाथ रखके पूर्ण कृपा की।

इस कविता में भक्ति-भावना का स्वर अत्यन्त जीव है। सगमग नहीं के बराबर है। रामानन्दजी के बर्णनों के लिए पीपाजी की कठोर साधना और निरीह भक्तिसमर्पण पर आद्योपान्त आग्रहपूर्वक बस दिया गया है और सर्वत्र उनके महत्त्व

(१) ‘यह हुंकी मीरा गाय ।

भावत भावत परम पद पाय ।

अंतिम पंक्ति का पाठ कुछ ऐसा है कि उसे ‘परम पद पाय’ भी पढ़ा जा सकता है और ‘परम पद पाय’ भी। दूसरा पाठ सही मानने पर अर्थ बरा बीजकर लगाना पड़ता है।

(२) इस कविता के प्रारंभ मध्य और अन्त के अंश इस प्रकार हैं—

प्रारंभ— लक्ष्मण कारण राज जाँझियो त्रिया सायने आई ।

रामानन्द को मंदर धावत सुनो चरीत समुपराई ॥ १ ॥

मध्य— जिया रसोई पुरन भई तो सब बैरागी पुकारे ।

महाराज ने मुझ लागि है, सबकु जान दियो रे ॥ २१ ॥

अन्त— ताहि चरण पर सीस रखावत आपर्णो नपरहुँ आने ।

गुरु भक्तो सीता देसी मीरा प्रेम रस गाने ॥

की प्रतिष्ठा का सचेतन प्रयत्न किया है। हमने हमके रचयिता की रामानन्दी संप्रदाय के प्रति निष्ठा और साम्प्रदायिक प्रचार की भावना के विषय में सम्यक् की कोई युवाइश नहीं है। मीरा की निष्ठा किसी विभिन्न प्रदाय के प्रति न होकर "गिरि घर" के प्रति थी और उनकी कविता साम्प्रदायिक प्रचार का साधन न होकर वैयक्तिक अनुभूति और भक्ति-भावना की सहज बाणी थी।

"नरसी मेहता की माहेरो" में इसी प्रकार का एक प्रसंग है जिसमें पीपा की शपथ को रामानन्दी की आज्ञा से कुएं में डाला है। माहेरा में पीपा की उस कथा को नरसिंह के पूर्वजन्म की कथा के साथ जोड़ दिया गया है पर दोनों प्रसंगों की तुलना करने पर इतना स्पष्ट है कि दोनों की प्रणाली साम्प्रदायिक प्रचार की भावना है। काव्य-कला की दृष्टि से भी "नरसी" को माहेरा की कीर्ति में रखा जा सकता है। दोनों में कथा प्रधान है, भावना पराधीन गीत है। अधिक सम्भावना यही है कि यह रचना भी उसी बगीचा-निवासी रामानन्दी मीरादास की हो जो माहेरो के लेखक थे।

#### रचमणी-मंगल :

कहा जाता है कि मीराबाई ने "रचमणी मंगल" नामक किसी प्रबन्धनात्मक काव्य की भी रचना की थी। जयपुर के श्री सूर्यनारायणजी अनुबेदी ने मन्त्रक का बताया था कि इस कथन में उत्पत्ति होने की सम्भावना काफ़ी है। श्रीमती रचमनी ने अपने 'मीरा-सूक्त-सह-संग्रह' में ऐसे दो पदों को प्रकाशित किया है। जिसमें रचमणी का उल्लेख मिलता है। विषय की दृष्टि से ये पद "रचमणी-मंगल" जैसे विषय पर मिली गई किसी छंद में 'छि' किए जा सकते हैं क्योंकि इनमें रचमणी का आत्म-निवेदन है।

"रचमणी-मंगल" में सम्मिलित वह जानबूझकर इन पदों का विभिन्न समयों पर विभिन्न प्रसंगों में संवादित मीरा की व्यक्तिगत सह-संग्रहों में प्रायः प्रभाव है। इसमें इतना प्रभाव स्पष्ट हो जाता है कि ये पद बहुत प्रशंसित या प्रसिद्ध नहीं रहे।

दूसरे, दो-तीन पदों के आधार पर किसी ग्रंथ के अस्तित्व की सम्पत्ति करना बहुत उचित नहीं है। जहाँ तक सम्भावना का प्रश्न है अनुमान उसके पदों की दरता विरोध में ही अधिक है, क्योंकि बाग्या के प्रेम में मधुर गीत बनकर महज गुंजन बाणी "दरद रिवाली" में किसी कथामय को छंदबद्ध करने की सामान्य प्रवृत्ति है।

जब तक हम नाम की कोई छंद नामने नहीं जानी उस पर विचार करना



संभव नहीं है और तबतक समझी-समझी बो-बार उपलब्ध गीत मीरा के स्फुट पदों के अन्तर्गत ही रहे जाने चाहिए, किसी असंग संघ के रूप में नहीं।

### (ग) स्फुट पद

राग सोरठ का पद :

इस हृति का सर्वप्रथम उल्लेख नागरी प्रचारिणी की सन् १९०२ की खोज रिपोर्ट में किया गया है— 'राग सोरठ का पद—मीरा कबीर नामदेव'। "उन-पूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज और उनही सूची" में मुंशी देवीप्रसाद ने भी इसका उल्लेख किया है।<sup>१</sup>

इस समय एक हस्तलिखित प्रति जोधपुर के "पुस्तक-प्रकाश" में वर्तमान है।<sup>२</sup> उसका खीरक है "राग-सोरठ" और उसमें पाँच पृष्ठों में मीरा के पद दिए हुए हैं।

मीरा कबीर और नामदेव के पदों का कोई एक संकलन "पुस्तक-प्रकाश" में नहीं है। "राग-सोरठ" की प्रस्तुत प्रति किसी बड़ी प्रति का अंश मात्र है। संभव है कि कबीर और नामदेव के पदों का अंश फटकर अलग हो गया हो या मुंशी देवीप्रसाद को जोधपुर में कहीं और इस प्रति के वर्धन हुए हों और भूल से जोधपुर साइबरी का उल्लेख ही मया हो।

वस्तुतः मीराबाई के पद गेम हैं और विभिन्न रागों के अन्तर्गत रहे जा सकते हैं। संगीत के ग्रंथों में प्रायः रागों के क्रम से ही पदों को रखा जाता है। कुछ अन्य ग्रंथों में भी इस पद्धति का अनुसरण किया गया है। गुरुदास साहिब में पद राग क्रम से आयोजित है। "राग-सोरठ" में गाए जानेवाले मीरा के पद धीरे-धीरे 'राग-सोरठ के पद' के रूप में प्रचलित हो गए और समस्त सोरठ राग के किसी प्रेमी ने मीरा की अन्य कविताओं के इस राग के पद एकत्र कर दिए, जो जोधपुर के पुस्तकप्रकाश में संगृहीत प्रति में सुरक्षित है। अतएव 'राग-सोरठ के पद' मीरा की कोई स्वतंत्र रचना नहीं मानना चाहिये। ये राग सोरठ में गाए जाने वाले उनके पदों के संकलन मात्र हैं।

(१) एंरेडिक्स १ मिस्ट्र ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स बिलीओगि-डू जोधपुर साइबरी, संख्या २४

(२) द्वितीय साहित्य सम्मेलन (कलकत्ता) के अखतर पर प्रस्तुत (सं १९६९)

(३) मीरा के पद — पृष्ठ ५, राग सोरठ

### मीराबाई का मस्तार राग १

इसका उल्लेख श्री० ह्याजबन्द श्रीमन् कृष्ण उन्नावर राज्य का इतिहास<sup>१</sup> बलबन्त सिंह महाराठ कृत "मस्तिमयी मीराबाई" तथा "महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश"<sup>२</sup> आदि ग्रंथों में मिलता है। मीरा के पदों के अधिकांश संग्रहों में मस्तार राग के पद भी संक्षिप्त मिलते हैं।

बल्लुत "मीराबाई का मस्तार" एक राग विशेष का नाम है, जिसकी सृष्टि मीराबाई करी आती है। राग साण्ठ के पद की तरह ही मस्तार राग में गाए जाने वाले मीरा के पदों के संकलन इस नाम से प्रसिद्ध हो गए हैं। यह भी कोई स्वतंत्र रचना नहीं है मीरा के पद-संग्रह का अंग मात्र है।

### मीराबाई की गरबी :

सुखगत में "मीराबाई की गरबी" बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय है।<sup>३</sup> साहित्य के इतिहास में इसके प्रथम उल्लेख का श्रम कृष्णभाष मोहनभास शबरी को है।<sup>४</sup> मीरा के जीवन और वाक्य का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली हिन्दी की पुस्तकों में शबरीजी के बलबन्त का उल्लेख मात्र मिलता है। सुखरानी विद्वानों ने इस विषय पर अनेकाङ्कन अधिक प्रकाश डाला है।

"गरबा" शब्द कुछ विद्वान् "रीप-गर्मण" (वह बड़ा त्रिभुज मीठार और रहा हो) से और अन्य "गर्म" से विकसित मानते हैं। बल्लुत चारों ओर छिड़वाने के प्राचीन काल में गरबा करते थे। जब में धाम भी इस प्रकार के पात्र का करवा कहा जाता है और इसी से करवा-गरवा-मकुवा बना है। पात्रवासी यह शब्द इस पात्र का लेकर नवरत्न में लिए जानेवाले नृत्य के लिए

(१) महाराष्ट्र में इसे "मीराबाई का मस्तार" और ब्रज प्रदेश में "मीरा-मस्तार" कहते हैं।

(२) भाग १ पृष्ठ १६०

(३) वही पृष्ठ ८

(४) वही पृष्ठ (१) ५५

(५) "गरबानी जिसमें या दोबो कोई परबो नहि होय के क्या मीरामी गरबी यवानी नहि होय।" —मीराबाई भा० वि० मे०, पृष्ठ ८१

(६) सुखरानी साहित्यशास्त्र मार्गमूचक स्तंभो, पृष्ठ ३२

(७) कीमती पु० १ अंक १ पृष्ठ २७ नरसिंह राव का लेख 'सुखरानी साहित्यशास्त्र - लीन-वाक्य'

प्रचलित हो गया और कामाक्षार में नृत्य के साथ भीतों के लिए भी बसने लगा । इसी से 'सबु एकत्रित रस की रचना' गरबी बनी । गरबा स्तुत विस्तृत और गरबी अपेक्षित अधिक लायुक सङ्ग स्वरूप की संक्षिप्त और विषय में सुनिश्चित एकता साधनेवाली होती है । गरबा वर्धनात्मक तथा गरबी 'भावप्रधान सबु और एकधारी' रचना होती है ।<sup>१</sup>

वस्तुतः 'गरबी' एक प्रकार का भावप्रधान छोटा गीत है । मीरा के अनेक पद ऐसे हैं जो इस कोटि में सरलता से आ जाते हैं । पर यह कहना उचित नहीं होगा कि मीरा ने 'गरबी' नाम की कोई रचना की थी क्योंकि इस (गीत) श्रव्य में गरबा गरबी का प्रथम प्रयोग भाषाशास्त्र के एक गीत में मिलता है । भाषाशास्त्र १७०० वि० के आसपास वर्तमान थे ।<sup>२</sup> हो सकता है कि मीरा के काल में गरबी सङ्ग गीत के श्रव्य में प्रचलित भी नहीं हुआ हो । मीरा के कुछ पद विशेष प्रकार से गाए जाने के कारण गरबियाँ कहलाने लगे थे कोई असल से स्वतंत्र रचना नहीं है ।

लेखक को निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतिषों में "मीरा-अप" की रचनाएँ "गरबी" शीर्षक से प्राप्त हुई हैं —

(क)	अर्धस मुनराती समा बम्बाई	पोथी संख्या ७१	१ गरबी
(ख)	डाही लक्ष्मी लायबरी लाहौर	पोथी संख्या ११४३	६ गरबी
(ग)	विद्या समा आहमदाबाद	पोथी संख्या १२६	६ गरबी
(घ)	बही	पोथी संख्या १२२२	१ गरबी
(ङ)	बही	पोथी संख्या १२२३	४ गरबी
(च)	बेठमार्ग का 'पथानी' गूढ़		११ गरबी

इन समस्त संग्रहों में ३७ गरबियाँ मिलती हैं पर वस्तुतः उनकी कुल संख्या १६ ही है क्योंकि उनमें से अधिकांश सामान्य पाठभेद के साथ एक से अधिक पोथियों में प्राप्त हैं ।

मा नि० महता के अनुसार मीरा की मुख्य-मुख्य गरबियाँ इस प्रकार हैं—

१—नहाना मोरी गायरिया भरबे भग्ने, ही क्षिर पर धर दरे ।

२—घाजे घाजे बाजे र, तेरे बदन में चुबुल बाजे ।

(१) "पञ्चरात्र साहित्यना स्वस्वपो"—प्रो० भ० र० मजमुदार, भन् १२५४ संस्करण पृष्ठ ५४३

(२) मुनराती साहित्यना मार्गसूचक स्तंभों, आबेरी पृष्ठ १७०

(३) मीराबाई पृष्ठ ८२-८०

- ३-बस गई राबे प्यारी मोरलीमा बस गई राबे प्यारी ।
- ४-प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी ।
- ५-बगीचा बगीचा बगीचा रे भारो बासम बिछबे सारी बगीचा ।
- ६-रसीया मुने बबा सीजे तारुं दाग बायं ते सीजे रे ।
- ७-मधुवन में गुजरीयां झूटी मारा छिरनी मदुकी फूरी रे ।
- ८-काम छे काम छे जबा दे मुमासीकहुं मारे घेर काम छे ।
- ९-कुबबाने जादु बारा मोहू दयाम हमारी रे ।
- १०-मगरी उत्तार रे बनमासी मदुकी उत्तार रे बनमासी ।
- ११-जमीन पर बसनां बाघ ते कौण से छे रे ।
- १२-बोसमा बोसमा बोसमा रे राबाहुण बिना बीजू बोसमा ।
- १३-मचकाय मचिरिए भाब मचके मोही रहीं हूँ ।
- १४-जबा छो मने छाने रोको छो बाटमां दाग भेषा सरीसां नबी माटमां रे ।

इनके धितिरिक्त मीरों के नाम से प्रचलित अन्य गरबियां भी मिलती हैं।<sup>१</sup> मीरोंबाई के जीवन को आधार बनाकर कुछ घरबे भी लिख गए हैं। यद्यपि इनकी रचयिता मीरोंबाई नहीं हैं परन्तु मीरोंबाई की कृतियों के रूप में ही प्रचलित हैं। छोटमबाब इत एक घरबा (मीरोंबाईनो घरबो) इसी प्रकार की रचना है।

### राम गोबिन्द या राग गोबिन्द :

भा० नि० मेहता द्वारा उल्लिखित रामगोबिन्दभोसाजी के “राम गोबिन्द” का ही प्रमुख रूप है। शिवसिंहमरोजकार और दियर्सन ने भी इसका (राग गोबिन्द का) उल्लेख किया है परन्तु इनमें से किसी ने भी राग गोबिन्द का कोई विवरण नहीं दिया। राजस्वान में बिरुपकर जीबपुर के ‘पुस्तक-प्रकाश’ में संगीत-गुटकों में मीरों के गोबिन्द-सबधी गीत हैं। ‘भाई री भूतं भिया गोबिन्दा भोस’ और ‘मेरे राजाजी मैं गाबिन्द खुल गावो’ जैसे पद्य प्रचलित ही हैं। अतः मीरों द्वारा ‘गोबिन्द का राग’ गाने का अनुमान निरावार नहीं है। वैसे ‘राग-गोबिन्द’ मीरों की कोई अलग रचना नहीं है राग रागिनियों में बने मीरों के गोबिन्द-सबधी पदों का ही एक विशिष्ट संग्रह है।

(१) राम मंडसनी गरबिनो, प्रकाशक हमराज दयानजी लौकही रोरी, ग्रहमबाबाब, पृष्ठ १२ ३१, ९६, २४ २१

## फूटकर पद :

भक्ति के आदेश में मीरा ने कृष्ण के प्रति अपनी भावना को समर्पण करके पदों के रूप में व्यक्त किया था। ये ही फूटकर पद मीरा की विश्वसनीय रचनाएं हैं, पर कामान्तर में मीरा की छाप के अनेक पद अन्य लोगों द्वारा लिखे गए और वे भी मीरा की रचनाओं में मिलाए गए हैं। मीरा की अपनी रचनाओं में भी कामबस अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। राय सोरठ का पद मल्हार राय के पद प्रायः सब उनके फूटकर पदों के ही विशेष प्रसंग है। इनकी पाठ संश्लेषी समस्याओं पर अगले पृष्ठों में विचार किया गया है।

## निष्कर्ष :

पिछले पृष्ठों के विवेचन से निम्नांकित निष्कर्ष निकलते हैं —

१ (१) 'मीरा गोविन्द की टीका' अनुपलब्ध है। इस नाम का कोई मीरा कृत ग्रन्थ अस्तित्व में भी नहीं है। अगर उससे मिलती-जुलती कोई रचना है तो मीरा के गोविन्द सम्बन्धी पद हैं।

(२) नरसी का भाग्य सत्यमामानु कृष्ण, चरित (चरित्र) नरसी मेहतानी हुंसी मीरा के नाम से प्रचलित है पर मेहतानी मीरा-कृत नहीं हैं।

(३) मीरा की प्रामाणिक रचनाएं उनके पद हैं जिनमें अन्य लोगों द्वारा मीरा नाम से लिखे पद भी पर्याप्त संख्या में मिल गए हैं।

## कृतियों का पाठ :

पाठानुसंधान एक स्वतंत्र गवेषणा का विषय है। उसके पूर्ण विवेचन के लिए एक स्वतंत्र संश्लेषी आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्यायांचकी छोटी परिधि में यह संभव नहीं है कि मीरा के पदों की समस्त उपलब्ध प्रतियों पर और उनसे संबंधित पाठों की समस्त समस्याओं पर पूर्ण विस्तार के साथ विचार किया जा सके। अतः यहाँ पर कवयित्री की रचनाओं की प्रामाणिकता और उनके पाठों से संबंधित महत्वपूर्ण समस्याओं पर ही विचार किया गया है। विस्तृत विवरण छोड़ दिए गए हैं।

मीरा के पदों की कोई प्रति ऐसी उपलब्ध नहीं है जो मीरा ने स्वयं लिखी हो या जिसे उन्होंने सुन लिया हो। उनके कास की भी कोई प्रति प्राप्त नहीं है। मीरा के जीवन का अन्तःसारका में दुष्प्रा। अतः इतना निश्चित है कि मीरा के समस्त पदों का समग्र उनकी मृत्यु के समय द्वारका में रहा होना। अन्य स्थानों के भक्तों संतों अथवा भट्टाचार्य गृहस्थों के घरों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रचलित उनकी स्मृतियों में

जो पत्र-अग्रह रहे होंगे उनमें से किसी के मा-पुत्र हान की संभावना नहीं है क्योंकि माटी जीवम के धन तक गिरिधर के सामान मावती-गात्रा धीर गए पद बनाकर अपने मातुर्पुत्र भाव का व्यक्त करती रही थी।

मीटी स्वयं नक्षि के धावण में प-गात्रा थी। यह ता नहीं कहा जा सकता कि कभी की तरह उन्होंने 'भविष्य की वागद' का कभी धृष्टा ही नहीं होगा परमहू भी मय है कि धन-पाम के मय में निरुक्त उनका ध्यान में नुमी हुई मीटी एक धपनी विह्वल भावना के साथ पद गात्री होंगी ता कभी-कभी पूर्व-निर्धारित पक्षियों में परिवर्तन हो ही जाता है। प्रतिनिधि करने करने प्रायः कवि माय धपनी ग्ध बाधों में धन-पत्र परिवर्तन कर देते हैं गात्र-पान यह परिवर्तन हो जाना धीर भी स्वाभाविक है। यह भी संभव है कि बज-पाना एक निष्ठ चित्तों पद में डागका पहुँचन तक कुछ परिवर्तन हो गया है और उनका डारका का मय बज के मय में बाँझा निष्ठ हो गया है। इस प्रकार मीटी की विभिन्न प्रतिनिधि-परपराधों के आदि आदर्श पाठों में भी नहीं-कही बाझ-बहुत धीर रहा होता परंतु व्यवहारिक दृष्टि में मीटी के प्रतिम संकल्प के पाठ का जिनमें मीटी के पत्रों के अन्तिम रूप में लोच हुए रूप होंगे मीटी के पत्रों के का आदर्श पाठ मानना चाहिए और पाठ-सम्बन्धी अध्ययन का उत्सव यथापत्ति उनी पाठ तक पहुँचना है।

मीटी के पत्रों को प्रारंभ में न राजाधय मिता न किसी संप्रदाय का धामय। उनके पत्र संतों भक्तों संवीन-आहिन्प-प्रमियों और भक्तिभावना से भरे पृष्ठों के यही मुरलित रह। जगता में उनका प्रति ज्यों-ज्यों धार का भाव बढ़ता गया विभिन्न संप्रदायों ने भी उनको अपना प्रारंभ कर दिया और उनके पद विभिन्न संप्रदायों के हस्तलिखित ग्रंथों में स्थान पान लगे। इसी के साथ एक बात धीर हुई, विभिन्न संप्रदायों के माँसों ने अपने संप्रदायों की भावना के अनुसार मीटी के पत्रों में परिवर्तन करके उन्हें अपनाया। इस प्रकार विभिन्न संप्रदायों की पीवी-परपराधों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का प्रचलन प्रारंभ में आयामपूर्वक धात्र-भूषण हुआ और बाद में अनायास धन जाने भी जाता गया।

मीटी के पत्रों के विभिन्न पाठों की प्रतिनिधि-परपराधों में भी धारमी नन-देन बहुत हुआ है। मीटी के कुछ ही पद-मण्डल किसी एक प्रति के प्रतिनिधि-परपराध में धार है परन्तु अधिकांश ऐसी हैं जिनमें किसी एक प्रति में उतारे हुए पद नहीं हैं। लिपिकारों ने विभिन्न प्रतियों में उन पदों का उतारा है जो उन्हें 'जिमी' दृष्टि में महत्त्वपूर्ण लगे हैं।

मीटी के पत्रों की पाठ-परपराध मूर तुमसी जायसी धादि की प्रतियों में निष्ठ प्रकार की है। मीटी के धनक प-एय भी हैं जो निम्न प्रतियों में मौखिक

परंपरा में आ गए और कुछ समय के पश्चात् फिर मौखिक परंपरा से सिपिबद्ध होकर एक नई-सी लिखित प्रतिमिति परंपरा के बन गए। इस प्रकार कई प्रतिमिति-परंपराएं बस्तुतः मौखिक परंपराओं से जुड़ी हैं। यह आदान-प्रदान लिखित परंपराओं में ही सीमित नहीं रहा इस दृष्टि से मौखिक परंपराएं भी सज्जिम रही हैं। अतः मीरा के पाठ-निर्धारण की समस्या अपेक्षाकृत अधिक जटिल है।

## मीरा के पदों की प्रतियों के वर्गीकरण के आधार

मीरा के पदों की प्रतियों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है। मीरा के समस्त पदों की कोई एक प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं है और न इसके उपलब्ध होने की संभावना ही है। मीरा के पद निम्नांकित प्रकार की प्रतियों में मिलते हैं—

### (क) पूर्ण प्रतियाँ या संकलन :

(१) एक प्रकार ऐसी प्रतियों का है जिनमें पूर्णतः मीरा के पद ही संगृहीत हैं अथवा किसी व्यक्ति की रचनाएं उसमें नहीं हैं जैसे बाकोर की भोवबनवास 'मट्ट' की प्रति या भोजपुर-बुर्ग के पुस्तक-प्रकाश की 'राज सोरठ का पद' की प्रति। ऐसी प्रतियाँ अधिक नहीं हैं।

(२) दूसरी कोटि में वे प्रतियाँ आती हैं जिन्हें 'सामान्य समनिकाएं' कह सकते हैं जिनमें लिपिकों ने अथवा रचनाओं के साथ मीरा के कुछ पद भी समन करके रखा है। विद्या-भसा भद्र बाह्यवाबाब के बूटके 'रामबासी संदीपन' भुमिया की पोथियाँ इच्छाराम सु० बेसाई (गुजराती प्रेस बम्बई) के वैयक्तिक संग्रह की प्रतियाँ इसी काटि की हैं।

### (ख) विषय-क्रम से या स्तुत रूप से :

कुछ प्रतियों में पदों को विषय-क्रम से रखा गया है। अथवा प्रतियों में इस प्रकार का कोई क्रम नहीं है। इस दृष्टि से प्रतियाँ प्रायः तीन प्रकार की हैं—

(१) वे प्रतियाँ जिनमें पद राग-क्रम से दिए गए हैं। 'पुस्तक-प्रकाश' की प्रति में तो राग सोरठ के पद ही एवज हैं जबकि सह भटनागर द्वारा 'राज स्थान' में हिबी के हस्तलिखित ग्रंथों की शीर्ष तृतीय भाग में प्रकाशित पदों की आधारभूत पोथी में पद रागों के अनुसार ही वर्गीकृत हैं।

(२) वे प्रतियाँ जिनमें पदों को विषय-व्यय से ढने का प्रयत्न है। ऐसी एक भी पोयी उपलब्ध नहीं है जिसमें मीरों के पद 'विषय' के अनुसार बर्णित करके दिए गए हों परन्तु ऐसी प्रतियाँ मिलती हैं जिनमें शृंगार के पद भक्ति के पद रसछाड़ जी के पद आदि धीरे-धीरे देकर धनक भक्तों की रचनाओं के साथ मीरों के पद दिए गए हैं जैसे रमणमानजी भक्तनाम की पावी में 'हामी के पीन' के अन्तर्गत मीरों के पद दिए हुए हैं। बिद्या-न्याय के दो गूढों में 'हाकार की सरबी' धीरे-धीरे 'मीरों' छाप की हाकार से संबन्धित सरबियाँ दी हुई हैं।

(३) अधिकांश प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें छिड़ी कम का अनुसरण नहीं है। विभिन्न विषयों के धीरे-धीरे विभिन्न रागों के पद (एक पद एक में अधिक राग का भी हो सकता है) बिना किसी याचना के लिखित हैं। इन्हें 'छूटकर' नाम दिया जा सकता है। जैसे अहमदाबाद की संवत् १६६३ की प्रति बिनोदचन्द्र की संवत् १७७७ की प्रति धीरे-धीरे मुजराता प्रसन्न बम्बई की इच्छाराग सूर्यराग बम्बई के वैयक्तिक मद्रास की प्रतियाँ।

#### (४) विभिन्न संग्रहों में लिखित प्रतियाँ

किसी विशिष्ट संग्रह में लिखित प्रतियों की अपनी कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ होती हैं जो उन्हें दूसरे संग्रह की प्रतियों से अलग कर देती हैं। प्रायः पदों का सचयन सांस्कृतिक भावना की अनुसूचना की दृष्टि से होता है। अनेक स्थानों पर मुद्रा (बिचार) धीरे-धीरे भक्ति दृष्टि से ही किए जाते हैं। राममनेही-संग्रह के गूढों में मीरों के 'गिरिधर' धनक स्थानों पर 'गन' धीरे-धीरे 'रसिया' बन गए हैं। बागकरी संग्रह की प्रतियों में 'बिठन' का विशेष प्रयोग है। वैयक्तिक मन के पदों में निर्युक्त भावना का आभास दिमाने वाले पद कम-से-कम हैं धीरे-धीरे श्रुति द्वारा लिखित पदों में 'प्रिय की नाक' 'ज्ञान की नाक' बन गई हैं 'प्रीतम' 'मन्गु' हो गए हैं। वैयक्तिक संग्रहों में 'मीरों' के प्रसन्न गिरिधर नाम के पदों में एक के रूप में 'भोमानाथ गिरिधर है दुख मोछ टारा र' जैसी पंक्तियाँ आते-देते हैं। मीरों के गुरु रूप में 'राम धीरे योगी महाप्रभु का उल्लास करने वाले प्रसन्न पदों की परंपराएँ भी सांस्कृतिक भावनात्मक हैं।

इस दृष्टि से मीरों की उपलब्ध पंक्तियों का धनक गूढ पर दिए हुए श्रुति में विशिष्ट रूप मन्गु है—



परंपरा में आ गए और कुछ समय के पश्चात् फिर मौखिक परंपरा से निपिबद्ध होकर एक नई-सी लिखित प्रतिनिधि परंपरा के बन गए। इस प्रकार कई प्रतिनिधि-परंपराएं वस्तुतः मौखिक परंपराओं से जुड़ी हैं। यह आदान-प्रदान लिखित परंपराओं में ही सीमित नहीं रहा इस दृष्टि से मौखिक परंपराएं भी सक्रिय रही हैं। अतः मीरा के पाठ-निर्धारण की समस्या अपेक्षाकृत अधिक जटिल है।

## मीरा के पदों की प्रतियों के वर्गीकरण के आधार

मीरा के पदों की प्रतियों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है। मीरा के समस्त पदों की कोई एक प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं है और न इसके उपलब्ध होने की संभावना ही है। मीरा के पद निम्नांकित प्रकार की प्रतियों में मिलते हैं—

### (क) पूर्ण प्रतियाँ या संस्करण :

(१) एक प्रकार ऐसी प्रतियों का है जिनमें पूर्वतः मीरा के पद ही संगृहीत हैं अन्य किसी व्यक्ति की रचनाएं उसमें नहीं हैं जैसे डाकौर की वोवर्बनदास 'मट्ट' की प्रति या जोधपुर-दुर्ग के पुस्तक-प्रकाश की 'राज सोरठ का पद' की प्रति। ऐसी प्रतियाँ अधिक नहीं हैं।

(२) दूसरी कोटि में वे प्रतियाँ आती हैं जिन्हें सामान्य बदलिकाएँ कह सकते हैं जिनमें लिखकों ने अन्य रचनाओं के साथ मीरा के कुछ पद भी चमन करके रख लिए हैं। बिछान-समा भद्र ब्रह्मदाबाद के मुटके 'रामदासी संशोधन' बुधिया की पोथियाँ इच्छाराय सु० देसाई (गुजराती प्रेस बम्बई) के वैयक्तिक संग्रह की प्रतियाँ इसी कोटि की हैं।

### (ख) विषय-क्रम से या स्फुट रूप से :

कुछ प्रतियों में पदों का विषय क्रम से रखा गया है। अन्य प्रतियों में इस प्रकार का कोई क्रम नहीं है। इस दृष्टि से प्रतियाँ प्रायः तीन प्रकार की हैं—

(१) वे प्रतियाँ जिनमें पद राग-क्रम से दिए गए हैं। 'पुस्तक-प्रकाश' की प्रति में तो राज सोरठ के पद ही एकत्र हैं उदयसिंह भट्टनागर द्वारा 'राज स्थान' में हिंदी के इत्यसिद्धिग्रंथों की श्रृंखला में प्रकाशित पदों की आधारभूत पोथी में पद रागों के अनुसार ही वर्गीकृत हैं।

(२) वे प्रतियाँ जिनमें पदों को विषय-क्रम से देने का प्रयत्न है। ऐसी एक भी पोनी उपलब्ध नहीं है जिसमें मीरों के पद 'विषय' के अनुसार बर्गीकृत करके दिए गए हों परन्तु ऐसी प्रतियाँ मिलती हैं जिनमें शृंगार के पद भक्ति के पद रसछोड़ बी के पद आदि शीर्षक लेकर अनेक मन्त्रों की रचनाओं के साथ मीरों के पद दिए गए हैं जैसे रमणसासजी धयबाब की पाओ में 'होनी के मीन' के अन्तर्गत मीरों के पद दिए हुए हैं। विद्या-सना के दो गूटकों में 'डाकार की गरबी' शीर्षक में मीरों छाप की डाकार से संबन्धित मरबियाँ दी हुई हैं।

(३) अधिकतर प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें किसी क्रम का अनुसरण नहीं है। विभिन्न विषयों के और विभिन्न रागों के पद (एक पद एक से अधिक राग का भी हो सकता है) बिना किसी योजना के लिखे हैं। इन्हें 'छुट्टर' नाम दिया जा सकता है जैसे धर्मदाबाब की संवत् १६६१ की प्रति विनोदचन्द्र की संवत् १७०७ की प्रति और गुजराती श्रेष्ठ बम्बई की इच्छाराज सूर्यराज बेसाई के वैयक्तिक संवत् की प्रतियाँ।

(४) विभिन्न संप्रदायों में लिखे गए प्रतियाँ

किसी विशिष्ट संप्रदाय में लिखे गए प्रतियों की अपनी कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ होती हैं जो उन्हें दूसरे संप्रदाय की प्रतियों से अलग कर देती हैं। प्रायः पदों का संक्षेप संप्रदायिक भावना की अनुकूलता की दृष्टि से होता है अनेक स्थानों पर मुखार (विकार) और प्रसार भी विशिष्ट दृष्टि से ही किए जाते हैं। राममोही-संप्रदाय के गूटकों में मीरों के 'गिरिधर' अनेक स्थानों पर 'राम' और 'रमिया' बन गए हैं। बारकरी संप्रदाय की प्रतियों में 'बिठन' का विशेष प्रयोग है। वैष्णव मत के पदों में निर्गुण भावना का सामान्य हिसाने वाले पद क्रम-क्रम हैं और सर्वोच्चारा लिखे गए पदों में 'मिम की नाब' 'बान की नाब' बन गई हैं 'प्रोतम' 'मन्गु' हा गए हैं। शैव संप्रदायों में मोरों के प्रमुख गिरिधर नामर छाप के पदों में एक के रूप में मोनामाय दिगंबर हे कुप मोर टारो रे' जैसी पंक्तियाँ जाड़ दी गई हैं। मीरों के कुछ पद में रैदाय और मोरारा महाप्रभु का उल्लेख करने वाले प्रमाण पदों की परंपराएँ भी सांप्रदायिक भावनाक्रम हैं।

इन दृष्टि में मीरों की उपलब्ध प्रतियों को अच्छे पृष्ठ पर बिज हुए बगों में विभाजित कर सकते हैं—

ऊपर मीरा के पदों की प्रतियों के वर्गीकरण के सामान्य आचारों का विवेचन किया गया है। एक दृष्टि से किए गों का दूसरी दृष्टि से किए गों से कोई अभिचार्य संबंध या असंबंध हो यह आवश्यक नहीं है। हो सकता है कि रागों की दृष्टि से पद प्रस्तुत करने वाली एक प्रति वैष्णव संप्रदाय की हो दूसरी संत-मत की और तीसरी भक्तप्रवायिक सङ्ग्रहस्थ की। इसी प्रकार एक संप्रदाय की एक प्रति गुजरात में मिलिबद्ध हो सकती है और दूसरी राजस्थान में। पाठ-परंपराएँ भी एक दूसरे से मिलती-जुलती रहती हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही मीरा के पदों का पाठ निर्धारित किया जा सकता है।

### प्रक्षिप्त ग्रंथों की समस्या

मीरा के पदों का पाठ निर्धारित करते समय सबसे प्रमुख समस्या प्राचीन प्रक्षिप्त ग्रंथों को मूल ग्रंथों से असन्न करने की। जो पद विभिन्न परंपराओं की प्रतिनिधियों में समान रूप से मिलते हैं और भाषा की दृष्टि से मीरा-युग के हैं उनकी प्रामाणिकता के विषय में संदेह का प्रश्न नहीं है। समस्या केवल उन पदों की है जो एक या अनेक प्रतिनिधि-परंपरा की प्रतियों में छूटे हुए हैं। ऐसे पद प्रायः दो प्रकार के हो सकते हैं—

(१) ऐसे पद जो किसी विशिष्ट प्रति के प्रतिनिधि-कर्ता द्वारा मूल से या जान-बूझकर छोड़ दिए गए हैं।

(२) ऐसे पद जो प्रक्षिप्त हैं और जो किसी विशिष्ट परंपरा में किसी समय प्रवेष्ट पा गए हैं। स्वभावतः ऐसे पद कुछ परंपरा की प्रतियों में छूटे रहते हैं।

उक्त दोनों प्रकार के पदों का निर्धारण अन्तःसाध्य अर्थात् कवयित्री की भावना और-वर्णन प्रयोग-विशिष्ट भाषा-सम्बन्धी अन्य विशेषताओं के आधार पर परीक्षण और मीरीक्षण करके किया जा सकता है। कुछ दशाओं में परगत उल्लेखों का इतिहासादि की दृष्टि से परीक्षण करके भी निर्णय किया जा सकता है।

जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है मीरा का पाठ-निर्धारण इस धारणा की सीमा में संभव नहीं है। यहाँ पर मीरा के समस्त पदों पर विचार नहीं किया जा सकता। अतः उदाहरण-स्वरूप कुछ इस प्रकार के पदों की चर्चा की जा रही है जिनकी अप्रामाणिकता अत्यन्त स्पष्ट है और फिर भी जो विभिन्न संग्रहों में स्थान पा चुके और पाते जा रहे हैं।

[१] मीरों के नाम से प्रचलित वे रचनाएँ कदापि मीरों-कृत नहीं हो सकतीं बिनमें मीरों के जीवन से ऐसी घटनाओं का संबंध जोड़ दिया गया है जो निश्चित रूप से मीरों के जीवन-काल के बाहर की हैं। उदाहरण के लिए, निम्नांकित घटनाओं के उल्लेख करने वाले यह मीरों-कृत नहीं हो सकते—

(क) डाकोर में मीरों के घाराप्य परिवार की मूर्ति की प्रतिष्ठा से संबंधित घटनाओं का उल्लेख करने वाले यह—रामदाम खत्री नामक व्यक्ति का बाबागं के नाम से प्रख्यात था सन् १७३३ के लगभग डाकोर में रहता था। वहीं द्वारा का मीर रघुदासजी की मूर्ति खुराकर लाया था और सोपान प्रसाद तान्त्रिक ने सन् १७७२ (संवत् १८२६) में डाकोर का बठेमान मंदिर बनवाया था।<sup>१</sup> मीरों के पदों की गुंजायति की कविपद्य प्रतिष्ठों में निम्नांकित यह कुछ सामान्य बात नये के साथ मिलते हैं—

नाथ राम गुप्तजी न पने तोरपा

एग मुन र मोचिग न्वाया ॥ ना० ॥१

बोहाली बहू नामे खरीया ने बागरीये बंधाया ।

महरी करी महराज पचाण्या डाकार में बरसाया । ना० ॥२

द्वारका की डाकोर घाघ्याने ॥ पगने ठ पुजाया ।

बंसाबाई ना मुख बघाया मीरमन गामरी नाया । ना० ॥३

गुजरी सब मो बाबा धारी भवबस की बसकाया ॥

बाहाला मां बाहाला प्राप बीरजी ॥ मां करी मठाया ॥ ना० ॥४

सोना बरबर मुलक गरीने मवा बास लोगया ॥

आपन क मुनामन प्रापि भक्तन न कहाया ॥ ना० ॥५

गुजाराठ भय्य नमी द्वारका बेर पुरान बंधाया ॥

मीरों के हे प्रभु वीरवर नामर बार जुग में बंधाया ॥ ना० ॥६

इसी प्रकार एक दूसरा पं है—

मरबी जाननी छे ॥

हारे भारोही लगभग बंधीघातो

बोहाला लमे भातोरे मारो रंगम । बोहाला ।

बाग बगना उठा बरं भग मुजरी बंधा जातो रे ॥

मारो रंगम मल ॥

(१) यही प्रबंध—परिशिष्ट (मीरों द्वारा लेखित मूर्तियाँ)

(२) बिटा-सभा भद्र चरमदासदाह हस्तलिखित पोर्ची-मंथ्या १७५८

बोझाखा संगे माता रे मोरा ॥ प्रहमी छरो तरे ये बीसीने ।  
 बाकोस भा पेभारो रे भारी बीयस बोझाणा ॥  
 डारका का खबर बै तारे गोमतीना बस भा पेठो रे ॥ मारो ॥  
 गऊ मभीसर घने हवा धनपास (बोझाखा संगे ।)  
 मीराबाई के प्रभु गीरधर नागर बाकोलना पास राखो रे मारो ।<sup>१</sup>

ऊपर मिले हुए दोनों पदों में सन् १७५५ (संवत् १८१२) के पश्चात् की बटनाओं का विस्तार से वर्णन है और यह वर्णन एकाग्र वंशित तक सीमित नहीं है पूरे पद में व्याप्त है । इससे पता चलता है कि संपूर्ण पद ही वाय में रचा गया है और 'मीरा' के प्रभु गीरधर नागर छाप समाकर प्रचलित कर दिया गया है । भाषा की दृष्टि से इसमें आधुनिक गुजराती का भी विद्युत रूप है । अतः उक्त पदों को निश्चित रूप से अप्रामाणिक पदों की कोटि में रखना चाहिए ।

(ख) इसी प्रकार तानसेन के साथ अकबर का मीरा से मिलने का प्रसंग है । प्रियादास कृत मक्तमान की भक्तिरसबोधिनी टीका द्वारा जिस भ्रम का प्रारम्भ होने लगा था उसका निराकरण उनके युग में ही उन्हीं के त ती वैष्णवदास अपने 'बृजंत' में कर चुके हैं । फिर भी कुछ पौधियों में तानसेन और अकबर के मीरा से मिलने का उल्लेख करने वाले निम्नांकित पद मिलता है —

माई री साबसिया बान्यो नाब  
 केम परबो अकबर बायो, तानसेन है साथ  
 राग रान इतिहास बनन करि, नाय-नाय सिर नाब  
 मीरा के प्रभु गिरिधर नागर कीन्हों माहि समाब ।<sup>१</sup>

उक्त पद में भी उल्लेख समस्त पद में व्याप्त-सा है । उल्लेख करने वाली दूसरी और तीसरी वंशियों को निकाल देने पर पद में 'टिफ' और 'छाप' की वंशितवाँ रह जाती है । संपूर्ण पद ही प्रियादास के उल्लेख की अनपुर्ण टीका पर आधारित है जो निश्चित रूप से मीरा ने रचा की है । अतः इस पद की अप्रामाणिकता अंतर्निहित है ।

(ग) तुमसी के नाम मीरा का समाकषित पद भी एक पद के रूप में प्रचलित हो गया है । यह भी निश्चित रूप से किसी परबर्ती महत्पुरुष की कलावाजी है ।

(घ) एक अन्य बटना के उल्लेख करने वाले पदों की स्थिति भी ऐसी ही है । जयमल के बंध का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध है । उनके पुत्र-पुत्रियों के नामादि

(२) वही, १८१०

(१) मीरा बृह पद संग्रह शब्दनम पृष्ठ १३०

इतिहास के पन्नों में सुरक्षित हैं। मीराबाई उनके भाभा की पुत्री थी, उनकी पुत्री नहीं। इसी प्रकार वे एक राजा के पुत्र की पत्नी थीं एक राजा के भाई की पत्नी भी थीं पर किसी राजा की पत्नी नहीं थीं। फिर भी एक पद निम्नांकित रूप में प्रचलित है —

मीरबर के मन भाई राजा भी ॥  
हैं तो मीरबर के मन भाई ॥  
जेमल के बेर जनम लीयो हे ॥ जई राजां कु बीहार् ॥  
बोप भोग साम्या माहारी सजनी ॥ भस्ती प्रगट नेटु बाई ॥ राजाजी ॥  
वेसा भवति मोपी राजाजी ॥ चुक पड़ी मन माही ॥  
बगरीस महार ग्यापी बट भीतर ॥ चीदिता छिटकाई ॥ राजाजी ॥  
मात हात चुत बंधु भाई ॥ ये जब जुठी सगाई ॥  
पुरबे सगेही प्रीत मगी है ॥ बामें मुरल मीनार् ॥ राजाजी ॥  
जनम-जनम की बासी राम की ॥ नहीं मे बाटी लुपार् ॥  
घारे ने माहारे राजां प्योकी सपार् ॥ राजा ॥<sup>१</sup>

ऊपर के पद का पाठ तो भ्रष्ट है ही साथ ही वो बटमाएं भी ऐसी हैं जिनका उल्लेख मीरा द्वारा समझ नहीं आ —

- (१) जेमल के बेर जनम लीयो हे ।
- (२) जई राजां कु बीहार् ।

वे ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य और काल्पनिक बटमाएं हैं। मीरा ने अपने विषम में इस प्रकार की घमशी की होगी यह मानना व्याप्त-संगत नहीं कहा जा सकता। इस पद में एक और बात है। मीरा के मुँह से कहसकामा गया है कि 'नहीं मे बाटी लुपार्'। इस प्रकार की अभ्यासकी निम्न वर्ग के लोगों में प्रचलित है मीरा जैसी सुसंस्कृत राज-परिवार की भक्त गायी ने मुख से इस प्रकार का वचन स्वाभाविक नहीं है। इसके अतिरिक्त उक्त पद में धातुनिक गुजरती का बिहृत रूप है। अतः इसे किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

- 
- (१) बिद्या-सभा भद्र — अहमदाबाद हस्तलिखित पोथी-संख्या १७४६;  
मीराजी प्रेमबाणी पृष्ठ २६ पर यही पद कुछ भिन्न रूप में मिलता है;  
'मीराबाईना जजनी' पृष्ठ ५५ पर भी पाठ-भेद के साथ ।

[२] संवादात्मक गीत—मीरा की कृतियों में अनेक रचनाएँ संवादों के रूप में भी मिलती हैं। इस संवादात्मक रचनाओं का विषय मीरा का अपना जीवन है। इन संवादों में अक्सर 'राधा-मीरा' 'ऊँचा-मीरा' 'पंजी-मीरा' 'सखी-मीरा' 'सास-बहू' तथा 'ननद-भाभी' हैं। ये रचनाएँ अथवा राजस्थानी और गुजराती दोनों में मिलती हैं। प्रस्तुत ये रचनाएँ मीरा-कृत नहीं हैं।

स्रोत की वृत्ति से ये साधारणतः दो प्रकार की हैं—

(१) राजस्थान और गुजरात में 'मीरा-मंथन' या 'मीरा-मीमा' करने वाली कई मंडलियाँ हैं। 'मीनाभाष की मंडली' का परिचय सूर्यनारायणजी से लेखक को मिला। मेड़ता में भी इस समय एक मंडली है जिसे 'बागरन मण्डल' कहा जाता है। इन सब मंडलियों ने मीरा के जीवन के संबंध में संवादात्मक कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें वे विविध अवसरों पर नाटकीय रूप से प्रस्तुत करते हैं।

(२) जनता में प्रचलित लोक-गीतों में से कितने ही ऐसे हैं जिनमें मीरा की कथा संवादों के रूप में मिलती है। मगोहर धर्मा 'मीरा की सचनम' तथा लेखक ने लोक-परम्परा से कुछ इसी कोटि की रचनाएँ संकलीत की हैं।

उदाहरण के लिए निम्नांकित रचनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

(क) माहि ऊँची-माया मे क्यूँ रे तजी भाभी मीरा क्यूँ रे सियो बैराग,  
काई बारे मन बसो।

मीरा-याही म्हारे मन बसी ऊँचा मूँ सियो बैराग  
माया मूँ रे तजी।

धन ऊँची-बास्या कूस्या टूकड़ा मे भाभी श्रीर मिलेरी सारी छन  
रो रो भूला मरो मे भाभी नही मिलेरो हरि धाय  
मीरा-बास्या ती कूस्या टूकड़ा मे बाई पीस्या चारी छन  
म्हें रोँचा भूला मरा ये बाई, जबरे मिलेरो हरि धाय  
माया में तो मूर तजो।

(१) 'शोध-विवेक'—जून १९३० भाग ३ अंक ४ मीरा के अंशों के 'अक्षर' लेख पृष्ठ १७३-१८४

(२) मीरा एक अध्ययन—पृष्ठ २४७ से २५७ तक

(३) मीरा-बृहद-वच-संग्रह, अक्षरम सं० २ ०८, पृष्ठ १४-१५ इसी संकलन में 'मत्तमेव' और 'सोपय' नामक अंशों में इस प्रकार की कई रचनाएँ हैं जिनमें से कुछ मंडलियों के रचे गीत हैं और कुछ लोक-गीत।

(ब) इस प्रकार की रचनाएँ गुजराती में भी प्रचलित हैं। एक गुजराती मित्र से निम्नलिखित रचना प्राप्त हुई—

पंथी—भीरीं आतुन बई उभा छो धामे बाग्ये रे ।  
 भीरीं गुं महीभारियां भाटे म्यारो पंथ रे ।  
 भीरीं—भारे महिधरीधां ने सासरिधां मोंथा बर्षा रे ।  
 मुबने मयठा नित्ये छोंका साधु मंत रे ।  
 इत्यादि ॥

तत्काल एसी ही पर इससे अपेक्षाकृत बड़ी एक रचना 'सुसंग मण्डल' — नर नारायण मंदिर, कामबावली मुम्बई २ से प्रकाशित 'भीरींवाई' नामक संग्रह में संकलित है।

(ग) मेड़ता की 'आगरणमण्डली' के गायकों में प्रचलित उनकी अपनी रचना है—

राधा — मेड़तभी भीरीं बर्यो मेस फकीरी धारो ।  
 भीरीं — जयपुर राधा रे मने मय फकीरी धारो ।  
 राधा — मैं भीरीं तने यू कई साधां में मय बाध  
 लावे पिय मेड़तो घर कुल के लावे बाध  
 साधां के मय बाध  
 मय कुल के बाध लगाव  
 ये बरख धमूसन धारो ।

भीरीं — साम सुंगत प्यारी लमे सुच राधां म्हायी बाध  
 राम नाम हिरवे बस्वो छिन नहि छोड़यो जाव  
 मैं मोबिह रा गुण वास्तु —  
 धारो मेका में नहि धामू मन मेस फकीरी भायो ।

धन्त करणामृत की नाम से राधा मेम्यो जहर  
 कर करणामृत पी गई प्रभुजी कीम्ही महर  
 राधो मन मे बहुत सरमायो  
 गुल आगरण-मण्डल भायो ।

ये रचनाएँ भीरीं कृत नहीं हैं क्योंकि—

(१) भीरीं अगर नवादायक बकिटाएँ लिखती तो संवाद के पार्श्वों में वे स्वयं नहीं होतीं। उसके बजाय अन्य लोग होते।



(२) भाषा की दृष्टि से ये रचनाएँ प्रायः प्राच्य गुजराती या प्राच्य-  
निक राजस्थानी की हैं। मीरों के युग की प्राचीन परिचयी राजस्थानी या प्राचीन  
राज के रूप इनमें नहीं मिलते।

(३) इनकी परंपरा प्राच्य रूप से भी प्राचीन प्रतियों तक नहीं पहुँ-  
चती। प्रतिनिधि-परंपराओं की प्रारंभिक स्थिति में किसी भी परंपरा में  
संवादात्मक पद नहीं मिलते।

(४) इनमें से किसी-किसी में तो संकलियों प्राच्य की छाँटें भी हैं। जैसे  
(ग) में 'राजो मन मे बहुत सरमायो मुख बाधरण-मण्डन पामो'।

(५) कुछ में अन्त में 'पाठ का पुष्प' दिया गया है जो मीरों काचित्  
स्वयं न करती।

मीरों हरि की लाइसी रही मुपलहि भाय  
बुझ बाखि जिनसे सबा पई सुने सुख पाय ।

[३] निषिक्तताओं की असावधानी के कारण भी अनेक पदों का पाठ असुद्ध  
हो गया है या किसी अन्य कवि के पद मीरों के नाम से प्रचलित हो गए हैं। दो उदा-  
हरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

(क) मीरों की छाप भी अनेक पदों में किसी कारण से छपने भूल रूप  
में नहीं रह गई। गुजरात की अनेक प्रतियों में यह छाप मिलती है —

“बाई मीरों के प्रभु मीरबख्श गुण बामा हसन भी बुझडा भाजे छे ।”

“मीरजाई के प्रभु मीरबख्श गुण हरि हसन केरा बीर”

गुजराती परंपरा से हिंदी में आने वाले पदों में भी इसे स्वीकार कर लिया गया है।

वस्तुतः यह भूल गुजराती लिपि के कारण हुई है। प्राचीनतर पोथियों  
में इस प्रकार की पंक्ति थी—

मीरों (बाई) के प्रभु मीरबख्श नागर ॥ हरि हसन केरा बीर ॥ बाद के  
किसी लिपिक ने नागर के रकोबो पढ़ी पाइयों के साथ मिला दिया मीरफिर  
का ए पढ़कर प्रतिनिधि में कर दिया—

मीरों (बाई) के प्रभु मीरबख्श नागर हरि हसन केरा बीर ॥

‘मीरबख्श नागर’ गुजराती में अर्थाहीन है अतः किसी समझदार लिपिकार

हारा इसको गिरिबरना गुण (गिरिभर का गुण) कर दिया गया और इस नासमझी और अंधकचरी समझ के कारण पंक्ति इस नए रूप में आ गई—

“भीरौ (बाई) के प्रभु गिरिबरना गुण हरि हलबर कर बीर ।”

कुछ पंक्तियों का पाठ बिभर की एक और सीढ़ी पर बढ़ गया है । ‘भीरौ के प्रभु गिरिबरना गुण’ का अर्थ ठीक नहीं बैठता अतः कुछ गुजरती लिपि कर्तारों द्वारा इसे ‘भीरौ के हे गिरिबरना गुण’ कर दिया गया है ।

(ख) इसी प्रकार बिछा-सुभा अहमदाबाद की एक पोथी में एक पद की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है —

“भीरौ स्वामी बीरवरन बी बीटस पद री भई सो कबहुन भई ॥”

के० का० घास्त्री से बात करने पर सात हुआ कि यह पद ‘भीरौ’ की ही छाप का है । पर वहीं एक अन्य पोथी में उक्त पद की इस अन्तिम पंक्ति का आदि अर्थ इस प्रकार लिखा था—

गीत

इसको लिपि-दोष के कारण भीरौ पढ़ लिया गया । प्रतिनिधि में ‘बीरस्वामी’ (बीरस्वामी) ‘भीरौ स्वामी’ बन गए और बीर स्वामी का पद भीरौ का पद हो गया ।

[४] भीरौ नाम के उत्कृष्टमात्र से भीरौ-कृत माने गए पद—

कुछ पद भीरौ-कृत इसलिए मान लिए गए हैं कि उनमें भीरौ का उल्लेख है । इनमें से कुछ पद ता ऐसे हैं जिनमें भीरौ की छाप नहीं है किसी अन्य व्यक्ति की छाप है । भीरौ के जीवन पर उनमें अन्य पुरुष के रूप में प्रकाश डाला गया है । भा० नि० महता ने ‘जन सिद्धमन’ के निम्नलिखित पद को भीरौ-कृत मानकर उद्धृत किया है —

“भाई भू राजा रणछाह दारणे वारे, भाई भू

• • •

जन सिद्धमन साबो ज रूपत में बनी भीरौ राटोह ॥”

(१) हस्तलिखित पोथी-संख्या १०६१ पद १६

(२) “आ पद यावता ज ते बी रणछोड़जोगी जूनिमां समाई पई, एवन्ध पापी, बहो के साक्य्य मुक्ति पापी ।” भीरौबाई-पृष्ठ ६८

इसी प्रकार हरिदास बर्नी का एक पद भीमती शबनम ने मीरी के पद के रूप में उद्धृत किया है ।<sup>१</sup> गुजराती कवि छोटमदास का 'मीरी मो परबो'<sup>२</sup> और बँतारम के भबनो<sup>३</sup> की रीक्तियाँ भी मीरी के पदों के रूप में प्रचलित हैं । माहेरो में रवीन्द्राग्राम के मीरादास ने ८ पद मीरी के मुँह से कहसवाए हैं । ये पद स्वयं मीरीदास की रचनाएँ हैं । माहेरो की कथा से भजन करने पर ये पद मीरी-इत ही प्रतीत होते हैं—

उवाहरम के सिए—

लेजारे कपववा मरसी के पासि रे ॥ टेक ॥

राम राम कह दीख्यो सबन को । धीर कह्यो साबास रे ॥ १ ॥

कायज की बिधि होय तुम्हार । तो धाम्यो रब साब रे ॥ २ ॥

सम्बन्धी भित्ति हूँ इन घबसर । कठिन रहन की लाबि रे ॥ ३ ॥

बचन विप्र जानन्य उर भरके । गावत मीरीदासि रे ॥ ४ ॥

इत सबको मीरी के पदों में सरलतासे निकाला जा सकता है । कठिनाई वहाँ पायी है वहाँ कोई पद मीरी की छाप से प्रचलित है और साथ ही किसी अन्य कवि की छाप के साथ भी उसका प्रचार है । नीचे के उवाहरम से यह बात स्पष्ट हो जावेगी । मीरी-छाप का एक पद है—

बिरहनी फिर है प्रभुबी धधीरा ।

जामे परे सोई मली जामे और न जाने पीरा ।

जान्हा जाने जिन यहु साई के बिन जोट सही ।

संभ की बिछुरी भिन्न ना पावै सोबत मन ही रखी ।

दीन गई बूझै सखियन की कोई मोहि राम भिभावै ।

बाठी मीरी भीन भ्यूँ तलफे मिसै मसै सचु पावै ।

यही पद कुछ सामान्य परिवर्तन के साथ कबीर की रचनाओं में मिलता है—

बिरहनी फिर है नाथ धधीरा

उपजि बिना कसु समझ न परई, बाँझ न जाने पीरा ॥ टेक ॥

या बड़ बिधा सोई भस जाने राम बिरह सर मारी ।

कैसे जाने जिन यहु साई, नै जिन जोट सहारी ॥

(१) मीरी-बृहद् पद-संग्रह पृष्ठ १०

(२) बंधवितक संग्रह की प्रति

(३) राजस्थान में दिल्ली के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज तृतीय मध्य, पृष्ठ २३३

संघ की बिजुरी मिलन न पावे सोच करै धर कहाँ ।  
 बदन करै धर बुगति बिचारै, रौं राम कं चाहै ॥  
 बीन भई बूझै सखियन की कोई मोहि राम मिसावै ।  
 बास कबीर मीन ज्यू तलपै मिसै भलै सजुपावै ॥ २८४ ॥<sup>१</sup>

इन दोनों पदों में केवल साधारण साम्य नहीं है इनमें अधिकोप रक्षितार्थ समझाया है। इससे इतना स्पष्ट है कि ये एक ही पद के रूपान्तर हैं। 'बास कबीर मीन ज्यू तलपै मिसै भलै सजुपावै' के स्थान पर 'बासी मीरौ मीन ज्यू तलपै मिसै भलै सजु पावै' हो जाने से या कर दिए जाने से प्रस्तुत समस्या उठ खड़ी हुई है। ऐसी स्थिति में निम्नांकित व्याचारों पर निर्णय किया जा सकता है —

(१) मीरौ-छाप का पद जिस प्रति में है वह लगभग १०० वर्ष पुरानी होगी। कबीर-छाप का पद संवत् १८८१ की हस्तलिखित प्रति में मिलता है (सं० १९६१ की प्रति में त्रिभि की प्रामाणिकता संदिग्ध है) इससे कबीर-छाप के साथ इस पद की प्राचीनतर परंपरा के प्रमाण हैं।

(२) मीरौ-छाप के पद में 'कोई मोहि राम मिसावै' पंक्ति की भावना 'मेरे तो गिरजर गोपाल वृसरो न कोई' में व्यक्त भावना से मेल नहीं खाती और वर्तमान संघर्ष से मीरौ के लिए स्वाभाविक नहीं लगती विशेषकर उस समय जबकि मीरौ बिना किसी साहित्यिक या संगीत-संरम्भी शेष के उत्पन्न किए, वह सगरी थी— 'कोई मोहि काहू मिसावै'। पद में 'सखियों' के साथ 'राम' शब्द का प्रयोग साम्यकासीन सभुग मक्ति-परंपरा के अनुकूल नहीं है निर्गुन संघों के लिए स्वाभाविक है क्योंकि सखियों का अर्थ उनके लिए सामक 'भारमाए' है और कोई नहीं।

(३) भाषा की दृष्टि से मीरौ-छाप के पद में कई ऐसे प्रयोग हैं जो प्राचीन परिचयी राजस्थानी या प्राचीन ब्रज में नहीं मिलते—जैसे 'फिरैहू' आदि। कबीर की सभुगकी भाषा के लिए ये अस्वाभाविक नहीं हैं।

अतः इन पद के मीरौ-रूप न होकर कबीर-रूप होने की संभावना समय निश्चय के कोटि की है।

[३] कुछ पदों में मीरौ की स्वाभाविक भावना से भिन्न प्रकार तथा की भावना मिलती है। ऐसे पद संदिग्ध कोटि में ही रक्ते जा सकते हैं।

(१) कबीर संभावनी भाषा प्रचारिणी सभा पद सं० २८४

उदाहरण के लिए निम्नांकित पद उद्धृत किया जा सकता है —

भोमानाथ बिषाम्बर हे बुझ मोरि हारो रे ॥ १० ॥

जम्बून बाबल बेन की पतया ॥

सोबनि (?) के भाया बरो ॥ ११ ॥

टीमो नयनो में अस्म लमाये ॥

माचे पर गंगा पझरो ॥ १२ ॥

मिरा के प्रभु धिरपर मानर ॥

ये तेरे पया परो रे ॥ १३ ॥

भावाभिप्रेक्षित की असंयत और भाषा के बोध के साथ ही उक्त छंद में मीरों की भक्ति-भावना का स्वाभाविक रूप भी इस पद में नहीं है। केवल बारकरी और रामदासी संप्रदाय की पौधियों में ही ऐसे तीन पद मिलते हैं। नाथ से विशेष प्रभावित संतों की परंपराओं ने इस प्रकार की रचना प्रायः मिली है। उपर्युक्त रचना भी किसी ऐसे ही संत की है। मीरों की छाप के कारण उनकी कृतियों में मिल गई है।

इस प्रकार की समस्या प्रमुखतः संत-भावना वाले पदों के संभव में है। ऐसे पद दो-बार नहीं, बसियों हैं और अनेक परंपरा की प्रतियों में उपलब्ध हैं। बीसा कि मीरों की भक्ति के विषय में अनेक ग्रन्थों में विधिवत किया गया है मीरों रसिकरस की समुच्च भाव की भक्त भी। रामदास जैसे प्राचीन सांप्रदायिक संत भी यही कह सकते हैं। मीरों के पद मूलतः समुच्च-भावना के ही हैं। पर, मीरों उदार वैष्णव भी और संतों के संपर्क में रहती थी।

बारकरी मत के भक्त भागवत मत के हैं विद्वत् के पुजारी हैं। संत-मत का प्रभाव उनके काव्य पर काफी है। मीरों पर भी संतों का सामान्य प्रभाव होता न असंभव है और न अस्वाभाविक पर उनकी मूल-भाव धारा समुच्च-वेग की थी। विभिन्न प्रतियों के पाठों की तुलना से, बाव के संतों द्वारा मीरों के पदों में किए गए परिवर्तन खोजे जा सकते हैं और उपर्युक्त दृष्टि से अधिक विस्वसनीय पाठ स्वीकार किया जा सकता है।

मुनि जिनविजयजी की किसी १२० वर्ष पुरानी हस्तलिखित पोथी में मीरों के दो पद मिले थे जो उन्होंने भारतीय विद्या-भवन की 'राष्ट्रीय विद्या पत्रिका' में प्रकाशित किए थे। उनमें से एक पद का पाठ इस प्रकार है—

(१) लक्ष्मणे मठ की प्रति राजवासी संशोधन, मुंबई माईक १९४४

कई गया नेह लगाय प्रभुजी की ।

बहु समुद्र छोड़ बसे हो

जान की नाव बनाय प्रभु० । १ ।

छोड़ बसे हो बिसबास संगीती

प्रेम की बात बनाय प्रभु० । २ ।

भीरों के प्रभु गिरधर भागर

हर चरनां पित माय प्रभु० । ३ ।

बाकोर की महुजी की प्राचीन प्रति में इसका पाठ निम्नांकित है—

प्रभुजी से कहया गया नेहना लगाय ।

छाया म्ही बिसबास संगीती प्रीत दी जाती बरख ।

बिरह समंद मा छोड़ गया तो नेहरी नाव बनाय ।

भीरों रे प्रभु कबरे बिनोना ये बिन रह्या ना बाय ।

(काशी भागरी प्रचारिणी समा की पोथी में भी यह पद दिया गया है)

प्रथम पाठ का 'बहु समुद्र' और 'जान की नाव' दुर्लभ है । इसके स्थान पर दूसरे पाठ में 'बिरह समंद' और 'नेहरी नाव' है । बाकि न केवल नामात्मक और अर्थ-व्यतिरीक की दृष्टि से उपयुक्त है पर भीरों की भावना की दृष्टि से भी स्वाभाविक है । पहले पाठ में 'प्रेम की बात बनाय' पद के मूल भाव की ओर संकेत करता है और 'बहु समुद्र' में जान की नाव में बैठकर छोड़ने वाली बात किसी अवकाल में संतुष्टि के परिचय की ओर संकेत करती है । क्योंकि हमने 'बहु' और 'जान' शब्दों के प्रतिरिक्त मत-मत की भी कोई बात नहीं है । कोई भी मत जान की नाव में बैठकर और बहु के समुद्र में पहुँचकर बिकत नहीं होगा और न उससे निष्कृति पाने की वाचना करेगा । अतएव प्रथम पाठ की अपेक्षा दूसरा पाठ अधिक विरह-पूर्ण है । (दूसरे पाठ में भी सामान्य अन्तर मिलते हैं पर उनका विवेचन यहाँ अप्रासंगिक होगा ।)

[६] भाषा की दृष्टि से जाँच करने पर भी अनेक स्थलों पर मूल पाठ को प्राथमिकता दी जा सकती है । 'भीरों की भाषा' के विषय में धनग विचार दिया गया है । यहाँ यह कह देना पर्याप्त होगा कि भीरों की मूल रचनाएँ उनकी मातृभाषा में और उत्तर भारत की सत्ताधीन काव्य भाषा (विशेषकर वृत्त-काव्य की भाषा) बनना ही हैं । उनकी मातृभाषा प्राचीन परिचयी राजस्थानी की थी १४-१५ की पताब्दी में गुजराती ने अभिन्न की । भीरों के युग में उनमें बोल-भाषा अन्तर धीरे

लगा था । अतः प्राचीन गुजराती या पश्चिमी राजस्थानी का पृष्ठ भी उनमें स्वामाधिक है ।

[७] ग्रन्थ कवियों के पद जो मीरा के नाम से भी प्रचलित हैं —

कवीर	१	पद	रामसमेही गुल्का
	२	पद	श्री सप्तगाथा
	१	पद	नागरी प्रचारिणी समा, कवीरप्रभावली, पद २८४
सूरदास	६	पद	श्री संतयाथा
मरसी महता	१	पद	भक्त नरसी (पृष्ठ १३४) बीठा-बेस मोरसपुर
भीहितहरिकेश	१	पद	संतयाभीषक कस्याण पृष्ठ २८१
चन्द्र सखी	६	पद	चन्द्रसखी—बीबनी और काव्य
	१२	पद	चन्द्रसखी और समका काव्य
जन भक्तमन	१	पद	रामरसिकावली पृष्ठ ८७८
बस्तावर	४	पद	राग कल्पद्रुम तथा मङ्गलारती जनवरी ३६
प्रीतधन	१	पद	मीरामायुरी पृष्ठ ६१
नानुबास	१	पद	रामसमेही गुल्का १६३४
तानसेन	१	पद	बैष्णवदास का टिप्पण (बबीबा संग्रह की प्रति)
मीरादास	८	पद	माहेरो (सज्जन की प्रति)
(बनीबा)			
ललितादासी	२	पद	वैयक्तिक संग्रह का मुद्रका
गवरीमाई	४	पद	(बाकोर का परमेश्वर दास जी का मुद्रका)
कुल	७३	पद	

इन पदों के अतिरिक्त और बहुत से पद हैं जो निश्चित रूप से किसी ग्रन्थ लेखक के हैं पर मीरा के नाम से प्रचलित हो गए हैं । उदाहरण के लिए, हरिदास बखी का पद छोटमदास की मरबी बिद्यासभा के मुद्रके वा भीतस्वामी वर पद जामरुन मण्डली के मङ्गल जैतदास के मङ्गल और मीरा नाटकों के रचयिताओं (बस्त्रेवमिश्र आदि) के पद आदि किसी भी रचनाएँ हैं जो इस कोटि में रखी जा सकती हैं । मीरा की रचनाओं के पाठ-सम्पादन के प्रसंग में प्रक्षिप्ताश्रय असंग करने में हमारी विशेष उपादेयता है ।

निर्माकृत स्रोतों के पक्षों का इस अध्ययन के आधार स्वरूप स्वीकार किया है —

- १- डाकोर की भट्ट जी की प्रति (संवत् १६४२ में लिपिबद्ध)
- २- काशी की प्रति (नागरी प्रचारिणी की प्रतियों से मिश्र पं० समिता-प्रसाद मुकुल द्वारा प्रकाशित (डाकोर की प्रति की परंपरा की )
- ३- नागरीदास द्वारा पद प्रसंग भाषा में तथा वैष्णवदास द्वारा मन्त्रभाषा-दृष्टान्त में उद्धृत पद
- ४- अविजयदास द्वारा लिपिबद्ध संवत् १६६२ की प्रति के पद
- ५- विद्या-समा भद्र ग्रहमदाबाद की १७०१ की प्रति के पद
- ६- विनोदचन्द्र की १७०७ की प्रति के पद

उक्त स्रोतों से उपलब्ध मीरों के पक्षों को प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाने के दो प्रमुख कारण हैं —

(१) ये पद जिन प्रतियों में लिपिबद्ध हैं वे लिपिकास की दृष्टि से क्षम्य त्रियों से प्राचीनतर हैं। ऊपर उक्त लिपिकास या संकलन-ग्रन्थ का उल्लेख किया जा चुका है।

(२) इन प्रतियों के पद विभिन्न परंपराओं में संकलन करने वाले पद संकलनों तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और विभिन्न प्रयोगों में लिपिबद्ध पद संग्रहों में मिल जाते हैं या इनकी प्रामाणिकता को विशेष विश्वनीय बना लेता है।

अतएव मीरों के पक्षों का कोई वैज्ञानिक दृष्टि से संपादित संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। या पद-संग्रह मिलते हैं उनमें संकलन या संशयन आधार-भूत अथवा संकलन-कर्ता के विवेक और उसकी अपनी रुचि पर आधारित रहता है। इनके संपादकों की दृष्टि विशेष बलानुविष्ट नहीं है। समय-समय संपादकों का कहना है कि कोई प्राचीन हस्तलिखित पोषी उपलब्ध नहीं है। ऐसी परिस्थिति में इस समय उन्हीं पक्षों को स्वीकृत करना उचित है या मंत्र और वैष्णव दोनों परंपराओं की तथा मुजराय और हिन्दी दोनों प्रयोगों की विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में एक साथ मिल जाते हैं और या कम-से-कम २००।३० वर्ष पुराने लिपिबद्ध हो गए हैं। इनमें प्रत्येक और धार्मिक धर्मों के होने का अधिक भय नहीं है।



यहाँ पर डाकोर की प्रति के पद संख्या १७ व के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि यह पद प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता । कारण इस प्रकार है —

(१) प्रति में बाव में जोड़ा हुआ प्रतीत होता है । १७ वें पद के पश्चात् १७ (ख) पद का आना इस बात का स्पष्ट संकेत है ।

(२) यह पद अपनी समग्रता में विधेयकर प्रथम दो पंक्तियों के साथ किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता ।

(३) मीराँ कभी अपने मुख से यह नहीं कह सकती कि मैं 'राधिका का भवतार हूँ' । यदि वे ऐसी बातें कह सकती तो उनके नाम से सम्प्रदाय इस भक्ति-प्राप्त देश में प्रचल्य बल पड़ता । फिर उनकी निस्पृहता शामीकता और रानी-रता को देखते हुए उनसे इस प्रकार की बात की आशा करना अस्वाभाविक है । जिन्होंने भारतभरित अपने काव्य में नहीं धाने दिया (विप के उल्लेख को छोड़कर) वे अपनी जन्मतिथि का उद्घोष करेंगी यह तनिक भी संभव प्रतीत नहीं होता ।

(४) मीराँ यदि स्वयं को राधा का भवतार कहती तो भक्तों में इस बात की चर्चा प्रशंसारमक या व्यंग्यात्मक रूप में होती प्रचल्य और भक्तों के जीवन-चरित मिलने वाले नामादास, प्रियादास वैष्णवदास तथा नागरीदास जैसे अद्भुत-मान भक्त इसको अनुस्मिन्नित नहीं रहते होते । नामादास भी तो 'नोपिन' की ही भक्ति के स्थान पर 'राधा' की-सी भक्ति का उल्लेख करते ।

(५) मीराँ ने एक पद में राधा-कृष्ण संश्लेष के अनुमात्रों का बड़ा सरल वर्णन किया है पर उन्होंने अपने को पूर्णतः छटम्य रखा है । यदि वे अपने को राधा कहने का दुसाहस कर सकती तो ऐसे वर्णनों में राधा से बलब हट कर लड़ी न हो जाती उनके साथ तादात्म्य का अनुभव करती । फिर, मीराँ के काव्य में राधा की प्रत्यक्ष उल्लेख दुर्लभ है । यह भी प्रस्तुत मत की ही पुष्टि करता है ।

अतएव डाकोर की प्रति के इस पद को प्रामाणिक नहीं माना है ।

मीरा के जीवन की समस्तता को समझने के लिए उनके धन्तजगत का चक्षाटन आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में उनकी प्रसिद्ध विरस आत्मा निम्नलिखितों के आधार पर उनके जीवन-दर्शन की कल्पना के निर्माण का प्रयत्न किया गया है, पर मीरा के भाव और चिन्तन के बहुमुख-से धारमों को धारक के पूर्व निम्नलिखित तथ्य स्मरणीय हैं —

(१) मीराबाई रामानुज रामानुज भग्न निम्नार्क बल्लभ भादि की तरह आचार्य नहीं थीं। दार्शनिक दृष्टि से सृष्टि के चरम सत्य की मीमांसा न उनकी साधना का प्राप्ति का धीर न उनके स्वभाव के लिये सहज प्रकाम्य। यद्यपि मीरा में पूर्ववर्ती चिता-बाराहों की क्रिया प्रतिबिम्बित बड़ी सम्मन बड़ी थी जैसी कि दर्शनशास्त्र के प्रणेता और व्याख्याता आचार्यों में होती है। वस्तुतः वे दर्शन का सूक्ष्म सिद्धान्त-आनन्द नहीं सरस साधना का सरस उदाहरण थीं।

(२) मीरा का व्यक्तिगत कबीर की तरह आध्यात्मिक दुर्लभ मस्ती तथा नेतृत्व और निर्देशन की अपरानेय आत्मसक्ति हैं मंडित नहीं था। निर्द्वन्द्वता उनमें भी थी किन्तु नारी मुक्त समर्पण की कोमल आदना ने उसे सदैव नहीं होने दिया था। यद्यपि मीरा द्वारा कबीर के समान पूर्व प्रचलित दार्शनिक मतों का अध्ययन-अवधान लीये व्यक्तों में नहीं नहीं हुआ। वे स्वयं आराधना का स्वर थीं समाज के लिए कर्तव्य-पथ का निर्देशक धर्म उनके पास नहीं था।

(३) मीरा की स्थिति सुरवास जैसे भक्तों से भी भिन्न थी, जिन्होंने किसी निश्चित सम्प्रदाय की साधना-पद्धति को पूर्ण आत्म-समर्पण के साथ स्वीकार कर लिया था और उनके काम्य में साधक बड़ी दृढ़ व्यक्तित्व या अभ्यस्त रूप से कर्मरमक अभिव्यक्ति पाता रहा।

यहाँ पर बाकोर की प्रति के पद संख्या १७ का के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि यह पद प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। कारण इस प्रकार है —

(१) प्रति में बाध में जोड़ा हुआ प्रतीत होता है। १७ में पद के परचाय १७ (ब) पर का आभा इस बात का स्पष्ट संकेत है।

(२) यह पद अपनी समग्रता में विशेषकर प्रथम दो पंक्तियों के साथ किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता।

(३) भीरों कभी अपने मुख से यह नहीं कह सकती कि मैं 'राजिका का अवतार हूँ'। यदि वे ऐसी बातें कह सकती तो उनके नाम से सम्मिश्रित इस भक्ति-प्राप्त वेद में अवश्य जग पड़ता। फिर उनकी निस्पृहता सामीप्य और संकीर्णता को देखते हुए उनसे इस प्रकार की बात की धाँसा करना अस्वभाविक है। जिन्होंने आत्मचरित अपने काव्य में नहीं धारण किया (विप के उत्प्रेष को छोड़कर) वे अपनी कमतिवि का उद्घोष करेंगी यह तनिक भी संभव प्रतीत नहीं होता।

(४) भीरों यदि स्वयं को राजा का अवतार कहतीं तो मक्तों में इस बात की जहाँ प्रसंगिक या व्यंग्यात्मक रूप में होती अवश्य और मक्तों के जीवन-चरित लिखने वाले नामादास प्रियादास वैष्णवदास तथा नामदीदास जैसे अज्ञान भक्त इसको अनुस्मरित नहीं रहने देते। नामादास भी तो 'मोपिन' की ही भक्ति के स्वाग पर 'राजा' की-सी भक्ति का उल्लेख करते।

(५) भीरों ने एक पद में राजा-कृष्ण सयोग के अनुभावों का बड़ा सरल वर्णन किया है पर उन्होंने अपने को पूर्णतः तटस्थ रखा है। यदि वे अपने को राजा कहने का दुःसाहस कर सकती तो ऐसे वर्णनों में राजा से घलगूट कर लड़ी नहीं जाती उनके साथ साधारण्य का अनुभव करतीं। फिर, भीरों के काव्य में राजा की अत्यन्त उपासना हुई है। यह भी प्रस्तुत मत की ही पुष्टि करता है।

अतएव बाकोर की प्रति के इस पद को प्रामाणिक नहीं माना है।

## साधना-पथ

## प्रेमाभक्ति

मीरा के जीवन की समस्तता को समझने के लिए उनके अन्तर्गत का उद्घाटन आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में उनकी अस्तुट विरम धारणा व्यक्तियों के साधारण पर उनके जीवन-वर्चन की रूपरेखा के निर्माण का प्रयत्न किया गया है, पर मीरा के मान और चिन्तन के अस्तु-से आध्यात्मों को धाँकने के पूर्व निम्नलिखित तथ्य स्वरूपी हैं —

(१) मीराबाई रामानुज रामानन्द मध्य निम्नांक वस्त्रम धारि की तरह आचार्य नहीं थीं। शार्ङ्गिक वृष्टि से वृष्टि के वरम उत्पत्ती की माँसा न उनकी साधना का प्राप्य था और न उनके स्वभाव के लिये सहज प्रकाश। पर मीरा में पूर्ववर्ती बिठा धाराधनों की क्रिया प्रतिनिधा बँधी सम्भव नहीं थी जैसी कि वर्तमानता के प्रणेत और व्याख्याता धाराधनों में होती है। अस्तु के वर्चन का मूल्य विद्वान्-वाक्य नहीं सरल साधना का सरल उद्घाटन थी।

(२) मीरा का व्यक्तित्व कबीर की तरह आपसप्रिय दुर्लभ मस्ती तथा नेत्र और निर्वेचन की अपराधेय धारमयक्ति से वरित नहीं था। निर्द्वन्द्वता उनमें भी थी किन्तु नारी मुक्त समर्पण की कोमल भावना ने उसे उड़ने नहीं होने दिया था। अतएव मीरा द्वारा कबीर के समान पूर्व प्रचलित धार्मिक मतों का अन्ध-मन्धन सीधे चक्षुओं में नहीं नहीं हुआ। वे स्वयं धाराधना का स्वर ही समान के लिए कर्तव्य-पथ का निर्देशक पथ उनके पास नहीं था।

(३) मीरा को स्थिति सुरदास जैसे भक्तों से भी भिन्न थी जिन्होंने किसी निमित्त सम्प्रदाय की साधना-पद्धति को पूर्ण धारम-समर्पण के साथ स्वीकार कर लिया था और उनके काव्य में साफ़ बड़ी वर्चन व्यक्तित्व या अत्यवहित रूप से कलात्मक अभिव्यक्ति पाया रहा।

(८) दुबसी की तरह गाना पुराण-निबन्धन-सार-संग्रह की सचेतन अध्ययन-मननशील प्रवृत्ति और मुग्ध-धर्म को समझों में साकार करने की कामना भी मीरा में नहीं थी।

इस प्रकार वे न दार्शनिक धारार्थ थीं और न धारार्थ भक्त। किसी दम्प के निर्दय की बात भी उनके मन में नहीं थी। वे केवल भक्त थीं, भक्ति की साकार भावना थीं। विरक्तम प्रियतम के लिये अनन्त प्रणय का एक मधुर स्वप्न थीं और प्रणय को दार्शनिक तर्कवाद की धावस्पर्शता नहीं होती। उसमें जो निरन्तर मन को मोह रहा है, उसका हो जाना या उसे अपना बना लेना ही काकी है। ऐसे प्रेमी के कवि-हृदय होने पर संयोग वियोग की माना अनुभूतियाँ मनायास ही अभिव्यक्त हो उठती हैं। मीरा के पर तन्मयता के ऐसे ही विरक्त छलों की धायासहीन बाणी हैं। न अस्तित्वान्तिक विचार उनका अभिप्रेत था, न सैद्धान्तिक वाक्य उनका प्रतिपाद। यद्यपि उनके काव्य में किसी दार्शनिक 'मतवाद' की सूक्ष्म रेखाएँ खोजना सम्भव है।

### धाराध्व

मीरा के धाराध्व कौन वे इस विषय में विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्य में उपलब्ध मीरा-सम्बन्धी प्राचीनतम साक्ष्य पर दृष्टि डाल लेना आवश्यक है क्योंकि मत्स्य के बादबूढ़ मीरा की जिन साम्यताओं के विषय में उनके बिरोधी-अविरोधी सभी एकमत हैं और जो उनके काव्य तथा जीवन की बदनामों द्वारा समर्थित हैं, उन्हें निमित्त रूप से उनकी विचारधारा के रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिये।

### कृष्णोपासक सम्प्रदायों का मत

वस्तुतः सम्प्रदाय की औरतों मीराजन की बार्ता के अनुसार मीरा ने कृष्णदास अधिकारी के पहुँचने पर 'मीनाचनी' के लिए गट बी बी' और एक अन्य अवसर पर अपने पुरोहित रामदास से 'ठाकुरजी' के पर गाने का आग्रह किया था।<sup>१</sup> इस पर रामदास ने मीरा को सस्ती-सीबी भी सुनाई, पर उन्हीं

(१) कृष्णदास अधिकारी तिनकी बार्ता-प्रसंग १

(२) मीराबाई के पुरोहित रामदास तिनकी बार्ता-प्रसंग १

घपनी बात नहीं करनी । नम्रता और दिव्यता के बावजूद 'ठाकुरजी' के प्रति रिक्त किसी धर्म की आराधना का पद गाने की बात के साथ समझौता नहीं किया । इससे पता यह चलता है कि मीराबाई भीमापत्री के प्रति अज्ञानुभव ही, पर उनके दृष्टिकोण 'ठाकुर' ही थे । नामरीदासजी का भी अर्धविश्व प्रमाण है कि मीरा पद बनाकर 'ठाकुर' के नामे गाती थीं । उनके बिच पद को नामरीदासजी ने इन ठाकुरजी की पूजा के भीत के रूप में उद्भूत किया है, उसमें स्पष्टतः कहा गया है —

‘घाबून गिरिधर ग्याव कियो यह, छाग्यो बूबध घानी’  
मीरा प्रभु गिरिधर नामर के चरन कमल जपटानी ।<sup>१</sup>

‘गिरिधर नामर’ के अतिरिक्त प्रभु के किसी धर्म रूप का उल्लेख नवा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई संकेत भी उनके इस वक्तव्य में नहीं है ।

राजावत्मनी भूवदास<sup>२</sup> वैतथ्य सम्प्रदायी प्रियादास<sup>३</sup> निम्बार्क सम्प्रदायी वैष्णवदास<sup>४</sup> तथा अवधूत नाथ-पन्थी राधाबाई<sup>५</sup> आदि विभिन्न सम्प्रदायों के कृष्णोपासक उक्त बारणा से पूर्णतः सहमत हैं । महाद्युष्ट के बारकरी सम्प्रदाय के किसी भजोतनामा व्यक्ति द्वारा नामर के नाम से निश्चित ‘मीरा-चरित्र’<sup>६</sup> में भी इसी भाव्य के उल्लेख हैं ।

### रामोपासकों का साक्ष्य

घबराव के सिव्य रामोपासक नामादास की साक्षी भी यही है कि ‘भोव-नाथ कुस मूलना उज्जर मीरा ने गिरिधर को भजा ।’<sup>७</sup> भाये भी रामोपासक परम्परा मीरा के प्रभु ‘गिरिधर नामर’ ही मानती रही ।

- (१) नागरतमुक्कय-पद-अर्धगमाता मीरा-सम्बन्धी प्रसंग १
- (२) नाथ धर्म गिरिधर भजे-भक्तनामावलि-सीता, पृष्ठ ३४
- (३) ‘मेरत जनमभूमि भूमि हित नैन लगे पये गिरिधरीनाम पिता ही के धाम में’ श्री भक्तमास कपकता पृष्ठ ७१४
- (४) वैष्णवदास का दुष्टोत ‘मीरा गिरिधर भजी’ का दुष्टोत ।
- (५) ‘मीराबाई नाम भजी ध्याम सुन्दर’ प्राचीन काव्य-माला दश छत मीरा-माहात्म्य कड़ी-१
- (६) प्रथम तातुल केसे कृष्णार्चण मीरा-चरित्र कड़ी १६
- (७) श्री भक्तमास कपकता पृष्ठ १७६ ।

## सन्त-सम्प्रदाय के कथन

इस विषय में कट्टर सन्त-मत की दृष्टि से लिखी गई राधोबास की भक्तमाल का चस्केख विशेष विचारणीय है, क्योंकि मीरों को सन्त-मत में बसीटने का काफी प्रयास हुआ है। राधोबास का कथन है कि मीरों ने श्री हरि भजे लेकिन ये श्रीहरि कौन थे इसका स्पष्टीकरण भी उनकी प्रवृत्ति रीतियों में हो गया है। उनके अनुसार ये श्रीहरि रसिकराज थे 'मिरबर' के जिनके प्रति मीरों का भाव पत्नी-भाव और प्रेम नौपियों का-सा था।<sup>१</sup>

राधोबास ने अपनी टीका में श्री विहार बाई सन्त श्री बरिया साहब ने अपनी बाखी में इस बात की पुष्टि की है।<sup>२</sup> संत बरिबास के पूर्व के किसी सन्त ने इसके विषय कोई चस्केख नहीं किया। मीरों को ज्ञानमार्गी कहने की परम्परा का सूत्रपात संवत् १५०० के आस-पास राधोबास के काल में हुआ तभी से उनके विषय में जो मत हो गये—कुछ सन्त तो उन्हें कृष्ण-प्रेमी ही मानते रहे छेप उन्हें अपने-अपने सम्प्रदाय की भावना के अनुक्रम, अभिमापी हरि का ज्ञानमार्गी साबक सिख करते रहे।

इनके प्रतिरिक्त जन भिक्षुजन, नन्दराम मुन्दरदास कुँवरी ज्योतमदास बस्ताबर, प्रादि अनेक साहित्यकारों और भक्तों ने मीरों को गिरिबर भवना कृष्ण की प्रेम-भाव की भक्त कहा है। 'आध्यात्म के आचार' ग्रंथ में यह सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी है।

## सोकस्त

सोक की गवाही भी सन्त मत के पक्ष में है। जनता में प्रसिद्ध है—

नरसी के प्रभु साँबलिया हो सूरदास के क्याम।

मीरों के प्रभु मिरबर भाबर, मुक्तसिदास के राम॥

ब्रज का एक भोक्त-गीत भी इसी आशय की बात कहता है —

मैं हरि बिग ना पीऊं भाई।

पान से पीरी भाई मीरों बिधा तन छाई॥

(१) राधोबास की भक्तमाल मीरों-ग्रंथ पर मूल छाप्यव।

(२) (क) श्री गिरिपरहि लाल निहारन बेस समुपन को उठावे—  
हीरा प्रथम छन्द।

(ख) सन्त कवि बरिया—एक अनुशीलन, डा० बयेंद्र  
ब्रह्मचारी मुद्र ७।

आप गिरधर की दासी भीरी उपजी मुखवाई ।  
 सबके बरसन देहु मोहि न मुक्ति है आई ॥  
 मैं हरि बिन० ॥१

मीरा का दृष्टव्य

मीरा ने स्वयं कहा है—

महारो तो गिरधर गोपाल ब्रह्मरो न कोई  
 मीरा के धर्म किसी पर की प्रामाणिकता के संबंध में चाहे कुछ भी कहा  
 जाय इस पर की कोई प्रामाणिक नहीं मानता । इसमें उनकी घोषणा संदेह  
 की कोई संशय नहीं छोड़ती । इतना ही नहीं, धर्म पक्षों में भी उन्होंने  
 स्पष्टतः कहा है—

आगे गोदुल की निवासी ।  
 मधुर की गारि बैचि धान्य मुखरापी ॥१॥  
 नाचती गावती ताल बजावती करत बिनोद हासी ॥२॥  
 यशोदा को पुरण पुष्प प्रगटहि धरिनासी ।  
 पीताम्बर कटि बिराबीत कर पुवा सोहापी  
 चानुर मुष्टि डोढ मारे कंठ के पीछ भासी ॥३॥  
 बीही के अनिबेसी भाव तिरी भुषि प्रकापी ॥  
 गिरधर से नवल छानुर भीरी सी दासी ॥४॥

(१) पोद्दार-अभिज्ञान-संघ वज्र का लोक साहित्य पृष्ठ १००१ ।

(२) सं० १६६२ की हस्तलिखित पोथी—प्रत सं० ६; सप्त १७१३  
 की विद्या-सभा की एक दूसरी हस्तलिखित पोथी में यह पर थोड़ा परिवर्तन  
 के साथ दिया हुआ है—

आगे माई गोदुल की दासी ।  
 मधुरा की गार भीरवत धान्य मुखरापी ॥१॥  
 एक गावत एक नाचत करत बिनोद हासी ॥  
 नवल यशोदा के पुरन पुंन प्रगटे धमनापी ॥२॥  
 आई के अरित असी हुनी तेरी भुष प्रकापी ॥  
 पीताम्बर कटी बीरावत धरपमा घोहापी ॥  
 गिरधर से नवल पुंवर भीरी सी दासी ॥४॥



इससे स्पष्ट है कि भीरती के समय भीरसाध्व 'जलम ठाकुर' 'गिरिबर' ही थे। उम ठाकुर की विशेषता भी इस पर में इसी स्पष्ट है कि कोई भूमकर भी नहीं कह सकता कि ये ठाकुर गोकुलवासी यथोदा-पुत्र कृष्ण से भिन्न थे। भीरती के पदों की प्रसिद्ध छाप 'भीरती के प्रभु गिरिबर नागर' और उनके अनेक उद्गार (मेरे तो गिरिबर योपाम भूखरा न कोई धारि) इसी समय के छापी हैं।

## भीरती का जीवन

भीरती स्वयं इस बात का प्रमाण है कि वे समुल साकार कृष्ण की उपासिका थीं। उनका जब आकोर और अस्तोवत्ता द्वारा आकर रणछोड़ की सेवा में लीन होना किस बात का सूचक है? और देवाकी हितहरिबन्ध और जीवगोस्वामी जीर्णों का सम्पर्क किस ओर संकेत करता है? इनमें से कोई तथ्य ऐसा नहीं है जिसकी प्रामाणिकता के सामने प्रसन्नवाचक लगाना जा सके।

इस प्रकार भीरती के कठुर बिरोधी बल्लभ-सम्प्रदायी और उनके प्रसन्नक राजावत्सली ही नहीं अन्य, तटस्थ कृष्णोपासक सम्प्रदाय उनके धाराध्य के रूप में गिरिबर का ही उल्लेख करते हैं। वे ही नहीं समुल उपासक भी भीरती को 'गिरिबर की ही भक्त' मानते थे और निर्दुलवादी सन्तों के प्राचीनतम उल्लेख, युग-युग संचित लोक-मठ और उनके अपने कपन तथा कार्य सभी इसी तथ्य की असंश्लिख स्वरों में स्पष्ट होकर आते हैं।

झाराध्य का नाम :

भीरती ने अपने धाराध्य को अनेक नामों से पुकारा है। कहीं वे उन्हें गिरिबर कहती हैं, कहीं कागहा और कहीं योपाम हरि, मोहन बकि-बिहारी गोबिन्द वियाममुन्दर, मंद-किन्दोर, रणछोड़ धारि नाम लेकर पुकारती हैं। ये सभी नाम कृष्ण के हैं उन्हीं कृष्ण के जिन्हें मुर्खों ने भारतीय जन-मानस कंस-बिलासक यथोदा-पुत्र माधव के रूप में देखता रहा है। भीरती इन नामों की अपनी विभिन्न विशेषताओं में कभी नहीं उलझतीं। उनका एकमात्र धर्मप्रेत बड़ी बजबिहारी है जिसकी धाराधना के गीत बनकर वे जीवन भर गूँबती रहीं। इन नामों में उन्हें सबसे प्रिय है 'गिरिबर'। यही 'गिरिपरनागर' उनके प्रभु हैं प्रिय हैं जलम-जलम से जलनेवासी प्रीति के धारजल हैं धवलजल हैं। भीरती के मन की मंजुल भावना जब समर्पण के लिए धवलती है, तो इन्हीं गिरिबर के चरणों में पहुँचकर अपने को सार्बक मानती है।

मीरा के एकमात्र आराध्य कृष्ण हैं। उनके प्रतिरिक्त किसी अन्य के भरण की इच्छा भी इस बियोगिनी ने नहीं की। ये कृष्ण एक हैं घाँठ हैं, पर मीरा के पवों में उनके व्यक्तित्व की जो व्यंजना होती है, उसका विश्लेषण करने पर प्रमुक्तता उनके निम्नलिखित रूप सामने आते हैं—

- (क) भवतारी कृष्ण-रूप गिरिधर नागर (मद्यकार रूप)
- (ख) बिष्णु-रूप देवत्वमय सवुण तत्व जो भवतारों के रूप में प्रकट होता है।
- (ग) हरि भविनासी-रूप असीम मद्यकार तत्व जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है पर उसके परे भी है।

### (क) भवतारी कृष्ण-रूप (गिरिधर नागर)

मीरा की समस्त साधना कृष्ण के सवुण-वाकार भवतारी रूप पर ही केन्द्रित है। वस्तुतः यही रूप उनकी आराधना का एकमात्र धर्म्य है। 'बिष्णु' घोर, 'हरि भविनासी' के रूप में भी यही है पर इस कृष्णभक्त में भी मीरा के विशेष प्रियरूप हैं—

- (१) ब्रज-विहारी यशोदानन्दन तथा गोपीपति रूप।
- (२) डारकावासी रसछोड़ रूप।

जो मत्स्य-जलोवा के पुत्र के रूप में प्रपटित हुआ है, जिसकी ब्रज लीला को देखकर जन मुक्त पाते हैं ब्रज-वासार्थ रस मुख्य है। जिसके कटि में पीताम्बर, उर में बैजवस्त्री मासा धीर कर में बँधी हैं, उसके दर्शन की याचना ही मीरा के प्रार्थनों में स्पष्टित है। मीरा के ये आराध्य यमुना के तट पर धनु चराते मधुर भवनों पर पर मीठी बानी में बँधी बजाते घोर स्वयं रीझकर ब्रज की नारियों को रिझाते हैं। इस क्रीड़ा में बसबौर भी उनके साथ है। वे मुन्दर हैं कमलदल—लोचन हैं पर भय का नाम नहीं जानते कार्मिनी के किनारे बसते-बसते उसमें कूब जाते हैं घोर काम भुवंग को मास कर उसके कात-फल पर नृत्य करते हैं।<sup>१</sup> यही उनका ब्रजविहारी यशोदानन्दन रूप है।

कृष्ण के यशोदानन्दन नाम-रूप से अधिक रम्य-मधुर उनका दूसरा गोपीपति रूप है। मीरा का आकर्षण इसी रूप की ओर बिद्य है। युवतियों

(१) डाकोर पद ६२, ३ ४, ७ ३२।

के लिए रस-सागर, प्रेमावलि का धारण भी यही रूप है। वस्तुतः जो पोपियों का मन हूँटा है, वही स्वयं मीरा के साथ प्रेमरस-मीमांसा करता है। पोपी कृष्ण से मिलती है और किसी अन्तरंग सखी से सरस प्रणम-अपना स्वयं कहती है—

मीरा माई मीननि भेष बिघी ।

ता बिन से छन स्वाम मनोहर, तन मन जोर लिघी ।

बैसे कनक कचोके धमूत प्रारत बन्ध पिघी ।

बिसरी बेहू यह सुत-संपति, परजस प्रान किमो ।

तनि द्विजबास मधुपुरी जुं हरि बन (X) बिघी ।

मीरा-अमु बिसरत नही बिछरे बरबान बहीमो ॥<sup>१</sup>

गोपी का मन मानता नहीं है, स्वाम की पुरसी सुनते ही उसके बसंतों की साजसा बग जाती है। सखियाँ मना करती हैं, पर मन हटक में नहीं आता, समस्त वर्जना व्यर्थ जाती है। सब तो बाहे कोई बुरा कहे, मसा कहे, वह सब कुछ सुनने और सहने के लिए प्रस्तुत है। ऐसा वा उस स्वाम के सीध-का प्रभाव।

(२) कृष्ण ब्रज की छोड़कर मधुरा में आए थे, वहाँ से चला बने। मीरा की उनके राज से कुछ लगाव नहीं था, उन्होंने कृष्ण के राजसी छट की और नहीं निहाय। फिर भी द्वारकावासी रणछोड़ कृष्ण के चरणों में मीरा का मन रमा। घर की छोड़ते ही उन्होंने प्रार्थना की—

राज भी रणछोर दीबे द्वारका को बास ।

संस बक मदा पदुम बरसि मिटै बन की बास ॥

सकन तीरथ बोमती के छूत निख निबास ।

संस म्भार रि भी बाजे सदा सुख की रास ॥

तम्पो वैसक बेस हू तनि तम्पो राजा रास ।

दास मीरा भास गिरनर तुम्हें यह सब सास ॥<sup>२</sup>

कृष्ण-प्रणम की समस्त रस-मीमांसा वृत्तावन में ही संपादित हुई। द्वारका में वे गोपी-पति की अवेला जन-जन के धाराध्य अधिक हो गए हैं। मीरा ने रणछोड़ के प्रति जो पद गाए हैं, उनमें पूज्य की महत्ता और परिमा

(१) सं १७ १—बिछा-सखा की प्रति पर २ ।

(२) नागरीबास पर ९ ।

के सम्मुख वे नष्ट धिर हैं। ब्रज रूप का ता प्रेषण की मधुरता में घासिपन की भाकाभाओं और बियोप की विवशताओं से अभिनन्दन किया है।

### (स) विष्णुत्व

मीरों के पारम्पर्य कृष्ण पौराणिक भक्त उद्धारक भगवान भी हैं। यहाँ उनमें विष्णुत्व की प्रतिष्ठा हो जाती है। विष्णु के विभिन्न अवतारी रूपों में उन्होंने मध-मध-हारी कार्य किये हैं।<sup>१</sup> वे कहती हैं—

पिया बारे नाम सुसामी जी।

नाम सेतां ठिरठां मुग्धा बध पाइन पानी बी॥

कीरठ काई ना किया बनां करम कुमानी बी।

मलिका कीर पडावतां बैकुंठ बसानी बी॥

अरब नाम कुवर भयो कुछ अवधि घटानी बी।

यझ छाह पम छाहयां पसु-जूम पटानी बी॥

अजामीन अथ ऊवरे अम-बाध नसानी बी।

पूतनाम-जस माहमी अथ सार पानी बी॥

सरलापत ने बर दियां परतीठ पिछानी बी।

मीरों हासी राबनी धपनी कर जानी बी॥<sup>२</sup>

उन्होंने सुना है हरि भवम उधारण और भव-सारण हैं, वे कूबरे यम की पुकार सुनकर भागते गए, उन्होंने दुपद-सुता का और बढ़ाकर दुपासन का मध कुचन दिया हरिणाकस्य का उदर विचारकर प्रह्लाद की प्रतिष्ठा रखी इसलिए वे इस दयालु उदार भक्त्यत्सव भगवान से विद्वान विनय के स्वरों में पूछती हैं—मेरे लिए इतनी देर क्यों ?

वैदिक और पौराणिक साहित्यों में विष्णु के कई रूप मिलते हैं। ऋग्वेद में वर्णित चिन्हों से स्पष्ट है कि विष्णु और वैष्णव हैं, सूर्य के सम्यक् प्रकाश हैं। उनके नाम की निरक्ति भी इसे ही प्रमाणित करती है। मात्स्य के अनुसार रश्मियों के द्वारा व्याप्त होने अथवा समग्र संसार को व्याप्त करने के कारण सूर्य विष्णु के नाम से अभिहित है। मीरों के काव्य में विष्णु के इस रूप का नहीं उल्लेख नहीं है।

(१) कमलवत लोचना ने बाध्या काल भुञ्ज्य। कातिरीरह नाम नाम्या काल कज कज निरत करंत। मीरों के अनु पिरिबट, ब्रज बनिता रो बंत ॥ हाकोर पद १२।

(२) हाकोर, पद २५।

ऋग्वेद में विष्णु को 'अग्नेय योष' भी कहा गया है और उनके सर्वोच्च पदके रूप में 'गोमोक' की चर्चा हुई है। वैष्णव-ग्रंथों में इसका विस्तृत वर्णन है। पुराणों में विष्णु-अवतारों की भी अनेक कथाएँ हैं। मीरा ने कृष्ण को इसी से भिखते-भुखते 'अन्न के अपर्याप्त गोपी-पति' के रूप में चित्रित किया है। पौराणिक बटनार्थों का संबंध भी उनसे जोड़ा है। उनके कृष्ण 'गांस काटनेवाले' अविनाशी तो हैं<sup>१</sup> ही साथ ही उन्होंने अपर्यापी अनामिस, नीच सदान भीलनी और कुम्भा को भी धारा है गबरार की रत्ता की है और बरिष्ठा को विमान पर चढ़ाया है।<sup>२</sup> वे विवरण विष्णु के पौराणिक रूप तथा उनकी अग्नेय स्वस्थ और अपरिमित सदायता के ही चोतक हैं।

### (ग) हरि अविनाशी अगम रूप

वैष्णव भक्तों ने भगवान के सगुण रूप को पूजा का विषय बनाया है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्म के निर्गुण निराकार सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान रूप की वास्तविकता को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। सूर की तरह सगुण-सीता-मय गाने का कारण सबसे नहीं दिया परन्तु अधिकोक्त अपने आराध्य के सगुण रूप को भजने के साथ ही उसके सर्वशक्तिमान पूर्णानन्दमय रूप को कभी विस्मृत नहीं करते। मीरा जानती हैं कि अविनाशी हरि के चरण सुमग, सीतल 'कमल-कोमल, बभल-ज्वालाहरण' ही नहीं अपनी विपटता में नक्षत्रातीत । ब्रह्माण्ड तो उनमें सोढवा है। पर, इसी छांस में वे यह भी कह जाती हैं कि—

इन चरण कानिनाग नाथ्यो योपसीता करण ।<sup>३</sup>

तब इस बात में सन्देह नहीं रहता कि मीरा के 'हरि अविनाशी' वही कृष्ण हैं जिन्होंने नन्दनन्दन मिरिचारी बनकर बापर में सीता की थी।

### रूप और सज्जा :

मीरा ने अपने आराध्य के रूप का वर्णन अनेक पदों में किया है। उनके गीतों में जो नन्दनाम बसे हैं उनकी मोहनी मुरल और साँवरी सूर्य हैं। सुन्दर बदन कमल बल सोचन और नयनों में समा जाने वाली चारिज

(१) डाकोर पद २।

(२) डाकोर पद ३१।

(३) डाकोर १४।

मंवर, मलबारी घनकें<sup>१</sup>—ये सब उस मनमोहन की मुखम मोहिनी मूर्ति में घनस्त धारकण मन है। मीरी उस रूप में 'नख निख' में नहीं उतरी। कसारमक रूप-बलन उनका बहोदय भी नहीं था। घतएव कमल कबली सिंह, संत शुक भावि उन्हें नहीं दिखाई पड़ उन्होंने देखा मनमोहन रूप धारकक चितवन घोर उनके साथ घसाधारण मंजुस लोना का परम प्रकाम्य रस।

मीरी के गिगिर की साज-सज्जा कृष्ण की परम्परा द्वारा मान्य सज्जा ही है। 'मोर मुकुट माया तिलक बिराज्या है तनपर पीताम्बर घोभित है बानों में कुंवल की छवि म्वाये' अथर पर मुखारस मुरली बिराजती है और उ में बैजयन्तीमान है।<sup>२</sup> रूप-रंज की तरह इस साज-सज्जा के भी विस्तृत विवरण इस प्रेम विधोविनी के पदों में नहीं हैं।

### लोला की संगिनी-मुखली

कृष्ण के बैस में बार वस्तुएं प्रमुख हैं—मोर-मुकुट बैजयन्तीमान पीताम्बर और बांसुरी। एक प्रकार से कृष्ण का बाना उन्हीं से पहचाना जाता है मगर मुरली का महत्व विशेष है। वह कृष्ण के मधुर बजसीमा के सक्रिय संगिनी है। उनका आसन्नल गोपिणी तक उसकी माहक तान बनकर ही पहुंचता है। या बात धव्यों में नहीं कही जा सकती वह मुरली के स्वरों के सहारे हृदय को हिमा देती है। वस्तुतः कृष्ण की कल्पना मुरली के बिना अधूरी है। ज ? कृष्ण का कम गोपिणी के मन को माहता है, वहीं उनकी बली का रस सुनकर गोपिकाएं उन-उन की मुधि मूल जाती हैं, वर का नाम साइकर बन की चाह लेती हैं। मीरी ने कहा है—

ध्याम सुन्दर पोरीनाथ ब्रंदावन रावे ।

साजन मोरली बावे ॥

सख धुर सहीत पग छति तान बनावे ॥<sup>३</sup>॥

मोह पधु-पछी हुम मुनिनी ध्यान भुनावे ॥२॥

मुरली को घोर मुखत गोपी छति भाई ॥

मीरी प्रमु विरिचर मिछे तन की ताप बुझाई ॥३॥<sup>३</sup>

(१) डाकोर पद ३ ४ ४६।

(२) डाकोर पद ७ ४२ ४६।

(३) बिछा-सया पद १ (राय भाव)।

मुरली का प्रभाव अचर्चनीय है। पशु-पक्षी और द्रुम सब मोहित हैं। बिकट साधना करनेवाले मुनियों का ध्यान भी विस्मृत हो जाता है। इसीलिए सप्त सुर-सहित राग से भंडित यह मुरली स्वास को सामान्य संकीर्ण का सुमधुर स्वर बना देने वाली साधारण मुरली ही नहीं। कृष्ण के कम-रस की आराधिका और उनके प्रणव-मय की पुकारित गोपियों को उनके प्रियतम तक पहुँचाने वाली असीम शक्ति भी है।

विद्वानों ने इस मुरली का आध्यात्मिक दृष्टि से निरूपण किया है। वेणु के तीन अक्षर ब-+ह-+मू तीन अक्षरों के जोड़क बताए हैं—'ब' बह्म-सुख का जोड़क है, 'ह' ऐहिक सुख को प्रगट करती है। इन दोनों प्रकार के सुखों को जो 'मू' अर्थात् मनु के समान करनेवाली है, यह है वेणु। वेणु में आध्यात्मिक अमलकार हो या साध्विक पर इतना सत्य है कि कृष्ण प्रथम की दीप शिखा मीरा ने वेणु के आकर्षण में भौतिक सुखों को अवश्य टूटता दिया था।

आचार्य बल्लभ ने वेणु-नाम को 'नाम-मीला-कर्म' कहा है।<sup>१</sup> कविवर नंददास ने सचे योग भाषा के समान बताया है।<sup>२</sup> नाव-संप्रदाय की हठयोग की साधना में जब कुंठिनी शक्ति ऊर्ध्वमुखी होकर बहलार की घोर बमन करती है तब साधक को अनहद नाद सुनाई पड़ता है। यह नाद आत्म में समुद्र-गर्जन मेघ-वर्जन धारि का सा होता है। फिर बटि और संस की सी ज्वलि सुनाई पड़ती है और अन्त में यह ज्वलि किकिनी बीणा अमर और बंधी की सी हो जाती है।<sup>३</sup> इस प्रकार बंधी का रस हठयोग में अनहद नाव की श्रेष्ठतम अवस्था का प्रतीक है। पर मीरा को मुरली के इस वासंनिक अर्थ की क्वाचित् चिन्ता नहीं थी। सुर में मुरली को अनेक स्वरों में प्रस्तुत किया है। कहीं यह 'मोकोतर रस की बाणी है कहीं अचर रस लेने वाली सीतल' है, कहीं 'मानवती पत्नी' है और कहीं 'तन बागैवाली उपसिन्धी'।<sup>४</sup> मीरा के कृष्ण की मुरली केवल गोपियों पर मोहिनी बासनेवाली कृष्ण मधुर संधिनी है। मीरा स्वयं गोपियों के साथ तादात्म्य कर लेती है। अतः मीरा

(१) आचार्य बल्लभ नायक १०-२१-५, सुबोधिनी धार्य।

(२) रासव्याख्यायटी-प्रथम अध्याय।

तब सीनी कर कमल, योग भाषा-सी मुरली।

(३) कबीर—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ४६।

(४) सुरसागर नायरी प्रचारित्नी सभा पद-संख्या १८३४ १८३९, १९७४ १९७३, १९५८।

की तरह मीर-काम्य की घोषी को मुरली पर न रोप है, न खोज है। वह वह कृष्ण की है, मन को प्रियतम से मिलने के लिए माग्न कर देती है, भुनी ई आत्मा को जगा देती है इसीलिए मीर की प्रिय है, उसकी भारणीया है।

### सीसा-भूमि (बुन्दावन)

बृ बाबन मयुरा जिले का वह प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है, जो कृष्णचन्द्र का श्रीवा-सोम माना जाता है। वैष्णव भक्ति-साहित्य और दर्शन में उच्चक चिरामणि की मयूर सीता का लज्जित होने के कारण बुन्दावन को बीकुंठ से भी ओष्ठतर कहा गया है।

विभिन्न वर्णों का विस्तार करने पर बुन्दावन के चार रूप मिलते हैं—

#### (१) ब्रह्म-स्वरूप बुन्दावन

बुन्दावन में नित्य कृष्ण की नित्य-सीता व्याप्त है। वस्तुतः कृष्ण बुन्दावनमय है और बुन्दावन कृष्णमय। यद्यपि बुन्दावन को कृष्ण का रूप भी माना गया है। स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड में भगवत्सङ्कार्णव वर्णन करते हुए शारङ्गिण ने कहा है 'यह वन समस्त भूमण्डल में व्याप्त है। पुराणीय परब्रह्म भी सर्वत्र व्याप्त रहता है, यद्यपि यह भी वन कहा जाता है।' स्वामी हज्जिरानन्द सरस्वती (करपात्रीजी) ने भी 'भगवद्गुण' में बुन्दावन को कारण-रत्न-स्वरूप ब्रह्म का स्वरूप बताया है।<sup>१</sup>

#### (२) नित्यपाम बुन्दावन :

बुन्दावन-सम्बन्धी धार्मिक निरूपण इसी धर्म के चोतक हैं। पद्म राण में बुन्दावन-महारूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

‘सुमे स्थितं निगमार्त्तं भुवमेवैवरेष्ठया

नित्यं बुन्दावनं नाम रहस्यं परमं पदम्’<sup>२</sup>

अन्य पुराणों में भी बुन्दावन के वर्णन में उसके 'नित्य' रूप पर जोर दिया गया है। भुवनास भाषि हिंदी के अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने भी

(१) वज्रन व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनात् वज्र उच्यते।

पुराणीय परब्रह्म व्यापकं वज्र उच्यते।

(२) पृष्ठ १६०

(३) पानात खण्ड द्वितीय अध्याय।



बुम्बावन को धादि संतहीन नित्य बिम्ब धाम बताया है ।<sup>१</sup>

(३) भक्तों के भाव स्वतः बुम्बावन :

भक्तों के भाव-लोक में भी रसेश श्रीकृष्ण की रस सीता बनती है । धत-उनका हृदय भी सीता-शेख बुम्बावन बन जाता है, बिधेयकर उस समय जबकि उन्हें अपने हृदय में राससीता का र तपस होता है ।

(४) भूलोक स्थित बुम्बावन :

इसके दो रूप हैं—(क) भक्तवती कृष्ण की बिम्ब सीता-भूमि जहाँ कृष्ण ने मोप और बोपियों के साथ द्वार में रस सीताएं की थीं । (ख) वर्तमान भौतिक बुम्बावन जो कृष्ण भक्तों का तीर्थ-स्थल है और जिसकी रस कृष्ण-भक्त प्रसौकिक और पूजनीय मानते हैं ।

मीरों के काव्य में बुम्बावन धावा है मगर मीरों का बुम्बावन न बहुस्वरूप है न नित्य धाम और भक्तों की कृष्णानुभूति का मानस लोक । वह भूलोक स्थित बुम्बावन है, जहाँ कृष्ण की सीता हुई थी । उन्होंने कहा है—

‘मोर मुकुट पीठ-बर सीहा यस ईर्ष्या भासो ।

बिम्बावन मा बेनु-चराबा मोहन मुरली बासो ।<sup>२</sup>

और उनकी धावाया यही थी कि वे गिरिधर की बाकर बनें और बिम्बावन की कुंज-महिन में मोहिब की सीता को पाएँ।<sup>३</sup> कृष्णवतार की सीताओं के रस बुम्बावन के उस भौतिक रूप की ओर ही मीरों ने संकेत किया था जिसके वर्णन उन्होंने स्वयं अपने जीवन में सतिता सती के साथ किये थे—

(१) धादि धत बाकी नहीं नित्य सुखय बन धाहि ।

माया त्रिगुण प्रपंच की पाल न परतत ताहि ।

बुम्बाबिनि गुहाबनी रहत एकरत नित्य ।

प्रेम तरंग रंग तहाँ एक प्राण है मिल ।

—भुवराज बयालीस नील बुम्बावन सीता पृ० १६-२२

(२) डाकीर, पद ३५

(३) यही पद ३५

धासी म्हाखे जागां बुम्बावन एणिको ।  
 बर पर तुमसी ठाकुर पुजां दरसण गोबिन्दो का ।  
 निमल नीर बह्या बमणा का मोखण हूय बह्या का ।  
 रतन सिबासण भाप बिराग्यां मुकट बर्यां तुमसी का ।  
 कुंजन कुंजन किर्या साबरा सबय सुग्यां भुरसी का ।  
 मीरी रे प्रभु मिरिबर नापर मजन बिण्डा मर कीका ।<sup>१</sup>

वस्तुतः मीरी बुम्बावन के दार्शनिक रूपों के विवेचन में नहीं पड़ीं । समूह प्रवृत्तियों के रूप में उस जीवात्मा भूमि बुम्बावन का ही वर्णन उन्होंने किया है, जिसका अनुभव उन्हें या तो कृष्ण-सीमा के भाग्यिक प्रत्यक्ष में हुआ था या जिसे उन्होंने अपनी ध्यानावली मीरिका साधकों से स्वयं देखा था ।

### साधक

साधक का तात्पर्य है, किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि की क्रिया में लीन जीव । साध्यात्मिक क्षेत्र का साधक एक ऐसा पक्षिक है जो निरन्तर पक्षौक्तिक आनन्द के चरम मरय तक पहुँचने के लिये प्रयत्नशील रहता है ।

साधक जीव के सामान्यतः तीन रूप होते हैं—एक उसका वह मौलिक रूप है, जो सृष्टि के आदि में था । साधारणता की मटे में जाने से पूर्व जीव का यही रूप रहता है । दूसरा साधारणता की भूमिका में मायावृत्त सुख-दुःख समन्वित मौलिक रूप है और तीसरा, वह आदर्श रूप है, जिसकी प्राप्ति की कामना या साधना वह करता है । किसी-किसी वर्ग में प्रथम और-द्वितीय रूप अभिन्न होते हैं परन्तु वैष्णव वर्ग में भक्ति के अनेक प्रकार मानते हैं । अतः सभी जीवों की अन्तिम अवस्था एक-ही नहीं होती और सभी उस आदि मौलिक रूप को प्राप्त नहीं करते ।

मीरी के काव्य में जीव के आदि मौलिक रूप का विवेचन नहीं हुआ । वस्तुतः यह वर्णन का विषय है और उसकी गहराई में मीरी वहीं नहीं उतरती । उन्होंने जीव को न तो रामानुज के चित्त-तत्त्व के समान 'देहेन्द्रिय मन' प्राण हैं जिसका अन्तः आत्मरूप नित्य अखण्ड अमृत निरवयव निर्विकार और आनन्दमय बताया है न निबार्क की तरह 'प्रज्ञान बल' 'स्वयं बोधोति' और 'आनन्दमय' कहा है और न बल्लभाचार्य के समान जगत् सत्त्विक के 'विमर्श' और आनन्द के विरोभाव की चर्चा उठाई है ।

मीरी के अनुसार सांसारिकता में पड़े बीच तीन प्रकार के हैं—

(क) कर्म से कुगति कमानेवाले

(ख) भव सागर के भैरवहार में पड़े सामान्य बीच और

(ग) साधक ।

(क) मीरी के अनुसार 'यह संसार कुबुधि का भांडा' है। इसमें ऐसे लोग भी हैं जो मूर्ख हैं, जन्म गेवा रहे हैं। जन्म ही नहीं गेवा रहे, कर्मों से (कृकर्मों से) कुगति भी कमा रहे हैं।<sup>१</sup> कर्म से कुगति कमानेवाले से बीच वस्तुतः माध्यम तल के तमोमय बीचों की कोटि के हैं, जिनमें ईश्वर रासनों और पिछाचों के साथ प्रथम समुद्र्यों की भी गलना है। वस्त्रवाचार्य ने इन्हें आसुर संसारी बीच कहा है। निम्बार्क तल के अनुसार ऐसे ही बीच वस्त्र-काम में मग्न कुमुद बड़ बीच हीरे हैं।

कृकर्म की व्याख्या भी मीरी ने अपने एक पद में कर दी है। इनके अनुसार साधुओं की निम्बा और धसाधुओं की संघत ही कृकर्म हैं।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त खोरी करना बीच छताना, ओष में सिप्ट रहना भी उनकी दृष्टि में अपकर्ष की राह पर ठेकने वाले कर्म हैं। यह व्याख्या भक्ति की अपने जीवन का धर्म-कर्म और सर्वस्व मानने वाली साधिका की है, किसी पाचार यास्व के तर्क—निष्ठास्त पंडित वा सत्त्वज्ञाता शार्थिक की नहीं।

एक बात और, मीरी ने कुगति का कारण प्रभु के रोप से नहीं बीच के अपने कर्म से जोड़कर 'बर्मभेवाधिकारसे' वाले पीठा के सिद्धान्त की स्वीकृति ही प्रमट की है।<sup>३</sup>

(ख) मीरी के अनुसार दूसरे प्रकार के बीच हैं 'भवसागर के भैरवहार' में पड़े हुये सामान्य बीच। ये 'भव-जग-कृत' के जन्मन में बने हुए हैं।

(१) ये संसार कुबुध रो भांडी साध संघत ला जावां ।

साधजग रो निबा ठाहा करन रा कुमत कुमावां ।

—डाकीर पद ५५

(२) और करी न बीच संतावां काई करती म्हारी कोई ।

राजकरता गरन पड़ेसी भोयीडा जग के लीया ।

—भावरीनात पद १

(३) कर्म गति द्वारा सारी करां ।

—डाकीर पद ५४

करमरी कुगति कमावां

—ब ५ पद ५५

मीरों ने इस प्रकार के जीवों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। उनके पदों में संकेतों से 'ओ सामर तथा जम-भुन-बचन' स्थापक हरि चरण की धरण में न घाने वाले जीवों की स्मृति सिद्ध हो जाती है।<sup>१</sup> ये ही वस्तुतः सामान्य जीव हैं, जो संसार के प्रवाह में बहे जा रहे हैं, न विधेय कृपति के पक्ष पर हैं और न साधना के उन्मूलककारी माय पर।

(५) साधक जीव—मीरों के काव्य में निम्न प्रकार के साधक जीवों के संकेत हैं—

(१) अज्ञान में ही प्रभु की ओर उन्मुख होनेवाले जीव जैसे अनामिक मणिका।

(२) घात घर्षात् परिस्वस्तिजम्ब विवशता से ईश्वरोन्मुख होनेवाले, जैसे गज प्रोपदी।

(३) प्रभु से स्नेह रखनेवाले जैसे भीलनी।

(४) प्रलय माय के साधक जीवि—

(क) कुम्भा

(ख) बोरी

(ग) पणिका

(५) अज्ञान में प्रभु की ओर उन्मुख होने वाले जीव

ये वे भाव्यधारी जीव हैं जिन्होंने अनजाने ही प्रभु का नाम ले लिया था और उस नाम के प्रभाव से सांसारिकता से मुक्त हो गए। 'गलका और पड़ावता बीकूठ बसाणी जी'-ने स्पष्ट है कि मणिका ने स्वयं सचेतन रूप से प्रभु को पाने या बीकूठ पहुँचने का प्रयास नहीं किया था वह कोर को पड़ा रही थी 'राम राम' और इस नाम का प्रभाव इतना था कि मणिका का अनायास उद्धार हो गया। इसी प्रकार की बात अनामिक के साथ भी हुई। उसके भी पक्ष ऊपर गए और जम की जाह मिट गई।<sup>२</sup>

मीरों की भावना प्रभु की समपता कर्मफल और पुनर्जन्मवाद में थी।

(१) काशी पृष्ठ ५५

(२) गलका और पड़ावता बीकूठ बसाणी जी।

अनामिक अथ उपर जम जात रामगरी जी।

धर' इस आचार पर अनुमान किया जा सकता है कि गणिका भीर भवामिन के घरने के मुख में बड़ी चार्ते होंगी —

(१) प्रभु नाम का प्रभाव ।

(२) पूर्ण ज्ञान के कर्म ।

## (२) आर्त जीव

मीरबाई के पदा में उल्लिखित जीवों में से कुछ को आर्त जीव कहा जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'मयपय' है।<sup>१</sup> साधना और पापपना यह नहीं जानता। ज्ञान-भ्यास से यह दूर है। मोक्ष की तो कहे कौन धर्म हैं भी उसे अपरिचय है। उसका तन और मन जो माँगता है, उसके पीछे वह चाहे-अनचाहे जीवन भर दौड़ता है। पर वह प्रपन्न होने पर, कुछ की निर्मम धर्मियों के आने पर प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण कर देता है। गणिका और भवामिन मयपय की तरह आर्त नहीं हैं, धर्म-काम में तीन कुमुद, बड़ा जीव है।

आर्त जीव एक प्रकार के भक्त साधक हैं, जो भौतिक परिस्थितियों से विचलित होकर ईश्वरोन्मुख होते हैं। जैसे वे सामान्य जीव हैं पाप और पुण्य दोनों की धर्मियों से मुक्त भौतिक जीवन की धर्म-काममय धार में बड़े जा रहे हैं। पर, उनके भीतर कुछ संस्कार हैं कि समय पड़ने पर माई का परित्याग करके सबकुछ परमात्मा के ऊपर छोड़ देते हैं और प्रभु-कृपा से यही आत्म-विसर्जन उनका कर्णधार बन जाता है।

## (३) स्नेहशील निरीह जीव

तीसरे प्रकार के साधक प्रभु से स्नेह रखने वाले निरीह व्यक्ति हैं जिनका उदाहरण भीमनी है। भीमनी के घरने के प्रतिरिक्त मीरबाई ने इसके विषय में कुछ नहीं कहा है। यहाँ पर उन्होंने परंपर्याप्त कथा का विस्वास करके उसका उल्लेख मात्र किया है।<sup>२</sup>

(१) (क) गिरिधारी धारसुं भारी धायी राक्षस किरयानिधान ।

दूबता नजरान ताया भार्या सुगता सुदान ॥

मीर प्रभु री सरन राखनी धिनदा बीस्यो फान ॥

—डाकोर पद ३१

(ख) हरि करिहो जन की भीर ।

बूझत नज प्राह तापो कियो बाहिर भीर ॥

—नागरीबास पद ४

(२) डाकोर पद ३१

## (४) प्रपय भाव के साधक

मीराँ के काव्य में प्रमुख भाव से प्रभु की ओर देखने वाले हैं—कृष्ण यात्री और गोपी-श्रेष्ठ राजा । कृष्ण का तो उल्लेख मात्र जड़ों में किया है ।<sup>१</sup> उसकी मूर्ति के स्वरूप का स्पष्टीकरण प्रस्तुत वर्णन से नहीं होता । उनके काव्य में साधनापथ के प्रमुख यात्री हैं गोपिकाएँ । गोपी के सामान्य रूप के साथ मीराँ का साक्षात्कार हो जाता है । वस्तुतः वहाँ सीधे उनका हृदय अपनी बात नहीं कह पाता वहाँ वह गोपी का धामय लेता है ।

'गोपी' का वैष्णव संप्रदाय में विशेष महत्त्व है । वह अनुसूयात्मिका भक्ति की सफल साधिका ही नहीं, कहीं-कहीं तो देवत्व से परिपूर्ण भी मानी गई है । बृहत् ब्रह्मसंहिता (२४ १७३) में गोपी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि गोपी नीला नाव की परवैभवा है, जो प्रपन्न घरणामय भक्तों की दोषों से रक्षा करती है ।<sup>२</sup> भागवत् (दशम स्कंध अध्याय १८, श्लोक ११) के अनुसार तो 'गोप और गोपियों' के रूप में देव ही प्रगट हुए हैं ।<sup>३</sup> वहीं नहीं गोपियों को कहीं 'शक्ति कथाओं' का अवतार' (शामन पुण्ड्र का बृह-मंगु संवाद) कहीं 'सुपुनर कथाओं' (वसुधैव कुटुम्बकम् धीमहि भागवत की सुबोधिनी टीका) और कहीं 'अहोरात्र' (वसुधैव कुटुम्बकम् धीमहि भागवत की सुबोधिनी टीका) और कहीं 'अहोरात्र' (वसुधैव कुटुम्बकम् धीमहि भागवत की सुबोधिनी टीका) कहा गया है । भक्तिन्यायशास्त्र के अनुसार भक्तिन्यायकार भगवान की भगवद् रूपिणी अन्तरंग शक्ति (स्वरूप शक्ति) संविनी और संवित् होन के साथ ही ह्लादिनी भी है । साधुसंभाव के भक्त इसी शक्ति को राजा कहते हैं । गोपी भाव अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर 'अहोरात्र' या 'राजा भाव' कहलाता है । यहाँ गोपी किसी न किसी रूप में ह्लादिनी शक्ति सिद्ध हो जाती है । डॉ० मुंशीराम शर्मा के अनुसार गोपियों भिन्न-भिन्न रूपों की हैं । उनमें कुछ देव-कन्याएँ भी कुछ शक्ति से कुछ शक्ति हैं और कुछ स्वयं प्रभु की अन्तरंग शक्तियाँ भी । इन सबकी मध्यस्थी गोपियों के रूप में सब में एकता हुई । इसी हेतु इन गोपियों के पृथक् समूह हैं ।<sup>४</sup>

(१) वही पृष्ठ ११

(२) गोपायति जनान् यस्मान् प्रपन्नानेव गोपतः

अतो गोपीति विलयाता नीलास्यापरदेवता ।

(३) गोपजाति प्रकृष्टा देवा गोपातकपिला ।

(४) डॉ० मुंशीराम शर्मा भारतीय साधना और सूर साहित्य पृष्ठ २९५

मीरों के काव्य की बोपियों का इतिहास बनकहा ही है, उनके व्यक्तित्व का शारीरिक विवेचन नहीं हुआ है। वे कैमल मक्खि के एक भाव की प्रतिनिधि हैं। इस भाव को गोपी भाव या 'मीर-भाव' भी कहा जा सकता है, क्योंकि मीरों-साहित्य की बोपियाँ उन्हीं के प्रणय भाव की साक्षर प्रतियाँ हैं। मीरों के पदों में जैसे उनकी भाकांक्षाओं का आदर्श ही यथार्थ होकर गोपी बन गया है।

प्रम-असल्ला मक्खि-मार्ग के काव्य भक्तों और मीरों में एक विशेष अन्तर है। मीरों का हृदय समर्पणशीला प्रणयमूर्ति मारी का हृदय है जबकि काव्य भक्तों को मुख्य शरीर में पके हृदय पर गोपी-भाव का आवरण आसना पड़ता है नहीं तो वे कृष्ण-गोपी-सीता के सर्वक मान बनकर रह जाते हैं। अतः मीरों के काव्य में उनकी भावना स्वयं सीधे व्यक्त हुई है, बोपियों का आभय उसे नहीं केना पड़ा। दूर, नन्ददास हितहरिवंश आदि सभी ने गोपियों का आभय लिखा है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि मीरों के पदों में गोपी का प्रायः उल्लेख नहीं है।<sup>१</sup> वहाँ गोपी-कृष्ण-सीता, मीर-कृष्ण सीता बनकर प्रगट हुई हैं।

विद्या-समा की संवत् १९६५ और सं० १७०१ में लिखित बोपियों में एक पद है—“क्याममुन्दर गोपीनाम नृन्दावन राधे” जिसमें कहा गया है—

मुरली को धोर सुनत गोपी उठ जाई ।

मीरों प्रभु निरिबर नागर मिसे तन की ताप बुझाई ॥

गोपी और कृष्ण की संयोग-कथा का सार यही है। इसके अतिरिक्त कृष्ण के आकर्षण और वियोग से उत्पन्न शारीरिक असुविधाओं की अभिव्यक्ति भी उनके पदों में है, पर अधिकतर पदों में यद्यपि बातबरण और भूमिका प्रय की है और कृष्ण की भी नहीं सीता है, जो बोपियों के साथ बड़ी थी, मगर उसकी नामिका गोपी न होकर मीरों स्वयं हैं।

- (१) जिन इस्तलिखित बोपियों की प्रामुख अभ्यधन का आचार माना गया है उनमें गोपी नाम के साथ कृष्ण-सीता के पर तीन-बार से अधिक नहीं हैं। कुछ पदों में 'अज-मारियों' का उल्लेख है, उन्हें भी बोपियों में गिनने पर नुस्ख से एक दर्जन पदों में इस प्रकार के स्पष्ट सीधे उल्लेख मिलते हैं।

दो टपाहरण इस बात को स्पष्ट कर देंगे —

(१) धानी भूरे नीला बाम पड़ी ।

चित्त बड़ी म्हारे माधुरी मूरत हियंझा धपी गड़ी ।  
कबरी ठाडी पंथ निहारा धपने बबण बड़ी ।  
अटक्या प्राण साबरो प्यारो बीबन मूर बड़ी ।  
बीरा मिरिबर ह्राप बिकाणी नाग कहू बिगड़ी ॥<sup>१</sup>

(२) दुष्मा री म्हारे हरि धाबांगा धाव ।

म्होला बड़ बड़ बोला सजनी कब धावा महाराज ॥  
हादुर थोर पनीधा बीण्या कोइल मबुरां राज ।  
जमंया इन्द्र बहूं दिरा बरसा बामण ओइया भाव ।  
बरती रूप नवा-नवा बर्या इन्द्र मिलन रे काव ।  
भीरा रे प्रभु मिरिबर नागर देवु मित्यो महाराज ॥

ऊपर के दोनों पदों की धर्मिण्यक्ति से प्रतीत होता है कि मानो इसकी वक्ता कोई कृष्ण की समकामीना प्रेयसि है पर यह बात मीरा के अपने माद-व्यक्त के विषय भी सत्य है ।

राधा :

प्रलय की चरम आनन्द-स्थिति तक पहुँचने वाले भक्तों का आदर्शरूप राधा है । ये सावक ही नहीं साध्वंस भी हैं । राधा के 'उद्भव के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह अनुमान है कि 'राधा इसी दय की धाम बाति की प्रेम देखी रही होयी ।'<sup>२</sup> डॉ० मुन्शीराम शर्मा का मत है कि 'राधा अपने भूत रूप में सत्य की प्रकृति ही हैं ।'<sup>३</sup> ब्रह्मवत् पुराण के लीहृष्ण अम्म बण्ड में लिखा भी है 'ममादंश स्वरूपार्त्तं मूम प्रकृतिरीश्वरी' । डॉ० राधामुण्डा दास मुन्ड ने यह स्थापित करते हुए कि राधाकाव्य का बीज सामान्य धर्मात्माद में है, कहा है कि 'जो भी कुछ धर्मात्मा रूपिणी अम्म-परिणति के प्रवाह के अन्दर से उन्होंने धाकर रूप परिग्रह किया है परम प्रेम रूपिणी मूर्ति में ।'<sup>४</sup>

(१) डाकोर पद १५

(२) बही पद ४५

(३) सूर साहित्य—(नवीन संस्करण) पृष्ठ १६-१७

(४) भारतीय साधना और सूर-साहित्य पृष्ठ १७५

(५) श्रीराधा का अम्म-विकास पृष्ठ ३



प्राचीन शिला-लेखों या शिला-चित्रों में इस बात पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। क्याचित् इस विषय से सम्बन्धित प्राचीनतम साक्ष्य जोधपुर के पास के मंडोर के पास जुबाई में प्राप्त स्तंभ के ऊपर उत्कीर्णित मूर्तियों का है, जिनमें स्रष्ट मंग सोमर्षन-वारण इत्यादि कृष्ण की पुरातोलक बाम-सीमाएँ संक्षिप्त हैं। यह साक्ष्य पाँचवीं सती का है।<sup>१</sup> राधा के विषय में इन प्रस्तरों किन्तु चित्रों से भी कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। बंगाल के पहाड़पुर की जुबाई में प्राप्त (५वीं सती की) शिलाशोधों में कुछे कृष्ण के साथ गोपी के चित्र को डॉ० सुनीतिद्वार बादुर्या राधा का चित्र ही मानते हैं। मगर यह अनुमान मात्र है, राधा का उल्लेख वहाँ नहीं है। वैदिक साहित्य में 'अनेन गोप विष्णु सो है'<sup>२</sup> राधा नहीं है।<sup>३</sup>

गोपी कृष्ण जीसा के प्राचीन साहित्यिक उल्लेख माघ के नाटक 'बाम चरित' में है (माघ को कोई ईसा की बूखरी सताम्बी का घोर कोई ७वीं सती का मानता है) तमिल साहित्य में 'मेयोन बबबा मयवन' और उनकी प्रिया 'नमिनई' की कल्पना कृष्ण राधा के समान है। ईसवी की बूखरी सती के तमिल ग्रंथ सिलप्पविकरम् में नवगोप कन्याओं के नृत्य (रास) का वर्णन है।<sup>४</sup> राधा का स्पष्ट उल्लेख वहाँ भी नहीं है।

राधा के प्रारंभिक साहित्यिक दृष्टस्य (असांप्रदायिक) उल्लेख प्रथम सती की रचना गाथा सप्तसती<sup>५</sup> ई० सन् ७०० और ७२६ के बीच रचित

(१) आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया—ऐनुअल रिपोर्ट सन् १९११-१२ पृष्ठ १३५

(२) आग्नेह (१-१२-१८)

(३) आग्नेह में 'अत्रोष राधानापते' (१-२०-२९) छाया है पर वह भारद्वाज के धर्म में व्यक्तिवाचक (नाम) नहीं है।

(४) इंडियन क्वैरर मोस्यूम ४ २६१-२७७ (बी० बी० बीसितार)

(५) मुहमाज्जल तं कबह गोरधं राहिमाय बबलुन्तो  
एतासां बसबीलुमभ्युता वि गोरधं हररत

—गाथा सतसई (१ २९)

(कृष्ण विज्ञान इस ग्रंथ की चौथी-पाँचवीं सती का मानते हैं)

की 'मठइबही' की गाथा<sup>१</sup> 'बग्गसग' सुभाषित संग्रह,<sup>२</sup> पञ्चम्यासोक<sup>३</sup> आदि में मिलते हैं।

वस्तुतः राधा का जो रूप वैष्णव-साहित्य में धाराध्य माना गया वह ईसा के प्रथम १०० वर्षों का निर्माण है जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य विधायक तत्कालीन जनभाषा-साहित्य में विशेषरूप से हाती रही है, पर वह अप्रमत्त नहीं है 'गाथासतसई' और 'बग्गसग' जैसे संग्रहों में उसकी मूर्त्यारिक भूमिका का संकेत मिल जाता है। राधा का विस्तृत विवेचन और व्यापक प्रचार पुराण साहित्य द्वारा हुआ वह भी बाद के पुराणों द्वारा। वैष्णव-साधना के मेरुस्थ भागवत पुराण में श्रीकृष्ण का एक विशिष्ट मोपी के प्रति अनुमान वर्णित है। उसमें राधित पर ध्याता है, पर 'राधा' वहाँ नहीं है।<sup>४</sup> हरिवंश पुराण में राधसीता तो है, पर राधा-कृष्ण का युग नहीं है। आगे बढ़कर ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा राध की स्तुति और उसके माहात्म्य का प्रतिपादन पद्म पुराण में राधा-भूजन के महत्त्व का बचन और देवीभागवत में प्रणय की अभिष्टात्री देवी राधा की पूजा और राधार्जन के विस्तृत विवेचन हुए।

राधा के व्यक्तित्व के विकास में भीम-भोविन्दकार जयदेव का योग विशेष उत्प्रेक्षनीय है। उनकी रस-ग्रन्थ कमारमक प्रतिभा ने राधा की साधनिक उत्पत्तियों से युक्त प्रणय की मञ्जुरिमा सीमा की नायिका बना दिया और उनके बाद वह चंडीदास विद्यापति आदि की कला द्वारा विकसित होती हुई जनभाषा के जन धर्म-मार्ग भावुक मन्त्रों-कवियों के पास पहुँची जिनकी रक्ति में साहित्य का इतिहास भीरी को भी लड़ा जाता है।

इस प्रकार आभीरों की धाराध्या धार्यों की प्रेम देवी राधाय की इति या 'शक्ति' के रूप से जन्मी राधा का विकास प्रारम्भ में जन-साहित्य

(१) गृ-रैहा राधा-कारणाधो — कथलं हरम्भु को सरसा ।

बन्धन लम्बि कील्लुह — किरण धन्तोधो कम्हत्स ॥

— गठइबही—२२

(२) कम्हो जयइ जुवालो राधा जम्मत बीबला जयइ (३ ॥ १८)

(३) सेवा गोव बभू बिसात मुहुवा इत्यादि ।

(४) धनया राधितो मूर्ध्न जगवान हरिरीइवरे

यन्तो बिहाय गोविन्द प्रोतोयाजनयइरहः

— भागवत पुराण (१०-१०-१८)

मीरादास पुराणों और ललित कलात्मक साहित्य के द्वारा हुआ मीरा जिस समय मीरा मक्ति के क्षेत्र में प्रवेशरहित हुई, उस समय उनके सामने राजा कृष्ण की प्रत्यक्ष संगीति के रूप स्वीकृत हो चुकी थी।

मीरा के पदों के स्वीकृत हस्तलिखित प्रतियों में केवल एक पद ऐसा है, जिसमें वृषभान भविनी का उल्लेख है। यह इस प्रकार है—

भसी बु बनी वृषभान भविनी प्रातः समि रणु बीते घाव ।  
मुक्त परेन्द्रेण प्रसन्न कर कूटी मधुरी नाभि गजगति मजावती ॥  
मोहन छेन छबीके नावर सुख ही डोरीया सुनत बावे ।  
होउ सुमट रणुकाव महारस चासठ मवन छेर नहि पावे ।  
हरी के नख बनि उबय विराजित दिन तारावसी हार बैलामत ।  
मीरा प्रभु गिरिधर छबी निरलत बदन कोटि रति नाति मजावत ॥

मीरा का यही एकमात्र पद ऐसा है जिसमें कृष्ण राजा की रति का वर्णन है, बरना मीरा ने संयोग के जो चित्र खींचे हैं उनमें भी मानसिक पक्ष प्रमाण है। अधिक से अधिक यह कहकर वे चुप हो गई हैं—‘मीरा प्रभु गिरिधर मिले तन की ताप बुझाई’। स्पष्ट रति वर्णन उन्होंने सम्पन्न नहीं किया। इस पद के आधार पर मीरा का मत वृषभान-भविनी राजा को कृष्ण की प्रत्यक्ष प्रिया के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में सिद्ध होता है। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि मीरा के काव्य में गापी-कृष्ण शृंगार उक्त राजा-कृष्ण-शृंगार कोटि तक नहीं पहुँचता। सामान्य पोसी कृष्ण के रूप पर मुख है और उनकी बाँसुरी के स्वर को सुनकर उनके पीछे ‘जावती’ है। ‘रति-रण’ की स्थिति तक उनकी पहुँच नहीं है।

मीराजीय वैष्णवों ने माधुर्यभाव की रति तीन प्रकार की मानी है—  
(१) साधारणी (२) सम्यक्स्था मीरा (३) समर्प। समर्प रति के उपासक का एक मात्र सङ्ग होता है। मगधान का ध्यानम्। इसके सिधे वह धातु की मर्यादा का भी उल्लंघन करने में भी संकोच नहीं करता। इसका दृष्टान्त है मोपिका। यही भाव अपने उत्कृष्ट तक पहुँचकर महाभाव या राजाभाव के नाम से विख्यात होता है।<sup>१</sup> कविराज कृष्णदासकृत वैद्य-विरामावृत में कहा गया है—रस की कारण कान्ताएँ परकीया ही हैं। राज-वधुयें इस भाव

की प्रवधि है ।<sup>१</sup> राधा इन ब्रज-बधुओं के बीच में इस भाव की पर्याप्त प्रवधि है । इस प्रकार राधा प्रेम का स्वरूप है । वे कृष्ण की बाँछा की पूर्ति करती हैं ।<sup>२</sup>

मीरा के मौन में भयबद्ध चर्चा करने के लिये मीरा के प्रतिपि बनकर ठहरने वाले हितहरिबंध के भी राधा-कृष्ण की वैशि के बिना बहुत कुछ इसी संप्रदाय के द्योतक हैं । हितजी व रतिकेलि का वर्णन करते हुए राधा को 'मुरत संप्रामिनी' कहा है ।<sup>३</sup> मीरा का राधा का उक्त रूप और राधा-कृष्ण की रति की व्यंजना करने वाले अनुभावों का बिजल मौड़ीय संप्रदाय के राधा-भाव से बहुत कुछ निकला-बुलता है । राधावस्तभीय संप्रदाय के 'राधा' भाव के साम भी उसका सामान्य साम्य है ।

- (१) प्रतएव भयुर रस कहि तार नाम  
स्वकीय परकीया भावे द्विविध संस्थान  
परकीया भावे प्रति रतेर उन्नास ।  
ब्रज बिना हरि अम्यत्र नाहि वास ।  
ब्रज बधुमण्डल एह भाव निरवधि ।  
तार मध्ये वीराधार जखेर प्रवधि ॥

—आदि लीला चरितउद् ४ पृष्ठ २३

- (२) चैतन्य चरितामृत मध्य लीला चरितउद् ८, पृष्ठ १४९  
प्रेमेर स्वरूप हेतु प्रेमे बिजावित

× × ×

हृष्य बाँछा पूर्ण करे एह कार्य तार ॥

- (३) विभिन्न ब्रज कुंज रतिकेलि भुजवर्ति

रवि दयाल दयाला मिले दारद की चामिनी ।

हरे प्रति कस सभ तुल पिय मागरी

करनि कर प्रति मनों बिबिध गुन रामिनी ॥

सरतपति हास चरित्हास आबेध ब्रज

रतिन दल भवन जस कोक रस जाबिनी ॥

(बेघी) हितहरिबन्ध मुनि सात काव्य मिरे

प्रिया प्रति सूर मुख मुरत संप्रामिनी ॥

—हित वीराती पद संख्या ४३

कृष्ण की दो प्रियाओं—सत्यभामा और राधा का उल्लेख (विशेषकर सत्यभामा के नाम और कृष्ण द्वारा मगाने के साथ) मीरा के नाम से प्रचलित 'सत्यभामानु कसनु' नामक गुजराती काव्य में हुआ है पर ऐसा कि सिद्ध किया जा चुका है यह रचना मीरा-कृत नहीं है किसी बाद के कवि गुजराती गुरुवाकार की है जो 'मीरांगो स्वायी' प्रयोग के कारण मीरा-कृत मानी जाने लगी ।

बीसवीं शतीमें लिपिबद्ध साहित्याद के एक इस्तमिखित 'ध्रुव' में मीरा-अप का एक पद मिला है, जिसमें 'राधा चन्द्रभामा चन्द्रावलि, बरपा सलिला और संख्या' गोपियों का उल्लेख है ।<sup>१</sup> प्राचीन पद्यों में इसकी अनुपलब्धि और वर्तमानक में इसमें धर्म-सम्बन्धी असंगतियों के कारण इसकी प्रमायिकता संदिग्ध है ।

## पुनर्जन्मवाद और कम-सिद्धांत

नर्जन्मवाद :

अन्य वैष्णवों की तरह मीरा का पुनर्जन्म में बहुत विश्वास है । मीरा ने कई पदों में अपने 'पूर्व जन्म की' या 'जन्म-जन्म की' कृष्ण-भेंटिका होने की बात कही है ।<sup>२</sup> कहीं उन्होंने अपने को कृष्ण की जन्म-जन्म की दासी और कृष्ण को जन्म-जन्म का साथी कहा है<sup>३</sup> तो कहीं वे 'पूरा जन्म के काल

(१) होरी जेज्ज वासी ज्जमारी ।

राधा चन्द्रभामा चन्द्रावलि बरपा सलिला मुसीने ।

संख्या सुंदरि कनक धट धारे लाजी लाज घरीरे ।

नव-नव थीर कुमुम्बी सारी मोहन धभरन सजिए ।

नव-नव केसि मदन मोहन सी नवल पिपा मित भजिए ।

लाल धुरंध बांस बमनी सब बाजे बैकु रताल ।

मीरा कहै प्रभु गिरिपर नागुख बूझावनबासी

(२) वाली मीरा जन्म-जन्म ही गृहारा धांगन धाग्यो थी ।

—ठाकोर पद ९८

(३) गृहारी जन्म जन्म रो साथी जाने ना बिसरया दिन राती ।

—वही पद ४३

की ओर कहीं पुरब जनम की पुरानी प्रीति की याद दिलाती हैं।<sup>१</sup> एक स्थान पर उन्होंने अपने बतमान जीवन में गिरिधर के मिलने का कारण ही पूर्व जन्म का 'भाव' माना है।<sup>२</sup> श्याम नाम के महत्त्व का वर्णन करते हुए भी उन्होंने कहा है कि इसके प्रभाव से 'जन्म-जन्म के पुराने पाप-दोष (बुरा) भूट हो जात हैं।'<sup>३</sup> इससे एक और बात ज्ञात होती है कि मोरी पुनर्जन्म को ही नहीं मानती थी पुनर्जन्म के साथ पूर्वजन्म के कर्मों का नवीन जन्म में संकमिष्ठ हो जान में भी उनका विश्वास था।

### कर्म-सिद्धान्त

मीरा प्रेम-सल्लस भक्ति की साधिका थीं जिसमें कर्मकाण्ड के विशेष महत्त्व नहीं है पर, कर्मवाद में उनका पूरा विश्वास था। धर्म वेदान्त मत के अनुसार कर्म तीन प्रकार के माने गए हैं—संचित (प्राचीन) संचीयमान (भविष्य में उत्पन्न होनेवाला) तथा प्रारब्ध (वर्तमान)। संचित कर्म भर में रहे गए अथ संचीयमान कर्म क्षेत्र में बीज रूप अथ और प्रारब्ध कर्म मुक्त अथ क समान है।<sup>४</sup> मीरा ने संचित कर्मों का स्पष्ट उल्लेख किया है। बीज की जो जनम-जनम की जाता है, मीरा की जो पूर्व जनम की प्रीति है वह सब संचित कर्म ही। अपने कर्मों से कुमति कमानेवाले कदाचित् चण्डा के कर्मों की बात कहकर उन्होंने प्रारब्ध और संचीयमान कर्मों की ओर भी संकेत कर दिया है।

मीरा ने कर्म की अनिवार्य शक्ति का वर्णन औरबार चन्दों में किया है। उनका एक अत्यन्त लोकप्रिय पद है—

कर्म मति टारौ ना छै टारौ।

सतबाही हरनबा चना डोम घर मीरा मरी ॥

---

(१) मीरा (कुं) प्रभु बरसल बीर्या पुरब जनम रो कोइ।

—वही पद १३

(२) मीरा रो विरपर मिस्या री पुरब जनम रो भाग।

—वही पद २९

(३) जन्म-जनम रो जाना पुरानी नामा श्याम मद्या री

—वही, पद ५८

(४) भारतीय दर्शन ग्रन्थ उपाध्याय पृष्ठ ४७३

पीच पोंदुरी रागी रूपवा हाव हिमासां परी ।  
 जय्य किया बसि ऐस इन्द्रासन आयां पतास परी ।  
 मीरां रे प्रभु गिरिधर नागर बिचरुं प्रमरित करो ॥<sup>१</sup>

कर्मफल की अनिवार्यता के सम्बन्ध में वैदिक युग में ही विचार होने लगा था । बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है—‘पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पाप पापेनेति ।’<sup>२</sup>

कर्म सिद्धान्त का दार्शनिक ही नहीं सामाजिक नैतिक मूल्य भी है । इसका यह तात्पर्य है कि समाज में असम्मत मनमानी का सर्वतन्त्र स्वतन्त्र एकाधिकार नहीं हो सकता । साधना की दृष्टि से यह सिद्धान्त आराधना को जन्म देता है । जीव की अपनी शक्तियों में विश्वास उत्पन्न करता है । प्रकर्मव्यवस्था के प्रवर्धन में प्रवेश करने से रोकता है और कर्म संन्यास के मार्ग से हटाकर कर्मयोग की ओर प्रेरित करता है ।

मीरा ने ‘साधु संगति के विरोध’ को प्रभु कर्म बताया है, पर उसके घुमाघुम की कोई व्यापक कसौटी उन्होंने नहीं रखी । अगर मीरा के जीवन को उनके कर्म सिद्धान्त का साकार उदाहरण मानें तो कहना पड़ेगा कि प्रभु प्रपित तथा सौमिक दृष्टि से फनासार शून्य कर्म सिद्धान्त मीरा को प्रिय था क्योंकि उनका जीवन स्वयं अपने प्रिय के सामने एक समर्पित आराधना था । अगर उसमें स्पृहा थी तो प्रिय को पाने की उनके द्वारा संगीकृत होने की ।

साधना के कारण

इस संसार से विमुख होकर हरि की ओर उन्मुख होने के दो कारणों के संकेत मीरा के पदों में मिलते हैं—

(क) विराग जन्म—यह संसार मस्तर है । जो कुछ बरिण और मदन में दिखाई पड़ रहा है वह सब विनष्ट हो जायगा । इस बेह का बर्ष अर्थ है क्योंकि इसे भी भिदूटी में मिस जाना है और रही संसार की बात वह बहर की बाजी की तरह है, जो संध्या होते ही उठ जाती है ।<sup>३</sup> इतना ही नहीं यह संसार कुकुडि का भाहार है ।<sup>४</sup> विषय में व्याप्त इस विनाश की

(१) वही पद ५४

(२) ३-२-१३

(३) अमौर पद २

(४) वही पद ५५

सर्वमयी निर्मायिका को परिवर्तन के इस चक्र को जो अस्तित्व और धन-  
स्तित्व का क्षेत्र इस भौतिक विश्व के साथ घेर रहा है। मीरा धन्वी तरह  
पहचान चुकी थीं। साथ ही उन्हें संसार की 'कुबुद्धि' का परिचय भी मिल  
गया था। अतएव यह बात उनके मन में अग गई थी कि यह संसार चिरन्तन  
रस और अनन्त आनन्द नहीं है सचता। यही विराग की मूल प्रेरणा है।

इस मन्त्र संसार में जीव पड़ा हुआ है। इसके रहस्य को समझकर  
भी उसका निस्तार नहीं है। इस भव-सागर से जीवन का बेटा किसी तरह  
अपनी सामर्थ्य से पार नहीं होता। यह बेटा मन्त्रधार में डूब रहा है।<sup>१</sup>

प्रभु सर्वशक्तिमान है। उन्होंने गन्ध का बचाया कुपद सुता का और  
बड़ाया हिरण्यकश्यप का उदर विषारकर प्रह्लाद की प्रतिष्ठा रखी।<sup>२</sup> उनकी  
सामर्थ्य का कोई पार नहीं है। वे कालीनाथ को नाथ सकते हैं पिरि को  
उठा सकते हैं भयका का गर्व चूर कर सकते हैं। और क्या कहा जाय  
'ब्रह्माण्ड स्वयं उनके चरणों में भँटा है।<sup>३</sup> उनके नाम में भी असीम शक्ति  
है। सुनते हैं कि नाम लेने से पानी पर पत्थर तैर गये। गणिका कीर पड़ाने  
से ही बैकुंठ जली गई अत्रामिस के समस्त अक्ष ऊपर गए और मन की बाँध  
गट्ट हो गई।<sup>४</sup> शक्ति के साथ ही साथ वे 'अचम उबारण' और ब्याप्तु हैं।  
वे मक्त की पुकार पर अवश्य आते हैं और दया बरके सबाँटे भी हैं। इस बात  
० वेद पुरान भी कह चुके हैं।

यही कारण है कि संसार में विरक्त अनुप्य भक्ति-भाव से उसी ब्याप्तु  
शक्तिवाली की और उन्मुख होता है अर्थात् साधना करता है।

(क) सहज आकर्षण-जन्म

कृपण स्वयं अपने सौंदर्य को मोहित करते हैं। मीरा के साथ  
यही हुआ। वे स्वयं के ही —

(१) आमी री म्हारे नैया बान पड़ी।

चिज जे म्हारे मानुषी मूरत हियड़ी धरी पड़ी ॥

(१) वही पं २२

(२) वही पं ३४

(३) वही पं १४

(४) वही पं २५



घटकपां प्राण सांवरौ प्यारो, जीवन मूर बड़ी ।  
मीरौ गिरधर हाथ बिकानी सोय कहुँ बिगड़ी ॥<sup>१</sup>

(२) यहाँ मोहन के रूप गुमायी

सुन्दर बदन कमल इत सोचन बाँकी बितवन मैना समायी ।<sup>२</sup>  
यह धारपण एक बन्म का नहीं है, जगम-जगम का है ।

इस प्रकार बीच परमात्मा की ओर दो प्रकार से उगम है—एक  
बिद्यमयूक्त धनुराय से दूसरा सहज धनुराय से । यद्यपि ये दोनों मीरों के  
काव्य में व्यंग्य हैं परन्तु दूसरे का स्वर अधिक तीव्र है । उन्होंने संसार के  
प्रतिबिम्ब की बात बहुत कम कही है, अधिकाल-व्याप्त-निवेदन में धनुराय  
के मर्म की ही व्यंजना है ।

## भक्ति-पद्धति

मनुष्य की समस्त साधना चिरन्तम् ध्यानम् की प्रमुख उपलब्धि का प्रयास है। वैदिक ऋषि की 'असत् से सत् तम से ज्योति और मृत्यु से अमृत की ओर जाने की कामना से लेकर मार्क्स के श्रेणीहीन समाज के स्वप्न तक—सन्ती के पीछे दुखों से चिर निवृत्ति तथा ध्यानम् के अन्तहीन उपभोग की ही दुर्लभ अभिलाषा छिपी है। उपनिषद् के अनुसार यह अभिलाषा दो मार्गों की ओर ले जाता है—प्रेयोमार्ग और श्रेयोमार्ग। पहला सत्तार की भौतिक समशीलता का मार्ग है और दूसरा परम कल्याण के साधन का। बिनेकी प्रेम के सामने भय का ही कारण बनता है। भीरु ने भी यही मार्ग अपनाया था। प्रसौकिक भय को ही उन्होंने प्रेम बना दिया था। इतना ही नहीं वे त्याग और विरक्ति की प्रमाद-भूमि की नहीं प्रणयोलम्बि की सरस उपलब्धि की वासिनी थी। इसलिए श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट—ज्ञान कर्म भक्ति—तीनों योगों में से भक्ति योग को ही उन्होंने प्रहण किया। भक्ति में भी बाह्य भावरणों का भावपूर्ण उन्हें नहीं मटक सका उसके प्राण-क्षय प्रलय के साथ ही वे एकरस हो गईं।

भक्ति शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं—सेवा आराधन बड़ा अनुराग आदि। व्युत्पत्ति के आधार पर भक्ति का अर्थ है—'अपमान का सेवा प्रकार'। पदार्थ संगानुसार भक्ति की अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत हुई हैं। इनमें सबसे अधिक प्रचलित परिभाषा साङ्ख्यिकी की है—'सा परानुरक्तिरीरवरे' (ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति ॥)। उन्होंने आत्मरति के विरोधी विषय में अनुराग को भी भक्ति कहा है।<sup>१</sup> अविच्छिन्न रूप से शुद्ध आत्म-स्वरूप में रत रूपा ही आत्मरति हैं।<sup>२</sup> इस प्रकार जहाँ साङ्ख्यिकी प्रथम परिभाषा ईश्वर (समुल्लेख रूप) के उपासकों की दृष्टि से है वहीं दूसरा में निर्गुण

(१) आत्मरत्यविरोधेनति साङ्ख्यिक्य (नारदभक्ति सूत्र संख्या १८)

(२) प्रमदशान, १८ वें सूत्र की व्याख्या, पृष्ठ २४

धम्मक की उपासना करने वालों के दृष्टिकोण का भी समावेश है।<sup>१</sup> भागवतकार का कथन है कि प्रेम निरतश्रवण के साथ निरर्तुक तथा निरन्तर होने पर ही 'भक्ति' सम्बन्ध द्वारा अभिविष्ट किया जा सकता है।

नारद रचित 'भक्तिसूत्र' में कहा गया है कि 'गर्वाचार्य के मत से भगवान की कृपा प्राप्ति में अनुराग होना ही 'भक्ति' है।<sup>२</sup> धीर पादशरमन्थन श्री व्यासजी के अनुसार भावभक्त की पूजा प्राप्ति में अनुराग होना भक्ति है।<sup>३</sup> नारद का मत है कि अपने अस्मिन् प्राचरणों को तपस्वि करना और उस (ब्रह्म) के विस्मरण में परम व्याकुल होना ही भक्ति है जैसे ब्रज गोपियों की भक्ति।<sup>४</sup> भक्ति की उक्त परिभाषाओं में धर्म और पापघर का भक्त साधनास्वरूप भक्ति पर है और नारद का व्याप फलसंगम्य (अनासक्त) कर्मयोग से सम्बन्धित निरतिशय अनुरागमयी भक्ति पर।

नारद पादशरम में 'समस्त उपाधियों से विनिर्मुक्त होकर तत्परा के साथ निर्मलतापूर्वक हृषीकेश भगवान की सेवा को ही भक्ति माना गया है।<sup>५</sup> इसमें साधन साधेका मुक्तिकी बात नहीं गई है जो बाद के प्राचार्यों ने अनुरागात्मिका भक्ति से निम्न कोटि की मानी है।

विष्णुपुराण के अनुसार भगवान का अनुस्मरण करने वाले जन के हृदय में भगवान के प्रति जो आसक्तिपूर्ण पर धनप्राप्ति की प्रीति होती है, वही भक्ति कहलाती है। भक्ति सिद्धान्त के प्रतिपादक एवं में भागवत का विशेष मान है। उसमें नरपित द्वारा प्रतिपादित किया गया है कि केवल विहित कर्मों में लगे हुए लोगों की भगवान के प्रति भगव्य भावमयी स्वभाविकी

(१) ज्ञानमार्गी श्री शङ्कराचार्य ने कहा है—मोक्षकारण साधनमो  
भक्तिरेव परीक्ष्यती स्वस्वरूपानुसंगान् भक्तिरित्यभिधीयते

—प्रेमदर्शन पृष्ठ २४ ॥ उद्धृत

(२) कवार्तिध्विति धर्म (सूत्र १७)

विनुराग इति पाराशर्य (सूत्र १६)

(४) नारदास्तु तपस्विताभिलाषारिता तद्विस्तमराले वरमत्याकुलतति  
यवावजयीपिकानाम्

सूत्र ११-२१

(५) सर्वोपाधि विनिर्मुक्त तत्परासेव निर्मलम्  
हृषीकेश हृषिकेश सेवने भक्तिरनन्यते।

—प्रेमभक्तियोग महात्म श्री वेङ्कटजी महाराज पृष्ठ २१

सार्वभौम प्रभुति का नाम भक्ति है। भक्त्युक्त गंगधारा के समान वह सर्वान्त रमणी के प्रति मुण्डमयल भाव से प्रादुर्भूत अभिषिष्ट मनोगति है।

मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले आचार्यों ने भी इन्हीं व्याख्याओं को स्वीकार किया है।

निम्बार्क का मत है कि क्वाचि विषयक धर्मात् भगवान् के रूप गुण आदि के विषय में समग्र चित्त को व्याप्त कर देने वाली भूति भक्ति है।<sup>१</sup> निम्बार्क मतानुयायियों का भाव है उक्त प्रकार की चित्तवृत्ति के सम्बन्ध पर है। यह उदय चाहे किसी भाव के साथ ( वास्तव-मय-मायुष इत्यादि ) हो पर मौढीय बंधुओं की साधना-प्रणाली के समान मायुष भाव पर इनका विशय बन रहता है। यमानवी मतानुसार पराभक्ति को ही महत्त्व दिया गया है और पराभक्ति है परानुरक्ति। श्री वैष्णवमताग्रजभास्कर ने कहा गया है—  
‘विशेषादि सप्त साधनों से जिसकी उत्पत्ति है, यमनियमादि जिसके घाट प्रसंग हैं तत्साधनान्तरि निर्मल संस्मृति से उत्पन्न ऐसी धनुरक्ति का नाम ही पराभक्ति है।’<sup>२</sup> तत् प्रीतिक्रिया भी है।<sup>३</sup> इनके अनुसार भक्ति कर्म ज्ञान तथा ध्यानयोग तीनों के आधार पर ही खड़ी है क्योंकि उनकी उत्पत्ति और विकास विशेष योग-साधना और संस्मृति पर निर्भर है।

वस्तुतः भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—‘भगवान् में माहात्म्य ज्ञानपूर्वक मुकुट सर्वाधिक सतत स्नेह ह्यो भक्ति है। भुक्ति का अर्थ उपाय नहीं है।’<sup>४</sup> मध्य श्री ‘भगवान् के माहात्म्य-ज्ञान से उद्भूत परानुरक्ति’ को ही भक्ति मानते हैं।<sup>५</sup>

(१) भागवत संग्रहाय ३४८,

(२) सा तैल धारा सम नित्यसंस्मृति सन्तान रूपेति परानुरक्तिः ।  
भक्तिविशेषादिक सप्तजन्या तथा यमाद्यष्ट सुबोधकाङ्क्षा ॥  
श्री वैष्णवमताग्रजभास्कर टिप्पणी ६२

(३) तत्त्वमुक्तावल्याय कारिका २६ की टीका ।

(४) माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु मुकुटः सर्वतोयिकः  
स्नेहोभक्तिरिति प्रीत्यस्तथा भुक्तिर्नियम्यया ।

—तत्त्वार्थदीप निबंध (ज्ञानसागर चम्पई) टिप्पणी ४६,

(५) २ प्रियांतपी श्रीव रामानुज, डॉ० इन्द्रवत्स मारहाण पृष्ठ १७०

हिन्दी के मक्त-कवियों ने मक्त-जीवन की रम्य शक्तियाँ प्रस्तुत की हैं जिनमें भक्ति के स्वरूप की ध्वजना हो जाती है। तुलसी ने जिसे 'राम पर नेह' कहा है सुर के प्रभों में जो गोपास के दाय मोपी का मनहरण है, 'जहाँ के पंछी को उड़कर फिर जहाँ की धोर की गति है, कबीर जिसे 'हरिरस का कुमार' कह गए हैं वह सब भक्ति ही है। मीरी का 'गिरधर के रंग में रचना' भी इसी का पर्याय है।

भक्ति के ये प्रयोगों का विवेचन जगमग सभी संप्रदायों में हुआ है। मध्ययुगीन भक्ति-काव्य संबंधी प्रबंधों में इनका प्रायः विवरण दिया गया है।

उक्त मतमतान्तरों के विवेचन का निष्कर्ष यह है—

- (१) भक्ति का संबंध मूलतः भावना से प्रणीत चेतना के राग-रस से है।
- (२) इस राग रस को ज्ञान का समन्वय या धाम्य मिलता है।
- (३) राग का केन्द्र विरक्तान् ध्यानमय रस है, जिसे ईश्वर या भगवान के नाम से अभिहित किया गया है।
- (४) अनुराग एकोग्रुह होता है। अन्य को वहाँ स्थान नहीं है। अन्य की स्थिति उस राग के आवरण या विकास के साधन या सहायक के रूप में हो सकती है।

**मीरी की भक्ति :**

नामानस के कवन से स्पष्ट है कि 'मीरी ने प्रेम भाव की भक्ति की थी उनका प्रेम मोपियों वा-सा का धीर प्रेम का आत्मन्य रसिक धिरोमणि कीदृश्य के।<sup>१</sup> जगमग उसी युग के एक सत संप्रदाय के प्रचारक धीर बिचा एक रात्रीराग दाय किए गए उल्लेखों से इस मत की पुष्टि होती है। उन्होंने तो यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मीरी ने विरधर का सबन पति के नाम (पत्नी-भाव) से किया था।<sup>२</sup> नारदभक्तिसूत्र में प्रमायक्ति की परिभाषा देने के पश्चात् यह दिया गया है 'यथा ब्रजगोपिकामासु'<sup>३</sup> इससे पता चलता

(१) श्रीमन्नमाल चपकला पृष्ठ ७१३

(२) मोपिन की सी प्रीति रीति कलिकाल दिखाई।

रतिक राइ जल गई निहर रही सत सुभाई।

नीचत भक्ति घुलाई के पति तो विरधर ही तनै। आदि।

—मूल छप्पय पुरोहितजी के संग्रह की पोपी से

(३) सूत्र २१

है कि 'मक्तिसूत्र' के रचयिता के अनुसार प्रेमाभक्ति का आदर्श गोपिया ही थी। भक्तिकाल में ( नामादास-राधादास के समय में ) नारदभक्तिसूत्र प्रेमाभक्ति का निदर्शन करने वाले प्रामाणिक सूत्र माने जाते व धीरे भक्तों में उनका मान था। यद्यपि यह अतिशयोक्ति है कि प्रत्येक भक्ति का सुन्दर उदाहरण होने के कारण ही मीरा की भक्ति को नामादास तथा परमेश्वर मछ और संतों ने 'गोपियों की-सी' भक्ति होने का स्तुहणीय महत्व प्रदान किया है।

मीरा के अपने पक्षों में भी उनके स्वयंसी (प्रेमाभक्ति के साधक) होने के स्पष्ट संकेत हैं। यथा

- ( १ ) मीरा छिरी चिरिबर नट नागर मयत रसीली जाची ।<sup>१</sup>
- ( २ ) छात्रा विगार मुहापा सबली प्रीतम भिस्पा बाय बरुया सायना साकरो म्हाटो बुडलो धमर हो बाय ।<sup>२</sup>
- ( ३ ) ना छाका रस रूप भाबुल छोण बषा डमरी री ।<sup>३</sup>
- ( ४ ) रंग मरी राम मरी राम मूँ मरी री ।<sup>४</sup>
- ( ५ ) भांनु बांजड़ सीन-सीन प्रेम बेत ब्यां ।<sup>५</sup>
- ( ६ ) या छत्र बेस्पा मोह्या मीरा मोहन पिडवर बाटी मी ।<sup>६</sup>
- ( ७ ) बंजस बिठ बनया छा बाला बाप्पा प्रेम बंजीर ।<sup>७</sup>
- ( ८ ) प्रेममयति रो दीडा म्हाटो धीरन बाणो रीत ।<sup>८</sup>

यद्यपि कुछ इस प्रकार हुई। इच्छा के सुन्दर बदन कमल इस साधन बाँकी चितवन तथा बंधी के मधुर स्वरों ने मीरा के मन को मोह लिया। सौंदर्य के बाण ने उनके प्राणों को बेध दिया और उनका चित्त प्रेम की बंजीर से बंध गया।<sup>१</sup> इच्छा-मिसल की कामना से बिकल मन को स्वप्न में परिचय मी हो गया पर वह निरास-सघाती नेह की नाव पर बँटाकर बिगड़ के समुद्र में छोड़ गया।<sup>२</sup> वियोग की निशा का प्रारम्भ हुआ। व्यावृत्त प्राणों ने द्वार पर बड़े होकर राह देखी रात जम-जम कर काटी अन्य मनक कष्ट सह पर

- |                |                    |
|----------------|--------------------|
| (१) काशी पद ८३ | (६) वही पद ४       |
| (२) वही पद ८९  | (७) वही पद ६       |
| (३) वही पद ८८  | (८) वही पद ९       |
| (४) वही पद ७३  | (९) वही पद ३ ४ ५ ६ |
| (५) डाकोर पद १ | (१०) वही पद ३६ ११  |

बहु निष्कुर न प्राया । धाकिरकार एक दिन साबना सफल हुई, साबन पर प्राया और युग-युग के पश्चात् विरहित को प्रियतम प्राप्त हुए ।<sup>१</sup> संयोग और वियोग की भागा दशाओं के अनेक चित्र मीरा के काम्य में हैं पर, उन सबकी भूमिका वही है । इसे प्रेम कहें प्रेम-सम्राज्ञा भक्ति कहें परामर्श नाम हैं, यही एक प्रणय-भाव उनके हृदय की भूमि मिथि है, जिसके बस पर उन्होंने इस संसार की उपेक्षा करके राजसी लुल को ठुकरा कर एकाकी साबना-यत्र पर कबल रहने का साहस किया था ।

प्रेम के इस सरस भाव के प्रतिरिक्त मीरा में वैराग्यमूलक शास्त्र-भाव का एक सीधा स्वर घोर है । भक्ति की सिद्धान्तस्था में पहुँचकर संसार उनकी आँखों के सामने से हट गया था और संयोग में अतीन्द्रिय मिलन मुक्त तथा वियोग में अभाव की निरन्तर मधुर पीड़ा द्वारा उनकी चेतना के सामने भावाभाव रूप में वही व्यामसलोना रहता था । पर उनके जीवन में ऐसे अवसर भी आए थे विशेषकर वैराग्य के पश्चात् जब संसार उनके सामने सर्वत्र पीड़ा साक्ष्य प्रसारणा फैलकर खड़ा था और उनके मन में उसके लिए बुरा रोष उपेक्षा और अन्ध में वैराग्य उत्पन्न हो गया था । जीवन की इन बड़ियों में प्रभु के विराट, शक्तिशाली अक्षरगुच्छरण सत्त्वस्वस रूप के सामने प्रणत होकर आर्त स्वर में उन्होंने अपनी व्यथा का निवेदन या सामर्थ्यवान प्रभु की दया-वाचना की है ।

‘नारद भक्ति सूत्र’ में भक्ति को द्विधा कहा गया है—( १ ) प्रेमरूपा और ( २ ) मीठी । प्रेमरूपा भक्ति समूह स्वरूपा है । इसको उपसम्भ करके मनुष्य सिद्ध, अजर और तृप्त हो जाता है । फिर न वह सोच करता है न द्वेष न किसी वस्तु में आसक्त रहता है और न (विषय भोग में) उत्साहित । उसे पाकर मानव उन्मत्त स्वस्थ और आत्माराम बन जाता है । वह कर्म ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है ।<sup>२</sup> इसको पाकर प्रेमी इसी को देखता है इसी को सुनता है इसी का वर्णन-चिन्तन करता है ।<sup>३</sup> यही मूमा है, शेष प्राप्त है ।<sup>४</sup> जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, मीरा की भक्ति का मूल स्वर

(१) कारो, पद ७९

(२) नारद भक्ति सूत्र ३-४-५-६

(३) वही ५५

(४) यत्र नाम्यत्वमिति नाम्यच्छुलोति नाम्य द्विजानाति  
त भूमाय यत्राम्यत्वमपम्यच्छुलोत्यम्यद्विजानाति  
तद्वत्पम् यो वै भूमा तद्वत्पुतमय यद्वत्प तम्यत्पम्

घोड़-रोय-राम से मुक्त अमृतस्वरूप इसी प्रेमाभक्ति का है, जिसके कारण वे सम्पन्न और आत्माराम बन गई थीं।<sup>१</sup> तीर्थ वरत ज्ञान-कथा कापी-करबत और बोयी के बोम की अपेक्षा करके अमृत के प्यासे (प्रेमाभक्ति) की ओर मुड़कर एक निरिधर मय हो गई थीं।<sup>२</sup> इसी को श्रीमद्भागवत में भवैतुकी निर्गुण भक्ति कहा है, जिसमें भक्त की चित्तवृत्ति तथा कर्म-प्रवाह स्वभावतः अविच्छिन्न रूप से भगवान की ओर होते हैं।<sup>३</sup> गौतोल तत्त्व ज्ञानी की भक्ति भी यही है क्योंकि वह भी सब कुछ में वासुदेव को ही देखता है।<sup>४</sup>

जहाँ भक्ति भक्ति के लिए, मयबद्ध-ग्रम के लिए ही नहीं होती उसका उद्देश्य भूमानन्द से भिन्न होता है, तो उसे गौणी भक्ति कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता भेदवृष्टि है। गौणी भक्ति पुण्य-भेद तथा आर्त्तादि भेद से तीन प्रकार की होती है।<sup>५</sup>

(क) पुण्य-भेद से—तामसी पाबसी तथा सात्विकी

(ख) आर्त्तादिभेद से—अर्थाधी बिजासु तथा आर्त

मीरों की भक्ति में गौणी भक्ति का स्वर पाएँ है। इसमें के केवल सात्विकी और आर्त भक्ति के उदाहरण उनकी आवाभिध्यातियों में मिलते हैं।

(१) इमरित पाइ बिपा कपू बीरै बर ९

प्यालो धमत छाह्या रे कुल पीबां कइबां नीर्या रे।

—पद ६४

भयां बाबरा मुब-मुब भूनां पीब आप्या गहारी बात —पद ८१

यह प्रेमाभक्ति एक होकर भी त्रयवा है। इसकी ११ आसक्तियाँ हैं। मीरों में इन आसक्तियों का विवेचन आगे किया गया है।

(२) तीरथ बरतां प्याल कबती कहा जयां करबत कासी।

बोयी होय कुपल एउ बरल पलट जलमरी फाँसी।

—दाहोर पद २

प्यालो धमत छाह्या रे कुल पीबां कइबां नीर्या रे।

—दाहोर पद ६४

(३) भाषवत ३/२९/११-१२

(४) अष्टाव ७/१७

(५) नारद भक्तिनूत ५६



तामसी भक्ति विमतम कोटि की भाव-साधना है। वह कोष से हिंसा दान और मत्सरता का लेकर भेद-वृष्टि से की जाती है।<sup>१</sup> भेद-वृष्टि मीरी में नहीं थी। अपने युग के प्रकाश पण्डित श्री बीबनोत्तामी को पुरुष की जो उद्बोधक व्याख्या उन्होंने सुनाई थी वह उनकी अनेक वृष्टि का परिचायक है। रामदास पुरोहित और कृष्णदास का अनेकक कटु व्यवहार भी उनके मन में रोप का एक स्फुरित नहीं उठा सका। हिंसा रस मत्सरता का अल्पमात्र भी नहीं उनके बचनों में नहीं है।

तामसी भक्ति विषय यश और ऐश्वर्य की कामना से भेदवृष्टिपूर्वक केवल प्रतिमादि के पूजन के रूप में ही की जाती है।<sup>२</sup> मीरी गिरधर की मूर्ति की पूजा करती थी जगन्नाथ केटी और मित्र उठ वर्णन के लिए जाती थी।<sup>३</sup> तुमसी-अकुर पूजा तथा नाबिन्द की बचनों के कारण ही उन्हें बृन्दावन विधेय सुन्दर लगा था।<sup>४</sup> पर, शिष्य न मूढ़ने वाली तथा राज-परिवार सुख बैभव को दृष्टव्य स्थाप देने वाली वह पूजा यश विषय और ऐश्वर्य की कामना से नहीं थी। न उन्होंने प्रभु से लौकिक कीर्ति की याचना की न सुख मनि, उनकी एक ही रट थी—'मीरी रे प्रभु कब रे मिसोरी से बिए रह्या न जाय'।<sup>५</sup> सात्विकी भक्ति में पूजा पापनाश के उद्देश्य से सब कर्मफलों को भगवान में समर्पित करके अपना कर्तव्य भाव से की जाती है।<sup>६</sup> मीरी ने भवसागर त्रय जग-कुल-बंधन सब हरि-वरणों में डाल दिए थे। उनका संयोग-विषय सब निरिधर में ही केन्द्रित था। मंदिर में जो सेवा-योजन के करती थी मोदिन्द-गुण गाती थी उससे वो लाभ प्रबल्य थे—जनम-जनम की जता मिटती थी<sup>७</sup> पाप मिटता था भव-सागर से तारण होता था प्रीत

(१) श्रीमद्भागवत ३ २९, ८

(२) श्रीमद्भागवत ३ २९ ९

(३) जगन्नाथत रो मेम शकारे मित्र उठ वरदण जात्या ।  
—काशी पर १०७

(४) घर-घर तुलसी ठाकर पूजा वरदण मोदिन्दो का ।  
—ठाकोर, पर ७

(५) ठाकोर पर ११

(६) श्रीमद्भागवत ३ २९, १०

(७) ताबरी नाम जया जय प्राली कोइयां पाप कइयां री ।  
जनम-जनम की जता पुराणी नामां त्याग मइयां री ॥  
—ठाकोर पर ५८

पुण्य भिन्नता या १ पर उमका कृप्यानुराग प्रभुगत हृदय की दुर्बल्य प्रेरणा के कारण या सामान्य या कठव्याकर्षण के भाव से नहीं। भेद-बुद्धि का भी धीरों में समान है। इस प्रकार सात्विकी पीछी भक्ति का एक पहलू ही धीरों में क्षीण रूप में भिन्नता है, अपनी समझता में वह भी उनमें नहीं है।

साधन भेद से भक्ति के दो भेद किए जाते हैं—अपराध और परा। अपराध भक्ति उसे कहते हैं जिसमें भक्ति प्राप्ति करने के साधनों की विधिमा रहती है। पराभक्ति वह भक्ति है जिसमें साध्य तत्त्व की प्राप्ति के अतिरिक्त किसी भी साधन की आवश्यकता शेष नहीं रहती। २ पराभक्ति साध्य स्वरूप है, अपराधभक्ति साधन स्वरूप है। धीरों की भक्ति पराभक्ति है। गिरिधर की रूप-रस-माधुरी पर सुख इस सत्य साधिका की समस्त धारणाएँ मिलतम में ही केन्द्रित हैं। उसे कृपण की प्रतीक्षा है, धीर केवल इतना कि वे प्राण मिलें। वह जहाँ के प्रेय में मग्न है, जहाँ के संयोग से उत्पन्न और वियोग से विकृत है। धीरों की जिस प्रेमाभक्ति का उल्लेख किया जा चुका है वह स्वयं पराभक्ति है। ३ पराभक्ति के जो छ भेद कहे जाते हैं, वे वस्तुतः भक्तिमात्र

(८) स्वामिनामरा भाव बडाव्यां सो सागर तर जाव्यां ।  
धीरों के प्रभु गिरिधर नागर पुन गाथा पुन पाव्यां ।

(९) प्रेम भक्ति योग महाराज की देवदातजी महाराज डाकोट  
१० पुष्ठ सं० १९९९ —काशी पर १०१

(१) पराभक्ति ६ प्रकार की मानी गई है—

१—विद्या : हर ब्रह्मा में भगवान का स्मरण करते रहना ।

२—प्रेममजला : भगवान के प्रेम में मग्न उनके संयोग में प्रसन्न और वियोग में विकृत होना ।

३—निष्कामा भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी सुख या मोक्ष की चाह न करना ।

४—कुलमा तारे सतार को ईश्वरमय देखना ।

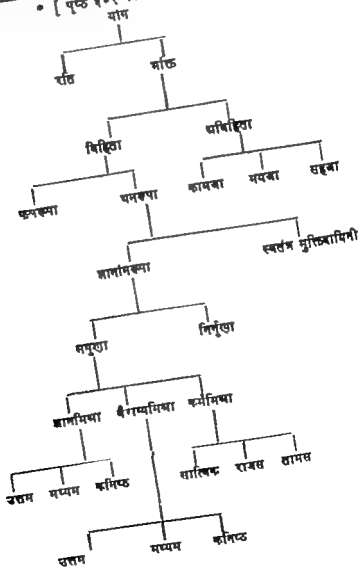
५—समन्या : अन्य साध्य त्यागकर एक भगवान का साध्य ही लेना ।

६—निगुण : अस्तित्व बिना में एकमात्र भगवान को ही सब-कुछ समझकर किसी भी भावना से भगवान में लगना ।

—प्रेम भक्ति योग पुष्ठ ४४ ४५

के छः पहलू हैं जो एक दूसरे से पूर्णतः मिल स्वतंत्र नहीं हैं। उनमें से कई के जराहरेख मीरा में मिल जाते हैं। जैसे  
 सिद्धा—मग बोबा दिख बीता सबली रैन पढ़्या दुखराती (पं ८६)  
 बनम बनम रो घाबी बाखे ना बिछर्या दिखराती (पं ४२)

• [ पृष्ठ ३४१ का टिप्पण १ ]



प्रेमसमाया — (पद ४८ ४९, ५३ आदि) प्रमेक पद ।

निष्कामा — यथा कामया काम या म्हा बाबा दर्यानां री (पद १४)

प्रमथ्या — घोर घासरो या म्हारा ये बिणा तीन लोक ममर  
( पद १२ ) ।

पर, भीरों का मुख्य भाव प्रेम-भाव ही है ।

निम्बार्क संप्रदाय के धीमदूट के प्रधान तथा अमरंम धिप्य हरि  
क्यास हूत 'विद्वान्त एलावसि' में भक्ति के नामा प्रमेदों का वर्णन मिलता  
है ।<sup>१</sup> भीरों की भक्ति विधि-विधानादि नहीं थी यद्यपि वे विधि विधानों का  
कबीर की तरह खण्डन नहीं करती थीं । पूजा में भी उनकी रुचि थी भगवान  
के मन्दिर में कीर्तन-नृत्य कण्ठों पर, पर विधि-विधान की उन्होंने बिना नहीं  
की । वह भीर पुराण के विषय में उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि हरि-रूप  
का ब्रह्म उनको सामर्थ्य के बाहर है । इस परम्परागत विधि-विधानों का  
प्रति इस विरिद्ध की प्रेरणा का भाव स्पष्ट है । अतः भीरों को अविविष्टा  
भक्ति पद का अधिक ही मानना चाहिए । इस पर वे काम या मपका नहीं  
पाई थीं । अतएव सहा-अविष्टा भक्त के रूप में ही उनकी प्रतिष्ठा होती है ।

को कुछ छोड़े-बहुत विधि-विधान उनमें थे उसके बावजूद पर उनमें  
फलकता विविष्टा भक्ति की किरणें देखी जा सकती हैं, पर यह भाव उनमें प्रमुख  
नहीं था ।

वस्त्र-नैऋत्य के लोगों ने भीरों को भयानकभी कहा है । दुन्दुर्वाह  
राष्ट्र के पंडित काकरोमी क भी कंटमणि रास्त्री ने ललक को बताया कि

\*(१) देखें पृष्ठ ३४०

(२) वेद पुराण ललक ही देखें अमर न लाने पार । विमोद पद ८  
विरह बहाली पहिलां या कामा बाका वेद पुराण ।

बाकोट, पद ३१

(३) 'भीरुबाई' केना परमभक्तनी लाये भगवद्भारता कर्ता थी  
मुमाईजीये गोविन्द देखने अटकाम्पा । प्रेम वाली रंका पाय तो  
तेना समाधानना लखवानु के जोरायो बप्लयो छुटपुष्टि जीव  
हता भीरुबाई भयानकभी हता यने तेमनी धंगीदार थी महा-  
प्रभुकीये द्वाराय न होनी ।

—भीरुबाई रंकाकी भारता रंकाय ३४मा लार, पृष्ठ १५

कृष्णका नाम लेकर बिप पीने के कारण कृष्ण को स्वयं विषपान करना पड़ा था। इस प्रकार प्रभु को कष्ट देना भक्त के लिए अनुचित है अतएव मीरा की उष्णकोटि का भक्त नहीं माना गया। वस्तुतः बल्लभ-संप्रदाय का यह मत मीरा के बल्लभमानुषासी न होने के कारण बन गया है। मीरा में बिबि विधान और साम्प्रदायिक मर्यादाओं के पालन करने के भाव प्रमुख नहीं हैं, वे कृष्णानुगत के क्षेत्र में प्रेम के प्रतिरिक्त अन्य किसी भाव-विचार या पद्धति से प्रेरित नहीं हैं। तीर्थ-व्रत शानोपदेश काशी में करवत लेने की अनुपादेयता की धोर उन्होंने प्रगट रूप से संकेत किया है। बल्लभभार्य के अनुसार मर्यादा-मार्ग केवल बेव-प्रतिपादित कर्म और ज्ञान का मार्ग है। इसका ध्येय सामुख्य मुक्ति होता है। मीरा ने कभी सामुख्य मुक्ति की कामना नहीं की और न कर्म-ज्ञान का पक्ष पकड़ा था।

स्वामीस्वामी ने भक्तिरसामृत सिंधु तथा उष्णवत्तनीभमणि में चैतन्य सम्प्रदाय की दृष्टि से भक्ति का जो विवेचन है उसके अनुसार मीरा की भक्ति उत्तमा भक्ति की कोटि में आती है। उत्तमा की तीनों विशेषताएं इनमें की—

- (१) प्रभु की अभिलाषा से शून्यता २
- (२) ज्ञान-कर्मादि संघनाश होना ३
- (३) इष्ट की उनके अनुकूल उपासना ४

उत्तमा भक्ति तीन प्रकार की कही गई है—साधन-भक्ति, भाव-भक्ति तथा प्रेमा-भक्ति।<sup>५</sup>

- (१) अन्वामिलापिताशुभ्यं ज्ञानकर्मादिनाशुतमं  
आनुकूल्येन इष्टानुधीनं भक्तिवत्तया ॥

—म० १० सि०—पूर्व विभाग, लहरी १ श्लोक ९

- (२) भूरा री विरधर मोलाज हुतरां छा गया। —डाकोर पद १

- (३) । तेरव बरतां प्याल बचता कहा लयां करवत जाती।

—बही पद २

- (४) इष्ट की मुखर मनमोहिनी मूर्ति के सरस स्वभाव के अनुकूल प्रेम भी उपासना ही है। यह मीरा में है।

- (५) सामन्ति साधनं भावः प्रेमा जेति निषेदिता।

—म० १० सि०—पूर्व लहरी ९ श्लोक १

साधन-भक्ति में बाह्य साधनों द्वारा साधक भक्त इष्ट की ओर उन्मुख होता है। इससे भाव-भक्ति बाधित होती है। इस साधन-भक्ति के भी दो प्रकार हैं—वैभी भक्ति और रागागुण भक्ति। वैभी भक्ति शास्त्रोक्त (विधेयकर भीमप्रभाकर) विधि-विधान द्वारा की जाती है। उसके बीसठ प्रप हैं। इनमें कि कुछ की ध्वजना मीरों के पदों में हो जाती है, जैसे साधु-अनुवर्तन कृष्ण-हेतु से मोषादि-स्वाय गीत संकीर्तन आदि। विष्णुगङ्गा का मीरों का चित्र इस बात का साक्ष्य है कि वे वैष्णव-भिक्षु (तिलक) भी धारण करती थीं। साथ ही गुरु-पादाम्बु गुरु से शिक्षा-वीक्षा जैसे प्रप उनके जीवन में सामान्य अर्थ में नहीं मिलते। उनके गुरु बस प्रिय सभी कुछ परिधिरे थे।

रागागुण भक्ति वज्रवातियों की रागात्मिका भक्ति के अनुसरण पर की जाती है। इसमें ध्यान और स्मरण द्वारा कृष्ण तथा उनके लीला की अनुमूर्ति की जाती है। यह प्रयत्न की अपेक्षा रखती है। मीरों की भक्ति वज्रज्वादि के समान ही थी पर वह प्रयत्न-साध्य नहीं थी, अनुसरणात्मक प्रयास भी उनके पीछे नहीं था। इस 'जनम-जनम की दासी' के मन में कृष्ण माधुर्य के प्रति जो आकर्षण था वह भूतल सहज और स्वाभाविक था।

भाव-भक्ति कृष्ण ध्वजा उनके भक्त के प्रसाद से ध्वजा साधनाभिनिवेश से उत्पन्न होती है। इसका रूप आंतरिक भाव में धामासि होता है। मीरों में इसी भाव भक्ति की ही प्रधानता थी। कृष्ण से अपूर्व आकृति देने की वाचना करते हुए उन्होंने कहा है —

आकृतीमा हरमण पासु ।

धुमरण पासु करणी ॥

भाव भगत आणीर पासु ।

अणम अणम री तरणी ॥<sup>१</sup>

इससे भाव भक्ति का उल्लेख उनके पदों में स्वयं मिल जाता है। यही उनके लिये प्रणाम्य है।

भाव भक्ति का जब परिपाक होता है तब वह रमक प्रेमाभक्ति में परिणत हो जाती है। मीरों के घनेक पदा में प्रेमाभक्ति की व्यञ्जना है। एक दो स्थानों पर उन्होंने ऐसीभी भक्ति का उल्लेख भी किया है—मीरों की परिधिरे भागर भक्ति रखीनी जाती ।<sup>२</sup>

(१) बाकोर, पद ३५

(२) बागी पद ८३

इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय द्वारा व्याख्यात उत्तमा भक्ति के तीनो सोपान बिन्दू तीन प्रकार का कहा गया है मीरा में मिल जाते हैं ।

### नवधा-भक्ति

भागवत में भक्ति नव प्रकार की अवस्थि नवधा कही गई है । छिन्नपुच्छ ब्रह्मवैवर्तपुच्छ आदि में प्रायः इसका अधिकतम उल्लेख है । ये नौ प्रकार हैं —  
श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन वंदन धर्पण हास्य सख्य और आत्म-निवेदन ।

नवधा भक्ति वस्तुतः साधनस्वरूपा भक्ति है । मीरा दूसरे प्रणय के पंथ की अनुयायिनी थीं वहाँ विधि-विधानों का विशेष महत्व नहीं है । फिर भी मीरा ने सामान्य विधि-विधानों का सर्वथा पातन किया । एक पद में उन्होंने कहा है—

माई म्हा गोविन्द गुण वास्या ।

वरणाभररो खेम शकारे मित उठ वरदास वास्या ॥

हरि मंदिरमा निरुठ करवां बूबरया धमकास्या ।

दयाम नाम रा भ्रातृ बड़ास्या सी सागर तर जास्या ॥<sup>१</sup>

इसमें नवधा भक्ति के कीर्तिनादि पंथों का स्पष्ट उल्लेख है । काशी पद ८२ में हास्य तथा डाकोर पद ४१ में स्मरण के संकेत हैं । आत्म-निवेदन तो उनके अधिकतम पंथों में है ही । इस प्रकार सख्य को छोड़कर उनमें नवधा के समभव सभी प्रकारों के वर्णन हो जाते हैं पर मीरा की भक्ति इन नव विधानों के विधान तक सीमित नहीं थी । उसमें प्रणय का केन्द्रीय भाव प्रधान था जिसने इन विधानों को भी सरल समशीलता प्रदान कर दी थी ।

### एकाग्र आसक्तियाँ ।

मीरा की प्रेमाभक्ति का विवेचन किया जा चुका है । नारद भक्ति सूत्र के अनुसार यह प्रेमरूपाभक्ति एक होकर भी 'आसक्ति' के आधार पर एकाग्रता होती है—

(१) काशी-पद १०१

(२) मीरा काशी घरज करवां छे म्हारो साल बपाल ।

(३) आश्रय कह गयां धर्मां हा धर्यां कर म्हाले कोलगां ।

- (१) पुण्यमाहात्म्यासक्ति (२) कृपासक्ति (३) पूजासक्ति  
(४) स्मरणसक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति  
(७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्म-निवेदनासक्ति  
(१०) तन्मयासक्ति (११) परम विरहासक्ति

इनके उदाहरण क्रमशः (१) शिवपि मारुत (२) मिथिला के मरनारी  
(३) मरुती (४) प्रह्लाद (५) हनुमान (६) अर्जुन (७) कृष्ण  
की अष्ट पटरानियाँ (८) नंद-यशोदा (९) बिभीषण (१०) मातृवत्सल  
मीर (११) ब्रज के नर-नारी हैं।

ब्रज की गोपियों में समस्त आसक्तियों का समाहार था। उनमें प्रेम  
की समस्त छवियों का पूर्ण प्रकाश था। अनेक भक्तों में एकाधिक आसक्तियाँ  
मिलती हैं। मीरों में उक्त आसक्तियों में से अधिकांश पस्त्रित हुई थीं।  
शिव कान्तासक्ति, कृपासक्ति और तन्मयासक्ति ही उनमें विशेष थी।  
सख्यासक्ति और वात्सल्यासक्ति का अभाव था। परमविरहासक्ति तो जैसे  
उनकी साधना की प्राणधार थी। उनका समस्त काम्य कृपासक्ति और परम  
विरहासक्ति के लाने-लाने से बना है। इस तरह दिवानी के जीवन में संयोग  
के कुछ विरस पल और वियोग की घुमों-छो रातें बसी हैं न दिन में भूख है,  
न रात में निद्रा। पिया के बिना बस सुना है, प्रतीक्षा करके-करके केव पंढर  
पड़ गए हैं पर उनके अघरों पर एक ही प्रश्न सबब है—कब मिलोने ?

### धरणागति अथवा प्रपत्ति

पांचरात्र बिष्णुसैन संहिता के अनुसार 'अगवदक्ष्य प्राप्य वस्तु की  
हृदय रखने वाले उपायहीन व्यक्ति की प्रार्थना में परब्रह्मायिनी निश्चयारिका  
बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वस्म है। इसी का नाम धरणागति है। इसकी धार्मिक  
संज्ञा 'व्यास' है। श्रीबैष्णव मत के अनुसार तो 'अवधान के बरतों में  
अपने को भुटा देना धारमाभिमान छोड़कर, सब धर्मों का परिचाय करके  
धरणापन्न होना ही प्रपत्ति है।' यह भक्ति का सार है।

(१) अहिर्बुध्न्य संहिता (३७।३१) में धरणागति की व्याख्या इस  
प्रकार की है—

अहमस्म्यपराधानामात्मनो विप्रबन्धो गतिः ।

त्वमेवोपायमृतो मे भवति प्रार्थना भक्तिः ।

धरणागतिरित्युक्ता सा वैवेस्मिन् प्रमुच्यताम् ॥



प्रपत्ति के तीन आकार या विशेषण हैं [१] भगव्य घोषत्व (भगवान का ही वास होना) [२] भगव्य साधनत्व (एकमात्र भगवान को ही उत्पुष्टि का उपाय मानना) [३] भगव्य मोक्षत्व (अपने को एक भगवान का ही भोग्य समझना) ।<sup>१</sup>

प्रपत्ति से भगवद्गुणा प्राप्त होती है और भगवद्गुणा से भगवान प्राप्त होते हैं। अतः प्रपत्ति साधन-स्वरूपा ही है। भक्ति (साधन स्वरूपा) में साधन विशेष का स्वीकार है, प्रपत्ति में साधनानुष्ठान का स्वीकार नहीं है, केवल भगवान का ही स्वीकार है। प्रपत्ति में भगवत्सेवा भगवान के नाम का जप, कीर्तन आदि का निषेध नहीं है, परन्तु ये कार्य आवश्यक भी नहीं हैं।<sup>२</sup>

मीराँ उपायहीन की हों खबर नहीं भी थीं तो उन्होंने सरणापत्ति के प्रतिरिक्त अन्य उपायों का इच्छापूर्वक त्याग कर दिया था और घातँ स्वर में यही कहा था—'बे बिण कोलु कबर न मोबरधन गिरवारी'।<sup>३</sup> उनका संसार के सम्मुख घबन्न रहने वाला अविमान प्रभु के सम्मुख झुक गया था। उन्हें न अपने गुरुओं का धर्म था, न साधना की शक्ति का भ्रूँकार। उन्होंने गुणगार नामर की जगत्तारण और भवभीति-निवारण प्रवृत्ति और सामर्थ्य के सामने अतन-समर्पण कर दिया था।<sup>४</sup> और वे कृपानिधान गिरवारी की शरण में पहुँच गई थीं।<sup>५</sup> प्रपत्ति का स्वल्प मीराँ की अघोकिष्ठ पंक्तियों में ही आवन्त स्पष्ट हो गया है—

(१) मानवत संग्रहाय डा० बलदेव पृष्ठ २१७।२१८

(२) भक्ति और प्रपत्ति का स्वल्पगत भेद—बेबी रमानाय शास्त्री भावदाता पृष्ठ ४६

(३) डाक्टोर, पृष्ठ ४२

(४) महा गुरुहृदि गुणगार नामर महा हिबडो रो साव ।

जगत्तारण भोभीत निवारण बे शरण गबरान ।

हार्पा बीबल शरण गबरनी कते जावा बबरान ।

मीराँ के प्रभु घोर ला कोई राका धव रो काव ॥

—कासी पृष्ठ ६१

(५) गिरवारी शरणों जारी आया राका किरपानिधान ।

—डाक्टोर, पृष्ठ ३१

अब तो निमाया बाह गह्रा री साज ।  
 असरण सरण कहाँ गिरघारी पतित उभारण पाज ।  
 मोसावर भैरवहार अचारी ये बिण्य भणो अकाज ।  
 पुन-पुन मीर हुर भंगवारी दीव्या मोच्छ निबाज ।  
 मीर सरण गह्रा बरणा री साज रयाँ महाराज ॥<sup>१</sup>

मीरों की उक्ति प्रमुखतः प्रेमभाव की है पर यह स्थिति भक्ति-साधना की दूसरी और उच्चतर स्थिति है। प्रभु के सामन सबस्व समर्पित करके निस्व होने पर ही प्रभु द्वारा अनुराग-मूर्त्तक ग्रहण होता है। भक्त भगवान का होकर ही उसकी प्रेमाभक्ति का अधिकारी हो पाता है। कुछ संस्कार या सहज प्रवृत्ति की कुछ परिस्थितियों का बावजूद या बिना मीरों प्रभु के सम्मुख उपायहीन धारणागत के रूप में खड़ी हो गई और अनुराग की सीढ़ता के साथ उनमें प्रेमाभक्ति का उदय हो गया है।

पांचरात्र में प्रपत्ति दो प्रकार की मानी गई है—भारत और द्रष्ट।  
 ब्रह्मसंभार में इसके दो भेद किए गए हैं—मर्यादिकी और पुष्टिमागी<sup>२</sup>।

प्रारम्भ में मीरों की यह धारणागति भारत भाव की थी। 'विपत्ति की मयारी भक्ति' के कारण 'मगल संभारने बाल राणा' इस संसार में उपस्थित थे। 'काल-ध्याल' उनका धनु था। लोक-मर्यादा उनके विरोध में थी परम्परा का दीप अग्रगण्य नहीं था। अतएव उनका विपत्ति और घात हो जाना स्वाभाविक था। पर विपत्ति उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं थी भारत भाव उनका सहज भाव नहीं था। भक्तिप्रोही सामंतसाही से संबंध करके भी अपराजित रहने वाली महाप्राण मीरों उन स्थिति से तुरन्त घाये पहुँच गईं।

मीरों द्रष्ट धारणागत नहीं थी। 'इस दह के विषय प्रारम्भ कर्मों को मोपने के बाद सम्य रह न धारण करनी पड़—केवल इसी भाव की लेकर वे भगवान की धारण में नहीं पहुँची थी। उन्हें या मुख्यतः भगवान के रूप और उनकी मीना के सीखने में मोह था।

पुष्टिमागी मीरों के मर्यादामार्गीय मानते हैं परन्तु उनके जीवन का विशेषण उन्हें मूर से किसी प्रकार कम पुष्ट भीष सिद्ध नहीं करता।

(१) डाकोर पर १८

(२) भक्ति और प्रपत्ति का स्वकथन भेद देखिये रमानाय शारत्री, नाचदार पृष्ठ २१

विषय-रस का पूर्ण त्याग था। उनकी साधना विषयों से ही नहीं, विषयामति से भी मुक्त भक्त की साधना थी।

## (२) अक्षय्य मजन<sup>१</sup>

विषय से विरक्त होकर, प्रभु को अपने अनुराग का केन्द्र बना देना, भक्ति का दूसरा और उच्चतर साधन है। पीठा में स्वयं इच्छा ने कहा है—  
‘हे अर्जुन का पुत्र्य मुझमें अनन्य भित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझको स्मरण करता है उस निरन्तर मुझमें सवे हुए बोधी के लिए मैं सुखम हूँ।’<sup>२</sup> वस्तुतः विषय-त्याग हीरग्य है अगस्त्य मजन अस्यास। त्याग अनाकारमक क्रिया है और मजन आकारमक। मजन के बिना त्याग विरक्तन नहीं हो सकता, त्याग से रिक्त मन को अगर प्रभु-भ्रम नहीं आता तो फिर वह विषयों से भर जाता है। मीरा ने प्रेमाभक्ति की साधना में ‘मजन’ को काफी महत्व दिया है। कहूँ कि कहा भी है—

‘मज मन करतु कंसस प्रविभाधी।’<sup>३</sup>

## (३) लोक-समाज में भी मगध-गुण श्रवण और कीर्तन<sup>४</sup>

प्रेमाभक्ति विषय-विरोधी होते हुए भी लोक-समाज विरोधी नहीं है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि ‘जिस बाली से अशोकज अगवान् की कबा न बही जाकर विषयों की बातें कही जाती हैं वह बाली भूषा और असद् है।’<sup>५</sup> मनवान् ने स्वयं कहा है कि—‘ओ भोग मुझमें मन लगाकर खड़ा और बाहर के साथ मेरी नाय-गुण-बीजा-कबा को गुनते गते और उसका अनुमोदन करते हैं उनकी मुझमें अनन्य भक्ति हो जाती है।’<sup>६</sup>

(१) अक्षय्यमजनात्—भारव भक्तिसुख ३६

(२) अनन्यभेदाः सततं यो यो स्मरति नित्यतः  
तस्याहं मुक्तः पार्थ नित्यमुक्तस्य योगिनः (८।१४)

(३) डाकीर, पद २

(४) लीक्यति भवबन्धुलब्धवर्णकीर्तनात्—सूत्र ३७

(५) भूषा विरस्ताद्वाततीरतत्कथा  
न कथ्यते यद्भगवानयोस्तथा । —१२२२४८

(६) तामे नृत्तमिति गापयति ह्यनुभोदयति चावृता  
वत्परा यद्भगवानयमिति विनयति ते भवि ॥

मीरों ने लोक-समाज का बहिष्कार नहीं किया। लोक की भक्ति-विरोधी प्रवृत्तियों का ही तिरस्कार किया था। भक्तों से वे पिता जानकर मिमती की। भुम्दावन के रसबेतों में भूमी और नृबन्ध बाँधकर नहीं थी। अपने गीतों में भी उन्होंने गोविन्द का गुण ही गाया है—

‘माई म्हा गोविन्द गुन गास्या ।’

(४) मुख्यतया महापुरुषों की कृपा ग्रथया भगवत्कृपा :

अन्य साधनों का महत्त्व है परन्तु मुख्य रूप से महापुरुषों ( भगवत्संबन्धी प्रेमीगण ) की कृपा से प्रेमकृपा भक्ति उत्पन्न होती है। इस कृपा का प्रारम्भ संसर्ग से (समस्त संसार का निवारण करने वाले सत्त्व से) होता है। श्रीमद्भागवत में इसे भोम ज्ञान भर्म वैवाच्ययन तप त्याग, इत यज्ञ तीर्थ यम और नियम—इन सबसे अधिक बड़ीमूर्त करने वाला बताया गया है।<sup>१</sup>

‘भारद भक्ति सूत्र’ में यह भी कहा गया है—‘महापुरुषों का संयुक्त भगवत् प्रेम ही भोम है। उसकी कृपा से ही संय भी मिलता है’ क्योंकि भगवान् में और उनके भक्त में भेद का अभाव है। अतएव उस ( महत्त्व ) की ही साधना का उपदेश आदेश देवर्षि भारद ने दिया है।

सत्संग मीरों के जीवन की प्रमुख विशेषता थी। हमों के कारण भौतिक संघर्ष उनके जीवन में आण। अगर वे ‘साधु-संगति से दूर महलों की दीवारों की बंदिनी बनकर भगवद् भजन करती तो राजा का सामन्तीय रूप उन्हें अपराधी घोषित करके दण्डित करने का कुछ न रहता। मीरों इस विषय में उदार भी बहुत थीं, उनमें सांप्रदायिकता नाममात्र की नहीं थी। हितहरिबंध कृष्णदास और जीवगोस्वामी विभिन्न संप्रदाय के लोग थे पर मीरों को सांप्रदायिकता से काम नहीं था वे उस बात को भूलकर सबने मिमती की। साधु संगति की बात उन्होंने अपने वर्णों में भी कही है—

(१) काशी बर १०१

(२) श्रीमद्भागवत ११ १२ १-२

(३) महत्संगस्तु बुद्धभोग्यम्योऽन्यथा । तदप्यनेनैव साधुसंगेन ।

—सूत्र १९.४०

(४) तदेव साधुसंगं तदेव साध्यताम् तस्मिंस्तज्जने भवामावात् ।

—सूत्र ४२ ४१

- (क) माया छोड़्या बंधा छोड़्या तबो सुयो ।  
 साया संग बैठ बैठ लोक साज सुयो ।<sup>१</sup>
- (ख) साया बग री बिछो ठानी करमरा कुणत कमाया  
 साय संगत मा भूस मा बाबा पूरन जनय मुमाकी ।<sup>१</sup>

### प्रेमस्या भक्ति के प्रधान साहायक

भक्तिवृत्त में साधनों से सम्बन्धित कुछ बातों को ध्यान से दुबारा कहा गया है । उन्हें भी साधन के अन्तर्गत ही बिना बाँटिए, परन्तु उनकी प्रमुखता न होने के कारण प्रायः भक्ति के साहायक के रूप में उनकी व्याख्या की गई है । ये निम्नांकित हैं—

- (१) भक्ति-सारथ का मनन
- (२) भक्ति उद्बोधक कर्म
- (३) सुक-दुक इच्छा लाभ हानि का पूर्ण त्याग हो जाय उस काज की प्रतीक्षा में अर्थ अणु भी व्यर्थ न बिताया
- (४) अहिंसा सत्य शीघ्र दया आस्तिकता भावि आचरणशील सवाचारों का असीमांति पालन
- (५) सर्वथा सर्वभावेन<sup>१</sup> निश्चित होकर भगवान को ही मनना

### अन्तर्याय बाधा और निषेध

महर्षि नारद ने वुस्तंग सर्वधीन त्याग्य बताया है क्योंकि वह काम अथवा मोह, स्मृतिभंग बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है । ये काम अथवा निषेध पहाके तरंग की तरह ( अत्र आचार में ) धाते हैं, फिर समुद्र का आकार कारण कर लेते हैं । भक्ति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा वुस्तंग ही है ।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त कुछ निषेध और हैं जैसे—

- (१) लोभ-हानि की चिन्ता का
- (२) भक्ति में सिद्धि मिलने से पूर्व लोभ-व्यवहार का

- (१) टापोर, पृष्ठ १
- (२) वही पृष्ठ ५५
- (३) सूत्र ७६ से ७९ तक
- (४) सूत्र ४३, ४४, ४५
- (५) सूत्र ९१, ९२, ९३, ९४

(३) स्त्री धन वास्तिक धीर धीरे के चरित्र सुनने का

(४) धर्मिमान धर्म धारि का ।

मीरा के जीवन में उक्त बातों में स कितनी का निर्वाह किया सीमा तक वा यह तो नहीं कहा जा सकता । शास्त्र का ज्ञान उन्हें था इसका प्रमाण जीव्यात्म्यामी के प्रण कुटुम्बे वाली घटना है । प्रेम-भगणा मणि में धीर धीर परमात्मा का क्या सम्बन्ध है कम-से-कम यह मीरा धर्मीमोति समझ चुकी थी धीर समझ सकती थी । धीमदनामकत क एक दो स्पर्शों के भाव भी उनकी कविता में क्यों-क्यों-क्यों उठर पड़ते हैं इससे भी उनका ध्यात्म ज्ञान व्यक्त हुआ है । शक्ति के उद्बोधक कर्मों से मीरा का जीवन भर पड़ा था । कुम्भार का विचार की भाषा के रूप में उन्होंने अपने काव्य में ही चित्रित किया है । सुतंग मीरा की दृष्टि में साधु-संघ था ।

लोक-व्यवहार भी मीरा के लिए भगवद् नाते ही था । साधारण द्वितीय उनके सम्मुख घबराहीन बात रह गई थी । धीर धीर उपमोम धर्म धीर धर्मिमान का प्रथम ही उन्होंने बारी एहन दिया था । राज-परिवार के मुख के त्यागने धीर धिप्य न मुकने वाले मरु में उपमोम की ध्यानता स्वयं सिद्ध है ।

### पूर्व प्रचलित विचार-धाराएँ धीर मीरा की साधना

कोई व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से प्रभूता नहीं रह सकता । यह दूसरी बात है कि वह उस प्रभाव का पूर्णतः या अंशतः सहन करे या उसके अस्वरूप तत्पुनः परिवर्तन धारण के बजाय उसमें विरोध की शक्ति जागृत हो पर सामाजिक परिस्थितियों प्रभावित बनकर रहती हैं । मीरा के जीवन-काल पर भी उनके गुण में बतमान उन विचार-धाराओं के जिनके संपर्क में वे आई थी प्रभाव डाला होगा इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है ।

मीरा का जन्म एक नामंत परिवार में हुआ था जो एक प्रकार से पुत्र की अभावों में हँसकर समय में ही जीवन का महत्व मानता था पर उनके ऊपर छाया एक ऐसे व्यक्ति ( दूतामी ) की रही जो करवान की कमा का ही साधक नहीं था बरन् का भी अनुभव का मुठ-बीतता का स्वामी होते

हुए भी जो भारतीय संस्कृति का सेवक था। अतः अपने जीवन से ही मीरा को सामु-संतों और विभिन्न विचार-धाराओं के धर्म-प्राप्त व्यक्तियों के सम्पर्क का सीमाप्य मिला था।

मीरा के युग में प्रचलित प्रमुख दर्शन निम्नोक्ति ये—

### [क] भारतीय दर्शन

(१) निगमयुक्त दर्शन— (वैदिक प्रमाण पर आधारित)	सर्वज्ञत्व	सांकर्य सैत विशिष्टाईत सुदाईत
	ईशत्व	
	ईशाईतत्व	
	अधिन्य वेदान्तवाद	

### (२) वैदिक प्रमाण को अस्वीकार

करके चलने वाले मत—(१) नाथ मत

(२) संत मत

### [ख] विदेशी दर्शन

(१) सुन्नी मत

(२) इस्लाम

टिप्पणी द्विहृदय के राजावस्त्रम-संप्रदाय और हृदय के दृष्टी संप्रदाय की दर्शन-पद्धति का उद्भव मीरा के समय में ही हुआ था।

### वैदिक प्रमाण पर आधारित भारतीय दर्शन और मीरा

भारत का वैदिकीय प्रबलतम प्राचीन दर्शन (वेदान्त दर्शन) अपने जन्म के सिद्ध वैदिक साहित्य का आधार है। भीमासा के दूसरे विभाग उत्तर भीमासा में उपनिषदों द्वारा स्थापित यही आत्मवादी दर्शन है। अतः वेदान्त का दूसरा नाम 'उत्तर भीमासा' भी है।

वेदान्त दर्शन उपनिषद् के ज्ञान पर आधारित है। यह 'ज्ञान' क्या है इसके निर्णय के अनेक प्रमाण इस देश में हुए और अत्यन्त प्रमुख प्रमाण में एक स्वतंत्र दार्शनिक संप्रदाय को एक विचार-निकाय को जन्म दिया। य-कराईतत्व, विशिष्टाईतत्व, ईशत्व आदि इसी का फल है। इनमें संकटचर्म का प्रयास इनका सबसे सिद्ध हुआ उनके अर्द्ध वेदान्त की इतनी

अधिक प्रतियुक्त हुई कि 'वेदान्त' शब्द से प्रायः 'शंकर वेदान्त' का अर्थ ग्रहण किया जाने लगा । परवर्ती कोई भी दशन ऐसा नहीं हुआ जो शंकर वेदान्त से अप्रभावित रहा हो । भक्तिवादी वर्तनी में यह प्रभाव अनुकरण नहीं, विरोध की प्रेरणा के रूप में था ।

## (१) शंकराद्वैतवाद :

शंकर के सिद्धांत के मुख्य स्तम्भ हैं—अनिर्बन्धीय व्याप्तिवाद, मायावाद, विषयवाद और ज्ञानवाद । शंकर के अनुसार केवल ब्रह्म है ( सत् है ) और सब मिथ्या है—वस्तुतः 'नहीं है' । यह वृत्त्य वैविध्य भ्रम या अज्ञान है । इस दृष्टि से भक्त और भगवान का भेद और इस भेद पर आधारित भक्ति, सब भ्रम है, असत् है ।

शंकर ने ब्रह्म के स्वरूप जलण ( सर्व ज्ञानमनसं ब्रह्म ) के साथ ही उसके तटस्थ सत्त्व की भी चर्चा की है जिसके अनुसार ब्रह्म अवस्थानक, अगत् संहारक, समुण सर्वद्वार आदि विशेषणों से युक्त कहा जा सकता है । ब्रह्म का यह रूप भक्ति का आधार हो सकता था परन्तु शंकर ने साथ में यह भी कहा कि यह तटस्थ जलण केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही ठीक है, पारमार्थिक दृष्टि से नहीं । ब्रह्म ने ये गुण वीर्याधिक गुण हैं, अर्थात् माया इत है । माया द्वारा आच्छन्न ब्रह्मकी ही ईश्वर, समुण ब्रह्म या अवर ब्रह्म कहते हैं । इस अवस्था में पारमार्थिक दृष्टि से असत् मायाइत गुणों से (मायाबन्धित) ब्रह्म को भजने की कामना कौन कर सकता है ? अतः शंकर का 'ब्रह्मवाद' भक्ति की चर्चा करने में मूलतः भक्ति का विरोधी रहा और आने कमकर समस्त भक्तिवादी संप्रदायों ने शंकर-मत का और विरोध किया । हमका प्रभाव अगर किसी पर रहा तो सगाव व उपरके स्तर के बुद्धिजीवी वर्ग पर, जिनकी धारणा को हमने बौद्ध धर्म के मुक्तिज्ञान से मुक्त कर दिया । भीरु भीनी प्रतिप्राण नारी पर या और-मुक्त-वीर्याम्बरधारी गिरिवर पर तन-मन बार चुकी थी शंकर के प्रभाव की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

## (२) विशिष्टाद्वैतवाद :

शंकराद्वैत के परवान् मन्त्रों अधिक प्रचार हुआ श्रीरङ्गुब मंत्रशाय के प्रपानाचार रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद का । रामानुज-विषय-परम्परा की



१३वीं पीढ़ी में सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द हुए ।<sup>१</sup> उत्तर में भक्ति को जाने का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है ।<sup>२</sup> रामानन्द ने रामानुज द्वारा प्रचारित भक्ति-पद्धति में सामान्य अन्तर कर दिया था । इसी परिवर्तित रूप ने उत्तर भारत के समुदाय और निर्गुण भक्तों को प्रभावित और प्रेरित किया था ।

मीराबाई के रामानन्दी संप्रदाय के संतों के सम्पर्क में जाने के प्रमाण हैं । उनके पुरोहित बैजाजी (रामदास के पिता) स्वयं रामानन्दी कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे ।

रामानुज के अनुसार तीन तत्त्व हैं—ईश्वर, चित् तथा अचित् । मीरा के आराध्य विशिष्टाईतत्त्व के ईश्वर के समान कल्याण-गुणों के धारक, अनन्त ज्ञान-आनन्द-स्वरूप और समुदाय ( अर्थात् समस्त सुन्दर गुणों से विभूषित ) हैं । उसके सम्बन्ध में सजातीय विजातीय या स्वगत भेदों की चर्चा मीरा में कहीं नहीं है । जीवन की बिध चरम स्थिति का बिध उन्होंने जीया है उससे परमात्मा के अन्तर्गत विभिन्न मुक्त आत्माओं की स्थिति के अन्तरेक्ष से ईश्वर में स्वगत भेद होने का संकेत जोड़ा था सकता है, परन्तु वह अत्यन्त अस्पष्ट है ।<sup>३</sup> ईश्वर के विभिन्न रूपों में उनकी भक्ता प्रगट रूप से 'अर्चयितार' 'अन्तर्जामी' तथा 'पर' (भीमासुदेव-स्वरूप) स्वरूपों पर ही है । 'विभक्त' और 'गूढ़' स्वरूपों का संकेत नहीं मिलता ।

जीव के तात्त्विक विवेचन के अभाव में भी मीरा की यह मान्यता स्पष्ट है कि ईश्वर और जीव में भेद है । कृष्ण और गोपी के मिश्रण में भी कृष्णत्व और गोपीत्व का अभाव नहीं होता । अमर के होज में भी मुक्त आत्माएं अपने व्यक्तित्व को समाप्त नहीं करतीं । रामानन्द के अचित् तत्त्व की ( विशेषकर मिमंसात्मक अर्थात् भावा की ) मीरा ने विशेष उपेक्षा कर ली है । रामानन्दी संप्रदाय की साधना पद्धति से मीरा की साधना कई बातों में भिन्न थी । उन्होंने न 'रहस्यमय' के रूप में प्रचलित मूलमन्त्र इयमग्न और

(१) रामानन्द-व्यक्ति एतोक ३-५ । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तीसरी-चौथी पीढ़ी लिखा है

(२) भक्ती आधिक्य रूपजी नाम्ने रामानन्द परपद किया कबीर ने सप्तमीय नवकाण्ड ।

(३) भरी प्रेमरा होज हूँध केला करी ।

चरममन्त्र को अपनाया और न भक्तसागर से तारने वाले 'छ र.माम नम' का जप किया। उनका तो एकमात्र मन्त्र 'गिरधर नाम' था। भीरों के पंच संस्कार होने का भी कोई प्रमाण नहीं है।

वैष्णव-मठाध्य-मास्कर में माध्व भी स्मृति-मेव हैं जिनकी प्रेरणा से मठ उनका यश-कीर्तन गाता है उनके चरणों की भजना करता है बिधि विधान से उनकी पूजा करता है, उनकी वासना करता है, मुखा भाव रखता है, और अपने आपको सर्वथा उनके धर्मार्थ कर देता है।<sup>१</sup> भीरों की साधना में बहुत समी बातें हैं। कम से कम धाराध्य को सना नहीं प्रियतम मानती हैं।

रामानन्दी सम्प्रदाय में प्रपत्ति का विशेष महत्त्व है। बाल्य में ही प्रपत्ति का भाव है। अपने आपको भगवान की शरण में छोड़ देना ही प्रपत्ति है प्रपत्ति की विशेषता म्याम है। म्याम के छ अर्थ हैं—भगवान के प्रति अनुकूलता का संकल्प प्रतिकूलता का वञ्चना भगवान सबब रक्षा करेंगे इस बात में मन्त्र विरवास कबम भगवान् का शरण्य और शरण्य। भीरों के जीवन में यह प्रपत्ति पूर्ण रूप से मलित थी। वह एक तरह से बिना रात समर्पण का उत्कृष्ट उदाहरण थीं। शिन्धिर के अतिरिक्त किसी अन्य के शरण का उन्होंने जीवन भर प्रतिकार किया और उनके की चोट यही कहा—  
म्यापी री गिरधर गोदान हुसरा न काई।

माध्य-मत या द्वैतवाद :

रामानुज की मृत्यु से १०० वर्षों के भीतर दक्षिण में एक मत जन्मा जिसे अपने प्रतिष्ठापक आचार्य माध्व के नाम पर 'माध्यमत' की संज्ञा मिली। इसे 'ब्रह्म सम्प्रदाय' भी कहा जाता है। माध्व दार्शनिक जन्म में द्वैतवाद के प्रतिष्ठापक और धार्मिक साधना के क्षेत्र में भक्ति के सुवक्ता थे।

रामपुर के पुजारी परिवार की किमदंती के अनुसार भीरों माध्व मठानुयायी माध्वेन्द्र पुरी के सम्पर्क में आई थीं<sup>२</sup> सम्भावना इस बात की है

(१) रामानन्द की हिंदी रचनाएँ, पृष्ठ १३

(२) ब्रह्मेश विद्याभूषण रचित 'प्रणेय रत्नावली' में उद्धृत माध्व मत की मूल-परंपरा इस प्रकार है—

(१) माध्व (२) परम्परा (३) नरहरि (४) माध्व (५) यत्तोग्य (६) जयतीर्थ (७) ज्ञानतिथु (८) व्यासिनि (९) विद्यानिधि (१०) शार्ङ्ग (११) जयपर्य (१२) पुरगोतम (१३) ब्रह्म (१४) म्याम तीर्थ (१५) सक्तीपति (१६) माध्वेन्द्र पुरी।

कि वे मायबेग पुरी नहीं उनके शिष्य माधव के सम्पर्क में धारि हों ।

माध्व मत द्वारा माध्व वश पदार्थ—ब्रह्म पुण कम सामान्य विशेष बिलिप्ट, यंघी शक्ति सादृश्य और अभाव का उल्लेख मीरा में कहीं नहीं है । उन्होंने माध्व की तरह समुण ब्रह्मको स्वीकार किया है ।

माध्व ने पाँच प्रकार के भेद सारवत माने हैं—<sup>१</sup>

- (१) ईश्वर और जीव का भेद—ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान जीव असर्वज्ञ अस्य-शक्तिमान है ।
- (२) ईश्वर व जड़ जगत्—ईश्वर चेतन है सृष्टा है जगत् जड़ है, सृष्टि है ।
- (३) जीव व जगत्—जीव चेतन जगत् जड़
- (४) जीव व जीव—अनुभव से भेद मोक्षारम्भा में भेद
- (५) जड़ और जड़—परस्पर-वेद का भेद

✓ मीरा के अनुसार भी गिरिधर और जन गिरिधर की गोपियाँ मिल हैं । 'नहर की काजी' के अमान मिटनेवासा यह संसार भी 'अविनाशी कृष्ण' से असम है, 'मगर चेतन और अचेतन का भेद मीरा के यहाँ नहीं है, है जी तो कृष्ण की बाँसुरी के साथ जड़ और चेतन भूम उठते हैं और यह भेद निरन्तर और शाश्वत नहीं रहता ।<sup>१</sup> मीरा के लिए जीव सब एक-से हैं उनमें पुस्य और नृणादी का भी भेद न । इस तरह मीरा ईश्वर और जगत् के भेद को मोटे तौर पर मानती है जीव-जीव जीव-जगत् और जड़ जड़ के भेद को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है ।

माध्व मतानुसार मोक्ष के जो प्रकार माने गए हैं<sup>२</sup> उनमें से मीरा ने सबसे अमान द्वारा प्रियतम के सामीप्य का प्रयत्न किया और अन्त में जीवी

(१) भारतीय दर्शन डॉ० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ५२१

(२) इन्दोर, पृष्ठ २

(३) बिद्या-सभा सं० १९९५, पृष्ठ १

(४) मीरा-जीवमोक्षाम्बी-वार्तालाप यही प्रमाण पृष्ठ २००

(५) (१) कर्मकाय (२) उत्कान्तिमाय (३) अचिरारिमाय (४) भोग

कि लोक की मायका है। उन्होंने साधुग्य प्राप्त किया। माध्व ने विष्णु की उपासना पर जोर दिया। विष्णु के अवतारों में राम और कृष्ण को उन्होंने दिया है परन्तु गोपाल रूप की उपासना का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। गोपाल की उपासना उनके यहाँ नहीं है, राधा का नाम भी यहाँ नहीं मिला। इनके विरुद्ध भीरी गिरिधर गोपाल के प्रणय-बंध की ही एकमिष्ट पण्डित की।

साधवेन्द्रपुरी की गोपाल-भक्ति से साम्य :

माध्व सत्तानुयायी आचार्यों में साधवेन्द्रपुरी का स्थान अद्वितीय है। वे बल्लुत माध्व-चैतन्य-सम्प्रदायों की संवि के आचार्य थे। भीरी का उनसे सम्पर्क हुआ हा था नहीं मगर भीरी की भक्ति-मठानि पर साधवेन्द्रपुरी का प्रभाव प्रतीत होता है। सर्व प्रथम साधवेन्द्रपुरी ही ने माध्व सम्प्रदाय में गोपाल की पूजा का प्रारम्भ किया। उनकी गोपाल की मूर्ति की प्राप्ति का लेकर कई भौतिक कथारें प्रचलित हैं जिनका सारांश यह है कि साधवेन्द्रपुरी की का जयंत के भीतर लगभग में गोपाल की मूर्ति मिली। बृन्दावन में उन्होंने उस मूर्ति की प्रतिष्ठा की और गोपाल भक्ति का प्रचार किया। साधवेन्द्रपुरी बल्लुत विष्णु मठ के दार्शनिक नहीं थे। हृष्ट उनका हृदय पर ऐसे छा गए थे कि वे ज्ञान की इया प्रप्ति की भीष्ट मूर्तियों को देखकर ध्यान-मग्न हो जाते थे। चैतन्य-पूर्व युग के वेष्टियों में साधवेन्द्रपुरी ने बृन्दावन की आध्यात्मिक महिमा ज्ञात करने में अथल परिश्रम किया।

भीरी के आराध्य भी गिरिधर गोपाल थे जहाँ की मोहनी पर भीरी ने अस्ता वन-मन-आणु वार दिया था। धर्म की चिन्ता को त्यागकर दयन के एकमात्र लक्ष्य उनके दृष्टि पथ पर ललर जाते थे और उनके रवाओं ने बन पए थे।

इस प्रकार भीरी पर माध्व मठ का विशेष प्रभाव महीं था। प्रभाव था साधवेन्द्रपुरी द्वारा प्रतिष्ठित 'गोपाल' की चयला प्रेमलभणा भक्ति का।

चैतन्य-मत (अर्धित्य भेदाभेदवाद)

चैतन्य-सम्प्रदाय के साग में भीरी का मिनता प्रविष्ट है। परन्तु मारा हाग जीवगोस्वामी के प्रग धुदान की था। परमा वन में घटी उनसे ज्ञान होता है कि उन समय ब्रह्मण चैतन्य मंदरायी गोम्बामियों में भीरी को गोसना विषय मरी था और उन्होंने मगर उनसे सम्पर्क में आकर कुछ रिया था ही

जोर ब्रह्मचर्य के अहंकार में बँधे हुए बीबगोस्वामी को यहूत जीवन की सखा बीबी ।

महाभ्रमु चैतन्य ने स्वयं भावबेम्भ जी के शिष्य केदाव भारती से संवत् १२९६ में सम्पास की बीक्षा ली थी । उनके मत का प्रचार छद्दीठाचार्य और मेत्यानन्द के द्वारा बंगाल से प्रारम्भ हुआ था । इस मत की दार्शनिक क्यरेला हो धर्मिय रूप ( बिबि-बिबान की व्यवस्था भक्ति-शास्त्र आदि ) बाद में मुम्बावन में स्थित पद्म भोम्बाभियों द्वारा प्राप्त हुआ । अतः जिस समय मीरौ हो गिरिधर गोपाल से प्रेम हुआ और उनके मन में बोपाल भक्ति जगी उस समय चैतन्य-मत का दार्शनिक रूप पुरातन व्यवस्थित नहीं हुआ था । ही मीरौ के भक्ति जीवन के प्रत्यूप में ही चैतन्य की 'भक्ति' के छायात्म्य रूप का विशेष प्रचार हो गया था । अतः मीरौ पर अधिन्यवेदाभेदवाद की दार्शनिक चिन्ता का नहीं सामान्य चैतन्य भक्ति ॥ धाबीजन का प्रभाव हो सकता है ।

चैतन्य मत का साधस यह है—“बज-स्वामी नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान् हैं । उनका नाम है मुम्बावन । बज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही छापकों के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है । बीमहुमागवत् भिन्नत प्रमाण-शास्त्र है । प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ गुरुपार्थ है ।”

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'गोपिन की प्रीति रीति' निभाने वाली और कमलभाज से गिरिधर को भजने वाली प्रेम-विवोमिनी मीरौ के भक्तिभाव का ऊपर वर्णित भाव के साथ क्रिन्ता साम्य है । दार्शनिकों द्वारा निर्णयित चार गुरुपार्थ प्रसिद्ध हैं—धर्म, धर्म, काम और मोक्ष । चैतन्य ने पाँचवें गुरुपार्थ के रूप में 'प्रेम' की प्रतिष्ठा की । मीरौ की समस्त भक्ति वस्तुतः इसी गुरुपार्थ का प्रतिरूप है । पीढ़ीय वेद्योंओं ने सर्व प्रथम भक्ति रस की अवतारणा की । इस रस की साधिका का दृष्टान्त है गोपिका ।

(१) आराध्यो भगवान् बजेद्यतनपस्तद्व्याप मुम्बावन

रम्या काविकुपासना ब्रजवपुषोऽथ वा कल्पिता ।

आरभ्य भावधर्त प्रमातुममत्तं प्रेमा पुमर्थो महान्

धी चैतन्यब्रह्मप्रभोऽर्पतमिर्ब तच्चाहरो न नरः”

—आपवत् संग्रहाय पृष्ठ ५१२ से उद्धृत



है।<sup>१</sup> संप्रदाय के आचार्यों ने सक्त भक्ति का जो विस्तार किया है, मीरा की भक्ति उसका उदाहरण जैसी प्रतीत होती है। मयरनिम्बार्क मत में कृष्ण ही सब कुछ नहीं है। राधा को निम्बार्क ने 'अनुकम्प्य सोमया' माना है, वे 'कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं। कृष्ण के समान ही आराध्य हैं। मीरा की आराधना में राधा का रूप प्रमुख नहीं है। कृष्ण गोपियों और गोपीश्रेष्ठ राधा के भी मातुर्व भाव के उसी प्रकार के धामर्शन हैं जैसे कि स्वयं मीरा के। वस्तुतः इस विरक्त बिमोहिनी की व्यवसा राधा से किसी प्रकार कम नहीं है और इसके मानसिक प्रत्यक्ष का विमर्शन उस भी राधा-कृष्ण के संयोग-मुख से कम कमनीय नहीं है। मीरा का मातृत्व प्रियतम कृष्ण के सामने आत्म समर्पण की धनुमुक्ति को सहज में अपना केला है उसे 'राधा' की कल्पना की आवश्यकता नहीं रहती।

वैदिक प्रमाण को अस्वीकार करके चलने वाली दर्शन-पद्धतियाँ :

वैदिक प्रमाण में विश्वास न करने वाली या प्रमुख विचार-धाराएँ मारुत में जन्मी वे भी आर्वाक जैन और बौद्ध धर्म की धाराएँ। आर्वाक और जैन-धर्म मानवत जर्म को प्रभावित नहीं कर सके पर बहु धर्मों से पुण्यत प्रसूता नहीं रहा। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया बहुत समय तक साव-साव जमती रही। ई० पूर्व पाँचवीं सताब्दी में जम्मा बौद्ध मत ( बुद्ध का निर्वाण ई० पूर्व ४८३ में हुआ था ) पहली सरी ठर आते-आते महायान और हीनयान दो धाराओं में बँट गया। हीनयान चिन्तन और साधना की पूर्व परम्परा को निर्ममतापूर्वक अक्षुण्ण रखने के प्रयास में विकासहीन हो गया और महायान प्रचार की उठावली में लोक-रुचि के धार्मिक तत्त्वों को धातमसा करने में स्वयं बलवता रहा। यही महायान बाव में 'मंत्र जमत्कार की सिद्धि' के चक्कर में पड़कर मंत्रयान बना और जब मंत्रयान में मय और मैत्रु का प्रवेश हुआ तो वही ब्रह्मयान के रूप में ( ई० ८०० से ११७२ तक ) सामने आया। ब्रह्मयानी सिद्धों की विद्वति जब चरम सीमा पर पहुँची तब

- (१) 'क्यादि-विषयक-इंद्रिय-वृत्तिवर्धनवृत्तिरूपस्याभाविक भावस्वरूप गुणविषयक-भाववातवृत्तिर्मनोवृत्ति-धर्मत् मयवान के रूप गुण आदि विषय में समग्र चित्त को व्याप्त कर लेनेवाली मनोवृत्ति उत्कृष्ट भवित है।'।

पैदाईत मत् के संयोग से उसने नवीन रूप धारण किया जिसे सिद्धमार्ग धनकूट मत् या योग मार्ग के नाम से पुकारा गया। यही योग-मार्ग नाथ मत् था।

## नाथ-मत्

मीरों के सामने परवर्ती बौद्ध मत् भी नहीं था। नाथ-मत् की बात भी सूझ चुकी थी केवल उसके अवशेष थे। उसकी गूँजमात्र दूसरे सामन मार्गों ( बास्करी निर्गुण सम्प्रदाय आदि ) में थी। हिंदी में कुछ विद्वानों और विदुषियों का मत् है कि मीरों की साधना नाथ-मत् के सिद्ध-योगी से सम्बन्ध रखती थी। इसका आधार मीरों-छाप के व पद है जिनमें 'योगी' या उसका 'योग' किसी-न-किसी रूप में वर्तमान है। मीरों-छाप के इस भाव के कतिपय पद तो प्रणामी सम्प्रदाय की मीरों-छाप तथा अन्य संतों के हैं।

मीरों-छाप के दो पदों में सिद्ध-सृष्टि प्राप्त होता है। इस अध्ययन की आधारभूत प्रतियों में वे पद नहीं हैं। बास्करी सम्प्रदाय की पात्रियों में वे संयुद्ध हैं, मगर भाषा और भावमिथ्या के आधार पर स्पष्ट है कि वे मीरों की क्या मीरों-मुप की भी रचना नहीं हैं।

मीरों में वस्तुतः योग-मत् का विरोध स्वयं अपने पदों में व्यक्त किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

‘मज मन करण कंस अविनासी

×

×

×

कहा गया था भगवा पहुर्या पर तज गया सन्यासी

बोपी होया कृत ना जाला लख जनमरा आसी ।’

मीरों की प्रेमाभक्ति उनके आराध्य का मनुष्य स्वरूप है वह सब योगियों की साधना पद्धति के प्रतिकूल पड़ता है। जब और डारका का विकास रणछाड़नी अनुभवाजी तथा कंसव्याम के मंदिरों की पूजा श्रीमोक्षामी हितहर्षिण आदि के संपर्क मीरों के योग-मत् से प्रभावित होने का समर्थन नहीं विरोध करते हैं।

मीरों के पूव योग-मत् का प्रम व वैष्णव सम्प्रदायों में भी व्यापक थी। अयदेव [मीर] रामानन्द की रचनाओं में योग-मत् की प्रबल भाव के रचन



होते हैं। महाराष्ट्र के महानुभाव और शारङ्गरी तथा बंधाम के सहजिवा संप्रदायों में योग-मठ की साधना-प्रवृत्ति का प्रवेश था। रामानन्द के पश्चात् योग-मठ का प्रभाव निर्गुणी संतों में रह गया। समुदाय वैष्णव धर्म में अपने को उससे पूर्णतः मुक्त कर लिया था। मीरा के समय में छतर के कृष्णोपासक प्रेमी भक्तों में नाथ-संप्रदाय का प्रभाव ठीक भी नहीं रहा था। अतः मीरा पर उसके प्रभाव की कल्पना निराधार है। ब्रह्मसंघ के लोग मीरा के कठोर धार्मिक थे। अगर मीरा योग-मठ के प्रभाव में होतीं तो ब्रह्मसंघ उन्हें स्पष्टतः योगमार्गी कहकर फटकारते और बेत-विरोधी होने के आरोप लगा सकते थे। पर, यह नहीं हुआ क्योंकि मीरा पर योगियों का प्रभाव नहीं था।

### संत-मत और मीरा :

संत-मत की कतिपय विशेषताओं की व्यंजना मीरा के कई पदों में है। कुछ विद्वानों ने इसी आधार पर मीरा पर संत-मत का गहरा रंग माना है।<sup>१</sup>

संत-मत का विकास योग-मठ और वैष्णव-धर्म की मध्यवर्ती धूमि पर हुआ था। यह मत बस्तुतः विभिन्न साधनाओं के मिलन-बिन्दु पर जमा था। इसमें वैष्णवों की भक्ति सूक्तियों का प्रेम और नाथों की योग-साधना सब एक साथ मिल गए थे। अतः कतिपय बातें वैष्णव अनुष्ठान उपासकों और निर्गुणी संतों में समयान्तर थीं। संत प्रेम की साधना के पक्ष में थे कृष्ण-मठ भी प्रेमाभक्ति (प्रेम) को श्रेष्ठतम साधना मानते थे। संतों का निर्गुण निराकार सत्ता है, जो प्रेममय होने के कारण अनुष्ठान तो है पर साकार नहीं है। भक्तों का अनुष्ठान आराध्य निर्गुण निराकार भी है। इस प्रकार साकार के सम्बन्ध में विरोधी होते हुए भी आराध्य के निर्गुण-निराकार रूप की स्थिति के सम्बन्ध में उनमें विशेष विरोध नहीं है (धार्शनिकों की मुख्य आस्थाओं में विरोध है सामान्यतः नहीं)। अतएव मीरा और संत-मत के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या में दो भिन्न ओं की जहाँ आवश्यक है—

- (१) वह भाव-तत्त्व जो मीरा तथा संतों में भक्ति-प्राप्ति के एक स्वरूप समयान्तर है।

---

(१) मीरा-स्मृति-संग्रह जनम जोवाण मीरा संभुप्रसाद बहुपुण्ड्र

(२) यह भावना भी मीरी में संत-मत्त के प्रभाव से या प्रेरणा से जगी थी ।

पहले क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय तत्त्व प्रेमतत्त्व है । भासवारों की मक्ति-परम्परा में प्रेमतत्त्व का विकास वैष्णव संप्रदायों में स्वतन्त्र रीति से हुआ संतों में यह प्रेम भाव वैष्णव-साधना और सूक्ष्म-प्रेम-मञ्जुषि का मिश्रित रूप था (प्रेम भाव का स्वरूप सूफी या और सायब भारतीय) मीरी तथा कबीर आदि के प्रेमोद्गारों में कहीं-कहीं विशेष सावधान्य दिखाई पड़ता है विशेषकर उन स्थलों पर जहाँ आराध्य का स्वरूप अनिर्दिष्ट है ।

सपी मेरी मीद नसानी हो ।

पिय को पंथ निहारता सब रैन बिहानी ।

सबियन भिसि सीप बई भन एक न मानी ।

बिन देखे कल ना परै बिय ऐसी छापी ।

धन छीन व्याकुल मई मुप पिय पिय बानी ।

अन्तर बेबन बिरह की बहि पीर न जानी ।

ज्यों बातक मन को रटै मछरी बिन पानी ।

मीरान व्याकुल बिरहणी सुख दुख बिसरानी ।<sup>१</sup>

मीरी का संत कबल जैसे कबीर के इस सिद्धान्त-वाक्य का सदाहरण है—

कबीर होमना भूर करि, करि रोवण सौ बित

बिन रोया क्यु पाइए, प्रेम पियारे मित<sup>२</sup>

पर वस्तुतः यह साम्य दो परम्पराओं के समन्वित साधना तत्त्व के कारण है प्रभाव नहीं है ।

कहीं-कहीं पर मीरी पर संत-मत्त की भावना का प्रभाव भी है । व कहती है—

बापा समय ना दैस काह देख्या डरा ।

मरा प्रेम रा होज हून नेमा करा ।

साखा संत रा बं ध्यान जयतां करो ।

बरा माबरो ध्यान बित्त उमनी करा ।

सीस मधरा बाप तीस निरतां करा ।

(१) नागरीदास पृष्ठ ६

(२) कबीर संवावती बिरह की संग पृष्ठ ९, बोहा २७

साजों सोस सिंगार सोणा री रासदा ।

साँवडिया धू प्रीत धोर धूँ धाँसदा ।<sup>१</sup>

वही उनके धगम' लोक को देखकर संतों के उस लोक की ओर ध्यान बना जाता है, जिसे कबीर के शब्दों में यों कहा जा सकता है—

'अयम अयोधर गमि गइ। तहाँ अयमय ब्योति'<sup>२</sup>

इसी प्रकार मीरा का यह—

'मूहा पिरबर रंग राती ।

पंकरम न ना पहुँचा सखि मूहा भुरमट खेलण जाती ।,<sup>३</sup>

स्पष्टता संतों की निर्गुण प्रेम-मीमा से साबुध्य रहने वाले नाथ की व्यंजना करता है । पर यह प्रभाव सामान्य है । इसके अतिरिक्त प्रभाव धूर पर नाथ और संत मत का है । इस प्रभाव का शेष मीमा की अनुसूति तथा प्रेम का शेष है । कहीं-कहीं मीरा अपने प्रियतम के साथ इतनी लग्न हो जाती हैं कि उनकी अनुसूता-निर्गुणता की बातें कहकर एक सरस भावानुसूति में परिणत हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त मीरा पर न संतों के ईश्वरीय बिलक्षण भावानुसूतिनिमित्त निगुणातीत प्रभाव अयोधर ब्रह्म की भावना का प्रभाव है, न उनकी हठयोग की भावना का । न उन्होंने संतों की तरह वैदिक सत्य-प्रमाण की अपेक्षा की ओर न कुछ के 'अभिचार्य सत्य-बाण' की अपेक्षा ।

विदेशी दर्शन : सुफी-मत :

मीरा के समय में राजपूतों की राजनीति से ही नहीं, धर्म से भी इस्लामी ध्वज धारियों का विराज चल रहा था उभर हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था अपनी रक्षा के लिए सतर्क हो रही थी । अतः मीरा के शीतों में इस्लामी धर्म-परवाही एकेतरबाह का अप्रभाव अस्वाभाविक नहीं था । सुफियों का दर्शन भी उन दिनों विदेशी था पर सुफियों की भावना अपनी पदावस्था

(१) काशी पद ७१

(२) कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १२ साखी ४

(३) काकोर, पद १०

(४) भारतीय साधना और दूर-साहित्य डॉ० मुंशीराम शर्मा  
पृष्ठ ६१-८९

धीर प्रेमसीसता के कारण भारतीय भावधारा धीर चिन्तन के साथ धार्मिकता स्थापित कर चुकी थी ।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि मीरों के गीतों में सूखी विचार-बाण से प्रेरणा या प्रभाव ग्रहण किया पर धीरों धीर मूर्धियों के जीवन-इसन में कबल प्रेम-साधना ( विद्यपकर प्रेम विरह सौंदर्य ) को लेकर बाढ़ा-सा साम्य है । उनकी सरस साधना बन्नुत उनकी अनुभूति के अतिरिक्त सरस भक्ति-मादोसन के प्रभाव के फलस्वरूप थी जो सासवार युग में प्रारम्भ हो गया था धीर मीरों के समय कृष्ण-सम्प्रदाय ही नहीं रामानुज सम्प्रदाय को भी प्रभावित करने लगा था । यद्यपि इस साम्य को साम्य के रूप में ही मानना चाहिए, प्रभाव रूप में नहीं ।

सूखी की साधना प्रेम की साधना है । उनके अनुसार दुनियाँ में जो कुछ है इस्क का जलवा है । मीठ इस्क को बहोषी है । जिन्हीं इस्क की हाथियारी है । मेकी इस्क की कुम्बत है । पुनाह इस्क से बूरी है । मूर्धियों का यह प्रेम एकांतिक धीर भाव-विह्वल है । मीरों की साधना भी प्रणय की साधना है । उनका प्रेम भी एकान्तिक है । उस प्रेम में भी विह्वलता है, इसीलिए वे बरब की मारी बर-बर डालती हैं । प्रेम के अतिरिक्त मूर्धियों की 'प्रेम की वीर' मीरों की विरह-रूपा' से कुछ भिन्न है । मीरों कहती हैं—

“बायन री धुमाँ फिरा म्हारो बरब ना जाम्पा कोय ।

धीर सूखी बायसी ने कहा था—

“जा मंह कटिन लड़ग की बाण । तेहि तें सबिक विरह के भरा ।

प्रेम धीर सौंदर्य का चिर सम्बन्ध है इन्तुन सरसी के अनुसार प्रेम का मूल कारण ही सौंदर्य है ।<sup>१</sup> मीरों भी 'मोहन के रूप पर भुमानी की मुग्ध बदन कमल इस लक्षण बाँकी चिन्तन उनके मन्दनों से मना गई थी ।' प्रमी का यह प्रेम ब्यब नहीं जाता । हाफिज ने कहा है कि क्या कोई ऐसा

(१) इ मिस्वीकत पिलोसफी ऑय मुहीनुद्दीन इबनुर-खरबी ए० ई० एफी पीपी पृ० १७३

(२) टाकोर पद ३

भी प्रेमी हुआ है जिसके हाथ पर चार ने बया-बूटि न की हो ।' मीरा के बिकस प्रणय-स्वर के साथ ही मीरा के भुवसागर स्वामी स्वाम उनके भवन में पधारते हैं और वे धामन्द मगाती हैं ।'

मगर मीरा की प्रेम साधना और सूरियों के 'इस्क' में अन्तर है । मीरा सपुण के स्नेह से बस रही थीं । उन्हें रिझने वाले उनके समर्पण की स्वीकार करनेवाले साकार गिरिधर थे । भक्त उनकी प्रेमसाधना अधिक स्वाभाविक थी । सूरियों का प्रेम निर्मूल्य के प्रति होने के कारण अधिकान्त या तो कात्मनिक रहा और वर्णन का धामय केकर लड़ा हुआ या भौतिक माध्यम को लेकर स्वमता के पास या गया । मीरा के प्रेम का धारण भारतीय है । पुरुष प्रियतम के रूप से दृष्टि की स्वीकृति उनके स्वभाव के अनुकूल ही नहीं भारतीय भक्ति-वर्णन के अनुकूल भी थी । सूफ़ी-मत के साधन-सम्बन्धी विवरणों का संकेत भी कहीं मीरा में नहीं है ।

निष्कर्ष :

(१) मीरा पर प्रभाव प्रमुखतः बौद्धिक-वर्णन का था । इस प्रभाव का क्षेत्र भी अधिकान्त भक्ति-प्रकृति थी । बह्य-बीज-जगत-सम्बन्धी विवेचनों की चिन्ता मीरा ने नहीं की थी ।

(२) संत-मत के प्रभाव की एक सीढ़ी चारा भी मीरा के काव्य में है पर यह चारा सीढ़ी ही नहीं सीढ़ी भी है । सूरियों की प्रेम-भावना से सामान्य सादृश्य होने पर भी सूफ़ी-भाव मीरा में नहीं है न साधन की दृष्टि से न साधना के धारण की दृष्टि से ।

(३) मीरा पर विशेष प्रभाव रामानन्द की प्रपत्ति, भक्त्य की माधुर्यभासित तथा भावयोग्यपुरी की बोधोत्प्रेक्षा का है ।

(१) ईरान के सूफ़ी कवि बाकि बिहारी तथा कर्नीयालान पृष्ठ ३३८

(२) डाकोर, पृष्ठ ४४

# भक्ति-परंपरा और मीरों

## भक्ति का उद्भव और विकास

भक्ति के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में सामान्यतः चार मत हैं —

(१) पहला मत है हॉफ़मन्स बर्नडो प्रियसन आदि पाश्चात्य विद्वानों का जो महाभारत पर 'सेंट जॉन्स गॉस्पल' का प्रभाव मानते हैं<sup>१</sup> और कथ्य कथाओं का ईसाई कहानियों का रूपान्तर।<sup>२</sup> कभी-कभी यह कहकर भी कि 'भक्ति का स्वरूप की कल्पना भारतीय है'<sup>३</sup> उस मध्य एशिया के ईसाइयों के प्रभाव द्वारा विकसित मानत हैं।

(२) दूसरा मत आर्नेस्ट हर्बिएट तथा डॉ॰ ताराचन्द जैसे इतिहासकारों का है जो इसे भारतीय कहकर भाषासिक रूप से मुसलमान प्रभाव में पनपी मानते हैं।<sup>४</sup>

(३) तीसरा मत डॉ॰ मुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे विद्वानों का है, जो भक्ति के विकास में धनार्थ तत्त्वों का प्रभाव योग मानत हैं।

(४) चौथा मत उन विद्वानों का है जो भक्ति को पूगढ़ बेरों से ही विकसित मानत हैं। बेरौचाम चमर्न तथा नारायण तीर्थ ने तो उद्धरण देकर

(१) इंडिया ओरिज एण्ड ग्यु हॉफ़मन्स पृष्ठ १४५

(२) जर्नेस ऑफ़ रॉयल एशियाटिक मुसाइटी तम १९०७ पृष्ठ ९५१

(३) एम्साइकलोपीडिया ऑफ़ रिलीजियन एण्ड एथिक्स भाग २ पृष्ठ १४८

(४) वही पृष्ठ ११०

(५) हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म इतिहास, त्रिस्त ३ पृष्ठ ४५८  
इन्फ़र्न्यूँस ऑफ़ इस्लाम धाम इंडियन कल्चर, डॉ॰ ताराचन्द  
पृष्ठ १२९

(६) कल्याण भक्ति-ग्रंथ बेरों में भक्ति संग्र पृष्ठ ४१-४३

(७) भक्ति-भण्डिका, पृष्ठ ७७-८२

सिद्ध निम्ना है कि श्रुति में भक्ति के नामस्मरणादि नवधा प्रकारों के प्रदर्शक मंत्र भी हैं।

सबके अपने-अपने तर्क हैं जिनके विस्तार में जामा वर्तमान चर्च में समावेश्य है। पर वस्तुतः भक्ति हमारे अनुराग के भाव पर केन्द्रित है और यह भाव मानव के लिए इतना स्वाभाविक और सहज है कि वह अपने जन्म के लिए शिक्षा और ज्ञान का मुतापेक्षी नहीं है और संस्कृति के विकास के साथ ही वह भी विवक्षित होता जाता है। यद्यपि साहित्य के भक्ति सूत्र की यह उक्ति कि 'भक्तिः प्रमेया श्रुतिम्या' (१।१।८) (भक्ति श्रुति से जानी जाती है) अविश्वसनीय नहीं है। साथ ही यह भी एक सत्य है कि भारतीय संस्कृति और उसके साथ भक्ति-भावना ब्रह्म तत्त्व भी अपने में समेटे है। भक्ति के विकास के इतिहास को अध्ययन की दृष्टि से तीन नामों में बाँट सकते हैं—

- (१) प्रारम्भिक रूप —प्रथम उत्थान
- (२) बलिष्ठ में विकसित रूप —द्वितीय उत्थान
- (३) समानम्य आदि भाषाओं द्वारा उत्तर में प्रचारित रूप —तृतीय उत्थान

प्रथम उत्थान :

भक्ति शब्द का इस अर्थ में प्रथम प्रयोग जिसमें कि वह परवर्ती भक्ता में प्रचलित हुआ स्वतन्त्ररूप उपनिषद् में मिलता है। वेदों में भी भक्ति का बीज मिल जाता है। 'अग्नि' और 'इन्द्र' के प्रति अनुरागपरक स्तुतिर्पा ऋग्वेद में है। अनुराग का रूप स्नेह तक ही सीमित नहीं है प्रणय की शृंगारिकता भी उसमें है। पुरुष सूक्त में ईश्वर की भावना भी पुरुष के रूप में की गयी है।

भक्ति के उपास्यदेव विष्णु का नाम ऋग्वेद में अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुआ है पर उनको कुछ ऐसी विद्यपताओं की ओर संकेत है जो उनके रूप

- (१) परम देवे परामर्शितर्यथा देवे तथा धुरो  
तस्य कपिताह्वर्या प्रकाशान्ते महात्मनः— ६।३३
- (२) ऋग्वेद ६।१।५
- (३) बह्वी, ८।९८।११

की परबर्ती कल्पना में विशेष उपादेय हुई<sup>१</sup> अथाहरण के लिए बिष्णु को मोपा (रक्षक) त्रिविक्रम श्रीपति धर्म का आधार आदि कहा गया है। धीरे-धीरे भृग्वेद के प्रधान देवता इन्द्र का महत्त्व बिष्णु को मिलता गया। यजुर्वेद में तो कहा गया है कि बिष्णु ही बिम्ब है। बिष्णु पवित्र रूप में समग्र बिम्ब में वर्तमान है। बिष्णु प्रलय है, ध्रुव है, पोषक है।<sup>२</sup> ब्राह्मण ग्रंथों में बिष्णु की एकता यज्ञ के साथ हो गयी।<sup>३</sup> इस समय तक वे परम देवता बन गये।

बैष्णव धर्म के उपास्य देवता का दुसरा नाम नारायण है। नारायण सृष्टि-विधायक भावना का भी केन्द्र थे। प्रारंभिक काल में बिष्णु और नारायण भिन्न थे। यद्यपि इन दोनों नामों का प्रयोग कभी-कभी परमात्मा के लिए भी हो जाता था पर इनका एकीकरण कानिश्च ईश्वरीय आराध्यक की रचना के समय तक नहीं हो पाया था।<sup>४</sup>

प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय के दो नाम मिलते हैं—वागवत मत तथा पांचरात्र मत। पांचरात्र मत का नामान्तर सात्वत मत है। सात्वत साग भी मादव सभी वे जिनमें कृष्ण का जन्म हुआ। ये लोग जहाँ गये वहाँ इन धर्म को प्रचारित करते रहे। इनके आराध्य और मूल प्रबलक बामुदेव कृष्ण थे। प्रारंभ में बामुदेव और कृष्ण ये दोनों नाम बिष्णु तथा नारायण की भाँति पृथक्-पृथक् प्रयुक्त होते थे आगे चलकर ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय बन गये। अन्त में बामुदेव-कृष्ण भी बिष्णु नारायण से मिलकर अभिन्न हो गये और वैष्णव धर्म पूर्णतः संगठित हो गया।<sup>५</sup>

- (१) बिष्णु के विविध रूपों के लिए देखिए, आस्पेक्टस आउट ऑन बिष्णुइकम जे गौडा
- (२) हिन्दू धार्मिक कथाओं के बीतिक धर्म त्रिवेणीप्रसाद सिंह पृष्ठ ६२
- (३) सात्वत ब्राह्मण द्वितीय अध्याय पंचम ब्राह्मण में यमरूप बिष्णु का सविस्तर इतिहास दिया है।
- (४) धर्मो हिन्दू धारा व वैष्णव सिद्ध पृष्ठ १८-१९
- (५) सात्वतात्र डा एन० के० आर्यपर प्रोसीडिंग्स धारा व सिद्धेय प्रोर्टिण्टल कॉलेज कमकता तम् १९-२१
- (६) वैष्णव-धर्म बरगुलाम बनुर्वेरी पृष्ठ २१-२२



पारिजि के घटाप्यायी में 'वासुदेवार्जुनाभ्यां बुत' ( भा. १. १८ ) सूत्र से बात होता है कि वासुदेव चर्म ईसा की ६-७ वीं शताब्दी पूर्व तक प्रबलमेव जन्म से बुका था । नानाघाट के गुहामिसेक तथा थोसुंही धीर बेसमगर के मिनासेकों का गन्ध है कि ईसा से २०० वर्ष पूर्व तक यह अत्यन्त सक्रिय और प्रतिष्ठित हो गया था । इसी सन् के चौथे और पाँचवें शतक में इसकी विशेष उन्नति मुक्त सम्राटों द्वारा हुई और पाँचराज संहिताओं—बीसे महिर्बुध्य परम संहिता सारस्वत संहिता आदि की रचना भी हुई ।

यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि बीप्पुज चर्म का जो रूप बाद में प्रचलित हुआ उसके निर्माण में पुरानों का विशेष योग है । अठारह पुरानों में से सयसग आठे पुराणों का सम्बन्ध बीप्पुज चर्म से निर्गत स्कूट है । मत्स्य कूर्म बाराह तथा बामन इन चार का तो नामकरण तथा निर्माण भगवान् विष्णु के चार अवतारों को ही सत्य कर किया गया है । नारद ब्रह्म-बीवर्त पद्म विष्णु तथा श्रीमद्भागवत इन पाँच पुराणों में विष्णु के साम्या-त्मिक रूप और महिमा का विशेषन है ।

### द्वितीय सत्यन :

उत्तर के शासकों द्वारा वासुदेव मूर्ति वसिष्ठ में पहुँची थी पर वहाँ मूर्ति का इतना प्रचार हुआ कि उत्तर बहुत पीछे रह गया । आठवार भक्तों की समक्षित बाणी ने जनता को भगवान् की विषय सीता के दर्शन कराने उसका मन मोह लिया और बीप्पुज आचार्यों ने उसे शास्त्र य पीठ पर प्रतिष्ठित किया । बीप्पुज भक्त कवि 'आठवार'-रसक कहलाते हैं । इनकी संख्या १२ मानी जाती है । इनमें कई समाकथित निम्नवर्ग के लोग और

(१) पारिजि का समय—१५० ई० पू० कीय पर भारतीय विद्वान् उसे ६-७वीं शती पूर्व का मानते हैं—डॉ० बालूराम लक्ष्मिना तानाय नापा विज्ञान (स १९९९) पृष्ठ-२०५

(२) भाषक-सम्प्रदाय डॉ० बलदेव उपपाध्याय पृष्ठ १२

(३) वही पृष्ठ १४१ १४२

(४) बारह आठवार इस प्रकार हैं (१) धीयवी आठवार (२) भूतलाठवार, (३) वीयालवार, (४) प्रकितवार तिस्यवित्त घातवार, (५) शठकोप-नय्यालवार, (६) अमुरकवि (७) भुलशेपर, (८) विष्णुवित्त-वेरिघातवार, (९) गोदा-घातवार (रंयनायकी), (१०) विप्रनारायण-सोणर-विष्णोति (११) नुनिवाहन-तिरुप्यन (१२) नीलन-तिरुमंगीयालवार

एक स्त्री भी थी। इनकी ४००० कविताओं का बृहत् संग्रह 'मालाविर विष्णु प्रबन्धम्' कहलाता है। पवित्रता की भावना के कारण यह संग्रह 'तमिन्नेर' के नाम से पुकारा जाता है।

इन भक्तों के युग में तीन महत्वपूर्ण बातें हुई—

- (१) जाति-पाँत सम्बन्धी ऊँच-नीच का भाव भक्ति के क्षेत्र से हट गया। तिरुप्पन जैसे अल्पज्ञ साधारणीय भक्तों की कोटि में पहुँच सके।
- (२) नारियों के प्रति सामंतीय दृष्टिकोण समाप्त हुआ और वे भक्ति की समान अधिकारिणी बना। कारकैकास धर्म्मियार तथा आण्डाल जैसी भक्त नारियाँ सम्मानित हुई।
- (३) जनमाया के महत्व की प्रतिष्ठा हुई। बेसी माया में लिखे धर्म शतकोपाचार्य के तिरुविक्कतम आदि ग्रंथ बेसों के समान मान्य और महनीय माने गये।

इस प्रकार साधकों ने जनता को भक्ति के द्वारा धर्म की रसात्मक अनुभूति करा रहे थे कि संस्कृत विद्वानों ने भक्ति की भावना को वैदिक दर्शन की सुनिवा पर प्रतिष्ठित करना प्रारंभ कर दिया। साधकों के बाद तमिल प्रदेश में आचार्यों की एक परम्परा मिलती है जिसमें तमिल वेद का संस्कृत वेद के साथ मार्गबन्धन स्थापित करके भक्ति-दर्शन का प्रतिपादन किया। इन आचार्यों में आदि आचार्य थे रंगनाथ मुनि (८२४ ई०-९२४ ई०) जिन्हें वैष्णव जयन्त नाथमुनि के नाम से जानता है। इनके पञ्चात श्रीरङ्गम की गद्दी पर क्रमशः राममिश्र और यामुनाचार्य बैठे। यामुनाचार्य भी नाथमुनि के ही समान अम्यात्म तन्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने जनधारकाचार्यों के प्रचार प्रसार का भी कार्य किया और नवीन ग्रंथों का अणुयन्त्र भी।

इसी बीच एक घटना घटी। ८०० ई० के आगपास संकराचार्य का उदय हुआ। उन्होंने मायावाद से आण्डालित विभुश्रु प्रकृत मठ की प्रतिष्ठा की। जीव और ब्रह्म का भेद भी मायाहृत होने के कारण आराध्य और आराध्य का भेद ही उठ गया। 'जो है' उसको समझ लेना ही-ज्ञान ही-

- 
- (१) जन्म-७८८ ई०, मृत्यु या संन्यास ८०० ई०- ए हिन्दू आर्य तन्त्रज्ञ निन्देकर, बीच पृष्ठ ४७६

जीवन की एकमात्र साधना बन गया। दुर्गराचार्य के इस भक्तिविरोधी भाषावाद की बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उसवारों की भक्ति-परम्परा प्राचायों की दण्डन-प्रथाओं और दुर्गर के भाषावाद की प्रतिक्रिया—इन तीनों प्राचायों से बनी भूमिका पर बार-बार ऐसे दार्शनिक सिद्धांतों ने जन्म लिया जिन्होंने समस्त भारत की धर्म-साधना का रूप ही बदल दिया।

बन्धुत भक्ति-चर्यन की प्रतिष्ठा और प्रचार का कार्य सुसंगठित रूप से इन्हीं वैष्णव-सम्प्रदायों और उनकी परवर्ती शाखा-उपशाखाओं द्वारा हुआ। ये हैं—(१) श्रीवैष्णव (२) ईश (३) छठ तथा (४) ब्रह्म सम्प्रदाय। इन्हीं से भक्ति के विकास के तृतीय चरण का प्रारम्भ होता है।

भारतीय भक्त परंपरा और मीरों :

(१) भक्तियों में भक्ति का बीच मान लेने पर यह निष्कर्ष अनिवार्य है कि संहिताओं की अज्ञा-मूलक अनुशासन की व्यवस्था करने वाले मंत्रों के रचयिता ऋषियों के हृदय में राग का यह तत्व अत्यन्त उदात्त और स्वामात्रिक रूप से विकसित होकर ईश्वरानुरक्ति में परिणत हो जाता है। इस प्रकार भक्ति के विकास के इतिहास में वैदिक साहित्य का जो स्थान है वैदिक मंत्रों के दुष्टा-सृष्टा ऋषियों का वही स्थान भक्त-परंपरा में है। ये लोग प्रमुखता प्रबुद्ध उपासक कर्मकाण्डी तथा ज्ञान के पुष्प पथ के साधक थे। भक्ति की किरणों की उनके सरस मन को स्पर्श करती थी। पर, भक्ति या ईश्वर से माता-पिता का अनुपाचारमक सम्बन्ध जोड़ने वाले उपासकों की साधना का मीरों की भक्ति से कोई विशेष साम्य नहीं है, न भारताध्य के स्वरूप और न अनुसक्तिमूलक आराधना की दृष्टि से।

(२) दूसरा वर्ग उन भक्तों का है जिन्हें पौराणिक कहा जा सकता है। इनका संबंध विष्णु के किसी-न-किसी अवतार से रहा है, उदाहरण के लिए हनुमान सुग्रीव गोप गोपी आदि। इनमें से किसी-सी सत्ता यथार्थ की इसका निर्णय बटिन है परन्तु भक्तों के भाव-जगत में ये वास्तविकत्व ही हैं। 'नारद भक्तिमूर्त' तथा 'आश्विनाय भक्ति मूर्त' ये भक्तिवाचक के अनेक प्राचीन प्राचायों का पता लगता है—यथाचार्य गर्ग आश्विनाय सेव उद्यम अशक्ति भक्ति हनुमान विनीतल वास्तव्य और वास्तव्यण। इनमें कई नाम पौराणिक भक्ता के हैं। इनकी भक्ति भावना का स्वरूप काव्य तथा भक्ति ग्रन्थों में दिये हुए इनके जीवन उदाहरणों से ज्ञात होता है जो प्रायः तथ्यमूलक न होकर

कवियों और केशवों की अपनी भावना के प्रतिबिम्ब हैं। इन मस्तों में से मीरा की तुलना केवल गोपियों से हो सकती है जो कृष्ण का माधुर्य नाम की भक्त थीं। गोपियों से मा मीरा की यह समानता सामान्य भाव की वृत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि गोपी-जीवन का एक ही बात सर्वसाम्य है कि वह कृष्ण की प्रेम लक्षणा भक्ति की साधिका हैं। मीरा ने भी प्रेमलक्षणा भक्ति के लक्षण के अनुसार 'मया-गोपिकानाम्' कहकर गोपियों की उक्त सामान्य विशेषता की ओर संकेत किया है। मीरा की साधना इसी गोपी भाव की थी। श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने उद्धव को संदिग्ध लेकर भोजन समय कहा था—हे उद्धव ! गोपियों ने अपना मन मुझे समर्पित कर दिया है, मैं ही उनके प्राण हूँ परे किए उन्होंने अपने देह के सारे व्यबहार त्याग दिये हैं। वे गोपियाँ मुझे प्रियातिथिय समझती हैं। मेरे दूर रहने पर मुझे स्मरण करके वे दारुण विरह-बुझा से व्याकुल होकर अपने देह की मुधि भूम जाता हूँ मैं उन गोपियों की आत्मा हूँ और वे मेरी हैं।<sup>(१)</sup> दारु दिवानी मीरा के विषय में यही बात कहो जा सकती है। मीरा ने गिरियार के प्रेम में समस्त सौक्य संबंध छोड़ दिये थे। जबकि उनके समय 'मन माहिन की निपट बंढ छवि' में घटके थे तब से वह 'आन-पान मुष-मुष विमार का' उन्हीं के ध्यान में सीन रहती थीं। गोपियों के समान ही उनके 'हृदय में विश्रान्त सब मर्मा पी' ओर वे पाठ की तरह पीपी पड़ गयी थीं। पर उन्होंने प्रणय-क इस दुन्दर पथ की नहीं त्यागा। अतः गोपियों के समान सोच-भाव कुल का मर्मादा त्याग कर त्यागमुन्दर पर जीवन बराने वाली मीरा का अपर भक्त-हृदय गोपिका का अवतार मानने लगा हो या कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी मीरा और गोपियों में अंतर स्व भाविक है। गोपियों का व्यक्तिगत अधिकार में कास्परिक है। उसने अनेक भक्तों की मनोहर माधुर्यता और कवियों की समशील कल्पनाओं का समावेश है, मीरा का व्यक्तिगत ऐतिहासिक है। उनकी अपनी सीमाएँ हैं। प्रचलित साम्यग्रामुसार गोपिकाएँ कृष्णवतार के साथ थीं

(१) श्रीमद्भागवत १. १८. १४. १

(२) माया दाह्या बंधी दाह्या दाह्या तथा मुयाँ — दाहोर, पद १  
जीक साज कुन री मरग्यावाँ जयमाँ भक्त ना लयाँ री

—दाहोर, पद १८

(३) —दयाव विम्वर दे बाज सति उर धारन आगी

तकुक तकुक बन पा पड़ी विरहानन लागी । —बाहरी पद ६३

(४) पाएमाँ पीली पड़ी री भोग बह्याँ पित्रवार । —बाहरी पद ७६

कृष्ण मीरा की भावना में साकार हुए थे । इस प्रकार जीविकार्ण एक आदर्श हैं, जो भक्तों की कल्पना में बसता है, मीरा एक यथार्थ हैं, जो जगत के सामने हैं । एक धार्म्यात्मिक स्वप्न है दूसरा लौकिक सत्य ।

द्वितीय स्थान के भक्त :

सात्वतों के दक्षिण में पहुँचने पर वहाँ नायकत्व भर्म का विशेष प्रसार हुआ और भक्ति की एक ऐसी रसधार फूटी, जिसने दक्षिण को ही आत्मावित नहीं किया उत्तर की भावप्रवण भूमि को कुछ भक्ति-उपवन को फिर सहजसा दिया । इस रसधार को प्रवाहित करने वाले भक्त आत्मधार थे । इनकी संख्या बारह मानी जाती है । इनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है ।

प्रातःवार विष्णु भक्ति-पथ के पथिक थे । भक्ति के सामने उन्होंने सब बन्धन विचिन कर दिये थे । पीथुरी आत्मधार का कथन है “भक्त जिस डंग से भी उपासना करें, उसी डंग से अक्षय विष्णु उनका उपास्य बन जाता है।” मीरा की समस्त सामना वा सर्वस्व कृष्णानुराग है । उनके आराध्य एक ऐसे कृष्ण हैं जिनके लिए किसी विशिष्ट पुष्पा-भर्मा की आवश्यकता नहीं उनके प्रति प्रेम होता ही पर्याप्त है । पुस्तकानुसार वे कहा है “वह ईश्वर है । पृथ्वी आकाश घाटों बिसाघों बेव बेबाई सबका भक्तनिहित है पर आश्चर्य है कि उसका निवास है मेरे हृदय में । मीरा का हरि भविमासी है, काम की फौस उसको नहीं छू पाती । वह इतना बिराट है कि ब्रह्माण्ड स्वयं उसके चरणों में बैठता है पर वह मीरा के हृदय में बसता है।”<sup>१</sup> चठकोप की उपासना मीरा की तरह योपी भाव की थी । वे भक्तान को नामक मानते और अपने को नायिका के रूप में प्रस्तुत करते थे । हाँ पेरियानुवार (विष्णुभक्त) की भक्ति मीरा से भिन्न प्रकार की थी । उन्होंने बारहस्य भाव को प्रधानता दी है । कृष्ण के शेषक के बिना से उनकी तुमना केवल मूर से की जा सकती है ।

मीरा के साथ विशेष गुप्तगीय है गोदा ( रंगनाथकी ) जो मीरा की तरह ही प्रियतम की आराधना के पीत बनकर मुग-मुग से भक्त-मानस को मुषित कर रही है ।

(१) तमिल और उत्तर साहित्य पृष्ठ ५६

(२) म्हारा पिया म्हारे हीमडे बसता ना घापा ना जाती ।

## मीरादाई तथा गोदा आ-आल

बैद्युत मन्त्र कवयित्री आन्ध्र का तनित आश्रित्य में बैसा ही सम्मान है जैसा हिन्दी में मारी का । दोनों गोपी भाव की साकार प्रतिभाएँ थीं दोनों की भक्तिस्मात सगुण बाती स भक्त हृदय निनाशित है और यद्यपि दोनों के भौतिक जीवन की परिस्थितियों में आकाश-यात्रा का अन्तर था दोनों के जीवन का अन्त एक ही प्रकार से माना जाता है 'आने प्रियतम के साथ सदापर साधुम्' द्वारा । मीरा और आन्ध्र की नलि माधना में बहुत साम्य था । दोनों आने प्रियतम के अनुपम के रूप में एक-ही रूप ली थीं । आन्ध्र के प्रियतम 'बाम सिंह सन कमलनदन तथा सूर्य चन्द्र सम आनन' बाले हैं । उनके कानन गोल अक्षर अक्षरारे, भासा दुब-सा घीर भीहें धनु के समान हैं । उनके गल में कमलापा और मुख पर मुसकान घोनित्र है ।<sup>१</sup> मीरा के आराध्य भी 'सुन्दर बदन कमल दल सोचन मन में समा जाने वाली बाँकी चितवन बाले हैं ।<sup>२</sup> उनकी बारिज सी भीहें मधुबानी धमके देखा बटि है ।<sup>३</sup> दोनों को अपने हन मनोहर रूपवासे प्रिय का विषोय धमका हो गया था । विषोयिनी आन्ध्र ने दोनों का संशोभित करके कहती है 'नीने बापीन को नौठि आकाश में बिछे हुए हे मेयो मुक्तामणि बरसान बाले हे बानियो ! तुम्हीं बड़ाओ सुन्दर साँबरे की बात बना रही । इस आधो रात में मैं इस तरह दोनों घोर से मुनस रही हूँ । मेरी इस बधा पर तनिक तरस ला जाओ । दरद दिवानी मीरा के बिकल स्वर में भी गही है —

'बासा-नीना बढ़्या ऊमना बरसा बार परी ।

महाय दिया कन्देसा बसना भोजा द्वार खरी ।

अब दोनों की आकांक्षा गही है कि उनके प्रिय को चितवन का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो । मीरा ने उसके लिये 'रतन आभरण मूयन छड़ना भदवा बारण किया । अन्न इष्टदेव को प्राप्त करने के लिये नादा भी धर कुछ करने के लिये तैयार है । आन्ध्र ने संतुष्टि सनार करके हृदय को पा

(१) श्री गोदाव्याहृत पीठावली—धनु० श्री सप्तमस्तोत्र पृष्ठ १

बैद्युतधर्मविषयकी लया —द्विपुत्री आश्रित्य (१९०२)

(२) बाकोट, पृष्ठ ४

(३) बाकोट, पृष्ठ २

(४) श्री गोदाव्याहृत पीठावली पृष्ठ २८

लिया था। अपने में उसे सौँह मिसे पीर उन्होंने विधिपूर्वक विवाह रचाया।<sup>१</sup>  
मीरा के साथ भी यही हुआ

‘माई म्हाणो गुपणा मां परण्यां खीछामाथ।’ जनम-जनम की दासी  
मीरा की श्रावना भी ‘म्हाने चाकर राखो जी। धाण्वास की भी कामना  
की कि सदैव सेविका रहूँ।’

पर, मीरा और धाण्वास के व्यक्तित्व में अन्तर का दोनों दो विभिन्न  
परिस्थितियों को पार कर भक्त बनी थीं। मीरा ने राजकीय वैभव और धावर  
देखा था विवाह और वैश्य का सामना किया था अतएव उनके प्रणय में सर्वांगी  
प्रतिक है। वे तन की उपन को मन की विरह-म्यथा या हृदय के संयोजसुख में  
डुबाये रहीं। धाण्वास एक भक्त साधु द्वारा पामित तथा जीवन के प्रारम्भ से  
ही समवर्धित की और उनकी परिस्थिति ने उन्हें इतना संकाची नहीं बनाया  
था। अतएव वे कह देती थी ‘जैस बाह्याणों के घर में बैवठाओं को लक्ष्य करके  
घपित की जानेवाली हवि को कोई जंगली स्वार सूँबने लये वैसे ही चक्रवर्त  
संसार समवाज को लक्ष्य कर उमरे हुए मेरे उरोजों को यदि मामलों के उप  
भोग्य बनाने की चर्चा चली तो हे मामय। मैं जीवित नहीं रहूँगी।’<sup>२</sup> मीरा  
इतनी निस्संकाची नहीं नहीं हुई, उनकी प्रलयमादना इतनी प्रगल्भ और स्वुलो  
गुह्य नहीं थी कि वे अपने उरोजों की चर्चा कर सकें। ‘प्रियतम नर था गये  
बुग-बुग बोलते विरहणी की पिय मिसे हैं पर मीरा संयोज-सुख का बहान  
पंग-पंग धाण्वास साजी हो’ कहकर ही कर देती हैं।<sup>३</sup> ही एक पद में मीरा ने  
परा का पति के वाद के रूप का बहान किया है पर वही ‘परा’ नाम लेकर  
अपने को उदत्त वर्णक बना रखा है।

ग्रामबारों के पश्चात् बहिष्कार में धाचार्य-गुण आता है, पर धाचार्यों ने  
इस भक्ति-दर्शन को धार्मिक रूप दिया। मीरा भक्त थी धाचार्य नहीं। अतएव  
बहिष्कार के धाचार्यों से मीरा की तुलना का कोई प्रश्न नहीं है।

(१) ललित और उत्तक साहित्य पृष्ठ ६३

(२) डालोर पद ३६

(३) धाण्वास सेंट्स स्वाधी सिद्धान्त भारती पृष्ठ ३०

(४) ललित और उत्तक साहित्य पृष्ठ ६३

(५) डालोर पद ७८

## तृतीय स्तंभ के मूल

(क) भारत के दूरपूर्वी प्रांत असम में एक समय शास्त्रों का बरगस्त होना था। वहाँ वैष्णव धर्म की शक्ति को बढ़ाने वाले प्रमुखतम भक्त थे चंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव। चंकरदेव ( जन्म मन् १४४६ ) महापुरुषिदा धर्म के प्रवर्तक थे। इन्होंने भगवान् ब्रह्मदेव की रूप-माधुरी और उनके प्रति भक्तिभाव के सरस पद मिल हैं जिसका मीरों के पदों से तुलना की जा सकती है। रामचरित के भक्तजन्य पर कई एक पादा पादाओं ( गानों ) का भी इन्होंने लिखा है। इनका दीक्षाग्रह है 'भारत' मज्जिमार्ग श्रीहृत्पुत्र पुरुषोत्तम पर इन्होंने मीरों की तरह माधुर्य भाव का नहीं धारण किया। भक्ति के प्रति विराग-भाव नहीं था। अतएव मीरों की भक्ति की रमणीयता तथा वैमल्यभावता इनमें नहीं है। दूसरे य भक्त-माधव थे। इनका महान् भक्त भक्ति प्रवर्तक श्री साधना के व्यवस्थापक ताना रूप में है। मीरों का जीवन एकनाथ भक्तियों का बार प्रतिमा का जीवन था।

(ख) बंगाल में भक्ति के आधोभन का भेद सहजिया वैष्णव तथा वैष्णव और उनके शिष्यों को है। सहजिया वैष्णव मत पर सहजियानियों का पर्याप्त प्रभाव है मीरों इसमें मुक्त हैं। सहजिया स्त्री भक्त स भक्तान की आराधना करते हैं मीरों में यह भाव मिश्रित ही नहीं सहज था। सहजिया मार्ग रम-मार्ग है काम-मार्ग नहीं। मीरों की साधना में काम का उभयपक्ष इस सीमा तक हो गया था कि वह पूर्णतः आध्यात्मिक हो गया था। पर सहजिया-वर्षी वैदिक विधि-विधान के विरोधी हैं क्योंकि वे इसे वैधी भक्ति मानते हैं। इस प्रकार वे दलित मार्ग के नहीं सामान्य के परवर्ती हैं। मीरों नित्य उठकर पूजा-पाठ भी करती थीं। भक्ति में देवा भी उनका नियत काम था। उन्होंने वेदविहित धर्म का कभी विरोध नहीं किया।

(ग) महात्मा के महाभारत पंच ( इस पंचाश में महात्मा पंच और पुरात में महाभारत पंच कहते हैं ) के मूलों और मीरों की भक्ति-भावना में पर्याप्त वैमल्य है। इन पर नाथों के भाव ही भाव इन्मात्र का ही प्रभाव है। भक्ति में पूजा श्रीहृत्पुत्र और इत्यादि स भक्त शिष्यों पर चक्रवर्ती बनवाना—पादि बातें इनमें प्रचलित हैं। अनेक मत को गुरु रंगने की परिपाटी ने उन्हें सबम धर्म रखा है। मीरों में वास्तव मुक्त हृत्पुत्र नहीं है। उन्होंने प्रवृत्ति की भक्ति की थी और वह भक्ति भी प्रवृत्ति ही थी। इस पंच के प्रवर्तक पञ्चपरमहंस नहीं गुरु और प्रवर्तक भी थे। मीरों के तुलना करने



मिया था। सपने में उसे सौँह मिले और उन्होंने विभिन्नपूर्वक विवाह रचाया।<sup>१</sup> मीरा के साथ भी यही हुआ

‘आई म्हाणो गुपचा मां वरण्या दीणानाथ।’ जन्म-जन्म की बासी मीरा की प्रार्थना थी ‘म्हाने भाकर राखो जी।’ आश्रय की भी कामना थी कि सबैव सेविका रहूँ।<sup>२</sup>

पर, मीरा और आश्रय के व्यक्तित्व में अन्तर का जोनों को विभिन्न परिस्थितियों को पार कर भक्त बनी थी। मीरा ने राजकीय बैभव और आर देखा था विवाह और वैभव का सामना किया था अतएव उनके प्रणव में मर्यादा अधिक है। वे तन की उपन को मन की बिरह-भ्रम या हृष्य के संयोगसुख में डूबाये रहीं। आश्रय एक भक्त साधु द्वारा पाशित तथा जीवन के प्रारम्भ से ही भगवत्पति की ओर उनकी परिस्थिति ने उन्हें इतना संकोची नहीं बनाया था। अतएव वे कह देती थी ‘जैस आश्रयों के यत्र में बैवताओं को मत्स्य करके प्रपित की जानेवाली हवि को कोई जंगली स्यार सूँघने लगे जैसे ही बछ्मर, संक्षयर भगवान को मत्स्य कर चमरे हुए मेरे उरोजों को यदि जानवों के उप भोग्य बनाने की चर्चा चमी तो हे मत्स्य। मैं जीवित नहीं रहूँगी।’<sup>३</sup> मीरा इतनी निस्संकोची कहीं नहीं हुई, उनकी प्रणवभावना इतनी प्रफुल्ल और स्बुल्लो ग्बुल्ल नहीं थी कि वे अपने उरोजों की चर्चा कर सकें। प्रियतम घर भा गये बुल-बुल जोकते बिरहणी को पिय मिले हैं, पर मीरा संयोज-मुल्ल का बर्णन रंग-रंग आणंद साजा हो’ कहकर ही कर देती हैं।<sup>४</sup> ही एक पद में मीरा ने ‘राधा का रति के बाह के रूप का बखान किया है, पर वहाँ ‘राधा नाम देकर अपने को लटख बहाक बना रखा है।

भावधारों के परचातु बसिण में आचार्य-युग आता है पर आचार्यों ने इस भक्ति-वर्णन को आरभीय रूप दिया। मीरा भक्त थी आचार्य नहीं। अतएव बसिण के आचार्यों से मीरा की तुलना का कोई प्रयत्न नहीं है।

(१) तमिल और उसका साहित्य पृष्ठ ६३

(२) डाक १ पद ३६

(३) आत्मार सेंदूर स्वामी तिळान्त भारती पृष्ठ ३०

(४) तमिल और उसका साहित्य पृष्ठ ६३

(५) डाकौट, पद ७६

## तृतीय उत्थान के भक्त

(क) भारत के भूपूर्वी प्रांत प्रथम में एक समय शास्त्रों का जबरन केन्द्र था। वहाँ ईश्वर धर्म की श्रुति को दहान नामे प्रमुक्तम भक्त से शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव। शंकरदेव ( जन्म सन् १४४६ ) महापुरुषिया धर्म के प्रवर्तक थे। इन्होंने भगवान् ब्रजनन्दन की रूप-भाबुरी और उनके प्रति भक्तिभाव का सर्वप्रथम पिछे है, जिसकी भीरी के पक्षों से तुलना की जा सकती है। रामचरित के प्रथमखण्ड पर कई एक दावा पामाओं ( नायों ) का भी इन्होंने लिखा है। इनका बीजार्थ है—'शरणां भजनप्राप्य श्रीहृण्ण पुष्पोत्तम पर इन्होंने मोरी की तरह माधुव भाव को नहीं भवनाया शास्त्र-भक्ति के प्रति बिगड़ साधक ग्या। अतएव भीरी की भक्ति की समनगमता तथा प्रेमस्निग्धता इनमें नहीं है। दूसरे, ये भक्त-भाषाये थे। इनका महत्त्व भक्त भक्ति-प्रभावक और साधना के व्यवस्थापक हीनों रूप में है। भीरी का जीवन एकमात्र भक्तिकी साकार प्रतिमा का जीवन था।

(ख) ब्रजाम में भक्ति के आन्दोलन का श्रेय सहजिया ईप्पुबों तथा ईश्वर और उनके शिष्यों को है। सहजिया ईप्पुब मठ पर सहजियानियों का पर्याप्त प्रभाव है भीरी इनमें मुक्त है। सहजिया स्त्री-भाव से भगवान् की आराधना करता है। भीरी में यह भाव सिद्धान्त ही नहीं सहज था। सहजिया मार्ग स्व-भाग है, काम-मार्ग नहीं। भीरी की साधना में स्वयं का उपनयन इस सीमा तक हो गया था कि वह पुरातन आध्यात्मिक हो गया था। पर सहजिया-ईप्पी वैदिक विधि-विधान के विरोधी है क्योंकि वे इस वैधी भक्ति मानते हैं। इस प्रकार वे हलिरा भाव के नहीं ब्रजनाय के पक्षपाती हैं। भीरी नियम उठार पुनः-माठ भी करती थीं। मंदिर में सेवा भी इनका नियत कार्य था। उन्होंने वेदविहित धर्म का कभी विरोध नहीं किया।

(ग) महापुरुष के महानुभाव पंथ ( इस पंथा में ब्रह्मचरि पंथ और वृत्तपंथ में अन्तर्गत पंथ रहते हैं ) के श्रुतों और भीरी की भक्ति-भावना में पर्याप्त वैगम्य है। इन पंथों के साथ ही साथ इन्हीं का भी प्रभाव है। भक्ति न पूजना श्रीहृण्ण और ब्रजानन्द से सबद्ध रीतों पर बहुतरे बनवाना—यादि बातें इनमें प्रचलित हैं। धरन मठ की दृष्ट रत्न की परिचय से उन्हें सर्वप्रथम ग्या है। भीरी में गहन दृष्ट दृष्ट नहीं है। उन्होंने प्रमट का भक्ति की या और वह भक्ति भा प्रमट ही की। इस पंथ के प्रवर्तक अक्षयभक्तही श्रीकृष्ण और प्रभावक भी थे। भीरी में तुलना करने

मोम्य दो व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं एक दामोदर पंडित की पत्नी हिराम्बा का और दूसरा नागदेवाचार्य की शिष्या महान महेशबा का । हिराम्बा ने वैराग्य लेकर पति को भी इस ओर प्रेरित किया था पर उनके जीवन में मीरा की तरह न कोई संन्यास था और न मोक्ष को ब प्रभावित कर सकी । महेशबा का महत्त्व विरोध है पर मीरा के अनुराग को उत्कटता और तन्मयता समझें नहीं भी ।

(घ) बारकरी पंथ के संत मीरा की तरह कृष्णोपासक हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ देवता पंढरीनाथ बालकृष्ण के रूप हैं और वे राम के भी जैसे ही निष्प्रधान उपासक हैं । भक्ति और अद्वैत ज्ञान के सामञ्जस्य के साथ योग मत का प्रभाव भी इन पर है । 'भक्ति ज्ञान' की विमता पक्षा मीरा के पक्षों में नहीं है योग-साधना भी वे नहीं करती । राम की उपासना उन्होंने नहीं की पर उनके प्रति मीरा की निष्ठा वैसी नहीं है, वैसी कृष्ण के प्रति । बारकरी भक्तों के समान ही वे बर्खास्त करने के प्रति विशेष यत्नायु नहीं थीं । मानदेव, नामदेव एकनाथ और तुकाराम जैसे महान संतों द्वारा पोषित इस संप्रदाय में मुक्ताबाई जैसी प्रसिद्ध भारी भक्त भी हुई हैं, पर मोरों के समान प्रणम भाव की भक्ति की सरसता वे उपलब्ध नहीं कर सकीं ।

(ङ) पश्चिम तथा मध्यप्रदेश (गुजरात तथा हिन्दी प्रदेश) के प्रचलित भक्ति सम्प्रदायों में प्रमुखतः संत सूफी, इप्पु भक्त और राम भक्त थे । संतों और सूफियों से मीरा की भक्ति-भावना कहीं तक भेद लाड़ी है, वह दोसे स्पष्ट किया जा चुका है । राम-भक्तों के वर्ग किये जा सकते हैं— (१) मर्यादा मार्गी जिनमें श्रेष्ठतम भक्त थे तुलसीदास और (२) र्थिक भाव के भक्त जिनमें प्रतिमिति रूप में कृष्णवास वपहरि की लिया जा सकता

(१) मर्यादामार्गी वास्य भाव के भक्तवर तुलसी हैं 'पूरन राम मुप्रेम पीमुपा' और 'रामहि केवल प्रेम पियारा' कहकर राम प्रेम के महत्त्व को स्वीकार किया है पर उनका प्रेम ऐश्वर्य के समान 'रामचरन अनुराग' तक सीमित था जबकि मीरा संयोग-वियोग के रस की अधिकारिणी हैं ।

(१) मानस प्रयोगवाक्य, २०७-५, ६

(२) वही १३५-१

(३) विमल पत्रिका पृष्ठ ८२

मीरों की उपासना दिव्य द्वारा आसक्ति राजमार्ग है जिसपर सास्त्र-वर्णित विधि-विधानों की बिठा किये बिना भी चला जा सकता है। तुमसे का पथ 'सुखों' होते हुए भी पथिक द्वारा आचार-सम्बन्धी प्रोत्साहनता की अपेक्षा करता है।

(२) रामायण संप्रदाय में रसिक भाव की भक्ति का उच्च स्तर (महामा बार) के समय तक हो गया था। कृष्णदास पयहारी के समय तक तो यह इतनी विकसित हो चुकी थी कि उमरे बिन्दु के मूल को एकत्र कर एक नयी सामना-पद्धति का रूप दिया जा सकता था।<sup>१</sup> मीरों की भक्ति का साम्य इससे इसी धर्म में है कि उपासना का रूप 'सुगारि' है और वे भाग समयो विस्तृत पद्धति का अनुसरण करते हैं। 'रसिक संतों के अनुसार गायना का पदम मध्य दिव्य सम्पत्ति का सेवा-मूल और युगल-बैधि क साकल्य रस की आस्वादन है।<sup>२</sup> मीरों के आराध्य विरिधर वे राधा-कृष्ण सम्पत्ति नहीं। राधा की आराधना मीरों ने नहीं की। रसिक गायना के विकास की बार दशाओं<sup>३</sup> में से दो तो मीरों में मिलती ही नहीं। वस्तुतः रसिक संग्रहण की परवर्ती सामनापद्धति कृष्ण-भक्ति-पद्धति के अनुसरण पर ही विकसित हुई थी। इससे मीरों की भक्ति के सरस भाव का ही विद्यमान साम्य है।

(३) कृष्ण-मक्त सामान्यतः कृष्ण क रसिक रूप के उपासन के और इन रूप की सीमा का विरोध विस्तार गोपी-कृष्ण सीमा में हुआ है। मुरदासजी का 'आत्मत्व' की मयुराई के प्रति प्रभाव स्नेह है। उनके पुत्र बल्लभाचार्य ने प्रारम्भ में बाल-कृष्ण की आराधना पद्धति ही अपनाई थी। बाद में वात्सामी विद्वत्तनाथ जी ने बिहोर कृष्ण की युगल सीमाओं तथा युगल उपासना का प्रारम्भ किया था। मीरों ने बाल-रूप पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं किया।

(१) रामायण में रसिक संग्रहण पृष्ठ ८८

(२) वही पृष्ठ १७६

(३) आचार्य उपरि धर्मका भाग बता  
सम्बन्ध-सीमा धर्मका बरणा बता  
सादेतनीता-प्रवेश धर्मका प्राप्ति बता  
सीमा-मुक्तधर्म धर्मका प्राप्तिधर्मका बता

ब्रजविहारी योगी-प्रति रूप ही उन्हें विशेष रिझता रहा है। हितहरिचंदी की धाराध्या राधा थीं।<sup>१</sup> राधा और मधुपति का बिहार रस ही हरिबंध का दृष्ट तत्व है। हरिरास की दृष्टि राधा-कृष्ण पर भी और जैसा कि नामाबास की ने कहा है—उमका जुगल नाम से नेहू या घोर के निरूप जुंज बिहारी को मजते। मीरा की दृष्टि राधा पर कदाचित नहीं के बराबर भी ने सीधे राधा-पति की 'मिपट बंकट छवि' में घटकी थीं।

मरसिंह मेहता की भक्ति का स्वरूप सामान्य है। किसी संप्रदाय से विशेष रूप से संबद्ध न होने के कारण उनमें प्रायःपूर्वक कृष्ण के किसी रूप का ग्रहण नहीं था। सब कुछ उठाकर हरि भजन और राधा-कृष्ण की समित भीमा के प्रति अनुराग का भाव इनकी साधना की विशेषता थी। मुजगत के कुछ विद्वानों का मत है कि इनके भीतर भक्ति की ज्वाला भक्त्य मत के प्रभाव से जली थी। मीरा में भी कृष्ण-भीमा के प्रति प्रेम या पर बह भीमा उनके भाव-भोक में कृष्ण-मीरा-भीमा बन गई थी।

इस प्रकार ग्रन्थ दृष्ट्य भक्तों और मीरा में दो बातों का विशेष प्रसर था—

(१) ग्रन्थ भक्त नाम-कृष्ण या राधा-कृष्ण रूप की उपासना विशेष रूप से करते थे पर मीरा के सामने विशेषतः कृष्ण का सुन्दर 'प्रियतम' रूप था।

(२) ग्रन्थ दृष्ट्य-भक्त राधाकृष्ण भीमा के बर्णन से या नाटी-भाव की कल्पना करके उस भीमा के रस का आस्वादन करते थे। मीरा के लिए यह भीमा अपने और भीकृष्ण के वैयक्तिक प्रणय की सहज भीमा थी।

### मीराबाई-संप्रदाय

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिमीज्ड एंड एन्सिक्स' में मीरा-संबन्धी चार उल्लेख हैं। उनमें से एक में कहा गया है कि व्यापक रूप से प्रचलित विशेषकर कारियों में एक और धाराधना-प्रवृत्ति है और वह है बाल-नापान भबवा पितृ कृष्ण की। यह संप्रदाय उत्तर भारत और बर्बाई प्रेसीडेंसी में फैला हुआ है।<sup>१</sup> इसका एक उपसंप्रदाय है जिसे सीमहरी राधाभी में राजपूताना की प्रसिद्ध राज

(१) धीराधा सुपानिधि इमोक ७८।

(२) प्रियतम का 'मल्लिकार्जुन' टीपिक लेख पृष्ठ ५४६ बी, 'एनसाइक्लोपीडिया हिस्टोरिका' में भी इसी आशय का उल्लेख है—  
रेलिंग प्रिंस ६, पृष्ठ २०६

कुमारी और कचियी भीरीबाई ने स्थापित किया। इसमें आराध्य देव हैं इष्ट रणछोड़।

एच० एच० बिस्मन अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दी रिजीस सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज' में इसी धाराय की बात कह चुके हैं। उन्होंने भीरीबाई के अनुत्तर रणछोड़ की पूजा और ब्रह्ममंथप्रदायियों से इनके मौसिक भेद की बात के साथ यह भी कहा है कि 'इन्हें एक धर्म उपमंत्रदाय की अपेक्षा पूजार्थी संप्रदाय का ही एक धर्म माना जा सकता है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि पश्चिमी भारत के धर्तिरिक्त कहीं अन्य स्थानों पर इनके बहुत-से अनुयायी थे। जहाँ बिस्मन मीरा के अनुयायियों को एक स्वतंत्र उपमंत्रदाय के धर्तर्गत रखने से हिचकते हैं, वहाँ बिस्मन काय में इसे बिस्मन के साथ जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार बिस्मन का 'पश्चिमी भारत' बिस्मनतर होकर 'बिस्मनकोप' में घुसने बम्बई प्रदेश (पश्चिमी भारत) और 'उत्तर भारत' में बस गया है।

कम-कम महाराष्ट्र मुजरात और उत्तर भारत में अभी तक 'मीरा-मंत्रदाय' नाम का कोई संप्रदाय नहीं बना। धर्म कोई ऐसा संप्रदाय या उपसंप्रदाय भी प्रचलित नहीं है जिसे अनुयायी मीराबाई का उसकी प्रवृत्ति के रूप में मानते हों प्रथम उन्हें अपनी गुह्यरचना में स्थान देते हों। प्रत्यक्ष बिस्मन का यह कथन स्वीकार नहीं हो सकता।

मीरा का जीवन बल्लुन माधवाधिकार के नाम से युक्त था। उनके सपके में हितहरिबंत व्यास और ब्रह्ममंथ मंत्रदाय के धर्मक साग आए। साधु-जन भी उनसे मिलने आते थे परन्तु किसी मंत्रदाय का भीमा में वे नहीं बैठी किसी दार्शनिक अनुवाद ने उन्हें मतबाला नहीं बनाया।

मीरा अपनी अस्ति भावना में अपनी दृढ़ गई थी कि उनका जीवन इष्टमय हो गया। कोई निरा करे कोई बंधना करे दसही उन्हें चिंता नहीं थी। कोई उनकी बात सुन या न सुने कोई उनके कीर्तन में आए या न आए, उनका पद को गए या न गए, इससे उन्हें कोई मतसब नहीं था। अन्तिम काय में स्वामि-मुखाय के धर्म-समर्पण के गीत गाती थी। मंत्रदाय का प्रवृत्तत्व धर्म लोगों का प्रभावित करने उनके लिए धर्म पर को धर्म के साधनों का ध्याना करने तथा प्रकृत-माचार्य दोनों होने की अपेक्षा लगता है। मीरा के दो बाले बल्लुन नहीं थी मंत्र संप्रदाय बनाने की कल्पना भी उनके लिये स्वाभाविक नहीं थी।

मीरा एक नारी थी और मध्यकाल में शूद्रों और नारियों की क्या हमेशा भी यह किसी से छिपी नहीं है । पति को परमेश्वर माननेवाली घबसा को 'परमेश्वर की पति' मानने का अधिकार भक्ति-साम्प्रदाय के कारण मिला गया था । उत्पत्तीम स्थिति को देखते हुए यह भी एक प्रगतिशील कदम था । 'नारी को साधना की दुर्लभ पाटी माननेवाले और अपने ब्रह्मचर्य के गर्व में 'उसका मुँह तक न देखनेवाले' सामाजिक नेताओं के युग में किसी व्यक्ति के एक नारी के धिप्य होने तथा उससे बीछा देने की बात बहुत स्वाभाविक नहीं लगती । बीछा के बिना धिप्य नहीं बनते और धिप्यों के बिना संप्रदाय नहीं बनते ।

मीरा के विषय में एक व्यापक अनुभूति है —

नाम रहेको नाम से सुनो छपाने लोग ।

मीरा सुत आयी नहीं धिप्य न झुका कोप ।

इस अनुभूति का व्यापक प्रचार है । मागी की अगर कोई सिप्य-परंपरा होती तो इस तरह के वक्तव्य का प्रतिकार अवश्य हुआ जाता । साथ ही मीरा के समस्त पदों के संरक्षण का स्वाधीन साधन होता और मीरा के वर्णन की व्याख्याएँ और टीकाएँ हो गई होती । भ्रम्य भर्ममुख्यों की तरह मीरा की भी भवसागर में पड़े कीबों के उत्पारक के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न होता । मगर वह कुछ नहीं हुआ केवल उनके गीत सूँघते रहे और बनवा उन्हें साबर की बुद्धि से देखती थी ।

कुछ मीरा नाम के ऐसे व्यक्ति भी हो गए हैं जिनका संबंध किसी संप्रदाय से रहा है । प्रणामी संप्रदाय में ही एक मीरा हुई है । बीसनाड़े में उनकी कुछ रचनाओं की भी वर्णा की जाती है । हा सफ़टा है कि मेकठली मीरा से भिन्न ऐसी ही किसी मीरा के संप्रदाय के विषय में विस्तृत न सुना है । श्री सारफ़नाथ भट्टनाथ का अनुमान है कि मीरा साहू भबमेरी जो सूफी संप्रदाय के थे उनकी दरमाह भट्टनाथ के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाने के बाद उनके मुरीद धार्मिक संस्था में पैदा हो गए और सुछी होने के माते सम्भवतः इन मुरीदों ने निर्मूला बद गाए होंगे जो मीरा नाम के साम्य के कारण मीराबाई पदों में भी स्थान पा गए होंगे और विस्तृत के भ्रम का कारण भी हो गए होंगे ।

इस क्षेत्र में इन्धर एक उत्प्रेक्षणीय घटना घटी है। श्री धर्मात्म के एक प्रतिभाधाम्नी विप्लव धीर संवीतकार भक्त श्री विलोपकुमार राय और उनकी विप्लव कुमारी इन्दिरा देवी का कथन है कि उन्हें भीरुबाई का साक्षात्कार हुआ है और प्रायः बकसी आध्यात्मिक विषयों पर निर्देश देने और कभी गीत सिखाने उनके पास प्रस्तुत हो जाती हैं। इन्दिराजी के गीत-संग्रह 'प्रेमांजलि' में 'आयरी से' के अन्तर्वचन श्री राय ने अनेक प्रसंगों में भीरु से मित्र के स्पष्ट उल्लेख किए हैं। उदाहरण के लिए यह उल्लेख दृष्टव्य है—

On 27 10-51 Mira came to me What about R. M and his question I asked. Her answer somewhat startled me and later R. M too She said, But let him know this once and for all that Mira has come to teach you how to worship and not to be worshiped "

भीरु से यह प्रदान करने पर कि 'क्या धारण है' उन्होंने कहा कि 'वे कृष्ण द्वारा प्रेषित हैं और एक ऐसे मित्र के रूप में आती हैं जो भक्ति के विषय में कुछ अधिक जानता है।

इन्दिरा जी के कथनानुसार उनकी तो भीरुजी स्वयं अपने भजन सिखाती हैं और इस प्रकार के भीरु-भक्तों के तीन संकलन प्रमांजलि दीपांजलि और सुधांजलि नाम से प्रकाशित भी हो चुके हैं।

आध्यात्म के प्रति अतिगम्य अज्ञानान्ध शक्तियों के लिए तो इन्दिराजी और श्री राय की बात कोई आश्चर्यजनक सत्य नहीं है। पर, विज्ञान की दृष्टिनिष्ठ दृष्टि उक्त कथनों को इसी रूप और इसी अर्थ में स्वीकार नहीं कर सकती। यह ठीक है कि इन्दिरा जी के गीतों में कृष्ण प्रणय की भावना का बैसा ही स्वर है जैसा कि भीरु के गीतों में। वहीं-वहीं तो भावना ही नहीं गणगणनी तक भीरु की पगबनी की है। 'सगी मैं जाकर निरधर की' किन्तु और बसे रे धनस्याम सखी रे बस नहीं बगचारी' धादि अनेक गीत इस बात के प्रमाण हैं। ( हो

- 
- (१) लगभग सभी गीतों में भीरु की धार या उनका उल्लेख है। उदाहरण के लिए है। दीपांजलि के गीतों की कुछ परिकल्पना यहाँ उद्धृत है—

[ पृष्ठ ३८१ पर देखिए ]



सकता है कि मीरा का नाम भीर छाप देकर भाये जमकर कुछ भक्त इन्हें भी मीरा-प्रभावनी में सम्मिलित करने) पर भाषा-सीसी की दृष्टि से इन्हें मध्ययुगीन मेड़तजी मीरा द्वारा लिखाया गया नहीं कहा जा सकता। सभी मिश्रित खड़ी-बोली मीरा के गए फॉर्म और कहीं-कहीं प्रत्याधुनिक प्रचलित छायापसी इस बात के अवशिष्ट प्रमाण हैं कि इनकी रचयिता मेड़तजी मीरा नहीं स्वयं इन्दिरा जी हैं। हाँ यह सत्य है कि ये मीरा मीरा के पदा के अनुकरण पर भाषा बेस की दशा में गए गए हैं। इनमें से कुछ मीरा सरस और साहित्यिक भी हैं।

कहने का तात्पर्य केवल यही है कि मीरा का कोई संप्रदाय अभी तक नहीं है पर यह सत्य है कि मीरा संप्रदाय की स्थापना होती जा रही है और भावपूर्ण नहीं कि कबीर-पंथ की तरह साम्प्रदायिकता विरोधी मीरा के नाम पर भी धार्मिक पंथ का निर्माण हो जाए।

[ पृष्ठ ३८५ की दोष दिप्यली ]

- (i) मीरा जन्म-जन्म की दासी पापी री धनपाये
  - (ii) मीरा के प्रभु गिरिधर नाथर (१८-१-५७)
  - (iii) कुलमय मंजल कहरा लामर (७-११-५९)
  - (iv) मीरा के हर रोम रोम में मोहन समोयो री (१५-३-५७)
  - (v) मीरा दासी जमकर आई (२५-७-५५) इत्यादि।
- (२) दृष्टव्य है : (१) साधन के बावलो मुझको भी से बलो उस देख जहाँ बसते हैं गोपाल हयारे। (१५-९-५९)
- (२) जा इयाम री कहूँ कि सली हयको सताया न करे।
  - (३) सली यह कौन धाता है कही यह कौन धाता है।
- (सुधाञ्जलि ११०)

भाव-बोध और अनुभूति

मीरा का काव्य परम्परा में सर्वप्रथम सत्य की अनुभूतिमयी बाणी है। कबीर का पौरुष सुनमी का जीवन और मूर की धम्मदृष्टि उसमें नहीं है। फिर भी मानवता की सुषुप्त अनुभूतिमयता के मार्मिक स्वर पर वह अपने दुःख की महत्त्व काव्य बनाना का सपना भी है। दुःख-पुनः के लोक-मानव का प्यार इसका प्रथम प्रमाण है।

मारी की अनुभूति एक विभिन्न स्तर की अनुभूति है। वह बोध-बोध साक्षात्कार से बहुत धीमे क धर्म-साक्षात्कार के स्तर की है। उनमें सत्य का पूरा बोध यह है कि उनका यह 'सत्य' और जीवन परमाणु या परमाणु-जीवी नहीं है। सर्वज्ञ उसे कुछ भी नहीं—लोकानां ज्ञानासीन परमेश्वर के लिए वह (मीरामय रसिक) प्रयत्न ही है। धर्म का वह साध्यात्मिक स्तर उनकी भावना में अव्यक्त होकर नरम सत्य बन गया है।

मीरा के काव्य की धारणा जीवन-मरणात्मा और धम्मदृष्टि की धर्म-साक्षात्कार परंपराओं की धार नहीं नष्ट की। उन्हें जीवन भर संघर्ष करना पड़ा। विवाह के दण्ड से मृत्यु की पट्टी तक लौकिक निम्नताएँ, दुःख और अनिष्टता उनका साथ रहें। साध्यात्मिक दृष्टि से भी विषय उनका साधना का अनिवार्य अंग था। पर, उनमें विरोध का कासाहम नहीं है। निरोध की दृष्टि है। उनका काव्य में भी नहीं धार्मिक और धर्म-साक्षात्कार का गिन्य बीजार नहीं है। सत्य धारणा का पुनर्जन्म स्वर है। लौकिक विषय भी जीवन उनकी भावना में सुप्त-मिलकर प्रमाणमय हो गया।

मीरा का भाव-लोक बनने में दुःख के साथ अनुभूति-साधना-पराधन भक्तों से कुछ भिन्न था। उन्होंने रसिक को देगा रस को नहीं। उनकी दृष्टि नरम पर भी पंच की परवाह उत्थान नहीं की। रिया 'संघटित काव्य' का महारा

नहीं सोचा। ऐसा कि भाचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है उस समय सपुण्यवादी माना पुराणों के मंत्रों में लगे थे, निगमायम-सम्मत पथ की खोज कम रही थी। साधना का राजपथ बन रहा था। मीरा ने केवल मध्य को पहचाना और उस ओर बढ़ गई। यहाँ उनके चरण पड़ते गए, राह बनती गयी—सीधी चरण प्रेम की राह, जो न वर्णन की मुलापेक्षी थी और न किसी सम्प्रदाय की अनुवर्तिनी। इसका एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि उनका समस्त भावलोक आधोपान्त प्रियतम प्रबाल है पंथ वहाँ मौजूद है, नयनम नम्रम्।

मीरा ने सहा अधिक कहा कम है। कल्पयुगध्यापी बिरह को वे एक-एक छिह्ण में सटेते संघम से धारती का दीप संजोती रही हैं। इसलिए उनकी भावामिव्यक्ति में वैविध्य और विस्तार अधिक नहीं है। इस दृष्टि से शायद वे अनुसूति की सीमित पूंजी की ही स्वामिनी हैं पर संवेदना की मौलिकता पतल और गहराई की दृष्टि से गीत की यह खोड़ी सा पूंजी धर्म-वर्णन और काव्य परंपरा से लिए उबार के विद्याम भाव-बीज से अधिक भूष्यवान है।

साधना की ओर उन्मुख होने के क्षण से सिद्धि की बेला तक की धाव्या रिमक यात्रा में मीरा की भावना क्रमशः लौकिक से अलौकिक की ओर बढ़ती गयी जिसमें प्रमुख तीन सोपान थे—प्रथम रोप और कल्याण का द्वितीय दिवस वैज्य और वास्य का और तृतीय प्रेम का।

रूप और जीवन से भरे मीरा के नारी-जीवन की जब बचप्य का अनिष्टाप मिला तो वे विषाद में डूब गईं और उन्होंने अपने को अधिकाधिक गिरिबर की ओर मोड़ने का प्रयास किया। राजकीय रोप और पारिवारिक प्रतिष्ठा ने उनकी यह रोषी प्रियने ही विराग उठे बर्बनाएँ धाई पर मीरा के प्राणों में संघर्ष की अपराजेय शक्ति थी। वे झुकी नहीं। उनमें दुःख और व्यथा के साथ रोप बना। यह रोप जिंदा था। इसका एक रूप था विषयता अन्य उस निर्मम बाल-ध्यात के प्रति जिसने असमय में ही मीरा का छिह्ण

(१) मीरा के काव्य में निम्नांकित भाव-धाराएँ हैं—

(क) लौकिक के प्रति मूलतः वैराग्य और मौखत रोप और कल्याण की

तथा (ख) अलौकिक के प्रति मूलतः प्रेम और मौखत वैज्य तथा वास्य की।

पोछकर उन्हें दुर्भाग्य का भागी बनाया था ।<sup>१</sup> प्रत्यक्ष अविनाशी का सामर्थ्य लेकर उन्होंने इस भौतिक विषयता की इन कास-भ्यास को पराजित करने का प्रयत्न किया था । निर्दय काल के प्रतिरिक्त उनका रोष इस दुष्ट संसार के प्रति भी था जिसने सामाजिक नीति और प्रतिष्ठा के नामपर उनके जीवन बचको बन्दकाटीलें कर दिया और बिप दंकर मारने के कुत्तर रहे । यही नहीं भीरी सामंतीय समाज की उस धम्यामयपूर्ण स्थिति के प्रति भी भय की जिसमें 'मुरख सिंहासन बिराजे और पण्डित दरबार भरे छिन्न हैं ।'<sup>२</sup>

संसार के प्रति रोष के इतने भाव के ऊपर भीरी ने चीख ही बिजब प्रालं कर ली । उन्होंने संसार की घटारता और भयकरता को समझ लिया । और इसलिए इसमें बड़े हुए घात-जीबों के लिए उनके हृदयमें कदवाया बनी । पर, यह भाव क्षणिक क्षीण था । इसके ऊपर बैराग्य छा गया । भीरी का मन संसार से संसार के सुख-दुःख से इसकी माया से हट गया । वे भव सागर और सब के सबों को मूछ बठाकर पल-पल कृष्ण रूप की ओर उन्मुख होन लगीं । इस अनुपप के साथ भीरी को अनेक बार धारण्य की महत्ता और अपनी सपुता का अनुभव हुआ । अतचित् अपनी भौतिक सामर्थ्य के साथ धार्मिकतात्मक साधना की पालि की सीमाओं का आभास भी उन्हें हुआ । अतएव उन्होंने अत्यन्त साठ काठर स्वर में जबतारन 'अबनीठ निवारण' प्रभु से अपनी आज

(१) जब मुहम्मद जिप्पार री सन्नरी होबां हो मिट जाती  
बरन कदुवां अविनाशी म्हां तो काल ब्याक ना लायी ।

× × ×

बली मगम के ह्ये काल देरयो डरी ।

(२) बिध बिधनाटी म्पारी ।

मुरलजन सिंहासन राजां बंदिन छिरता द्वारा,

मदिपो मदिबां निरमस पाछे समुख करपा बल सार ।

(३) सैठाई बीलां बरख बगन बां सैठाई जठि जाती ।

× × ×

यो सैसार बहररी जाती सांघ कदुवा डठ जाती । — डा० पर २

(४) भी लागर बग बंजन भूटां भूटां दुल्ही म्पारी

पल-पल पाछा रूप निहारी निरल निरल मदमानी — डा० पर ४३

रस लेने के लिए प्रार्थना की 'अन्नामिका गजराज भीलनी धादि के उबाहरण देकर गिरपारी की धरण की दुहाई दी और अपनी पीर हर लेने के लिए निवेदन किया।' पर, धीरे-धीरे जग छूटता गया भव-बंधन टूटते गये मीरी में साधनात्म्य विश्वास बढ़ता गया उनकी धार्तभावना बढ़ा और बढ़ा अनुराग में बदल ही गई। यही अनुराग का भाव अन्ततोगत्वा मीरी की समस्त साधना का—उसके भक्त-जीवन और काव्य का—केंद्र बिन्दु बना।

सामान्यतः नारी के कर्तव्य की चरम सीमा उसके प्रेयसी होने में ही समाप्त नहीं होती उस पर मातृत्व का पुनः भार भी पड़ा है। पर, मीरी के लौकिक जीवन में मातृत्व प्रकटित नहीं हो पाया। बचपन की घमेल ने उसे प्रसन्न में ही झुलसा दिया। इसी प्रसन्न प्रणव और प्रकटित मातृत्व के कारण प्राध्यात्मिक क्षेत्र में उनका माधुर्यभाव (रमणीय) लौकिक ठीकठा के साथ उसका वास्तव्यविधि से पर्याप्त नहीं हो पाया।

मीरी का प्रणव भाव प्राध्यात्मिक होते हुए भी लौकिक दृष्टि से स्वाभाविक और सहज है। सामाजिक संबंधों और एक नैतिकता के सबसे बाँधों की उपेक्षा करके नारीत्व के प्राणों में मचलती हुई आत्मसमर्पण की चिरन्तन दुर्लभ कामना ही मीरी के प्रणव का मूल उत्पत्ति है। दुनिया की घाँव बचाकर भी नारी और पुरुष के हृदय का जो वास्तव्य बूझ भाव मानव के समस्त जीवन को परिचित कर रहा है, वही भाव बनकर मीरी की कामना में बसा हुआ है। मीरी का भाव चिरन्तन नारी का चिरन्तन भाव है। बस उसका समर्पन कष्टा है ठीक है, मगर दर्शन की स्वीकृति और समर्पन पर वह पीठित नहीं

(१) छोड़ मत जाग्यो जी महाराज ।

मैंना बबला बन म्हरा गिरपर जे म्हारो सरसाज ।

म्हा गुणहीन गुणपर नापर म्हाहिबडो रो साज ।

जगत्सारु भीभीत निवारण जे राख्या गजराज ।

हारया भीपण साल सावसा कठ जाबो जजराज ।

मीरी जे प्रभु और कां कोई राखा धबरी साज ।

(२) धबलो निभायया बाह पड्यां री साज ।

×

×

×

हरि में हरया बनकी नीर ।

बुझता गजराज राख्या करया कुंजर नीर । —श. १८, १९

है। रामानन्द, मध्य भिम्बार्क धीरे बत्सम न होते तब भी बह होता उसी रूप में होता।

मीरों की भावना गारीत्व के चिरन्तन प्रभाव की भावना है जो पूर्णत्व चाहती है 'पाकर' उध अभिप्रेत नहीं कर सकती तो अपने को समर्पित करके अपने को सोकर, उसे पाना चाहती है उसकी होकर उसे अपनाता चाहती है। जो उनके अधिकार में बँधता नहीं है उसके सामने पराजित होकर उसे उसकी विजय में बाँध देती है।

मीरों धीरे कृष्ण का संभव प्रणय भूषक है। रागव इसलिये कि वह जो ज्ञान के लिए अयम्य है स्वयं प्रेम का मुक्ता है मिथ्या है। बड़े प्रसीम है, पर सीमा से एक हाना चाहता है। मीरों के अपने भाव की साकार मूर्तियाँ-मोपियाँ भी कृष्ण की प्रणयिनी हैं। यह प्रेम कृष्ण के रूप-सीमों और उनकी सीमा की मनोहारिता के कारण जन्मा है। यह में कृष्ण मिसते हैं। उनके पीछे पर मोरमुकुट है माये पर तिमक है जगों में कुहल है और काली धमके घोमिष्ठ है।<sup>१</sup> सुहर बदन है कमल-दल-लोचन है बाकी चितवन है।<sup>२</sup> निपट बाकी छवि पर मयन घटक गये हैं।<sup>३</sup> उस रूप पर मन मुभा गया है।<sup>४</sup> कृष्ण के सौंदर्य का जादू किता मावज है कि जिस दिन से स्याम की मूर्त निहारी है एक चड़ी उसना बिस्मरण नहीं हो सका और ( मीरों ) उसके हाव बिह गयी है।<sup>५</sup> मयन लसक लसक कर झकुसाते हैं पर एक बार बाह्य घटक कर, प्रब लौटते नहीं हैं।<sup>६</sup>

कृष्ण का रूप तो अनूप है ही। उसे देखते ही मुख रुप हुस सोक-साज सब बिस्तर जाती है।<sup>७</sup> मगर उनके पास मनमोहन रूप के अविरल एक और भावमय का मंत्र है और वह है अक्षर पर सजने वाली मुपारम मुरली।<sup>८</sup> स्याम कृष्ण है स्याम कमरिया है, स्याम अमुना का मीर है कृष्ण वहाँ मुरली बजाते हैं।<sup>९</sup> साजन की जब यह मुरली बजती है तो सप्त मुर सहित राम प्रत्यक्ष ताज लगाता है। मानव तो क्या पशु-पक्षी भी माहित हो जाते हैं जब

(१) डा० पद ४

(२) डा० पद ५

(५) डा० पद ८८

(७) डा० पद १३

(८) डा० पद ४६

(२) बि० पद ७

(४) बि० पद ७

(६) बही पद ८७

(९) काशी पद ९४

तुमों की भी यही दशा होती है, मुनियों का ध्यान भी टूट जाता है। उस स्वर को सुनकर गोपी भी उठकर चम देती है।<sup>१</sup>

प्रणय का यह व्यापार एकांगी नहीं है। कृष्ण धाराध्य के महाम मंच पर लड़ धारमसीत बनासक्त गुरसी वादक नहीं हैं। वे गीमते हैं। गिम्भते हैं। वियोग की विकसता में गोपी यह प्रगट कर देती है—साँबरे मारया तीर

री म्हाय पार निकल गया साँबरे मारया तीर।

बचल बिल बस्या ना बसा बाँध्या प्रेम खंजीर।<sup>२</sup>

कृष्ण के रूप और गुण की मनमोहनी शक्ति पहले बनवाने अपना काम करती रही। कदाचित् कुछ छेड़-छाड़ भी हुई होगी मगर मीरा ने इसकी चर्चा नहीं की। बीरे-बीरे जो छवि छाँवों में थी हृदय में उतर गयी। गयनों का आकर्षण मन का बंधन बन गया। तब प्राणों की प्रणय-विकसता संकोच के बाँध को टाँकन लगी बीड़ा के पहरे का प्रभाव कम होने लगा। पहले चर्चा छविओं में बसी फिर मुकजग भी समझ गये उन्होंने हटका मगर दैर हो चुकी थी प्रणयिनी प्रेम क पंच पर इतनी बढ़ गयी थी कि शौटमा संभव नहीं था। छविओं से उसने कहा—

प्रासी री म्हारे नैना बाल पड़ी।

पिल बड़ी म्हारे भागुरी मूरठ हियड़ा बनी गड़ी।<sup>३</sup>

मगर सखी को भेद देने पर भी समाज मन की बिचपटा नहीं समझा तब उसे चिन्ता हुई। इस स्थिति बिगड़ती ( बनती ) गयी। प्रेम की छवि कई बार मटकने से भी नहीं टूटी और मन की बात मन ही नहीं गज-धावक से मत्त-छिन्नित डममगाते डम भी बहने लगे तो उसने स्वयं अपने को समझाया—

भब हो बात वैन गयी जैसे बरछ बट की।

भब तू सोच कव कहि उर छाप लटकी।<sup>४</sup>

और इस प्रकार रूप रस मुग्धा संयोग-सुख के मनोरम भोक में बिचरने लगी।

विगत प्रणय की साधना है संयोग उसकी सिद्धि है। मीरा के काव्य में साधना-परा प्रबल है। सिद्धि के क्षणों में उनकी बाणी प्रायः मौन हो जाती

(१) बिद्या-सभा सं० १६९५, पृष्ठ १ (२) डाकोर, पृष्ठ ७

(३) वही पृष्ठ ६

(४) डाकोर, पृष्ठ १५

(५) बिद्या-सभा पृष्ठ ३

है। फिर भी संयोग की भर्म-कथा बनकही नहीं रही। इस संयोग-जन्म प्रणय भाव के तीन प्रमुख सोपान हैं —

- ( १ ) इष्टि-यश का मिलन-मुक्त ( परिचय और आकर्षण )
- ( २ ) आसा-बीड़ा में संयोग-मुक्त ( आत्मीयता और साहचर्य )
- ( ३ ) एकाग्र संयोग-रस ( तात्पर्य )

प्रणय स्थिति की चर्चा दीखे हो चुकी है। भय के पहरे में नयन-यश का सहज प्रसांस संयोग-मुक्त साहचर्य के सहारे अधिक प्रगाढ़ होता जाता है। होसी का पर्व है। सामाजिक विषमता की ऊबड़लाहड़ भूमि आत्मीयता के रस में डूब गयी है। औपनीच की साम्पनिक दीवारें उड़ गयी हैं। उमाद ने सबको एक स्तर पर ला दिया है। रस के साथ राग की होसी होती है<sup>१</sup> और रस की भरी के साथ संयोग मुक्त बरसता है। यमुना के किनारे इस प्रकार के संयोग के अनेक भवसर आते हैं जहाँ कृष्ण बंधी बजाते और बीड़ा करते हैं।<sup>२</sup>

कृष्ण की यह रसलीला ग्लोसब के समान है जिसमें अनेक गोपियाँ भाग लेती हैं। मगर यह कबल इन्द्रिय-रस की स्वार्थपूरुषीका नहीं है। जन-मुक्त का कारण भी है। सब जानत हैं गोकुल के बामी वास्तव में मन्द और यथोदा के पुष्प से घरा पर प्रवर्तित अविनाशी प्रभु हैं। ब्रजनिताएँ इसी सीमाकारी के संयोग-मुक्त के लिए नाचती गाती ताल बजाती हैंसती और धामन्ति होती हैं।<sup>३</sup>

- (१) रस भरी रास भरी रास सँ भरी री ।  
होसी होसा इषाम रस रस सँ भरी री ॥  
उड़त युताल लास बाहरा रो रस लाल ।  
विचका उड़ावा रस रस री भरी री ।  
बोया बहाल घरावा ग्हाँ केसर भो यागर भरी रो ।  
भीरा बासी गिरघर नागर भरी बहरा भरी री ॥

बासी पर ७३

- (२) बाकीर पर ७
- (३) विद्या-गंगा सं० १६९५, पर १  
बाकीर पर ६२



## एकान्तिक संयोग

मीरा के काव्य में एकांत संयोग के सभुर और मारक बिज भी हैं, जिनमें मीरा के प्रणय भाव का अनिष्टतम रूप व्यक्त होता है। इन बिजों को निम्नलिखित कोटियों में रखा जा सकता है

( क ) मीरा के वैयक्तिक मिशन के बिज—

( ख ) राजा की रति के बिज

मीरा के वैयक्तिक संयोग के बिज वे हैं जिनमें मीरा ने योपी के साथ साक्षात्कार करके या अपनी अनुभूति की बात उत्तम पुरुष में कही है। ऐसे बिज भी प्रायः दो प्रकार के हैं। एक में कृष्ण का सगुण-साकार रूप सब कुछ है, दूसरे में सगुण कृष्ण कहीं-कहीं निर्गुण की मूर्तक भी दिखा जाते हैं। इस परिस्थिति-भेद के कारण घास्य के तत्कालीन भावों में भी भिन्नता रहती है।

मीरा का कथन है साजन म्हारे बर पाया हो।

जुगो जुगो री जोबता दिखन पिय पाया हो।

रसगु करी मेवजाबरा से पारत साजा हो

प्रीतन सया खनिसका म्हारो बरों मेवाया हो।

पिय पाया म्हारे सागरा सन धानस्य सबा हो।

मीरा रे सुख सागरा म्हारे सीध बिराजा हो ॥<sup>१</sup>

यहाँ संयोग की अनुभूति साप्ती पत्नी की अनुभूति है, किशोर कामिनी की नहीं। प्रियतम पर पाये। प्रिया के लिए यही प्रसन्नता की बात है। उसका नारीत्व विभास के पथ का बंचन पथिक नहीं है भवत वह प्रिय के ऐन्द्रिक उपभोग की कामना-कल्पना में नहीं डबती। उसका स्थायत कामना से नहीं भावना (बड़ा और प्रेम की भावना) से करती है। कभी-कभी एतिका-पिरोमणि विनुबन के सुन्दरतम रावों को बजाकर हृत्पत् प्रिया को बुला छेते हैं और दोनों रस धिनु में झकझोरी करते हैं।<sup>२</sup>

मीरा के वैयक्तिक मिशन के कुछ बिजों में निर्गुण-निराकार वादियोंके बाद की हुसकी मूर्तक सी आ गयी क्योंकि वहाँ मीरा ने अपने और प्रियतम के मिशन में परमात्मा और आत्मा के मिशन की और संकेत करके उसे

(१) काशी पद ७९

(२) बिद्या-सभा संवत् १९९५, पद २

प्राध्यात्मिकता के रंग में रंग दिया है।<sup>१</sup> मीरी का एक पद ऐसा भी मिलता है, जिसमें मीरी ने राधा कृष्ण एकान्त रवि क समुभागों का बणन किया है। प्राध्यात्मिकता की दृष्टि से कृष्ण रसेध हैं और गोपिमाँ उनकी आनन्द प्रसारिणी सामर्थ्यशक्तियाँ। मगर लौकिक संयोग की दृष्टि से यह अत्यन्त स्पृश और मांसस संयोग है। यह बिना भी मीरी के काव्य का अपने डंग का अकेला बिज है।

भसी बु बनी बुभान नैनी प्राउ सवि रण जीठे भावे ।  
मुख परे स्वेव असक मट छुनी मधुरी बाल पत्रपति भजावटी ।  
मोहन छैल छबिले नागर मुख ही डोरिया भुनत गावे ।  
बोउ सुमट रणबेल महारम भासित महन ठीर नहि पावे ।  
हरि के नाव सवि सद्य बिराजीत बिन तारबनी हार देखावत ।  
मीरी प्रनु गिरिबर छवि निरखत बन्म कानि रवि जाति भजावत ।<sup>२</sup>

गौड़ीय वैष्णवों ने संयोग के चार प्रकारों का बखन किया है—मंदिण संकीर्ण समुहमान और सम्मन्न। वस्तुतः प्रेमी युगल के संयोग की ये चार अवस्थाएँ चित्ररत्न के चार की चार स्थितियों पर ही आधारित हैं। मंदिण संयोग पूर्वराय के पदवान् प्रेमी युगल का प्रथम भिन्न है। आज के पहले के कारण यह भिन्न मंदिण ही रहता है।<sup>३</sup> मंकीण मंदिण मान के बाँ आता है। मानवान् युग की स्मृति के अवशेष भिन्न के आनन्द को पूरा नहीं होने देता। प्रथम के अनन्तर जो भिन्न होता है, वह अत्यन्त आनन्दमय होने के कारण

### (१) मूँ गिरिबर रैपरीती ।

पहरें बोलत पहरियाँ सक्ति मूँ भुरमह सतन जानी ।  
बाँ भुरम बाँ मित्या लोबरो बैनी तन तन रानी ।  
जिनरो पियाँ परदेन बर्याँ तिन्ननिध भेम्पा पात्री ।  
मूँरा पियाँ मूँरे हीमडे बसताँ ना आचाँ ना जाती ।  
मीरी रै प्रनु गिरिबर नागरं मग बोबाँ दिन रानी ॥

—दादोर, पद १०

(२) बिद्या-सभा संवत् १६९५, पद ४

(३) तनऊ हरि बिनबाँ मूँरी घोर

हम बितबाँ बे बिनबाँ ना हरि हिबड़ो बड़ो बटोर ।

—दादोरी पद ७५

समृद्धिमान कहलाता है। प्रेम-संविज्ञ की वृत्ति के पश्चात् का संयोग सा-  
 से पूर्ण होता है और सम्पन्न संयोग कहलाता है।<sup>१</sup> मीरा के काव्य में सं-  
 के बिना अधिक नहीं हैं। फिर, रसविशेषन की सूक्ष्मताओं पर उन्होंने  
 ध्यान नहीं दिया था। यतः उनमें उदाहरण खोजना कठिन है। हाँ संवि-  
 समृद्धमान और सम्पन्न संयोग के कुछ बिन्दु उनमें मिल जाते हैं।

### वियोग

मीरा के काव्य का विशेष वैभव वियोग व्यञ्जना में है। जैसा कि  
 कहा जा चुका है मीरा का काव्य प्रणय की चिन्ता (संयोग) का नहीं उदा-  
 सावना का वाक्य है और वियोग ही प्रणय-सावना का केन्द्र-बिन्दु

उन्होंने धाँधुओं के जल से ही सींच-सींच कर प्रेम की बेमि बोई।  
 वियोग की निरन्तर चिन्तियों को संयोग की शुभानुभूति से अधिक दुःखकर रस  
 बनम-जमम की इस दरबदिवाभी प्रसूयिणी के चिर सज्जन मननों में जैसे  
 धुम की प्रतीक्षा समा गयी थी और अपने के 'अपनेपन' में जो जाने के लिए  
 उनकी आत्मा छटपट रही थी।

मीरा की आत्मा दीपक की लौ के समान है जो अनन्त प्रकाश में नि-  
 जाने के लिए जल रही है। कभी-कभी यह संतर्मुषी होकर जब अपने भी  
 बलती है, तब उस घन्टरे के कण-कण में ही प्रकाश दिखायी पड़ता है।  
 प्रकाश के प्रतिरिक्त कुछ और है भी नहीं। तब धनायास उसके मुख  
 निकल पड़ता है —

‘जिनरी पिया परदेस बस्या री निजि निख भिजत’ पाठी  
 म्भारा पिया म्भारे हियरे बसता ना पाया ना जाठी।<sup>२</sup>

मगर यह अनुभूति मीरा के काव्य में अपवाद स्वरूप है।

(१) साजग म्भारे घर पाया हो।

जुगा-जुगा री बोलता बिरहिण पिड पायाहो।

—काशी पद ५

(२) रंग भरी राग भरी राग लूँ भरी री।

—वही पद ५

होली जस्या

(३) बाकोर, पद १०

गौड़ीय वैष्णव-रस-शास्त्र के अनुसार विप्रर्षभ की चार अवस्थाएँ होती हैं पूर्वराग यान् प्रम वीचित्र्य तथा प्रवास । पूर्वराग धनुराग की उत्पत्ति से लेकर प्रियतम साक्षात् मिलन (संयोग होने) तक की अवस्था है । यह पूर्वराग चित्र-वर्णन साक्षात् वर्णन या स्वप्न-दशान स हो सकता है या रूप और गुण के प्रसंगसारमक वर्णन के अन्वय से ।

चित्र वर्णन की बात मीरों ने नहीं कही । वज्र-जारी के लिए स्वाम सजोने के साक्षात् वर्णन उपलब्ध थे<sup>१</sup> उसकी सतत् अभिभाषमयी चित्रा स्वप्न के एकात्म सोक में भी उसे कृष्ण से मित्रा होती थी । मीरों का स्वप्न मिलन सामान्य मिलन नहीं है, इसमें परिणय तक हो जाता है ।<sup>२</sup>

कृष्ण के रूप और गुण का आकर्षण तो है ही पर गापियों के मन को विषय कर देता है मुर्खी का स्वर । यह स्वर जमुना के किनारे से आता है और गोपियों के मन को हर लेता है ।<sup>३</sup> इसे सुनने पर ब भीर नहीं बर पाती और वियोग के बादल उरक हृदयाकाश को घेर लेते हैं ।

प्रणय में मान होता है । इसीसे प्रणय की एकरसता टूटती है और आवेग की तीव्रता मिलती है । मान की दशा सकारण भी होती है और अकारण भी । मान का अक्सर चित्र प्रतीया में बैठने वाली मीरों को नहीं मिलता । अगर मान कोई कर रहा है, तो वह भवभावना ही है जिसे भगाने के लिए मीरों सब कुछ करती है । गापी एक अवसर पर हरि से कहती है—कुम

(१) हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृष्ठ ३८२

(२) तारा रूप बैरवां घटबी ।

कुस पुतुम्ब सज्जन सकल बाग बार हटवी । —डाकोट, पृष्ठ ६३

(३) माई ग्हानो गुपणानी वरण्यां बीनानाय ।

दण्ण कोटां जलां पमारयां बूझो निरी बजनाय ।

गुपणां मां तोरण बंध्या री गुनणां मां गह्या हाय ।

गुनणां मां ग्हारो परण गया पायां अकल गुनाय ।

मीरां री विरपर मिहना री पुरब जगय री भाय ॥

—डाकोट, पृष्ठ ३६

(४) मुरनिया बाजां जगना तीर

मुरली ग्हारा मन हर लीओ चित्र घरी मा कोर ।

—काशी, पृष्ठ ९४

तनिक हमारी घोर देखो । हम तो तुम्हारी घोर देखते हैं तुम नहीं दृष्टि फेरते ।<sup>१</sup> इस स्वर की आत्मीयता बताती है कि यह स्थिति संयोग के बाव की है, पूर्ण राग की नहीं । कृष्ण मान किए बैठ है । यहाँ मान का हेतु प्रगट नहीं है पर इतना स्पष्ट है कि कमसे कम भूत और दृष्ट हेतु यहाँ नहीं है, अनुमित हेतु हो सकता है । यह भी सम्भव है कि यह मान निर्हेतु ही हो । जब प्रभु सीसा के लिए सीसा कर सकते हैं तो मान के लिए मान करना अस्वाभाविक नहीं है ।

### प्रेम-वैचित्त्य

वियोग में प्रेम के कारण चित्त की दशा जब अनुरागमयी होती है तब विप्रसन्न भृंगार का रूप प्रेम-वैचित्त्य कहा जाता है । यह अनुराग-दशा तीन प्रकार की होती है —

(क) वपानुराग—प्रियतम के रूप में अनुराग

(ख) आसपानुराग—अनुराग में प्रियतम या प्रियतम की वस्तुओं प्राप्ति पर आसोप करना

(ग) रसोद्वार—बीठी रस-सीसा की स्मृति

वियोग की वपानुराग दशा के मीरा के काव्य में अनेक स्वप्न हैं ।<sup>२</sup> उन्होंने आसोप कहा किम । दोष देना उनके स्वभाव के चिह्न था । न उन्होंने मुष्णी को बैरिन कहा न किसी के प्रति सपत्नीत्व का भाव प्रदर्शित किया । कृष्ण को उपालम्भ भी नहीं दिये । अपनी सारी पीर का समेट कर बस इतना कहा— तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है ।<sup>३</sup> प्रेम-वैचित्त्य की रसोद्वार दशा भी मीरा

(१) तनिक हुरि चितवां न्हारी घोर ।

हम चितवां बे चितवां ना हुरि हियको बड़ो कठोर ।

न्हारी आसा चितबण भारी घोर ना बूझा घोर ।

उदयां ठाढ़ा घरण कहे छूँ करतां करतां घोर ।

मीरा से प्रभु हुरि अभिनासी देख्युं प्राण अँकोर ॥

—काशी पद ७५

(२) स्यामज बदन कमल दल लोचनां नीलाम्बर पदधारो ।

मोर मुगत नकरहुत-हुँडस काया मुरली बारो ।

×

×

×

मीरा से प्रभु विरधर नामर बे न्हार प्राण अपारो ॥

(३) काशी पद ७५

में नहीं है। उनकी दृष्टि चागे बैसती है। प्रिय के धाने की प्रतीक्षा की विकसता केकर के पंथ पर खड़ी है।

मीरा की भावना में निराशा नहीं है निष्क्रिय विपाद की विचिन्तता भी नहीं है। घटएव घटीत की समीक्षा की मधुर स्मृति में अपना मन बुझाने की बजाय सजग प्रतीक्षा में पलकें खोलकर बैठना उन्हें पसन्द है। वे प्रसन्न मयी नहीं फिर मज्ज साबिका हैं। उनका दुख में पराजय की घृण भी निपटा नहीं है। प्राचीन रमाधमार उनमें केवल इतना है कि वतमान की अभावमय विकसता से घटीत की भावमयी सरसता की व्यञ्जना हुआ जाती है। सत्य यह है कि उन्होंने उस को भी नहीं देखा है सदा रुचि या रस को देखती रही है।

### प्रवास

प्रियतम जब प्रिया के पास नहीं रहे जाता तब विप्रर्णव की प्रवास बसा होती है। मीरा के इस संबंध में दो प्रकार के बक्तव्य हैं। एक के अनुसार उनका प्रियतम उनके हृदय में बसा हुआ है न वह जाता है न जाता है।<sup>१</sup> वे निरप्य उसके दर्शन पाती हैं। ऐसी स्थिति में प्रवास का प्रश्न ही नहीं आता। दूसरे प्रकार के बक्तव्य प्रिय के प्रिय से दूर रहने के कारण हैं।<sup>२</sup> यह प्रवास भी दो प्रकार का है—

- ( १ ) दूर—जब प्रिय दूर हों पर प्रसंग होने की अनुमति होती रहे जैसे कालीय वन में
- ( २ ) दूर—जब प्रिय नहीं बहुत दूर हों। रम के पंडितों के इनके भी तीन भव कर दिये हैं—मूठ ( व्योम )

( १ ) म्हारो प्रीतम हिरवा बसता बरस लहना मुतरासी ।

—काशी पर ९५

जिनरो पिया परस बसा रो तिलमिल भोग्या पानी ।

म्हारा पिया म्हारे हीयरे बसता ना आना ना जाती ॥

—ठाकोट, पर १०

( २ ) (क) पिया बिग मुनी छ म्हारो हैम । —ठाकोट पर ५३

(ख) मुष्पा रो म्हारे हरि घावांवा घाव । —वही पर ४५

(ग) लहना बीयरा जायां कब मिलिया बीपानाव ।

—काशी पर ८१

(घ) सरी बरी नींद नमानो हो ।

भजन ( यत्मान ) तथा  
भाविन ( भावे ध्यानवासा )

मीरा ने कासियन्मम का उल्लेख किया है पर उसमें कृष्ण की असीम सामर्थ्य की ओर विरवासपूर्वक संकेत है जिससे बिरह नहीं कृष्ण की सन्ति के प्रति आत्मा जागती है ।<sup>१</sup> मगर कई अन्य भाविक प्रसंग इस भङ्गुर प्रवास के हैं । एक दिन की बात है प्रियतम की प्रतीक्षा में प्रिया उठी समय सो जाती है जब वह आता है । दोनों पास हैं पर नींद की दीवार ने उन्हें प्रलय कर रखा है ।<sup>२</sup> कृष्ण मीरा या गोपियों से दूर नहीं नहीं पड़े । ह्रिवी में कृष्ण के दूर प्रवास के बिना प्रायः व्यर्थुक्ति पर आधारित हैं । मीरा में इस 'प्रवास' का विवरण-वर्णन नहीं है । कहीं-कहीं उनकी दीर्घ प्रतीक्षा से कृष्ण के दूर जाने का संकेत मिलता है पर उनसे केवल इसी बात की व्यञ्जना नहीं होती । अतः निरवधारक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

बिरह की दशाएँ काव्यशास्त्रियों ने विमोघ की दस दशाओं का उल्लेख किया है—धमिलापा चिन्ता मुख कथन स्मृति उद्बेग प्रसाप उन्माद व्याधि, अकृता और मरण । इन दश अवस्थाओं से भिन्न-भिन्न प्रवास बिरह की दश स्थितियाँ काव्य-शास्त्र में और बतायी गयी हैं—असौष्ठव अथवा मतिनता उन्माद पाप्मता अथवा भ्रष्टता कृषता अथवा अशुति अथवा चित्त की अस्थिरता विवक्षता अथवा अनापसंब तन्मयता उन्माद तथा मूर्छा गौडीय संप्रदाय के भक्ति-रस विवेचक रूपमोत्सामी ने भी बिरह की दस दशाओं का उल्लेख किया है—चिन्ता जागृम उद्बेग तन्मयता मतिनता प्रसाप व्याधि उन्माद माह तथा मृत्यु ( दशमीदशा ) । इनमें से ६ दशाएँ तो वही हैं जो काव्यशास्त्रियों ने बतायी हैं ।

वस्तुतः उक्त विवेचन अपने सामान्य और मोटे रूप में ही ठीक है । यह आवश्यक नहीं कि बिरह में उक्त समस्त दशाएँ हों ही और न यही कहा जा सकता है कि उक्त दश दशाओं में कोई एक या अनेक दशाएँ अपने धर्मिभित रूप में होती हैं ऐसी दशा भी हो सकती है । जो चिन्ता और उद्बेग के बीच की

(१) डाकोट, पृष्ठ ३२

(२) अक्षिता मम रज भीता दिवस भीता जोय ।

हरि पयारा प्रांगण गया हूँ अभावित सोय ।

हो। इसी प्रकार बिम्बा में होकर दिवास्वप्न की स्थिति भी हो सकती है जिसका उत्प्रेक्ष्य ऊपर नहीं नहीं है। दिवा-स्वप्न स्मृति और बिम्बा से ही निम्न नहीं है, अभिभाषा से भी निम्न है।

मीरों के काव्य में उक्त अनुरूप दशाधों के चित्र मिल जाते हैं। एक बात इस विषय में उत्प्रेक्षनीय है कि मीरों का विषय धानन्द की मजब साधना है, वह विचित्र अनुभूति नहीं है। बात उनका विषय प्रसाप उम्माद व्याधि बढ़ता और मरण की दशाधों तक नहीं पहुँचता। उनमें अभिभाषा बिम्बा गुणरूपन स्मृति और उद्बोध का प्राधिक्य है। रूपगान्धारी द्वारा उल्लिखित समस्त धनस्वाधों का उनका काव्य में अभिव्यक्ति नहीं मिली है। मृत्यु, प्रसाप आदि तो मीरों में विमलुप्त नहीं हैं। जो हैं, उनमें से कुछ के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(१) अभिभाषा—जग मा बीबट बोड़ा कुणै सया भवभार ।

मात पिता जय जनम इपारी करम इपा करतार

जाया करवा बीबल जाया काई कर्यों उपकार ।

साया समय हरियुल गायी और ना म्हारी मार ।

मीरों दे प्रभु गिरधर नामर से बड़ उतराय पार ॥१॥

—बासी पर ८४

उद्बोध — कजरी बब मिलाया विवम्हारी ।

करम कबल गिरधर गुप्त बैस्या रास्या प्रेता नरी ।

गिरसा म्हारो जाब घलेरो मुपका बैस्या पारी

व्याकुल प्राण कराय ना बीरज बब हरया म्हां पोर ।

मीरों दे प्रभु गिरधर नामर से दिन तराय जनरा ॥२॥

—बासी ९७

गुणरूपन—ये बिना म्हारे कोरा सहर से गोबरधन गिरधारी ।

ओर मुपट पीतांबर धोमा कुँहलरी एबि प्यारी ।

भरी सभा मा प्रपद मुनारी राण्या सात्र मुरारी ।

मीरों दे प्रभु गिरधर नामर करत कबल बनहरा ॥३॥

—हाथी पर ४२

आगरा—प्यारे बरमान बीन्नी धाय से बिभा रह्या न जाय ।

जल बिना कबल बंद बिना रजली से बिना बीबध

जाय ।



## मीरों की रहस्य-भावना :

‘रहस्य’ शब्द अत्यंत प्राचीन है पर ध्यान हिन्दी में जिस रहस्य भावना और रहस्यवाद की जन्म होती है वह धर्म की दृष्टि से दौंगरेजी में मिस्टीसिज्म का पर्याय है। mystic शब्द ग्रीक *mysto* शब्द से बना है जिसका धर्म है ‘अंधार और धार्मिक बंध करना’। बाद में यह जीवन और मृत्यु की गहराई के अन्तर्गत लोगों को समझने वाले के धर्म में प्रयुक्त होने लगा और धर्म विकास की नयी यात्रा में रहस्यवाद परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिलन के परम पवित्र ध्यान को उपलब्ध करने के मानवी मन के प्रयत्न के धर्म से विमुक्ति हो गया। हिन्दी में इसी धर्म को लेकर ‘रहस्य’ की व्याख्याएं हुईं और इसे सामी या वैदिक भावना सिद्ध करने के प्रयास हुए।

प्रचलित धर्म में रहस्यवाद की दो अभिव्यक्तियाँ विद्यमान हैं।

( १ ) धार्मिक निराकार धर्मिक निस्सीम तत्त्व।

( २ ) इस तत्त्व ( सत्ता ) के प्रति प्रणय का भाव।

मीरों में प्रणय का भाव तो है ही पर उनके प्रणय-भाव के धार्मिक सगुण-साकार गिरिधर गोपास हैं जिन्होंने जब में अवतार लेकर अनेक लीलाएं की थीं। अतएव इस प्रचलित एक धर्म में रहस्य भावना मीरों में भूमित नहीं है।

भक्तिवादी धर्मों में वही ब्रह्म के सकल कल्याण गुण-विधान साकार रूप ( ईश्वर रूप ) की प्रतिष्ठा है वही उसके अनन्त प्रसीम सर्वव्यापी रूप की भी स्वीकृति है। भक्त भी भगवान् के सगुण रूप के प्रति प्रतिष्ठित अनुदास

[ पृष्ठ ४०१ का अन्त ]

प्राकृत व्याकुल रेल बिहावी बिच्छू कलेजी काय ।  
 दिवस ना मुख निबारा रैन मुखसू कट्या ना काय ।  
 कोल सुयो बामू कहिया री मिल दिय तपल बुझाय ।  
 बरू तरदावा अम्बरजामी काय मिली बुझ जाय ।  
 मीरों वाली जनम जनम री पारी नेह रुपाय ॥४॥

—काशी पृष्ठ ९०

रखते हुए उसकी समीप निराकार सत्ता को जानता-मानता है। इस 'रूप रेत पुन जाति पुगत बिन' निराकार सत्ता को मूर ही नहीं मानते वे तुलसी भी 'राम सिमा' के सर्वव्यापी रूप की ओर संकेत करके इस विषय में अपनी माम्यता की अभिव्यक्ति कर चुके हैं। मीरों भी अपने धाराध्य के उस सर्वमय और सर्वोत्तीत रूप को पहचानती थीं। इस बात को उन्होंने मही मुमामा कि जो उनके मानस में प्रणय का धारणन बनकर सीमा कर रहा है जिसकी धाराधना के बीच बनकर वे स्वयं गूँज रही हैं उसका एक अगम्य और अनिर्बचीन रूप ( परा ) भी है, जिसे वेद पुराण भी नहीं व्यक्त कर सके।<sup>१</sup> जब मीरों हम अगम्य के लोक की चर्चा करती हैं तो उनकी भावना रहस्योन्मुख हा जाती है। उन्होंने कहा है

जहाँ अगम का वेद बात देख्यां कर।  
भरा प्रेम रं होज हंघ केनां कर।  
साया सन्त रा रांग म्याण जुगठां कर।  
घर साबरो ध्यान बित सबसा कर।  
सीम भुबरा बांध सोख निरठां कर।  
साया सोल घिमार सोला रो रागड़ा।  
मांभमया धू प्रीत और धू धागड़ा ॥<sup>२</sup>

पर संतों से मीरों की रहस्यानुभूति उस बात में भिन्न है कि जहाँ वे (संत) 'निर्गुण निराकार को ही एक मात्र परम सत्य कहते हैं मीरों उसे अपने समुल सुन्दर 'रूप' के सीमा-साक का विस्तार मात्र मानती हैं। साबितिया उनके नयनों के सामने मोर मुबुट धारण करके या जाता है वह उनका रम-रम है श्रेष्ठ सीमाकारी रूप है पर कोई वह न समझे कि योग-मुबुट उसकी सीमा है, ब्रह्मीता के बाहर वह है ही नहीं। अतः उसक उस चिरट रूप का संकेत भी मीरों कर देती जिसके कारणों पर ब्रह्माण्ड भेदता है।<sup>३</sup> उस अमयीमी रूप

(१) चिरक बलमला गलता ना जाला बाकी वेद पुराण

(२) काशी, पद ७१

—डाबोर पद ३१

(३) मन में बरत हरि दे करण ।

मुमग सीतल कंबल कोयल जयत जवाला-हरण ।

हाल करण ब्रह्मांड भेटयां नलतिनां निरि करण ।

—डाबोर, पद १४

हाल करण कालियां नाथनी गोबनीता करण ।

का भी सम्बन्ध कर देती है, जो उसके घन्टार में बसा हुआ है।' इस प्रकार मीरी की यह रहस्य भावना उनकी समुल्ल भावना का ही एक विस्तार है। जैसे घन्टारी कुण्ड के बजवासी मधुर रूप के प्रिय होते हुए भी उन्होंने उनके मधुरवासी वसन्तमन रूप की ओर भी संबन्ध कर दिया है उसी प्रकार उसके निर्गुण निपकार घसीम 'हरि घबिनासी' रूप की ओर भी संबन्ध है। यह करना न दुसरी मूके हैं और न सूर।

'रहस्य' जिस 'रहस्य' शब्द से बना है उसके अर्थ हैं—गुप्त मेघ, घात स्वयं सीसा पृथक्त्व और एकान्त स्थान। मीरी की भावना रहस्योन्मुख इस अर्थ में भी है कि उन्होंने अपने घन्टजगत के एकान्त में धामन्दमय सीसा के पृथक्त्व का रसास्वादन किया है। यह सीसा उनके घन्टारतन में निरन्तर बज रही है बज जमुना सब बही है।

वे कहती हैं

मुसिया बाजा जमुना तीर।

मुरली न्हारो मन हर नीन्हो बित बरों ना पीर।

स्याम कनैया स्याम कमरवां स्याम जमल रो पीर।

भुल मुरली भुल भुल भुल बिछरी बरबर न्हारो शरीर।

मीरी रे प्रभु बिरबर नायर बेग हरयां न्हार पीर।

सामान्यतः इस पद्य को समुल्ल साकार की बज-सीसा का पद माना जाता है, पर एक प्रश्न है। 'मुरली के स्वरों की यह सीसा कहाँ हो रही है? स्पष्टतः इस सीसा का स्नेह मीरी का भाव-व्यस है और दिव-वास की सीसा के से मुक्त चिरन्तन प्रभु अस्तिक रूप में मीरी की आत्मा में प्रथमवी सीसा के लिए प्रवर्तित हो गया है। यही मीरी और प्रथम समुल्ल भक्तों की भावना में तनिक भिन्न है। जहाँ सूर यादव राधा-कृष्ण की सीसा के दमन-रस से तृप्त है जहाँ तुमसी राम-सिया की मीठी की सीमाव्य मानते हैं वहाँ मयुरागिनी मीरी स्वयं उध सीसा में भाग लेने वाली एक पात्र है। इस प्रकार

(१) न्हारा तांबरो बजवासी।

बरल करवां घबिनासी न्हारो काम व्याल ना बासी।

न्हारो प्रीतम हिरवां बजतीं बरल सहरां गुल रासी।

मीरी रे प्रभु हरि घबिनासी सरल सहरां ये बासी ॥

—काटी, पद ९५

मीरा की यह भावना निर्गुणियों और सगुण भक्तों की सामान्य भाव भूमि के मध्य की है। एक ओर निर्गुणियों की तरह उनकी आत्मा प्रेमरस सीता में स्वयं भाग लेती है, बर्तक लेती आस्वादि नहीं है। दूसरी ओर उनको यह सीता सगुण-साकार मनमोहन की सीमा है (निराकार धनस्त उसका विस्तार है) गगन की गुफा के बिना रात्रि से मुक्त उदय-अस्त-हीन लोक में कोई निर्गुण तत्व की कल्पना नहीं है।

निर्गुण-भक्त बिना बाती बिना तेल के दीप के प्रकाश में पारब्रह्म के जिस खेल की खोज करता है, वह मुसल सगुण भक्तों की 'हरिसीता' के विरोध में नहीं है। डॉ० मुरारिचरण धर्म ने सब पुराण सत्र और धार्मिक विज्ञान के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला है कि 'हरिसीता आत्म-प्राप्ति की विभिन्न प्रीति-प्रतीक है'।<sup>१</sup> यथा कृष्ण गोपी आदि सब धन्तःशक्तियों के प्रतीक हैं। डॉ० हबायप्रसाद त्रिपाठी के अध्ययन का निष्कर्ष है कि 'एक ही बाली बाली का केंद्र-बिन्दु वह वस्तु है जिसे भक्ति-साहित्य में सीता कहते हैं। यद्यपि रहस्यवादी भक्तों की भाँति वह सब पर भगवान का नाम लेकर भाव-बिह्वल नहीं हो जाता परन्तु वह मुसल है भक्त ही। ये भगवान भगवत् प्रेमोत्तर तो हैं ही बाती और तेल भी प्रतीक हैं फिर भी रहस्यवादी यदि उनका प्रतिबिम्ब प्रतिफल देखता रहता है तब तो वे जो कुछ घट रहा है और घटना सम्भव है वह सब उस प्रेममय की सीता है भगवान के साथ यह निरन्तर ध्यान वाली प्रेम के ही रहस्यवादी कविता का केंद्र बिन्दु है।<sup>२</sup> यद्यपि मीरा की प्रेम-भावना में 'सीता' के रूप निर्गुण-निराकार तत्त्व एक ओर बदाबिन्दु जल में भी प्रसारित भगवत् रूप का स्फूर्ण हाना सम्भावित नहीं है। आध्यात्मिक यज्ञ में विनाश करने वाले की दृष्टि से यह यथार्थ है भगवत् है। पश्चिम के विद्वानों के अनुसरण पर हम 'मिस्टिफिग' या रहस्यवादी कहना अनुचित है। यह वेद-रहस्य (ध्यान-रम्य सीता) है और मीरा की भक्ति-भावना में अभी 'रहस्य' का स्वर है।

(१) बाली वह १४

(२) भारतीय साधना और मुरारिचरण धर्म पृष्ठ ५०८

(३) साहित्य का साधना पृष्ठ ६४

मीरा ने अनुप्रास के समूहों को सरस ध्वनि ही नहीं सरस स्वर भी दिए। सामान्य छंद का सहारा उन्होंने नहीं लिया क्योंकि छंद कविता को जम तो दे सकता है राग नहीं या एकमात्र संगीत की सिद्धि है और इसमें संदेह नहीं कि सुप्रसक्त राग व्यक्तित्व को सबसे ही नहीं उसके प्रभाव को व्यापक भी बनाता है। कदाचित् इसीलिए अपने युग के सम्य महान भक्तों की तरह उन्होंने भी आत्मव्यक्ति के माध्यम के रूप में 'बैम पर' को चुना जो साहित्य और संगीत की मिलन-भूमि पर जन्मा काव्य-रूप है और जिसमें भावधर्मी सत्य-वाक्य संगीत के स्वर-विधान में आकार ग्रहण करती है। मीरा का यह सौभाग्य था कि उन्हें पर की कई कलाकृतियों की विकसित परंपरा का उत्तराधिकार अनायास ही मिल गया।

मनेक भारतीय विद्याओं के समान संगीत-शास्त्र का मूल स्रोत भी वेद ही माना जाता है।<sup>१</sup> सामवेद जिन दो भागों में विभाजित है उन्हें पुरांचिक और उत्तरांचिक की संज्ञा दी गई है। इस पुरांचिक सत्य का धर्म ही है— 'श्रेय मनों का सपह'। वेद में उदात्त अनुदात्त और स्थिति के तीन स्वर मिलते हैं। ऋग वेदिकाव्य में प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ स्वरों का वर्णन है। भारतीय धिशा के अनुसार संगीत के सात स्वर साजपान के स्वरों के स्वान्तर हैं। पर वह सब होते हुए भी सत्य यह है कि वैदिक साहित्य में अभ्यकामीन संगीत के मुख्याधार राग का उस धर्म में प्रयोग नहीं मिलता जिसमें वह परकी संगीत शास्त्र में प्रयुक्त हुआ।

संगीत शास्त्र के प्रथम ज्ञात आचार्य बल्लभ मुनि माने जाते हैं,<sup>२</sup> जो ऋग के पूर्ववर्ती थे। उन्होंने सर्वप्रथम आदी अनुदासी तथा विषादी स्वरों की

(१) नाट्यशास्त्र १.११ संगीत मकरंद १.१८

(२) बल्लभ मुनि के व्यवस्थाप तथा काक के संबंध में मतभेद है।

प्राचीन परंपरा उन्हें संगीत तथा नाट्यशास्त्र की जन्मदाता

[ पृष्ठ ४०७ पर देखिए ]

परिभाषा तथा जातियों और सप्त स्वरों का सक्षिप्त विवेचन और स्वर-संख्या के आधार पर 'घोड़क पाड़क तथा सम्पूर्ण' वर्गों में रागों का विभाजन प्रस्तुत किया भारत में दक्षिण के अनुकरण पर पर अधिक विस्तार से 'जाति' के अनुसार रागों का वर्गीकरण किया पर इनकी एक मौलिक उद्भावना की 'जातियों' का रस और भावों से सम्बन्ध स्थापित करना।<sup>१</sup> भारत के परचातु हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में छ ग्राम रागों का उल्लेख है और कहा गया है कि 'श्रीम जाति की स्त्रियों ने देवधार राग में जातिवद-गीत गाए'।<sup>२</sup>

ग्राम-रागों के प्रचलन की एक और परंपरा के अस्तित्व का प्रमाण दक्षिण भारत में कुदुमियमाल इ अभिलेख में मिलता है, जिसके अक्षर ७वीं सदी के हैं। इसमें यद्यपि परंपरागत रीति से नामोल्लेख नहीं है पर सप्त रागों को 'नोटेयन' अर्थात् मध्यम ग्राम पञ्चग्राम साधारण पंचकाम कैथिक मध्यम कैथिक के रूप में प्रस्तुत किया है, जो भारत-मिशा के ग्रामरागों से मिलते प्रतीत होते हैं। नामग्री परंपरा की दृष्टि से यह अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके संभावक श्री पी० चार० अक्षरकर का तर्क यह है कि ये सप्तराग नाट्यशास्त्र से निम्न किमी अन्य परंपरा के हैं।<sup>३</sup> यहाँ पंचतंत्र का उल्लेख भी अप्रामाणिक न होगा जिसकी एक कथा इस सम्बन्ध में मनोरंजक

---

पंचमरतों (नंदी कोहल दक्षिण, भारत तथा वर्णव) में से एक मानती है। इपर विद्वानों का मत है कि ये कोहल के सम-कालीन और भारत के पूर्ववर्ती थे। —V V Narasingha-charya — The early writers on music (The Journal of the music Academy, Madras October 1930 pp 259)

(१) अध्याय २९

(२) अध्याय ८९, ८२, ८३

(३) "It is clear that the Seven rags of this inscription did not exist in the time of Bharatiya—Natyā—Shastra When they came into existence is not known the present inscription being the earliest record"—Kudumiyamalai Inscription of Music Epigraphia India Vol. XII 1914 pp 266

मीरा ने अनुप्रास के अप्रुथ्य शब्दों को सरस शब्द ही नहीं सरस स्वर भी दिए। सामान्य छंद का सहारा उन्होंने नहीं लिया क्योंकि छंद कविता को मय तो दे सकता है रास नहीं जो एकमात्र संगीत की सिद्धि है और इसमें संदेह नहीं कि सुप्रसक्त राग अभिव्यक्ति को सबल ही नहीं उसके प्रभाव को व्यापक भी बनाता है। कदाचित् इसीलिये अपने युग के श्रेष्ठ महान मूर्तों की तरह उन्होंने भी आत्मामिव्यक्ति के माध्यम के रूप में 'मेव पद' को चुना, जो साहित्य और संगीत की मिलन-भूमि पर जगमा काव्य-रस है और जिसमें भावबर्मी शब्द-साधना संगीत के स्वर-विधान में आकार ग्रहण करती है। मीरा का यह सीमाप्य था कि उन्हें कद की कई शवाब्धियों को विकसित परंपरा का उत्तराधिकार बनाया ही मिला पया।

अनेक भारतीय विद्याओं ने समान संगीत-शास्त्र का मूल स्रोत भी देना ही माना जाता है।<sup>१</sup> सामवेद जिन दो भागों में विभाजित है उन्हें पूर्वाचिक और उत्तराचिक की संज्ञा दी गई है। इस प्राचिक सभ्य का अर्थ ही है— 'मेव मर्तो का सवह'। वेद में पद्यात्त अनुदात्त और स्वरित ये तीन स्वर मिलते हैं। ऋग प्रातिशाख्य में प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ स्वरों का वर्णन है। गार्गीय धिया के अनुसार संगीत के सात स्वर सामान्य के स्वरों के समान्तर हैं। पर वह सब होते हुए भी सरय यह है कि वैदिक साहित्य में मध्यकासीन संदीप्त के मुख्याधार राग का उस अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता जिसमें वह परबर्ती संगीत शास्त्र में प्रयुक्त हुआ।

संगीत शास्त्र के प्रथम ज्ञात आचार्य बलिल मुनि माने जाते हैं<sup>२</sup> जो भरत के पूर्ववर्ती थे। उन्होंने सर्वप्रथम बाही अनुबाही तथा बिबाही स्वरों की

(१) गार्गीयशास्त्र १११ संगीत जकरंद ११८

(२) बलिल मुनि के व्यक्तित्व तथा काल के संबंध में मतभेद है।

मागीय परंपरा उन्हें संगीत तथा गार्गीयशास्त्र के जन्मदाता

[ पृष्ठ ४०७ पर देखिए ]

परिभाषा तथा जातियों और सप्त स्वरों का संक्षिप्त विवेचन और स्वर-संख्या के आधार पर 'श्रीरक्ष पादप तथा सम्पूर्ण' वर्णों में रागों का विभाजन प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण के अनुकरण पर, पर अधिक विस्तार से 'जाति' के अनुसार रागों का वर्गीकरण किया पर इनकी एक मौखिक उद्भावना थी 'जातियों' का रस और भावों से सम्बन्ध स्थापित करना।<sup>१</sup> भरत के पञ्चाद्वैतपुराण के विष्णु पत्र में छः ग्राम रागों का उल्लेख है और कहा गया है कि 'श्रीम जाति की स्थितियों ने वैष्णव-राग में जातिव्य-नीत गाए'।<sup>२</sup>

ग्राम रागों के प्रचलन की एक और परंपरा के अस्तित्व का प्रमाण दक्षिण भारत में कुदुमियमालाई अभिलेख में मिलता है, जिसके अक्षर ७वीं शती के हैं। इसमें यद्यपि परंपरागत रीति से नामोस्तेय नहीं है पर सप्त रागों को 'नोटेयन' अर्थात् मध्यम ग्राम पदग्राम साधारित पंचकाम कैथिक मध्यम कैथिक के रूप में प्रस्तुत किया है जो गारुड-विद्या के ग्रामरागों से मिलते प्रतीत होते हैं। मामादी परंपरा की दृष्टि से यह अभिलेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके संपादक श्री पी० आर० अंडारकर का तो मत है कि ये सप्तराग नाट्यशास्त्र से भिन्न किमी अन्य परंपरा के हैं।<sup>३</sup> यहाँ पंचतन का उल्लेख भी प्रासंगिक न होगा जिसकी एक कथा इस सम्बन्ध में मनोरञ्जक

पंचमरतों (मंडी कोहल दक्षिण, भरत तथा वर्णन) में से एक जानती है। इधर विद्वानों का मत है कि ये कोहल के सप्त-कामीन और भरत के पुत्रवर्गों से। —V V Narasingha-charya—The early writers on music (The Journal of the music Academy Madras October 1930 pp 259)

- (१) अध्याय २९
- (२) अध्याय ८१, ८२, ८३
- (३) "It is clear that the Seven rags of this inscription did not exist in the time of Bharatya—Nāṭya—Śāstra When they came into existence is not known the present inscription being the earliest record"—Kudumiyamalai Inscription of Music Epigraphia India Vol. XII 1914 pp 266



सामग्री प्रस्तुत करती है। उसमें एक संगीतज्ञ गया सप्त स्वर त्रैयाम नवरस छत्तीस वर्ण आदि सगीत के १८३ तत्वों की वर्णा करता है।

इस परंपरा का एक विशेष उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण ग्रंथ है—मर्तंग मुनि द्वारा 'बृहद्देयी' जो मारव के संगीत मकरन्द ( भी सती ) के पूर्व की रचना है। इस ग्रंथ में सबसे पहले 'राग' शब्द की विधय और ऐसी व्याख्या मिलती है जिसका अनुसरण चाहे चलकर हुआ। मर्तंग ने स्वयिक संगीत (मार्ग) की वर्णा न करके देयी ( लोक-संगीत ) पर सविस्तर विचार किया है। उन्होंने अपने एक पूर्ववर्ती धार्मिक मुनि का भी उल्लेख किया है जिन्होंने नीति का विवेचन करते हुए उसके पाँच भेद किए थे—शुद्ध मिश्र बेसर, मौड़ और साधारित। मर्तंग ने नीति की जो परिभाषा और भेद किए हैं उसकी ओर नीति या पद-काव्य के अध्ययायों का ध्यान अभी तक नहीं गया है। 'बृहद्देयी' राग के उद्भव के सम्बन्ध में भी मौलिक सामग्री प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत उन्होंने गीति के सात प्रकार बताए हैं—(१) शुद्ध (२) मिश्रक (३) गौड़िक (४) राग-गीति (५) साधारणी (६) भाषा गीति (७) विभाषा गीति।

राग गीति ग्रन्थ गीतियों से केवल रसारमकता के कारण मिश्र है। इसमें रसोद्बोधन या भाव-जागरण की सामंध्य विशेष होती है। मर्तंगमुनि के अनुसार राग स्वर और वर्ण के मुख्य सामंध्य का नाम है जो मानव हृदय को रञ्जित करे और रागगीति से धातव्यक स्वर रचनाएं हैं जो प्रतीप्तवादी सान्निध्यपूर्ण बलों से विभूषित हैं।<sup>१</sup> लोक-गीतों पर आधारित यही स्वर विभूषित राग-गीतियाँ साहित्य में शम्भार्य की साधना बनकर पद कहाई।

(४) पंचतंत्र का रचनाकाल लघुमग पांचवीं शती माना जाता है।

(१) स्वरवर्णविशेषण ध्वनिभवेन वा पुनः

राग्यते यन् यं कश्चित् स रागः सम्मतः सताम्

योऽग्री ध्वनि विज्ञेयस्तु स्वरवर्णविभूषितः

रञ्जकी जनयितानां स च राग उदाहृतः

बृहद्देयी २८० २८१

—पृष्ठ ८१

(२) सन्निर्लेप्यमकडिचने प्रतप्नरीरतिः तपः

रञ्जके- सुरतम्भे रागगीतिरुदाहृतः

—इत्यादि, वही (३००) पृष्ठ ८१

यह कोई मनोरंजक बात नहीं है कि मत्स्यपुराण के इस विवरण के कुछ बात ही धनप्रसंग तथा धनप्रसंग और हिन्दी के संविधानीय भाषा के साहित्य में पद विपुल रूप में उत्पन्न हैं। वस्तुतः 'शोकगीत' की यही पुष्पी 'रागगीत' 'परगीत' की जननी है।

'पद' नामक शब्द के मूल के सम्बन्ध में प्रायः विद्वान् मीन हैं। एकाग्र का सुझाव है कि यह शब्द दक्षिण के प्रायश्चित्त मतों की रचनाओं के साथ प्रचलित हुआ। इसी प्रकार 'यात्रि' शब्द के सम्बन्ध में कुछ भ्रम उत्पन्न हैं। कुछ लोग तो इस प्राचिनिक निर्माण से मानते हैं पर दोनों शब्द काही प्राचीन है। पद के सम्बन्ध में बृहद्गीता का एक उत्पन्न विचार-पद है—

भक्तगीत (?) परं योत्वा प्रथमे कला निर्वाप्य विमलितनयन ददा  
द्वितीया कला मध्यमवर्णेन (?) देवमित्यनन वरदेन दधमिनि सहनेन ।

उक्त उद्धरण में 'भक्तगीत' परं योत्वा प्रयोग से स्पष्ट है कि प्रारंभ में पद का प्रयोग करण ही था। 'पद' शब्द के सहारे पद-रचना के दोष दायक ही भय होता था पर बीरे-बीरे पद शब्द (प्रभु) पद-रचना शब्द के लिए कह रहा था। यात्रि शब्द का प्रयोग भी बृहद्गीता में धनक स्थानों पर मिलता है।

बीजा किरणोद्भवाभा बुका है, नीम यात्रि की स्थितों के देव दांभर राय में वाचिक शब्दों के गाने के प्रयोग इतिहास में उल्लेख है। इनकी धारा साह-भाषा ही रही होगी। समिधात्रयीय साहित्य इन बीर शब्द की दम्नीय और व्याकरण-बीजा भाषा होने के कारण संस्कृत में संमीतमय ऐतिहास्य प्रारम्भ में नहीं पतता। वाचिकम शब्द भा-रुह्य दांभरी करम बन्धन ने धनिज्ञान दांभरीय विक्रमावर्णीय आदि भाषाओं में यात्रिदा रणी पर प्रभु की संस्कृत की गयी। वाचिकम-भूत मयकुत म यात्रि-जम्ब तो है पर दांभरी-रामरा (पद-रामरा) के धनप्रसंग तम भाषा रखा या मयता। मय यह है कि संस्कृत

(३) बाहरी—आनन्द, पृष्ठ ५२

(४) प्रथमा पुस्तकीय स्याद् द्वितीया विचार्य मये ॥

× × × —बाही, पृष्ठ ८२

धनप्रसंग होने वाली धनिज्ञान बाहरीया स्यात् ॥

—बाही, पृष्ठ ४०

में सेमेन्द्र से पूर्व रणाचारिण नीति-परम्परा के वर्णन नहीं होते। सेमेन्द्र के बलावतार चरित की नीति-नीती का अनुकरण प्रागे चलकर रागों के उत्केष के साथ बयदेव-कृत नीतयोपनिष में हुआ। जयदेव ने इसी परम्परा में हिन्दी में पद भी लिखे जिनकी चर्चा प्रागे की गयी है।

हिन्दी का प्राचीनतम रूप सिद्धों की भाषियों में मिलता है। इनकी भाषा साहित्यिक प्रपञ्च का काल की बहु लोक-भाषा है, जो बीरे-बीरे साधुनिक भाषा का रूप ले रही थी। डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची और डॉ० सुनीलकुमार चाटुर्ज्या ने इसे प्रपञ्च<sup>१</sup> विनयतोष भट्टाचार्य ने उर्दिया<sup>२</sup>, महामहोपाध्याय हृदयसाह धाल्जी ने बंभसा<sup>३</sup>, भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पुरानी बिहारी या पूर्वी बोला मिस्री प्रपञ्च<sup>४</sup> और राहुलजी ने मगही कहा है।<sup>५</sup> सिद्धों के अनुसार यह संवा-भाषा है। वास्तव में इसका भाषाशास्त्रीय रूप मगही और मैथिली से बहुत मिलता है। सिद्धों के पदों का एक प्राचीन संग्रह है "अर्थाचर्य विनिरचय"<sup>६</sup> जिसमें छरझपा छवरपा कुझपा कण्डपा छान्तिपा आदि सैंस सिद्धों के १० पद संकलित हैं। इनके रचनाकाल की दो सीमाएँ हैं—पूर्ववर्ती २०० ई० और परवर्ती ११० ई०। अर्थाचर्य में से प्रत्येक के साथ उसके राग का नाम दिया हुआ है जो सम्भवतः उनके सिम्बली क्यान्तरों के साथ भी मिलता है। ये राग हैं—प्रह कामोद, गडका मुजरी गुबंरी और बेधीरय देवकी भनसी पटमजरी बंगाल धीवरी मस्मारी मामसी मामसी गबुड़ी छवरी बराही

(१) The Origin and Development of the Bengali Language page 42, Oriental Journal pt. I page 252 (Oct. '33-Sept. 34)

(२) साधनभाषा—गायकबाड़ औरिएन्डल वीरीड, संख्या ४१ पृष्ठ ६३

(३) बीरुगाल श्री बीहा पृष्ठ २४

(४) हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृष्ठ

(५) गंगा पुरातत्त्विक पृष्ठ २३४

(६) यह नाम हरप्रसाद धाल्जी का दिया हुआ है। विष्णुसेखर धाल्जी इसे आर्यचर्यचर्याचय डॉ० बागची अर्थागीतिकोय डॉ० सेन अर्थागीति और कुछ अन्य विद्वान अर्थाचर्य कहना अपिष्ट समीचीन समझते हैं।

(७) सिद्ध साहित्य डॉ० चर्मबीर मारली पृष्ठ ४३

बसाहि रायबी। हममें से अधिकतर राय मारवहुत संगीत (७वीं धीर ११वीं धाती के बीच का रचना) जैसे प्राचीन ग्रन्थ में भी मिल जाते हैं।

मिट्टों की इस परम्परा का विस्तार नाय-ग्राह्य में तथा पर नापों धीर मिट्टों के बीच की कड़ी के रूप में मत्प्रेन्द्रनाथ का नामोल्लेख धारदारक है जो मोरबनाथ के गुण माने जाते हैं। कुछ विद्वान सुखा मीननाथ धीर मत्प्रेन्द्रनाथ को एक ही व्यक्ति मानते हैं। इनका रचनाकाल १०वीं धाती है।<sup>१</sup> डॉ० कल्याणी मलिक ने मिट्ट-सिद्धांता-यज्ञि में ओपपुत्र की किसी प्रति के आधार पर वा पद उद्धृत किए हैं। भाषा की दृष्टि से ये बहुत प्राचीन नहीं लगते।<sup>२</sup> धारद मौलिक परम्परा के पद पर परिवर्तन के निवारण हुए हैं। मोरबनाथ के नाम से जो पद प्रचलित हैं उनमें विभिन्न लक्ष्यप्रच प्राचीन हैं यह कहना कठिन है। कुछ तो बबीर दादू धीर नानक के नाम पर भी गए जाते हैं धीर कुछ लोकोक्ति धीर ओगीहों के रूप में भी चल पड़े हैं। जो भी हूँ इनकी साम्यता समीक्ष्य है धीर इनमें कुछ प्राचीन पद भी मिले हुए हैं जो संत-पद-परम्परा के पूर्वज हैं।

तेरुबी धाती व जयदेव इन मीत गोविन्द का मुख्य रूप्य मीतिमय ही है धीर इन गीतों में रायों तथा रायों के भी उल्लेख हैं।<sup>३</sup> इन्हीं जयदेव के दो हिन्दी पद भी उपलब्ध हैं। एक में इका-विमना की साधना की चर्चा है धीर दूसरे में “गोविन्दति भक्त” का उद्देश। ईप्सुव भक्त रामानन्द के समय तक हठ्वाली साधना के

- (१) डॉ० कामबी ने इनके बीनजान निरंजन ग्रंथ का रचना-काल ११वीं धाती माना है।
- (२) राग धनालरी (धनाली)  
पलेक कड़ती धाय लीयो बीतराय ॥  
क्यों क्यों नर स्वारथ करे कोई न सजायो काम ।।रेका।।  
सत निरंजन पाइय कहै कलाम्बर शाना।३॥
- (३) ये राग हैं—आनख पौड़ गुजरी बमन रावरी बरारि, देवाराव देवावराही गुणदरी, मानध, भेरवी।
- (४) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी इनके रचयिता को बीन मीतिमयकार से विप्र मानते हैं वर जना टि बरिगिष्ट में स्पष्ट किया गया है ये दो विप्र व्यक्ति नहीं प्रतीय होते।

बिरोधी नहीं थे। इसी से पंगा-जमुनी समन्वय अवस्था में स्पष्ट है, रामानन्द में भी था। अवस्था के ये पद गूबरी और माक रागों में हैं और भावाभिव्यक्ति से नहीं पर शिल्प की दृष्टि से पद्यवैशिष्ट्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

रामानन्दजी (जन्म सन् १२६६) द्वारा रचित कविपद्य पद मिसते हैं जिनमें से एक राय बसन्त के अन्तर्गत गुरु ग्रन्थसाहिब में दिया हुआ है—'कत बाइए रे बर रंम भायो मेरा धितु न बने मन भइज पंगु। कों० पीताम्बरदत्त बड़बाल द्वारा एकत्र सामग्री के आधार पर डॉ० सुखारूपराव द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएं' में रामानन्दजी का एक और पद है 'हरि धितु जन्म बुझा पोयो रे।

रामानन्द जी के परचातु पद-साहित्य रचयिताओं की चार परम्पराएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं

- (१) साकार-सबुल-उपासकों की (वैष्णव)
- (२) निराकारवाधियों की (संत)
- (३) लौकिक शृंगार और शोक की
- (४) संकीर्ण-वास्तवियों की

पहली तीन चाराएं भाव (साम्य) प्रधान हैं बीसवीं में संकीर्ण (प्रसाधन) प्रमुख है। मीरा के पूर्व के चारों चाराएं विकास के चरम चिह्नों के निकट पहुँच गई थीं।

(१) मधुख-साधार की भक्ति से प्रेरित होकर विपुल पद-साहित्य रचा गया। अवस्था से लेकर मीरा तक इसके विकास की अनेक कड़ियाँ सादने पा गई हैं। यह बहु मुख या जब जमी और कृष्ण समस्त उत्तरमाधवीय साधना में प्रमुख रूप से परिष्कृत हुआ है। हिन्दी ही नहीं अहिन्दी प्रदेश के अनेक भक्त जमी में पद लिखने लगे थे। मुजरात के नरसिंह मेहता और भास्करा महाराष्ट्र के जकमर, घसम के अन्तराल इन सबने जमी के किसी न किसी रूप में पद रचना की है। जब तथा निकटवर्ती प्रदेश के बिष्णुदास मूर और कुंमनदास तो मीरा के पुनर्जन्म थे ही। इन्कायके-हिन्दी में उद्भूत पीढ़ियों के कुछ प्रभावनामा शिखर भी मीरा के हो सकते हैं। इन सबन पद का पूर्वप्रवर्तित रूप ही मिया और टेक तथा अन्तरों को वास्तवीय संकीर्ण के स्वरों में बाँटा। मूर के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त में प्रयोगों की बहुलता और छन्दों का रागों के साथ समन्वय का कलात्मक प्रयास नहीं मिलता। हाँ विविधता की धमकाइयों में विद्यापति ने अपने सीतों को परम्परागत पद से

मोड़ा मिश्रण दिया। साहित्यिक कृदियों में उसको इस शृंगारिक महाकवि ने संगीत की कृदियों की निर्मय उपेक्षा की है और अपने गीतों को शास्त्रीय संगीत के पथ से हटाने-र सोक-गीत और साहित्यिक मयात्मकता के साथे में बना है।

(२) पद-परंपरा का प्रारम्भिक विकास सिद्ध-नाथ-संत परंपरा द्वारा ही हुआ। धारमाशुमति लोक-संगीत तथा टेक और अन्तरा से समन्वित पद-रूप इन तीनों तरफों का निर्वाह संतों ने किया। निराकारवाचियों की पद-परंपरा का प्रारंभ अहिरी भाषी सन्त नामदेव (मत्तार) ने किया था। इनके ६२ पद तो पुनः ग्रंथसाहित्य में ही मिलते हैं जिनमें कुबरी छोरठ बनायी टोडी भावि अनेक रागों का उल्लेख है। नामदेव की इस परंपरा में त्रिकोचना बेणी सधना रैवास बना मानक पीपा और सेना के नाम उल्लेखनीय हैं, पर इस परंपरा का चरम विकास कबीर में मिलता है जिन्होंने हरिदास के कुमार में वैद के बोलने के परे के सत्य को शब्दों में बाँधा था। वहाँ इस पद-परंपरा को धूर ने चिरबंदनीय कसा और रस की रम्यतम छान्पा की वहाँ कबीर ने उसे अमृतकारी स्वर और लोकगीत की सहृदयता प्रदान की।

(३) मीरा के पूर्व लौकिक शृंगार और भोज के पदों की सुन्दरतम परंपरा राजस्थान के प्राचीन साहित्य में मिलती है। संवत् १५१२ में जालौर के बीहान धर्मास के आश्रित बीसनारा नागर (काम्भोज) पद्मनाभ ने काम्हूड़े प्रबंध की रचना की थी जिसमें काम्हूड़े और असावहीन के पुनः का वर्णन है। इसमें पाँच भावप्रबन्ध गीत भी हैं।<sup>१</sup>

(१) राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला, प्रकांक ११ (जयपुर)

(२) असावहीन की पुत्री फिरोजा अपने पिता के विरोधी काम्हूड़े के पुनः और अपने प्रेमी बीरमदे के बराबरही होने पर सती होने को प्रस्तुत होती है उस समय का एक गीत है :

राय मातपसु सामेरी ॥ (कण्ठ ४ से)

पुनः प्रेम सौमारीज आसुडे भीनड हारबी ॥

गुन फौडी अमगुन भया, अमह कहि कारवि सिनगारबी ॥

हुपड ॥ सगुन सगुन राजस कसपू किरपू ।

हुं ता प्रेम गहैकबी तू सोनगिरज बहूप्रासबी ॥

×

×

×

तुं अमरगुरि संबध्यज हुं मरवि न मेहुं साव की ॥ सगुल ॥

बिरोधी नहीं थे। इसी से यंगा-जमुनी सम्प्रदाय जयदेव में स्पष्ट है रामानन्द में भी था। जयदेव के ये पद गुजरी धीर भाऊ रागों में हैं धीर भावाभिव्यक्ति तो नहीं पर चित्त की कृष्टि से पवनीति के सुन्दर उदाहरण हैं।

रामानन्दजी (जन्म सन् १२११) द्वारा रचित कतिपय पद मिलते हैं जिनमें से एक राग वसन्त के अन्तर्गत गुरु ग्रन्थसाहिब में दिया हुआ है—'क्य जाइए रे बर रंज सागो मेरा बिनु न जलै मन भइत पंहु। डॉ० पीताम्बरदास बह्यवाल द्वारा एकत्र सामग्री के आधार पर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ' में रामानन्दजी का एक धीर पद है 'हरि बिनु जन्म बुजा पोयो रे'।

रामानन्द जी के पश्चात् पद-साहित्य रचयिताओं की चार परम्पराएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं

- (१) साकार-सगुण-उपासकों की (बैष्णव)
- (२) निराकारवादियों की (संत)
- (३) लौकिक गृहार धीर भोज की
- (४) संकीर्त-शास्त्रियों की

पहली तीन चारण भाग (साम्य) प्रधान हैं बीबी में संकीर्त (प्रसाधन) प्रमुख है। मीरा के पूर्व ये चारों चारण विकास के चरम चिह्नों के निकट पहुँच गई थीं।

(१) सगुण-साकार की भक्ति से प्रेरित होकर विपुल पद-साहित्य रचा गया। जयदेव से लेकर मीरा तक इसके विकास की अनेक कड़ियाँ सामने आ गई हैं। यह वह युग था जब ब्रजी धीर कृष्ण समस्त उत्तरभारतीय साधना में प्रमुख रूप से परिष्कारित हो गए थे। हिन्दी ही नहीं अहिन्दी प्रदेश के अनेक भक्त ब्रजी में पद भिजाने लगे थे। गुजरात के नरसिंह मेहता धीर मानण महाराष्ट्र के चक्रवर्त, असम के संकरदेव इन सबने ब्रजी के किसी न किसी रूप में पद रचना की है। इन तथा निकटवर्ती प्रदेश के विष्णुदास सूर धीर कुंभनदास तो मीरा के पूर्ववर्ती थे ही। हजरायके-हिन्दी में छद्मभूत पंक्तिओं के कुछ समानतामा अनेक भी मीरा के पूर्व के हो सकते हैं। इन सबने पं का पूर्वप्रवर्धित रूप ही लिया धीर एक तथा अन्तर्गत की आस्थीय संगीत के स्वरों में डाला। मूर के अतिरिक्त जिमी अग्य भक्त में प्रयोगों की बहुलता धीर छन्दों पर रागों के साथ समन्वय का कलात्मक प्रयोग नहीं मिलता। हाँ विविधता की समतापूर्वकों में विद्यापति ने अपने बीतों को परम्परागत पद से

योद्धा मिश्ररूप दिया। साहित्यिक रुढ़ियों में उसमें इस श्रृंगारिक महाकवि ने संगीत की रुढ़ियों की निर्मय उपस्था की है और अपने गीतों का साम्प्रदायिक संगीत के पथ से हटाकर लोक-गीत और साहित्यिक मयात्मकता के साथ में बनाया है।

(२) परंपरा का प्रारम्भिक विकास सिद्ध-नाथ-मत परंपरा द्वारा ही हुआ। धारमानुभूति लोक-संगीत तथा देव और अन्तरा से ममन्वित पर-रूप इन तीनों तत्वों का निर्वाह सँती ने किया। निराकारवादियों की परंपरा का प्रारंभ अहिंसा भाषी सन्त नामदेव (महारा) ने किया था। इनके १२ पर तो गुह्य ग्रंथसाहित्य में ही मिलते हैं जिनमें ब्रजरी सोरठ बनायी टोही आदि अनेक रागों का उल्लेख है। नामदेव की इस परंपरा में त्रिलोचना बेची सधना रंवास बना नागक पीपा और सेना के नाम उल्लेखनीय हैं पर इस परंपरा का भरम विकास कबीर में मिलता है जिन्होंने हरिनाथ के कुमार में मैत्र के बालन के परे के सत्य का शब्दों में बोधा था। जहाँ इस परंपरा को सूर ने चिरबंदनीय कला और रस की रम्यतम छान्ण की वहाँ कबीर ने उसे अन्तिकारी स्वर और लोकगीत की सहजता प्रधान की।

(३) मीरा के पूर्व लोकिक श्रृंगार और भाव के पथों की सुन्दरतम परंपरा राजस्थान के प्राचीन साहित्य में मिलती है। संवत् १५१२ में बालीर के बौद्धान अर्धराज के धामित बीसनारा नागर (बाम्हण) पद्मनाभ न कान्हड़के प्रबंध की रचना की थी जिसमें कान्हड़के और असावहीन के युद्ध का वर्णन है। इसमें पाँच भावप्रवण गीत भी हैं।<sup>१</sup>

(१) राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला प्रकाशक ११ (अजमेर)

(२) असावहीन की पुत्री चिरोजा अपने पिता के चिरोमी कान्हड़के के पुत्र और अपने प्रेमी बीरमदे के अराधनी होने पर सती होने को प्रस्तुत होती है, उस समय का एक गीत है :

राम मासपनू सामरी ॥ (अध्या ४ से)

पूरव प्रेम संगारीज आसूडे भीनड हारजी ॥

गुण पीटी अकगुण भया, अन्ह कहि कारनि तिजगारजी ॥

हुपर ॥ सगुण सगुण राडल कसगू किस्मू ।

हूँ ता प्रेम गहेलजी तु सोनगिरज बहूभाणजी ॥

×

×

×

तु अमरापुरि सचरुपड हूँ मरनि न नेहू साव जी ॥ सगुण ॥



इसी प्रसंग में 'सुपियार रे' छाप से उपलब्ध गीतों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। सुपियार रे का काल १५०० वि० के आसपास माना जाता है। इसके नाम से घनाभी बाबि 'रामों में धनेक गीत प्रचलित है जिनमें पद के रचना-कौशल के सौंदर्य का सामिकता के साथ निर्बाह है।' गीति-काम्य के बिबाध पर कार्य करनेवाले शोधकों को राजस्थानी की विद्याम गीतिबाध की ओर ध्यान देना चाहिये। पद्मनाभ और सुपियार रे के अतिरिक्त मरपति, सिद्धाचल चौमुजा 'बारहट चौहट' हरिसूर, बीरसूर 'सामबी महू बाधि' अनेक गीतिकार हैं, जिनका काम भीरी और सूर से पाछे पड़ता है और जिनके अनेक श्रोतस्वी कीरमोठ हस्त-लिखित प्रतियों में उपेक्षित पड़े हैं।

(४) संगीतकार कवियों के पद साहित्य और अर्थ ही नहीं, संगीत भी पद-रचना की एक महान श्रेणी रहा है। अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'मुह सियेहर' में हिन्दुस्थान का गौरव बढ़ाने वाले दस शब्दों में संगीत की बर्णना विस्तार की है और क्वाजा नैसुवराज शैख मुहम्मद हुसेनी ने ताहिमी के संगीत को श्रुतियों के लिये सबसे बड़ा आकर्षण माना है। 'मीरा' के पूव पद रचयिता संगीतकारों में लोभ नाम विशेष उल्लेखनीय है। अमीर खुसरो बंजुबाबु और गोपाम नायक।

एटा जिसे वे पटियाली ग्राम में संवत् १११० में बम्मा दिस्सी के तहत बर म्हाछ बादशाहों के उदक-अस्त का साक्षी अमीर खुसरो अनुभव का ही बनी नहीं भारतीय और ईरानी संगीत पदप्रतियों का भी माहिर था।

### (१) (राम कनाधी)

सुपियार रे सुबह आसकरल मराम्यत है काह ।

× × ×

बहिलि बड़ मरबद है । लणी जाउ ॥

सुपियार रे सुबह ॥

(२) ग्रन्थ संस्कृत लाहोरी बीकानेर, हस्तलिखित प्रति सं० ९९

(३) JASB (NS) Nov 1917 pp 234

(४) Descriptive Catalogue Section II pt. I pp. 45

( लेखिका )

(५) जिनगीकामीन भारत, सैयद अतहर अन्नास रिवाही, १९५४

पृष्ठ १७९-१८०

उन्होंने मजीर साजगरी इमन उरसाक आदि अनेक रागों की धृष्टि की बरबा राय में जय रखने का प्रणाली प्रवर्तन किया और उर्ध्व कच्चासी-मजल की पद्धति पर बहुत से पद लिखे। बसन्त के पद और झूले के गीत तो मधुरता आत्मामिष्यति और संगीतात्मकता के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। और उल्लेखनीय बात यह है कि पद की सबसे बड़ी विशेषता 'टेक' की पद्धति का भोगगीतों के अनुसूप प्रयोग किया।

'नायिकी बालिका' राग के यद्यस्वी रचयिता गोपालनायक का जीवन वृत्त अज्ञात-सा ही है। प्रायः भोज्य अकबरकालीन गोपालनाथ को गोपालनायक से मिला देते हैं। ११ वीं शती पूर्वार्द्ध में बिजयनगर-नरेश देवराज के दरबारी और शारंगदेव-कृत संगीत रत्नाकर के टीकाकार कस्मिनाथ ने ठात अभ्यास की टीका में कहा है 'अनुकृतानवस्तु गोपालनायकेन राग बरबरेव गुप्तबद प्रयुक्तम्'। कैप्टन जिलियर्स के अनुसार वे १३१ ई० में हैबेरि से मसिक काकूर के साथ दिल्ली आए और उन्होंने कुसरो को पराजित किया। कुछ भी हो राग कल्पद्रुम में इनके कुछ पद उल्लिखित हैं, जो साहित्य की दृष्टि से शान्ताम्ब हैं।<sup>१</sup>

इन दोनों के अतिरिक्त बीजू का नाम भी मीरों के पूर्ववर्ती संगीतज्ञ परकारों में आकर से मिला जा सकता है। मानकुतूहल के अरसी अनुवादक फकीर उस्ताह के अनुसार नायक बस्तु और कर्ण के साथ बीजू भी मानसिंह बरबार के प्रसिद्ध गायक थे। मानकुतूहल के अनुसार संगीतकार के लिए परकर्ता होना आवश्यक था।<sup>२</sup> गोपाल नायक की अपेक्षा बीजू के पद अधिक

(१) झूले के गीत : ओ पिया आबन कह गए

अजहूँ न आए स्वाभी हो।

ओ पिया आबन कह गए

आबन कह गए आए न बाधु मास।

ओ पिया आबन कह गए

अजहूँ न आए बियरा भयो है जबास।

(२) जय सरस्वती यनेत महादेव अति सुर्म सब देव।

देही भोज पिया कर कंठ पाठ ॥

—आदि

(३) मानसिंह और मानकुतूहल पृष्ठ १२२ (श्री हरिहर निवात द्विदेवी, आलियर)

साहित्यिकता लिए हुए हैं। उनमें लोक-जीवन की निष्ठा तथा और कसारमय संगीतत्मकता का सुन्दर समन्वय है।<sup>१</sup>

मीरा के पदों की बाकोर तथा काशी की प्रतिमों में रामों का उल्लेख नहीं है। बैजवदास क टिप्पण और नागरीदास कृत नागरी-समुच्चय में जो पद उद्धृत हैं उनमें भी रामों के नाम नहीं दिए गए। बारकरी रामदासी तथा रामसगरी संप्रदाय में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिमों में भी रामोल्लेख का अभाव है। संवत् १९२२ की विद्या समा की प्रति भ केवल दो पदों पर 'राम माध' और 'राम काशी' के उल्लेख हैं। मीरा की स्वीकृत पदावली के कुछ पदों के साथ कहीं-कहीं परवर्ती प्रतिमों में रामों के नाम दिए हुए हैं। उनकी गणना करने पर मीरा के पदों के कम से कम २७ रामों में गाए जाने के संकेत मिलते हैं—

धामन्य घेरो कान्हूदा जोगिया तिलग प्रभाटी, वृषी एकठाछा  
बनकसी मन्हार, सिहा घासाबरी काशी टोडी, पानी पीनु, बरबा  
बागेस्वरी भैरवी जमित सोरठ, कासेगढ़ा कमीठ बैरा पीनु परब  
विहाय नाक हमीर, मिछीकी।

जैसे मीरा के नाम से प्रचलित समस्त पदों में रामों की संख्या ६२ से ऊपर पहुँच जाती है। ऐसा भी हुआ है कि एक ही पद विभिन्न प्रतिमों में विभिन्न रामों के साथ उद्धृत मिलता है। इनमें से कुछ राम तो मीरा के बाद के हैं जैसे बरबारी कान्हूदा मीया की मन्हार। इन रामों की योजना निश्चित रूप से उत्पत्ति के ही थी जो मीरा के परवर्ती के। मीरा ने अपने किसी पद में राम-रागिनी धाम मूर्छना धाम धामि शब्दों का ऐसा प्रयोग नहीं किया जैसा कि कहीं-कहीं सुर के पदों में मिलता है।<sup>२</sup>

### मीरा का मन्हार राग

मीरा के नाम पर मन्हार का एक विशिष्ट रूप की मन्हार राग कहा जाता है। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के अनुसार यह राग घासाबरी घाट से उत्पन्न होता है। इसका आरोहावरोह सोमह स्वर का होता है अतएव इसकी आरंभ संपूर्ण है, बारी स्वर मध्यम तथा संवादी पञ्चम है और गाने का समय

(१) यहाँ कहीं उन दिन मन करो जात है अंगन बरतें कर मन किया है विहार। —धामि

(२) सुर सागर—दशम स्कंध पद ११५१ तथा पद ११५३

राजिका बूसरा प्रहर भागा जाता है। इस राग में दो गंधार, दो भैरव और दो निषाद हाते हैं।<sup>१</sup>

मल्लनर के एक प्रसिद्ध हिन्दू संगीतज्ञ के कथन के आधार पर श्री भातखण्डे का कहना है कि 'मल्हार और भङ्गाना मिसकर मीरा की मल्हार हो जाते हैं।'<sup>२</sup>

महाराज सवाई प्रतापसिंह देव ने (राज्य-कास-सं० १७७६ पृ० ४) 'संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों को मसकर' संगीत-रत्नाकर के आधार पर 'समीत सार' नामक बृहत् ग्रंथ की रचना की थी जिसमें उन्होंने मल्हार के विषय रूप 'भूमल्हार' 'नायक रामदास की मल्हार' 'बुरिया मल्हार' 'नर मल्हार' और 'गौड़ मल्हार' की उत्पत्ति तथा उनके स्वस्वों का विवरण दिया है।<sup>३</sup> मीरा की मल्हार जैसी किसी मल्हार का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। चतुर पण्डित द्वारा बताये गये मल्हार के त्रैलों में भी मीरा की मल्हार का नाम नहीं है। मीरा की जन्मभूमि के प्रवेश गन्तस्थान की एक रियासत के स्वामी श्री छत्ररत्नवी सता-श्री (मीरा के समयमें दो सौ वर्ष बाद के जब कि वे समस्त भारत के बंद मीरा हो गई थी) एक हिन्दू राजा का अपने ग्रंथों में सूर, सिधा तलसेन तथा रामदास आदि की मल्हार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए भी मीरा की मल्हार का अनुल्लेख यह महत्वपूर्ण प्रश्न जाघत करता है कि क्या उस समय मीरा की मल्हार नाम का कोई राग अस्तित्व में था और अगर था तो क्या इतना गन्धर्व या कि संगीत के ग्रंथों में उल्लेख भी न हो? संगीतमय पदों

(१) हा राग भ्रमराक्षरी बाह्यानुग उत्पन्न होती याँने भारोहाक्षरीह छोटहि स्वरानी होतास म्हुनूँ याँने जाति सम्पूर्ण छाहे, बारी स्वर मध्यम तथा संवादी पड्डा छाहे। तान समय रात्री या बूसरा प्रहर भागीतात या रासत होन बंधार होन गंधार होन भैरव व होन निषाद हे स्वर लावण्याला पापलांवा परिपाठ छाहे। पृष्ठ (१) ५५

(२) भातखण्डे संगीतशास्त्र प्रथम भाग. पृष्ठ २४७-२५३

(३) संगीत सार पृष्ठ २४७-२५३

(४) मेघसोरजवैशाख्या जयजयती तर्जवच।

स्यान् बुण्डिया सूरवादी नायकी नटपुञ्जकः॥

तानसेनी तथा गौड़ोद्गदी भूमिनामिका।

इतिमल्हारिका भेदा व्यवहारी बुनैयता॥

की रचना में निपुण होते हुए भी मीरा की संगीत के भारतीय विचित्रता में कोई रस नहीं थी। रामसेन घावि की तरह रागों की स्वरूप मीमांसा की बात तो दूर रही कुमरदास गोविन्द स्वामी घावि के समान संगीत की भारतीय सम्पत्ति का प्रयोग भी उनके पक्षों में नहीं है। उनके नाम से मीरा की महार बसने के दो सम्भाव्य कारण हैं—

(१) मियाँ को प्रायः 'मिया' भी लिखा जाता था। हो सकता है कि 'मीरा' लिपि दोष के कारण मीरा बन गया और 'मीरा की महार' मीरा की महार बन गई और फिर बीरे बीरे उसका एक स्वतंत्र रूप विकसित हो गया।

(२) मीरा ने बर्पा-सम्बन्धी कुछ बहुत सुन्दर पद लिखे हैं। महार राग का सम्बन्ध इस ऋतु से विशेष माना जाता है। हो सकता है कि मीरा-कव्य-संगीत के प्रेमियों ने इन पदों के आधार पर मीरा की महार की कल्पना की जो कालान्तर में दूर, मीरा और रामदास की महार के समान ही प्रसिद्ध हो गई।

संगीत की प्राचीन परंपरा मौखिक अधिक रही है और लिपि-दोष इसे अधिक प्रभावित करने में सक्षम नहीं रहा। अतएव यही अधिक संभव प्रतीत होता है कि उनके पदों के आधार पर उनके पर-क्षेत्री संगीतज्ञों का निर्माण है।

### समय सिद्धांत

यह एक परंपरागत मान्यता है कि प्रत्येक विशिष्ट भाग का विशिष्ट ऋतु तथा विशिष्ट प्रहर से संबंध होता है। बतिस भरत तथा मर्तम ऋषि के ग्रंथों से इस विद्या में कोई संकेत नहीं है। भारत के संगीत मकरंद में प्रथम बार इसका उल्लेख मिलता है। धार्मिक युग में इस सिद्धांत की सत्यता के संबंध में अनिश्चय नहीं है।

संगीत-मकरंद में रागों का जो समय दिया है उसके अनुसार मीरा के पदों के रागों की पीछे की हुई मूखी में से प्रातः कास गाये जाने वाले राग मलित तथा महार हैं। दोपहर को गाये जाने वाला देवी है। दोप के संबंध में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है। 'संगीत-रत्नाकर' में अधिकारि ग्राम रागों और कुछ बड़ी रागों का गायन-कास दिया हुआ है। पुष्पक किट्टल के अनुसार

बल सूची के टोड़ी धीर धीरबी सबेरे गाने जान योग्य राम हैं। इस प्रकार विभिन्न इपीतगात्रियों द्वारा की गयी शृचियों या अल्फेत्तों के आकार पर मीरा के पदों के रागों के वादन-काल का निर्णय किया जा सकता है, परन्तु पद-काल-सिद्धांत की वैज्ञानिकता के विषय में बहुत मतभेद है। वस्तुतः इसका आकार परवन्त अल्प अस्थायी तथा अस्पष्ट है और फिर प्राचीन रागों के स्वरों में भी परिवर्तन हुआ है। इस संबंध में एक कठिनाई और है। अल्प ज्ञान के कवियों के पदों के समान मीरा के पदों के वादन-काल के संबंध में कोई विश्वसनीय सूचना ज्ञात नहीं है।

### भावाभूत राग

मीरा के पदों में भावाभूत रागों का निवीह एक बड़ी विशेषता है। सामान्यतः राग भव्य का अर्थ ही है 'जो रोगना हो अर्थात् मन में एक निश्चित भावना या भाव-स्वरूप उठा देता हो'। मीरा के पद विभिन्न-विभिन्न रागों में प्रायः गाये जाते हैं, उनमें द्वारा आहत भाव पद के अर्थ से संबंध प्राप्त के लोपक हैं। अविर्भास राग कल्याण और मृगार से सम्बद्ध है, जैसे जोषिया का सम्बंध कल्याण से है, आवाधरी पीत, इमीर, धीरबी मृगार, त्रिस्तंभ कल्याण मृगार जोषिया कल्याण और देव बल्लभ मृगार से सम्बद्ध हैं। अविष्कार मीरा का कल्याण मरा जोषन पिरियर के प्रेम से संबंधित था। कल्याण और मृगार का प्राधान्य उनमें स्वाभाविक ही था पर उसे राज्याई धीर स्वर दोनों के सहारे एक साथ उठार सकना महान् प्रतिभा और सम्यक अभ्यास का ही परिणाम है।

- (२) हमारे यहाँ राग-रागिणियों की दिन तथा रात्रि के नियमित समयों पर गाने की जो प्रथा चलती आ रही है, वह केवल काल्पनिक है।

—भील सुप्रपाद, बनर्सी, पृष्ठ ५८

ये समय के महत्त्व को जानने वालों में से एक हैं।

—भातलजी लखीत दास, भातलजी पृष्ठ ७९

- (१) रागाङ्ग एवं रागिनीङ्ग यमीनी, पृष्ठ १

## गीति-सत्त्व

पुत्र जिसके स्वरूप और परंपरा पर विचार किया जा चुका है, मीरा की आत्मव्यक्ति का बाह्यकाय मात्र है, उसका प्राण तो गीति-सत्त्व है। उनके हृदय की समस्तता तपन धार मिलन क क्षण की प्रतीक्षा में व्याकुल बनम-बनम की पीति राग और मय का सहारा पाकर पलायन मुद्रित हो उठे है और सहज ( बड़ जहो ) संगीत के नोक-उंचक स्वरों में समुद्र की प्रयत्नज उबुगार ही तो गीति है, प्रज भलबाने ही मीरा समुद्र पीतों की राजकुमारी के अभिलम्बन की अविवारिणी बन गई हैं।

प्रायः गीति का विवेचन 'सिद्धि' के तर्कों के सहारे किया जाता है पर प्राचीन भारतीय धार्मिकों ने भी गीति पर विस्तार से विचार किया है। ( महात्मा सायणिक द्वारा किए गए बर्गीकरण का उल्लेख तो पीछे किया जा चुका है। ) यह ठीक है कि प्राचीन गीत संगीत के सम्यक् विवेचित हैं, पर रसमयता का व्यंजक होने के कारण बहु साहित्य की परिधि के भी बाहर नहीं है। भरत ने नाटक की विभिन्न मंचियाँ में विभिन्न रागों के ( गीत ) बाने की व्यवस्था और मत्तय मुनि ने प्रलय-काव्य के प्रथमर्ग की पीति की वाचना का विधान किया है। कुछ भी हाँ उन गीति-सम्बन्धी उल्लेखों और विवेचनों पर धार्मिक साहित्यिक दृष्टि से विचार करना चाहिए।

- (१) न नादेन बिना मीरा न नादेन बिना स्वरा  
मृधमोनाचो गुहाबासी हृष्यजाति सुधमकः

—बहरी पृष्ठ

- (२) रंजई सुरतंरमै रागपीतिपराहता ॥

—बहरी पृष्ठ ८७

- (३) रागिबिरतेव रजनी बिजलेव नदी मताहपुप्येन  
मनसहृषीव नारी पीतिरनन्दार हीना स्यात् ॥

—बहरी पृष्ठ ४७

प्राचीन भारतीय मनीषा ने गीति के निम्नांकित तत्वों पर विशेष धन दिया है —

- ( १ ) हृदयवासी धृति सूक्ष्म भाव तत्त्व ( भाव स्पन्दन )
- ( २ ) रञ्जक सुरसन्दर्भ ( संगीतात्मकता ) तथा
- ( ३ ) धमकृति

इनके साथ ही गीति का केन्द्रीय गुणतत्त्व राग माना है जो भाव की सहृदय हृदय को रञ्जित करता है ( रञ्जति इति राग । )

पाश्चात्य परंपरा भी तीव्र वैयक्तिक सुख-दुःखारमक भावेष की संगीतात्मक शाब्दिक धमिध्वनि को गीति मानती है <sup>६</sup> तथा भाव या विचार की एकता और धमिध्वनि पर बल देती है ।<sup>७</sup>

गीतों की वैयक्तिकता के कतिपय तत्व और आध्यात्म इस प्रकार हैं :—

( १ ) आत्मानुभूति और संयमित भावातिरेक

गीतों का समस्त नाभ्य उनकी एकात्मिक तथा सर्वथा वैयक्तिक भाव-धमिध्वनि पर आधारित है। गूर रागा की कथा के बिनाकार है, वहाँ से दर्शक हैं, नोकता नहीं। गीतों की कथा उनकी अपनी कथा है, उनकी व्यथा उनकी अपनी व्यथा है, वह आरोपित नहीं आत्मामुमुत्व सत्य है। इसी प्रकार जब कि तुमसी का हास्य-भाव और वर्णन उन्हें जम्मुक्त नहीं होने देता और आराध्य की गरिमा की सचेतनता उन्हें सतत सावधान करती रखती है, गीतों मुक्त हैं अपने भावों में गरिमा बल जाती है, प्रथम में मौकिक निषेध मिट जाते हैं बरकने की बात नहीं रखती उनके व्यापार में स्वच्छता या जाती है और धनुमुति धनतरंग की गहराइयों को माप जाती है। उस युग के दो

( १ ) Lyrical it may be said, implies a form of musical utterance in words governed by overmastering emotion and set free by a powerfully concordant rhythm—Lyrical Poetry Ernest Rhys Foreward, pp 6

( २ ) Lyrical shall turn on some single thought feeling and situation

Golden Treasury Palgrave FT page IX

• इसका फुटनोट पृष्ठ पर है—( १ ) ( २ ) ( ३ )



महान व्यक्ति तुलसी और कबीर दोनों अपने युग के अनेक सामाजिक प्रश्नों से चिन्तित थे। उनकी लोक मंगल कामी बोद्धिकता बंबनीय है पर वह कुछ पीति की एक महामहिम बाधा है। मीरों ने अपने और धाराप्य के बीच किसी को नहीं रखा—धर्म सम्प्रदाय समान किसी को भी नहीं। इस प्रकार मीरों के पीतों में कुछ धारमानुभूति का अभिहित तत्त्व है, जो दर्शन और कला किसी की भी प्रतिशयता के भार से भी आक्षन्त नहीं है।

मीति न सुख का अदृष्टास है और न सुख का हाहाकार।' जैसा कि महादेवी बर्मा ने कहा है—'वास्तव में पीत के कवि को धार्तक्यदन के पीछे छिपे दुःखातिरेक को बीच निवास में छिपे हुए संयम में बाधना चाहिए। मीरों के हृदय में बेठी हुई नारी और बिछड़ी के लिए साक्षातिरेक सहज प्राप्य या उनके बाह्य राजदानीपन और आन्तरिक साधना में संयम के लिए पर्याप्त अवकाश था।<sup>१</sup> 'हेरी मैं तो दरद बिबानी मेरा दरद न जाने कोय' या 'पिया बिन मूनो है म्हाण देस'—जैसी पंक्तियों में उनके संयत मन की साधनाभूत व्यथा है जिनमें न अमावों का अतिरंजित कीताह्वन है, न सिद्ध संयम की पापाखी बड़ता।

मीरों के पीतों में बाह्य का विवरण-विषय अधिक नहीं है। जहाँ वे कृष्ण के रूप और उनकी लीलाओं का वर्णन करती हैं जहाँ भी उनकी धारमा का अनुभव है। 'बित कड़ी म्हारे माधुरी मूरत हियरा धनी गढ़ी' या 'रंग मरी रंग मरी राग सु मरी री' जैसी पंक्तियों में बाह्य रूप-लीला की अपेक्षा उनका अन्तर्भव ही अधिक अभिहित है।<sup>२</sup> 'तनिक हरि चितबी म्हारी और' या 'मूनो री म्हारे हरि आबेगे छात्र में तो उनके अन्तरंग का सीधा धारमनिवेदन है बाणी के परिधान में उनकी सर्वथा अपनी भाषा आकांक्षा और व्यथाएँ ही प्रस्तुत हैं, जिनमें न कला का परापापन है, और न दर्शन की दुर्बोध प्रतीकारणकता।

(१) साम्य पीत भूमिका पृष्ठ ६-७

(२) The lyric has the function of revealing in terms of pure art, the secrets of inner life its hope, its fantastic joys, its sorrow its delirium—  
Encyclopaedia Britannica, 14th Ed xiv 532

प्रायः मीति कवि के व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष व्याख्या करते हैं। मीरा में तो वैयक्तिकता और आत्मगतता बहुत अधिक है, पर उनका यह वैशिष्ट्य वैयक्त्य की सीमा की ओर कहीं नहीं बढ़ा। उनकी संवेदनशीलता सर्वत्र व्यापक मानवीय स्तर की है। उनकी अनुभूति के क्षणों में युग-युग के सत्य प्रतिष्ठित हैं। इसलिये वही उनकी वैयक्तिकता उनके पदों को सामिकता प्रदान करती है, वहीं उनकी मूलभूत अनुभूतियाँ (Elemental feelings) उन्हें सोक संवेद्य भी बना देती हैं।

गैयता ।

कैसे तो कविता और संगीत का काफ़ी निकट का सम्बन्ध है।<sup>१</sup> पर प्राचीन काल से ही संगीत को मीति का अनिवार्य तत्त्व माना गया है। 'मीति' और 'मिरिक' शब्द स्वयं इन बातों के प्रमाण हैं। वस्तुतः आत्मानुभूति मीति का कन्द्र है। संगीत उसकी परिधि। मीरा में दोनों का सुन्दर सामन्वय है। उनके पदों में शब्दार्थ की साधना संगीत के स्वरों के साथ एकरस हो गई है। वही संगीत भाव को अनुकूल परिवेश प्रदान करता है। इस दृष्टि से वे हरिदास योषामनायक तानसेन और बेजू बैसे संगीतज्ञ कवियों से पूर्णतः भिन्न हैं जिनके पदों में संगीत साम्य है और काव्य संयोगबध्म प्राप्त 'बाइप्रोडक्ट' मात्र। प्राभुनिक गीतिकारों के यथार्थ में भी उन्हें नहीं रखा जा सकता है क्योंकि इनमें से अधिकांश परंपरागत रामायित संगीत के नहीं सामान्य मयात्मकता के प्रयोक्ता हैं।<sup>२</sup> मीरा में संगीत तो परंपरागत है, पर वह आत्मसत्ता में होकर अभिव्यक्ति का साधक है। उसमें यथार्थ ही नहीं छंदों का निर्बाह भी है और उसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि वह शास्त्राश्रित नहीं शास्त्र सम्मत है।

मीरा स्वयं शास्त्र-बद्ध नहीं शास्त्र-सिद्ध थी। शास्त्रान्मयी इतनी स्वच्छंद, उन्मुक्त अडिगम आत्मानुभूतिपरक मीतियाँ नहीं लिख सकती और संगीत के व्याकरण से अपरिचित के लिए रागों का ऐसा आदर्शयंत्रण निर्बाह संभव नहीं। वस्तुतः उनके पदों में रागों का निर्बाह उनके नाम पर 'मीरा'

(१) कुछ विद्वानों का मत है 'Poetry is music in words and music is poetry in sound.'—The New Dictionary of thoughts pp. 470

(२) गिराला को इसका अपवाद कहा जा सकता है।

की मन्हार' राग का प्रबलन और इन वर्दों का एकाकिन घाम-बमू से लेकन संगीत के कमा-बारदियों तक क कण्ठों को घताब्धियों से मुग्ध करना, उनके सफल वेयत्व के अकाद्य प्रमाण हैं ।

### अन्विति और संक्षिप्ति

प्रायः गीति किसी एक पर पूर्ण भाव को विवित करता है । उसमें विस्तार अल्प नहीं रहता वह किसी भागत या अभागत मुन-सत्य का दाण के रूप में निमित्त स्मारक है । मीरा के पद आकार में प्रायः संक्षिप्त हैं ( अधिकशः ५ ६ पद्यों के ही हैं ) और अनीभूत अनुमृति के व्यंजन हैं अतएव वहाँ उनमें वैविध्य और भाव-विस्तार का अभाव है वहाँ गीति का एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भाव की अन्विति का पूर्णत्व निर्बाह है । छायावादी युग के गीतों की तरह केन्द्रापगायी प्रकृति उनमें बिलकुल नहीं है । प्रत्येक पद में प्रायः एक ही भाव की विवृति है । कहीं-कहीं तो धनेक पद किसी एक ही भाव या अवस्था के विषय में अवस्थिति का दोष या जाता है साधारणतः गीति की आत्मा ठेक में समाई रहती है दोष पद अवका विस्तार या शृंगार करता है ।

गीति का अन्तरंग विभाजन मात्र के स्वल्प आचार पर किया गया है और बहिरंग कर्म के पर वहाँ इनके विस्तार अभावबलक हैं क्योंकि मीरा के प्रसंग में इनका उत्तर 'यक्ति' और 'पद'—इन दो धर्मों में मिल जाता है ।

मीरा ने प्रबंध तो सिखा ही नहीं गीत भी संबद्ध नहीं स्वच्छन्द रूप से मिले । उनके गीतों में उनका अन्तरंग अभिव्यक्त है, इसलिए प्रयत्न करने पर उनमें प्रणय-कवा का सूक्ष्म सूत्र खोजा जा सकता है । पर वास्तव में वे प्रणयिनी साधिका की विभिन्न मनोवृत्तियों की मुक्त स्वच्छंद अभिव्यक्ति ही मात्र हैं । ये मुक्त गीतियाँ भी तीन प्रकारकी हैं। सबसे पहली है—स्वानुमृतिपरक अर्थात् अनुमृत्क तथा बाह्यवस्तुमृत्क । बाह्य वस्तुमृत्क ( Objective ) गीत वस्तुमृत्क बर्तन विषय पर आधारित होते हैं जो मीरा में नहीं हैं । उनमें तो पिय भी परदेस में नहीं उनके मनोऽपेक्ष म बसे हैं । अर्थात् अनुमृत्क गीतों में

---

(१) धानू में एक विनियत योजना के कारण कथा का हलका रूप दिखाई पड़ने लगता है इसी प्रकार योजना करने पर मीरा के पदों में भी संभव है ।

कवि अपने माव का किमी अन्य पर अभ्यास या आरोह करता है। महारेबी ने 'पठ' का लेकर अभ्यानायित आत्माभिभक्ति को है। मीरों ने अपनी भावनाओं का अभ्यास नहीं किया न लौकिक साज से न कला व भाषा से। वे तो स्पष्ट कहती हैं—मार्ग मेरो पिया बिन भसूखों रेम।

सेज भसूखी भवन भकेनी रैख नयकर मेस।

आव ससूख प्रीतम प्यारे, बीते ओवन-मेस ॥

इस प्रकार मीरों के माव कुछ स्वानुभूतिपरक हैं। चाहे प्रकृति हो चाहे मनाव अन्तर्लोकता उन्हें आत्मोन्मुख या हृद्योन्मुख ही करत हैं।

आत्मप्रधान चीतों में कुछ कल्पना प्रधान हात हैं, कुछ चिन्तन और कुछ भाव-प्रधान। पत्थर (पठ) में कल्पना कामायनी के दहा चर्य (प्रभाव) में चिन्तन और सापान (बचन) में भाव प्रधान है। मीरों के पीठ भी भाव प्रधान हैं भाव हा नहीं भावार्थ-प्रधान हैं। प्राय उनके पदों में भावों के बिज नहीं है आदेश की व्यञ्जना है। चिन्तन प्रतीक्षा की चिन्तता का एक बिज है—

पियरो पंच निहारता सिमरी रैख बिहाणी हो।

धनू चातक बन कूँ रटे मछनी बिमि पानी हो

मीरों व्याकुल बिहाणी मुख कुछ बिमरणी हो।

यहाँ चिन्तता बीजा सामान्य भाव भी विकसता का आधाय लेकर उद्गीत हो उठ है और जब वे यह कहती हैं—'प्यारे मेरे सजना फिर ए भवना मैं अनामण रहो साथ' ता मन में एक व्यापारशी भ्रमङ्गन-मत्तान और मसोस के साथ छटपटाहट में परिणत हो जाती है क्योंकि जब उसके पास विकसत और उपामन्म का महाण भी नहीं रहा। मीरों के शब्द में ऐसे और कितने ही उदाहरण आने जा सकते हैं। उनका अधिकाध बिहू काव्य ऐसा ही है।

(१) नागही बूँद न मेहा बरसें

ऊपर मुरपति गरब मा

सुनी सेज स्थाम बिनु लागत

कूक छठी पिया करके हे ना

(२) यह सँसार बहर की बाजी

गीत प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—संगीत-गीत लोक-गीत और साहित्यिक कला-गीत। मीरा के पदों का व्यक्तित्व तीनों प्रकारों की रंग-रेखाओं से बना है। पहले प्रकार के गीत संगीत के रागों को प्रस्तुत करने के लिए लिखे जाते हैं। मीरा ने समस्त एक रागमय लिखे हैं, पर वे रागसखी नहीं हैं। लोक-गीत की अनेक जगें भी उनके पदों में बुरी-मिमी हैं। होली के गीत मीरा ने लिखे ठीक उसी समय पर जिसपर आज में होली पाई जाती है और वे इतने लोकप्रिय हुए कि न जाने कितने अज्ञातनामा जन-कवियों का आशुकरित्व भी उनमें मिल गया। सावनी की तो कितनी ही समें उनमें मुकुरित है। हाँ लोक-गीतों में लोक-जीवन का सामाजिक पक्ष प्रायः चिन्तित रहता है, जिसकी अभिव्यक्ति मीरा में अल्पमत की है। कसागीटों की कोटि में भी मीरा के पदों को पूर्णतः नहीं रखा जा सकता क्योंकि घूर या महुआबी का संवेतन चित्त और साज-सज्जा उनमें नहीं है, पर इन पदों की साहित्यिकता से इनकार करना भी असंभव है। अनुभूतिमयता के आधार पर तो उन्हें सिन्धुद्वीपी के शब्दों में 'सनातन साहित्य का मृंगार' कहा जा सकता है।

पाश्चात्य दृष्टि से मीरा के पदों में चित्रिक के अधिकतम आदर्श गुणों का समावेश है।

भारतीय दृष्टिकोण से मीरा के गीतों में हृदयवासी अविमुख नाद तथा रंजक मुर-संभर्न और रामभयता तो है, अलङ्कृति अपेक्षाकृत अल्प है। चित्त में ही नहीं अनुभूति और कल्पना में भी अलङ्कृति नहीं है, जो है, वह सहज सीधे और समझीयता है और वह भी संवेदना के स्तर पर। यह वस्तुतः मीरा की एक महान् उपलब्धि है और कदाचित् एक अस्तेजनीय अनाद भी।

## छंद-विधान

कविता का छन्द से बिर संबंध है। कलात्मक क्रांतियों के फल-स्वरूप उसमें अनेक सुधार और संस्कार होते आये हैं भावना का अनिष्टतर पोषक बनने की मुक्ति और स्वच्छन्दता भी उसे भिन्नती रही है पर उसका पूर्ण बोध अभी नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त छंद कविता के राग-तत्व की रक्षा करके उसे जीव ही नहीं बनाता उसके प्रभाव को व्यापक और अपेक्षाकृत अधिक प्राज्ञ और प्राज्ञात्मक बना देता है।<sup>१</sup> पद्यों के सन्धों में कविता का हस्तपत है।<sup>२</sup> छंद का प्रास तत्त्व तब है, जो अन्तर्बोध से अनिष्ट रूप से सम्बद्ध है। यह तब 'हमारे हृदय हमारे कोहले हमारी नादियों को प्रभावित कर देती है।'<sup>३</sup> अतएव भावानुमति की प्रभावोत्पादक और मन को झूक कर तदनुकूल अनुभूति बना देनेवाली अभिव्यक्ति का सब धारि से सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

मीरा ने राग रागिनियों में पदों की रचना की है पर उन्होंने परंपरागत छंद-विधान का भी जाने या अनजाने उपयोग किया है। अनेक स्थलों पर तो उन्होंने छंद के शास्त्रीय बंधनों को धकटा रखकर भी उसे राग में डाल दिया है और कहीं-कहीं कुसलतापूर्वक इन बन्धनों को ढीला करके उसे एक नया कलात्मक रूप प्रदान कर दिया है। यह के प्रमुख दो बातें हैं, एक और

(१) पारिणि के अनुसार छंद ('चारि' वातु से) का मूल धर्म ही प्राज्ञात्मक है—अथ प्राज्ञात्मकं बीप्ता च—पारिणीय वातुपाद, म्मादिगण। यास्क के अनुसार इसका अर्थ है धारणात्मक करना।

(अर्थ- जगतात् धर्मासि धारणात्—यास्ककृत निघण्टु, देशत काण्ड ७-१९)

(२) पञ्चम अध्याय पृष्ठ २१

(३) मीराधर गुप्त पारवात्य साहित्यलोचन के सिद्धांत पृष्ठ २२७

धस्तार । टेक केन्द्रीय भाग की अत्यन्त प्रथम पंक्ति होती है । आचार्य भरत ने उसके लिये 'छन्द' शब्द का प्रयोग किया है । धस्तार चरणों के उस वर्ग को कहते हैं जिसका पहला छंद की धातुति होती है ।

टेक की दृष्टि से मीरा के पद दो वर्गों में रखे जा सकते हैं —

- (१) वे पद जिनमें टेक का भक्षण सेप पद में (संघा में) भी पूर्णतः या अंशतः अस्ति होता है ।<sup>१</sup>
- (२) वे पद जिनमें टेक पद के सेपास के छंद से भिन्न छंद की होती है ।<sup>२</sup>

धस्तार के छंद की दृष्टि से मीरा के पदों को फिर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

- (१) एक ही छंद के पादों की अनेक धातुतियों पर आधारित पद ९
- (२) अनेक छंदों के पादों के संयोग से बने पद ४
- (३) छंद-शास्त्र के नियमों से मुक्त पद ५

मीरा के पदों में टेक का कोई एक रूप नहीं मिलता । १२ मात्राओं से लेकर १५ मात्राओं तक की टेकें मीरा ने प्रयुक्त की हैं । धस्तार टेकों में अनेक छंदों के चरणों का जोमा जा सकता है । उदाहरण के लिए—

- (१) स बरे मादूया तीर १२ मात्राएं । धस्तार आधारित धातु का तोमर छंद
- (२) मन में परमहंसि रे चरण १४ मात्राएं प्रथम धस्तार सवु मानव धातु का विजात छंद

- (१) डाकोर पद ५, १९, ३० ३१ ३२ ३५, ३७ ४३ ४४ ४८ ५५, ६८  
काशी पद ७१ ८१ ८४ ८७ ८९, ९० ९३
- (२) डाकोर पद ९ ३ ४ ६ ७ ८, ९, १०  
काशी पद ७२ ७४ ७५, ७७ ७९, ८० ८२
- (३) डाकोर, पद ८, १४ ३१ का० ८३ ९८
- (४) काशी, पद ७० १०२
- (५) काशी ७०

- (३) चारो रूप देखा घटकी १५ मात्राएँ, तैबिक जाति का  
हुंसी छन्द (यति दाप है क्यों  
कि = ७ के स्थान पर ७  
= पर यति)
- (४) भव भन चरण कमल ब्रह्मगोपी १६ मात्राएँ, छन्द में न  
बगल नतगल सस्कारी जाति  
का चौपाई छन्द
- (५) देखा माई हरिमन काठ किया १८ मात्राएँ, छन्द में ॥५,  
पौराणिक जाति का छक्ति छन्द
- (६) माई री म्हा लिया गोविदा मोल २ मात्राएँ, ११ ६ पर यति  
महापद्यिक जाति का ह्रस्वति  
छन्द
- (७) धामी म्हाये लागो बुन्दावण भीका २२ मात्राएँ १२ १० पर  
यति छन्द ॥५, भट्टारकीरिक् जाति  
का कुंडिक छन्द
- (८) स्वामसुन्दर पर चारों बीचका काल स्वाम २५ मात्राएँ, यति  
१३ १२ पर, छन्द में ३  
महापद्यकारी जाति का सुपीठ  
छन्द

छन्दशास्त्र के आचार्यों ने एक मात्रा के पाद वाले छन्द (मात्रिक जाति के छन्द) से लेकर १२ मात्रा के पाद वाले (मासणिक जाति के छन्द) छन्दों का ठो विवेचन किया ही है १२ मात्राओं से मात्रिक के पादों से बने छन्दों (बण्डक छन्द) की भी व्यवस्था की है। इस बात का नी निर्णय कर दिया गया है कि एक जाति के छन्द क कितने भेद हो सकते हैं (जैसे मात्रिक मासणिक जाति के १५२४१७८ छन्द बन सकते हैं) अतएव मीरों की प्रत्येक टेक किसी न किसी छन्द क पाद की विशेषता से सम्बन्धित नहीं हो सकती है, पर वस्तुतः मीरों में इस बात की धोर उपेक्षा का भाव ही विशेष रूप से सक्षित होता है। उनकी अनेक टेकें हैं जिनमें किसी प्रसिद्ध छन्द के लक्षण उपलब्ध नहीं होते। 'शे जीम्मा गिरधरनाम' (का० ८२) में ११ मात्राएँ हैं, इसलिए इसे मात्रिक भागवत जाति का कहा जा सकता है पर इस जाति का



घन्तरा । टेक केन्द्रीय भाग की ध्वजक प्रथम पंक्ति होती है । आचार्य भय्य ने उसके लिये 'छन्दक' शब्द का प्रयोग किया है । घन्तरा चरणों के उस वर्ग को कहते हैं जिसके पश्चात् छन्द की श्रान्ति होती है ।

टेक की दृष्टि से मीरा के पद या वर्गों में रखे जा सकते हैं —

- (१) वे पद जिनमें टेक का लक्षण सेव पद में (सपद्यो में) भी पूर्णतः या अंशतः अस्तिष्ठित होता है ।<sup>१</sup>
- (२) वे पद जिनमें टेक पद के लोपाद्य के छंद से भिन्न छंद की होती है ।<sup>२</sup>

घन्तरे के छंद की दृष्टि से मीरा के पदों को फिर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

- (१) एक ही छंद के पादों की अनेक श्रान्तियों पर आधारित पद २
- (२) अनेक छंदों के पादों के संयोग से बने पद ४
- (३) छंद-शास्त्र के नियमों से मुक्त पद<sup>३</sup>

मीरा के पदों में टेक का कोई एक रूप नहीं मिलता । १२ मात्राओं से लेकर १५ मात्राओं तक की टेकों मीरा ने प्रयुक्त की हैं । अतः टेकों में अनेक छंदों के चरणों को खोजा जा सकता है । उदाहरण के लिए—

- (१) सादरे मादूया तीर १२ मात्राएं । अस्त आदित्य जाति का तोमर छन्द
- (२) मन में परमहरि ने चरण १४ मात्राएं प्रथम अक्षर लघु मानव जाति का विजाय छंद

- (१) आक्षेप पद ५, १९, ३०, ३१, ३२, ३५, ३७, ४३, ४४, ४८, ५५, ६८  
काशी पद ७१, ८१, ८४, ८७, ८९, ९०, ९३
- (२) आक्षेप पद २, ३, ४, ६, ७, ८, ९, १०  
काशी पद ७२, ७४, ७५, ७७, ७९, ८०, ८२
- (३) आक्षेप पद ८, १४, ३१ का= ८३, ९८
- (४) काशी पद ७०, १०९;
- (५) काशी ७०

- (१) चारो रूप दोह्या छटकी ११ मात्राएं, तैयिक जाति का  
हसी छन्द (यति शाय है चरों-  
कि ८ ७ ४ स्थान पर ७  
८ पर यति)
- (४) मज मन जरण कमस धनभासी १६ मात्राएं, धन्त में न  
जयण नतगण मस्कारी जानि  
का चौपाई छन्द
- (५) दखा माई हरिमन काठ किया १८ मात्राएं, धन्त में ॥५  
पौराणिक जाति का छक्ति छन्द
- (६) माई री म्हा सिया गोविश मोल २० मात्राएं, ११ ६ पर यति  
महापेठिक जाति का हंसगति  
छन्द
- (७) घाली म्हाणे भागो बुन्नावण नीका २ मात्राएं १२ १० पर  
यति धन्त ॥५॥ महारौपिक जाति  
का कुडित छन्द
- (८) क्यामसुन्दर पर बारा जीवड़ा बारा क्याम २५ मात्राएं, यति  
१३ १२ पर, धन्त में ३  
महापवतारी जाति का सुगीत  
छन्द

छन्दशास्त्र के आचार्यों ने एक मात्रा के पाद वाले छन्द (चारिक जाति के छन्द) न लेकर ३२ मात्रा के पाद वाले (सातल्लिक जाति के छन्द) छन्दों का तो विशेष विवेचन किया ही है ३२ मात्राओं से अधिक के पादों से बने छन्दों (दण्डक छन्द) की भी व्यवस्था की है। इस बात का भी निगम कर दिया गया है कि एक जाति के छन्द के कितने भेद हो सकने हैं (जैसे मात्रिक सातल्लिक जाति के ३३२४३७८ छन्द बन सकने हैं)। धनंजय मीरा की प्रत्येक टेक किसी न किसी छन्द के पाद की विशेषता से समन्वित कही जा सकती है, पर बसुन्त मीरा में इस बात की घोर उपेक्षा का मात्र ही विशेष रूप से लक्षित होता है। उनकी धनेक टेकें जिनमें किसी प्रसिद्ध छन्द के सखण उपसम्पन्न नहीं होते। 'शे जीम्या गिरधरसात' (का ८२) में १३ मात्राएं हैं इसलिए इसे मात्रिक भागवत जाति का कहा जा सकता है, पर इस जाति का

एकमात्र प्रसिद्ध छन्द है ब्रह्मणि जिसमें ११ की मात्रा में सप्त सप्तार ही होना चाहिए । उस नियम का पालन उस पंक्ति में नहीं है । इसी प्रकार पिया म्हारे मीरा भागा रहस्यो जी में २२ मात्राएँ हैं जो महारीज् जाति के छन्दों की विशेषता है पर इस जाति के किसी प्रचलित छन्द की मति के नियम का पालन इसमें नहीं है, न राधिका (१३६) का न सुलभा (१२, १०) का और न कुण्डल (१२ १०) का । ऐसे अन्य अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

### परंपरागत छन्द

मीरा के पदों में छन्द-विधान की दृष्टि से विशेष उत्केचनीय बर्य सन रचनाओं का है जो वस्तुतः किसी छन्द का ही बेय रूप हैं । रागों के गाय जाने के कारण ही उन्हें पद की सजा मिली है । इनमें कुछ में तो टेक का भी प्रलय अस्तित्व नहीं है । नीचे कुछ ऐसे ही पदों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो छन्दशास्त्र के अनुसार किसी छन्द विशेष के अन्तर्गत रहे जा सकते हैं

(१) पौषिक जाति का सार छन्द २८ मात्राएँ, १६, १२ पर मति,  
धन्त में दो गुरु

ये बिलु म्हारे कोण सार के गोबरण मिरधाने ।  
मोर मुण्ट पीठाम्बर सोमा कुंडल री छब प्यारी ।

सार छन्द मीरा का प्रिय छन्द प्रतीत होता है । किसी एक छन्द के इतने उदाहरण मीरा के नहीं मिलते जितने 'सार' छन्द के । काशी की प्रति ८० ६८ हाकोर की प्रति ९१ ४८ ४२ आदि पर सार छन्द के अन्तर्गत आते हैं ।

(२) महातैजिक जाति का तारक छन्द (३० मात्राएँ मति १६ १४ पर,  
धन्त में तीन गुरु)

राबरो म्हारी प्रीत भियाग्यो जी ।  
बे सो म्हारो मुग रो रागर बीमुण म्हा बिदाराग्यो जी ।  
सोक एं बीमयां मन एं पत्रीया मुखडा गबर धुगाग्यो जी ।  
दामी धारी बनम जनम री म्हाण बागण बाग्यो जी  
मीरा रै प्रभु गिरधर नागर बैड़ा पार भगाग्यो जी ॥ -हाकोर, पद २८

- (३) महामायाजिक जाति का सरसी छन्द ( २७ मात्राएँ, १६, ११ पर यति भ्रम में एक गुरु एक लघु )

तनक हरि चितवी म्हायी ओर  
हम चितवी ये चितवी भा हरि हिवड़ी बड़ी कठोर ।  
म्हायी धामा चितवसु बारी बार छ दूजा ओर ।  
ऊप्यां डाढ़ी धरज कर्म छू करता करता ओर ।  
मीरी रे प्रभु हरि अभिनासी बैस्यु प्राण अंकोर ॥

—डाकोर, पद ७३

- (४) महाभक्तारी जाति का सुगीत छन्द (२५ मात्राएँ, यति १३, १० पर भ्रम में )

हरि बें हृदया बस री मीर ।  
प्रोपता री नाम राख्या बें बहयायी मीर ।  
भक्त कारण रूप नरहरि मदया घाप सरीर ।  
बूढतां मजरा राख्या कट्या कुंजर पीर ।  
बासि मीरी नाम गिरजर हरा म्हायी मीर ॥

—डाकोर, पद ६२

इसमें यति का निर्वाह चारों पंक्तियों में १३, १० पर नहीं हो सका है पहली और तीसरी पंक्तियों में छन्द-व्याप्त की दृष्टि से यति भंग हो गई है ।

मीरी के पदों का वृत्तार्थ बर्णन यह है, जिसमें पद किसी छन्द का सर्वाधिक प्रतिरूप तो नहीं है, पर उसमें किसी विशिष्ट छन्द के चार चरणों की बजाय चार से कम या अधिक चरणों की योजना मिलती है । चार चरणों से कम के पद संख्या में बहुत कम हैं । अधिकांश पदों में पाँच-छ या इससे भी अधिक चरण मिलते हैं । चार से अधिक पाद वाले ऐसे पद प्रचलित पादों विपरीत छन्दों के अन्तर्गत रह जा सकते हैं । उदाहरण के लिए निम्नांकित पद में छ पाद हैं । प्रत्येक पाद में २५ मात्राएँ हैं । १६, ११ मात्राओं पर यति है और भ्रम में गुरु-लघु है । इस प्रकार यह पद सरसी छन्द का प्रचलितपादी रूप है—

प्यारे दरशन वीखो घाम ये बिना रह्या न आय ।  
बल बिना कंवल बल बिना रजणी ये बिना जीवण आय ।  
आकुल व्याकुल रेण बिहारां निरह कसेजी लाय ।

दियत ना भूख भियरी रेखा मुसणु कछा बाय ।  
 कोण कुण काण कहिणुं री भिम भिम तपणु मुसण ।  
 नय तरबाबी धस्तरजाबी भाव भिक्षो दुख बाय ।  
 मीरा दासी जमम जनम री पागे मेह लगाय ।

—काशी पद ६०

तीसरे वर्ग के मीरा के व पद हैं जिनमें एक से अधिक छन्दों का संयोग मिलता है। ये संयुक्त छन्द कहे जा सकते हैं। बिच प्रकार कुछभियां या छप्पम में दो पूरा छन्द आकर मिलते हैं मीरा के पदों में उस प्रकार के दो पूर्ण छन्दों के संयोग न होकर अनिवारित चरखों के संयुक्त रूप मिलते हैं।

डाकार की प्रति ६४ वें पद में साठक के चरखों के बीच में दो चरण सातगिक जाति के छन्द के ज्ञान दिये हैं। इसी प्रति के २६ वें पद में मुक्तामणि छन्द के साठ चरण के साथ एक चरण हरिपरी का और एक चरण नाख-बिच जाति के किसी अनाम छन्द का जोड़ दिया है।

(क) पिया बारे नाम कुमाली जी ।

नाम लता तिरछां मुध्या मुध्या जग वाहणु वाली जी ।  
 कीरत काई ना जियां पल्लव करम कुमाली जी ।  
 मणुका कीर पद्मवता बैजूठ पमाणी जी ।  
 घरम नाम कुंजर जया बुज घबघ घटाणी जी ।  
 पदक छांड कपु वाइवा पमु-बुणु पटाणी जी ।  
 धजामेल भव ठपरे जम पास नहाणी जी ।  
 पूतनाम जग वाइवा जग सारा बाणी जी ।  
 मरणागज वे कर दिया वरतीत पिछाणी जी ।  
 मीरा दासी राजसी धपली कर जाणी जी । —डाकार, पद २६

(ख) कहे पर लामो काण्ड री पुरखस कुम जयाका री ।  
 भीकइया री कामणा म्हारा डामरा कुण जावां री ।  
 नंगा जमगा काम लां म्हारे म्हा जावां हरयावां री ।  
 नामशर छ नाम लां म्हारे मद् जावां म्हा बरबारां री ।  
 हेहा मेइया काम लां म्हारे मेइया भिम धरदारी री ।  
 कांभ कजीर धु काम लां म्हारे बहुरमा जल री सार्यां री ।  
 गौगा कपो धु काम लां म्हारे हीरां री म्हीनारी री ।

माग हमारी जाग्या रे रखारुकर म्हारी धीर्या री ।  
 प्याडा भमरत छाह्या रे कुछ ग्रीवा कह्या मीर्या री ।  
 भगवत जग प्रभु पर्या पावा जावा जावा, जवा दूर्या री ।  
 मीर्या रे प्रभु गिरवर नामर मनरथ कर्या पूर्या री ॥

—डाकोर, पद १३

नवीन छंद

मीर्या के छन्द पदों में नवी मौलिक छन्द-योजनाओं का भी वर्णन होते हैं ।

काशी की प्रति में दो पद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । पद संख्या ७० में २८-२८ मात्राओं की दो पंक्तियों के साथ १९ मात्रा का एक टुकड़ा जोड़कर एक नया छन्द बना दिया है

बीर्या ना कोई परम खेही म्हारो सणैसा जाना ।  
 बा बिर्या कम हीरी म्हारो हम पिय कष्ट लगाना ।  
 मीर्या होसी पावा ।

इसी प्रति के १०२ वें पद में इस व्यवस्था का भी स्वच्छन्दतर रूप दिखायी पड़ता है । उसमें अन्तरे के मात्राबोध और धर्मावस्थकता की दृष्टि से साथ में जोड़ी जाने वाली इस पंक्ति का रूप छोटा बड़ा कर दिया गया है । यह कहीं १० कहीं १२ और कहीं १४ मात्रा की है ।

बिरह बुझ मारी	= १० मात्राएं
पावा ना री मुरारी	= १३ मात्राएं
स्याम मन क्या मी बिसारी	= १४ मात्राएं
ममो जायी दासण तारी	= १५ मात्राएं

डाकार की प्रति के १७ वें पद में प्रत्येक पाद के उत्तरार्ध में १० मात्राओं की पंक्ति है । इसी के साथ पद में छन्द उल्लेख किया है ।

पिया बिरह रह्या न जाना ।  
 तन मन जीवण प्रीतम बारया  
 निरुण्णि जोवा बाट करकप मुभावा ।  
 मीर्या र प्रभु पासा मारी दासो कंठ सावा ।

इस कोटि में इन बातों की वृद्धि छन्दों को भी पिया जा सकता है, जो वैज्ञानिक रूप से तो छन्दशास्त्रानुमोदित (प्रसार-मयति के अन्तर्गत) है ।

दिबस ना भूख निदरा रेणा मुसधु कहा जाय ।  
 कोण सुखे कायू कहिएं री मिल पिय तपणु बुझाय ।  
 कय तरघाबी अन्तरजामी घाय मिको दुख जाय ।  
 मीरा दासी जनम जनम री पागे नेह सगाय ।

—काशी पद, ९०

सीसरे बर्ग के मीरा के बे पद हैं जिनमें एक से अधिक छन्दों का संयोग मिलता है । ये संयुक्त छन्द बहने जा सकते हैं । जिस प्रकार कुण्डलियाँ या छप्पम में दो पूर्ण छन्द आकर मिलते हैं मीरा के पदों में उस प्रकार के दो पूर्ण छन्दों के संयोग न होकर अनियमित चरणों के संयुक्त रूप मिलते हैं ।

डाकोर की प्रति १४ वें पद में ताटक के चरणों के बीच में दो चरण साक्षणिक जाति के छन्द के आकर दिये हैं । इसी प्रति के २५ वें पद में मुक्कामणि छन्द के सात चरण के साथ एक चरण हरिपदी का और एक चरण नास त्रिक जाति के किसी अनाम छन्द का जोड़ दिया है ।

(क) पिया घारे नाम कुमाणी जी ।

नाम केता निरता सुध्या सुध्या जग पावण पाणी जी ।  
 कीरत काई ना पिया बणा कम कुमाणी जी ।  
 गगुबा कीर पड़ावता बैकुंठ पमाणी जी ।  
 घरम नाम कुंवर लया दुप घनक चटाणी जी ।  
 गड्ड छाड़ बपु पाइया पमु-बूण पटाणी जी ।  
 प्रजामेज अब ऊबरे जम नास मसाणी जी ।  
 घुतनाम जग पाइया जम सारा बाणी जी ।  
 मरणागत ये बर दिया परतीत पिछाणी जी ।  
 मीरा दासी राबमी अपली कर बाणी जी । —डाकोर, पद २५

(ग) बड़े बर छारी सागा री पुरवसा पुन जगाबा री ।

भोइइया री कामणा म्हारा डाबरा कुण जाबा री ।  
 गंगा जमणा काम ला म्हारे म्हा जाबा दरपाबा री ।  
 कामनार रा काम ला म्हारे मेद जाबा म्हा दरवारी री ।  
 इइया मइया काम ला म्हारे मेदया मिल भरवारी री ।  
 काब कबीर सु काम ला म्हारे बइस्या धण री सार्या री ।  
 लीया र्पा सु काम ला म्हारे हीरा री व्यीवारी री ।

भाग हमारी आग्यों रे खणकर म्हारी शीर्यों री ।  
 प्याको भग्न छाड़्यो रे कुछ शीर्यों कह्यो शीर्यों री ।  
 भगत जणा प्रभु परनो पानी जाना जाना, जतों दूर्यो री ।  
 मीरों रे प्रभु गिरधर भागर मनरथ करव्यो पूर्यो री ॥

—डाकोर, पद १३

### मवीन छन्द

मीरों के घनेक पदों में गयी मौलिक छन्द-योग्यताओं के भी दखन होते हैं ।

काशी की प्रति में दो पद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । पद संख्या ७० में २८ २८ मात्राओं की दो पंक्तियों के साथ ११ मात्रा का एक टुकड़ा जोड़कर एक नया छन्द बना दिया है

शीर्यों ना कोई परम सनेही म्हारो सरोसा जाना ।  
 बा बिरयो कग हीछी म्हारो हस पिय कंठ गगानी ।  
 मीरों होखी पावो ।

इसी प्रति के १०२ वें पद में इस व्यवस्था का भी स्वच्छन्दतर रूप दिखायी पड़ता है । उसमें अन्तरे के भावबोध और अचानकता की दृष्टि से साथ में जोड़ी जाने वाली इस पंक्ति का रूप छोटा बड़ा कर दिया गया है । यह कहीं १० कहीं १२ और कहीं १४ मात्रा की है ।

बिरह कुल भारी	= १० मात्राएं
आया ना री मुरारी	= ११ मात्राएं
स्वाम मन क्या मी बिसारी	= १४ मात्राएं
मजो जागी बासण ठारी	= १४ मात्राएं

डाकोर की प्रति के १७ वें पद में प्रत्येक पाद के उत्तरार्ध में १० मात्राओं की पंक्ति है । इसी के द्वारा पद में अंततः उत्पन्न क्रिया है ।

पिया विण रह्या न जाना ।  
 तन मन जीबण प्रीतम बारया  
 निराविण जोना बाट करवण गुमाना ।  
 मीरों रे प्रभु आसा जारी दासी कंठ आना ।

इस कोटि में उन आठक और दसक छन्दों का भी स्थान है जो संज्ञान्तिक रूप से तो छन्द-शास्त्रानुसारित (अनुसरित) हैं, किन्तु



पर किसी प्रचलित छन्द के अन्तर्गत नहीं आते कुछ का तो नामकरण भी नहीं हुआ।

### जातिक छन्द

बाका मम वा बमणा कां तीर ।

वा बमणकां निरमङ्ग पाखी सीतङ्ग होयां सरीर ।

बंसी बजावां पावां कान्हा संग लिया बसवीर ।

मोर मुकुट पीताम्बर सोहा कुङ्कुम मलक्यां हीर ।

मीरा रे प्रभु गिरकर नागर कीह्या संव बसवीर ॥ —डाकोट, पद ७

इसमें २८ मात्राएँ हैं, जो यौगिक जाति के छन्दों की विशेषता है, पर इस जाति के किसी प्रचलित छन्द-हरिगीतिका (अन्त 15) विधाता (पहली आठवीं और १३ वीं मात्रा मधु) सार ( अन्त 33 ) पञ्चम ( आदि । अन्त 3 ) के समान इसमें नहीं मिलते।

### दण्डक छन्द

क—३३ मात्राओं का दण्डक छन्द—

काँच कवीर धुं काम एा म्हारे बड़िया बस री सारूपां री ।

सीणा क्यां धु काम एा म्हारे हीरा री ध्यापाए री ।

(इस मसाल का निर्वाह केवल दो पंक्तियों में ही हुआ है)

—डाकोट, पद ६४

ख—३४ मात्राओं का दण्डक छन्द —

धावण मां उमयो म्हारो भणरी भणक सुम्पा हरि धावण री ।

उमङ्ग बुमङ्ग बण मेपां धाया कामण पण भर सावण री ।

बीजां बडा मेहा धापां बरदा छीतल पवण सुहावण री ।

मीरा रे प्रभु गिरपर नागर बैड़ा मयब गावण री ॥

—डाकोट, पद ३०

मीरा ने केवल तुलसी आदि के समान मगहर, बिजया सुमय दिनय और अचरीक आदि प्रचलित तथा ४० या अधिक मात्राओं के दण्डकों का प्रयोग बिलकुल नहीं किया। वस्तुतः ये दण्डक मीरा की आवेष्टपूर्ण रसिम्पन्न अभिव्यक्ति के अनुकूल नहीं हैं। पद की प्रगति से भी इनका येन नहीं बैठना। कुछ परों में किसी बिदिष्ट छन्द के वर्तन तो होते हैं पर कुछ कटि-छाद के साथ। राग में छन्दराजीय दृष्टि से गिनी जाने वाली एकमात्र भाषा का कथ-शब्दिक होना महत्व

नहीं रखता क्योंकि वहाँ स्वर के सहारे ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व करना सरल रहता है। मीरा के पदों में इस स्वच्छन्दता का उपयोग बहुत मिलता है। शब्दार्, पद १३ में चार चरणों में मात्राओं की संख्या क्रमशः २२, २३, २३ है। काशी पद ८४ में मात्राएँ २७, २६, २८, २८ हैं। बिछा-समा की संज्ञा १९६३ की प्रति के पद ७ में मात्रा-क्रम २४, २३, २४, २३ है।

## पूर्ण प्रचलित छंद-पद्धतियाँ और मीरा के पद

मीरा के पूर्ण हिन्दी में निम्नांकित छन्द-पद्धतियाँ विशेष रूप से प्रचलित थीं

- (१) मीरा-पद्धति
- (२) दोहा-पद्धति
- (३) चौपाई-पद्धति
- (४) छप्पय-पद्धति

### मीरा-पद्धति

मीरा के जिस मीरा-पद्धति का अनुसरण किया या वह सिद्धों और सन्तों द्वारा विकसित पद्धति थी। इसमें एक टेक के साथ अनेक तुकाष्ट पाए जाते हैं और प्रमुखतः राग में गाये जाने के लिए रचे जाते हैं। राजस्थान में डिगल भाषा में एक अन्य प्रकार के मीरा भी होते हैं। ये गाये नहीं जाते विशेष ढंग से पढ़े जाते हैं और इनके सिखने की भी खास धीकी है। एक मीरा में तीन या तीन से अधिक पद होते हैं। प्रत्येक पद (Stanza) दोहना कहलाता है। पूरे मीरा में एक ही बटना तथा तत्पय का वर्णन रहता है, जिसे सभी दोहनों में प्रचारांतर से दोहराया जाता है।<sup>१</sup> मीरा पर इस मीरा पद्धति का प्रभाव दिखती नहीं पड़ता।

### दोहा-पद्धति

यद्यपि मीरा ने प्रत्यक्षतः बाह्य की रचना नहीं की पर उनके पदों के विस्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि दोहा छन्द का ज्ञान या मनवाने अत्यन्त कमालमक रूप से प्रयोग किया है। मीरा का संबंध संतों से या और दोहे का

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० मीतीकाल मेनारिया

प्रयोग संतों ने पर्याप्त मात्रा में किया है। दूसरे, बोहा राजस्थान का प्रिय स्थल है। यह वहाँ ब्रह्म (बहुवचन ब्रह्मा) कहा जाता है। बिगल में इसके पाँच भेद प्रसिद्ध हैं—ब्रह्मो पक्षो लूचरी ब्रह्मो खोंडो। मीरी ने इन बिभेदों की उपेक्षा करके अपने सामान्य ज्ञान (११ १२ मात्राओं के कारण) को अपनाया है।

जैसे यही में 'ब्रह्म' के प्रयोग निम्नांकित कव्यों में मिलते हैं

(क) कुछ पवों में तो बोहे क्यो के ल्यों अपने समुष्ण रूप में रख दिये पये हैं। काशी की प्रति के पद संख्या ७७ में 'टेक' में बोहे न लक्षण चित्कार्य हाँ है।

जला लोभां मादकां तावदां खा फिर भाव

११

+

११

सेप पद में भी बोहे रखे हुए हैं

बदन बन्ध परगासतां मन्द मन्द मुखकाय—११ ११ मात्राएँ

मकल कुटुंबा बरजतां बोम्मा बोस बराय—११ ११ मात्राएँ

इत्यादि

(ख) कुछ स्थानों पर बोहों में एकाग्र शब्द जोड़ कर उन्हें पद में जड़ कर राम में मान बोध्य बना दिया है।

(१) कहीं-कहीं संबोधन सूचक ध्वन्य 'रे' या 'री' को ही पढ़ते—दूसरे तथा तीसरे बीजे चरणों के बीच जड़ दिया है। इसमें उसके धातुमित्रा और गेयता के संयोग के कारण विशेष कलात्मकता और प्रभावीत्वादर्यता आ गयी है। निम्नांकित उदाहरण इष्टव्य हैं

पागा प्यु पीली (री) सोप कझी रिड काम

वारसा भव बुलायी (री) गहारी बाह दिलाय

(काशी, पद ७६)

(२) कहीं-कहीं पवों के बीच में बोहे रख दिये हैं और सेप पद की सय के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए दो चरणों के बीच में ४ या ६ मात्रा का कोई शब्द रख दिया है। बाकोट, पद संख्या ४६ में अगले पृष्ठ पर दिया हुआ अंश इसी प्रकार पाहे से बनाया गया है।

मोहन मुक्त सांवरों (सूरत) मीना बनो निगाह ।  
अमर सुधारस मूरती (राजी) उर नैजन्ता मास

उक्त उद्धरणों में बोझों के रूप स्पष्टतः पाद की पक्तियों में झोके हैं ।  
जैसे हुए अंश असंग प्रकट हो जाते हैं ।

(प) कुछ पदों में दोहे के प्रथम या द्वितीय चरण के श्राव किसी अन्य छन्द का संयोग किया गया है । डाकोर की प्रति के पद संख्या १५ में प्रत्येक पाद का उत्तरार्ध और डाकोर की प्रति के पद-संख्या १६ में प्रत्येक पाद का पूर्वार्ध प्रथम दोहे के द्वितीय और प्रथम चरण है ।

१६ में पद के पादों के पूर्वार्ध  
पिया बो पद निहारता  
सखिया सब मिल सीख द्यो  
बिम देख्या कन एा पड़ा  
—इत्यादि

१५ में पद के पादों के उत्तरार्ध  
कुंठन री छब ओर ।  
बाय सोमत ओर ।  
झावर री झकझोर ।  
—इत्यादि

(यद्यपि अर्धसममानीक छन्द के एक चरण के सहाय मिलन से छन्द के चरिताप होने की बात कहना सही नहीं है, पर उक्त उद्धरणों की त्यों द्वारा इस बात की स्पष्टता हो जाती है कि अत्यन्त उनपर दोहे की तय का प्रथम प्रभाव है ।)

सारांश यह है कि भीरी ने अपने पदों में दोहे छन्द का प्रयोग अनेक प्रकार से अनेक रूपों में किया है और रागों के अनुकूल बगान के लिए उसके परम्परागत रूप में परिवर्तन भी किया है ।

## चौपाई-पद्धति

यह पद्धति प्रायः प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त होती थी । कथा के प्रवाह के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त है । जैन प्रबन्ध काव्यों सूफियों की कथाओं, मूर के कथात्मक काव्यों में इसका प्रयोग हुआ था । कबीर के रवीन्द्र-अंस चौपाई छन्द में है । भीरी ने मूर-कबीर-जायसी की तरह चौपाई छन्द का प्रयोग नहीं किया न स्वतंत्र रूप से और न दोहे के साथ मिलाकर । इस पद्धति का अत्यन्त अल्प अनुसरण टेकों की योजना में मिल सकता है । वस्तुतः इसे भी अनुसरण कहना उचित नहीं है क्योंकि १६ मात्राओं की जो टेकें भीरी में मिलती हैं उनके पीछे चौपाई की छन्द-सम्बन्धी विशेषताओं के निर्वाह का तनिक भी प्रयास नहीं है

मीर न बीबाई का सम्बन्ध बनायास ही उसमें मिश्रर सका है बीसा कि बोहे के सम्बन्ध में हुपा है ।

**छप्पय-पद्धति :**

यह पद्धति बीरभाषा कास के काव्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है । छप्पय रोसा तथा उस्ताला के संयोग से बनता है । हिन्दी में उस्ताला के दो रूपों (सम मात्रिक इसे बंदमणि भी कहा गया है और अर्धसममत्रिक) को छेकर छप्पय के दो रूप माने जा सकते हैं । बिगस में तीन प्रकार के छप्पय प्रचलित हैं ।<sup>१</sup> मीरा इनमें से किसी रूप से प्रभावित नहीं हैं । यह छप्पय प्रमुखतः ओज और बीरत्व के भाव के लिए प्रयुक्त होता है । मीरा में मामुर्द की रसधार प्रभाव भी अतः इस पद्धति का अनुसरण उनके लिए स्वाभाविक भी नहीं था ।

इस प्रकार मीरा का काव्य छन्द-विधान की दृष्टि से यह-पद्धति का है, बोहा पद्धति का प्रभाव भी उध पर पड़ा था । अथ किसी पद्धति का अनुसरण-अनुकरण उन्होंने नहीं किया ।

मीरा के छन्द विधान में निम्नांकित विशेषताएँ हैं :—

(१) मीरा ने बिन छन्दों का प्रयोग किया है, वे रसानुकूल हैं । पर और मजन मक्ति-रस के लिए उपयुक्त छन्द हैं ही । चार, सरसी टाटक आदि छन्द बिनका प्रयोग मीरा में अनजाने हो गया है, शृंगार, करुण और भक्ति रसों के लिए अव्यक्त उपयुक्त है ।

(२) प्राथम और अनुभूति की पूर्ण और अत्यन्त रूप से मूर्तिमान करते हैं ।

(३) संगीत के अनुकूल है ।

**पदों की छाप**

प्राचीन तथा मध्यकासीन कवियों में स्पष्ट कविताओं में अपने नाम की छाप डालने की विशेष प्रवृत्ति थी । एक प्रकार से छाप स्पष्ट कविता की अनिवार्य बंध थी बन गयी थी । मीरा

(१) कवित्त=४ चरण रोसा+२ चरण बोहा=६ चरण

मुमकवित्त=४ चरण रोसा+२ चरण उस्ताला=६ चरण

बोहा कवित्त=६ चरण रोसा+२ चरण उस्ताला=८ चरण

क अचिक्रांश पदों में भी भीरी की छाप मिलता है। भीरी की छापों को माटे रूप में वा नागों में विभाजित किया सकता है

- (१) जिसमें बन्धन 'भीरी' नाम आया है। भीरी के आराध्य का नाम नहीं है।
- (२) जिसमें भीरी न अपने नाम के साथ आराध्य के किसी नाम को भी जोड़ दिया है।

पहले वाली छारों में विरोध विविध्य और अनेकरूपता मिलती है। इसमें कुछ छापें इस प्रकार की हैं

- (१) भीरी के प्रभु गिरधर नागर डाकोर, पद २ १ ७ ८, १०  
३८ ४१ ४२ ४३ ४४, ४७  
४८ ५ — काशी पद ८४ ८७  
६२, ६४ आदि

- (२) भीरी रे के प्रभु हरि डाकोर, पद ११ १२ १७ १८, २०  
२१ काशी पद ६१ ६८ १२२

- (२) भीरी के प्रभु हरि अविनाशी डाकोर, पद ६, ८६, १२, १८  
६० काशी पद ७१, ८६, ८, १०१

- (३) बास भीरी नाम गिरधर (डाकोर, पद १४ २६, ६६)

- (४) भीरी के प्रभुनाथ गिरधर ( डाकोर, पद ४० ) भीरी की गिरधर नाम

- (५) भीरी क मुक्तसागर स्वामी (डाकोर, पद ४४) भीरी मुक्तसागर

- (६) भीरी विरहिल गिरधर नाम (डाकोर, पद १६)

इस वर्ग की अचिक्रांश छापें 'भीरी' और भीरी के प्रभु 'गिरधर' के नामों के संयोग से बनी हैं और इनमें सबसे प्रिय छाप है 'भीरी' के प्रभु गिरधर नाम'। डाकोर और काशी की प्रतियों में ही इसका प्रमाण १ पदों में हुआ है। प्रयोग की दृष्टि से इसके पर्याय 'भीरी के प्रभु' छाप का स्थान है, जो बस्तुतः 'भीरी के प्रभु गिरधर नाम' का ही संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है।

मीरा के पदों के छन्दों में बाद में कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। 'मीरा के गिरधर नागर' छाप के विकास की कहानी का 'पाठ' की समस्याओं के समय उत्पन्न किया जा चुका है। गुजराती के छन्दों में 'मीरा के गिरधर नागर' छाप 'प्रभु के स्थान पर संबोधन-सूचक 'हे' माने और उसके 'के' के साथ मिल जाने से बन गई है। मीरा की छापों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे अक्षरों की नहीं हैं कहीं वे पद से अलग टूटी हुई सी नहीं प्रतीत होती। 'कहू गिरधर कबिराज' 'कहू रत्नाकर' वैसे कोटि में मीरा की छापें नहीं रखी जा सकती। सचता है कि ये पद का स्वाभाविक अर्थ है क्योंकि इनसे जो अर्थ निकला है वह दोष पद की अभिव्यक्ति के साथ सामंजस्य रखता है। यही नहीं छाप से निकला अर्थ, प्रायः पदगत भाव के सारांश की व्यञ्जना करता है। इससे कलात्मक सौंदर्य में विशेष वृद्धि हो जाती है।

पदगत भाव के अनुकूल मीरा ने छाप के परिवर्तन भी किए हैं। 'मीरा के सुखसागर स्वामी' छाप के पद में 'प्रियतम के आगमन' से उत्पन्न आनन्द भाव की व्यञ्जना है जिसमें 'मीरा' नाम के साथ सुख सागर स्वामी का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है। अन्तिम दो पंक्तियों से भी यह बात स्पष्ट है।

विधर जाया सुख निरखी पिया ही सुखझमनोर काम

मीरा सुखसागर स्वामी यवन पधारया स्वाम—<sup>१</sup>

पर यह परिवर्तन सर्वत्र अव्यक्त उपयुक्त नहीं है। उन्होंने 'मीरा के प्रभु हरि अविणारी' और 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' छापों का प्रयोग बिना किसी भेद के किया है।

## भाषा

मीराबाई का जन्म मेड़ता (मारवाड़) में हुआ था वहीं उनका चौंसठ और बास्यकाल बीठा चित्तौड़ (मेवाड़) में उन्होंने विवाह के पश्चात् कुछ काल बिताया था। फिर वे कुछ दिनों जय में रहीं भी और अपने जीवन के अंतिम काल में द्वारका बसी गई थी। इस प्रकार मातृभाषा (मारवाड़ी) के प्रतिरिक्त मीरा का अनिष्ट संपर्क मेवाड़ जब और गुजरात की उत्कलान भाषाओं से सम्बन्ध हुआ था।

मीरा की मातृभाषा मारवाड़ी थी। उनके मुख में गुजराती और मारवाड़ी का पूर्णतः मिल्न और स्वतंत्र भाषाएं नहीं थी। इस विषय में एम पी० ऐस्सिटोरी का निम्नांकित वक्तव्य महत्वपूर्ण है।

‘जिस भाषा को मैंने पश्चिमी राजस्थानी नाम दिया है वह धीरे-धीरे अपभ्रंश की पहली चेतना है और साथ ही उन प्राथमिक बोलियों की माँ है जिन्हें गुजराती तथा मारवाड़ी नाम से जाना जाता है। डॉ० जियर्सन ने भी प्रकारान्तर से इसी भाष्य की बात कही है—“यदि राजस्थानी बोलियों पर अब तक किसी माध्य भाषा की बोलियों के रूप में विचार करना है, तो वे गुजराती की बोलियाँ हैं।” ऐस्सिटोरी का उक्त निष्कर्ष सन् १३०० से केन्द्र १६० तक के प्राचीन राजस्थानी और गुजराती के हस्तलिखित ग्रंथों की भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर निकाला गया है। अतः वह निष्कर्ष पूर्णतः विश्वसनीय है।

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का अपनी मूल अपभ्रंस से संबंध-विश्लेषण का काम ईसा की १३ वीं सताब्दी या उसके आसपास निश्चित किया गया है क्योंकि प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का ग्रीक रूप मुन्नाबोध मौखिक में मिलता है और इसका रचनाकाल सन् १२२४ ई० है। यह प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी

(१) पुरानी राजस्थानी डॉ० एम० पी० ऐस्सिटोरी, प्रमु० नामवर सिंह भूमिका पृष्ठ ३

(२) लिखित सचें ऑन इंडिया, बिल्ड ९, खण्ड २, पृष्ठ १५



युग रूप में प्रगल्भी एक भाषा का प्रतिनिधित्व करती है जो गुजरात और राजपूताना दोनों में प्रचलित थी।<sup>१</sup> मीरे-मीरे इस भाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी रूपों में अन्तर आने लगा। पूर्वी (मारवाड़ी) और पश्चिमी (गुजराती) के बिलगाव की प्रक्रिया ईसा की १५ वीं शताब्दी में स्पष्ट मलित होने लगी थी,<sup>२</sup> पर वैसे कि तेस्तितोरी का मत है प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का युग ईसा की १६ वीं शताब्दी के अन्त तक तो रहा होगा कदाचित् इसके बाद तक रहा हो। इसको कुछ विवेचताएँ तो निश्चित रूप से इसके बाद तक चलती रही।<sup>३</sup>

उक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मीर की मातृभाषा वह भाषा थी जिसे तेस्तितोरी प्रादि विद्वान प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी कहते हैं। यह भाषा मारवाड़ और गुजरात प्रदेश में फैली थी और २० वर्षों से अधिक विकास के पक्ष पर चलकर ऐसी स्थिति में पहुँच गयी थी कि इसके पूर्वी-पश्चिमी रूप अलग होकर स्वतंत्र भाषा बनने की प्रक्रिया में थे—उन रूपों में बिलगाव का प्रारम्भ तो हो गया था पर वह अभी संपूर्ण था।

यह निश्चित कि मीर के युग में पश्चिमी राजस्थानी के दो रूप रहे होते—एक वह रूप जो मारवाड़ और गुजरात में फैला हुआ था और १६ वीं शताब्दी में ही स्वतंत्र साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा था। मीर के समय तक आते आते यह सब साहित्यिक रूप हो गया होगा। इस परिनिष्ठित साहित्यिक रूप को प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी कहा जा सकता है। इतना यह रूप होगा जिसे मारवाड़ी का सांस्कृतिक (मीर के समय में) स्थानीय रूप कहा जा सकता। अतः मीर के पदों की भाषा में जहाँ प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के परिनिष्ठित सब साहित्यिक रूपों की संभावना है, जहाँ सांस्कृतिक मारवाड़ी के स्थानीय प्रवासों का हुाना भी स्वाभाविक है।

मीर के युग में अधिकतर उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा और विशेषकर कृष्ण-अभि-साहित्य की भाषा ब्रजभाषा थी। डॉ. सुनीलकुमार चाटुर्गा के शब्दों में यदि हम उत्तर भारत के उस काम की किसी भाषा की

(१) पुरानी राजस्थानी तेस्तितोरी पृष्ठ ८

(२) सं० १५०८ में लिखी गयी 'असक्त विमल' नामक रचना में ऐसे रूप मिलते हैं जिनसे मारवाड़ी और गुजराती के बिलगाव की प्रवृत्ति मलित होती है।

(३) पुरानी राजस्थानी तेस्तितोरी

—पृष्ठ, १०, ११

'वाग्गाही बोली' कहना चाहें तो वह निश्चय ही ब्रजभाषा होगी। चक्रवर्त के काल तक वह पूर्णतया प्रचलित स्वाभाविक प्रयोग की भाषा बन गई थी।<sup>१</sup> पूर्वी राजपूताना और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में तो उस समय समग्र-ब्राह्म की भाषा (ब्रजभाषा) का ही एकछत्र राज्य था।<sup>२</sup> विक्रम की १६ वीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते ब्रजभाषा में प्रौढ़ साहित्यिक स्वभाव प्राप्त कर लिया था और धीरे-धीरे वह समस्त मध्यप्रदेश की साहित्यिक भाषा बन गयी थी। जैसाकि कन्नौज के राजकवि राजराजराज (म० १३७-१७७) ने कहा है बनारस मध्यप्रदेश का पूर्वी बिन्दु था। पञ्जाब के कर्नाल जिले का पृथ्वरूप अथवा पिछोवा उसकी उत्तरी एवं घाटू पर्वत पश्चिमी सीमा से दक्षिण में उसका विस्तार घोडाबरी तक था।<sup>३</sup> इससे साहित्यिक ब्रजभाषा के प्रसार के विस्तार की कल्पना की जा सकती है।

पश्चिमी राजस्थान में उस समय दो साहित्यिक भाषाएँ व्यवहार में आ रही थीं एक हिमाल कुमरी दिगल। कुछ सामाजिक साहित्यिक और धार्मिक कारणों से ब्रजभाषा दिगल के घर में नी उमके घाये निकल गयीं थी। बाद में तो वह ब्रजभाषा में ही नहीं पुरभाषा से भी अधिक प्रिय बन गयी।

(१) भारतीय शब्द मन्त्रा और हिन्दी १९५४, पृष्ठ २०

(२) पूर्वी राजपूताना की प्राचीन भाषा—वह प्राचीन पूर्वी राजस्थानी हो चाहे प्राचीन पश्चिमी हिन्दी—मूल रूप में गुजरात और पश्चिमी राजपूताना की भाषा की अपेक्षा गंगा-झाब की भाषा के अधिक निकट थी—पुरानी राजस्थानी लेखितोरी  
—भूमिका पृष्ठ ७

(३) राजस्थान का विपिन साहित्य, भोलीलाक मेनारिया—पृष्ठ ११

(४) मधु भाषा निराला लम्बी करि ब्रजभाषा भोज  
अथ पोपाल पाते लहँ सरस अनोपम भोज

—पोपाल कृत रसविलास सं० १९४४

[अनय जैन संपासय बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सं० १७४९, पृष्ठ ४५]

"पुरभाषा से अधिक है ब्रजभाषा तो है"

[बनसागर बंजार, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सं० १७९९ पृष्ठ १७]

गुजरात में भी १९ वीं शताब्दी के कवि अपनी मातृ-भाषा के प्रतिरिक्त वज्रभाषा में लिखना सम्मान की बात समझते थे। नरसी भास्कर और भूदेराम जिनके वज्र भाषा-काव्य का उत्कृष्ट परिशिष्ट में किया गया है। सूर-मीरा युग के ही कवि थे और इनकी रचनाओं से पता चलता है कि तब वजी प्रौढ़ साहित्यिक रूप धारण करके गुजरात तक सम्मान व्याप्त थी।

इस प्रकार मीरा के समय में वज्र-भाषा अधिकांश उत्तरी भारत की कृष्ण भक्ति की भाषा थी। कृष्ण-भक्त कवि वज्रभाषा में रचना करना सम्मान और कदाचित् भय की बात समझते थे क्योंकि यह उनके धाराध्य की सीमा भूमि की भाषा थी। बंगाल के वैष्णव शीत-साहित्य की मिथ भाषा को 'वज्रवोसी' नाम देना इसी धार्मिक प्रवृत्ति का चोतक है।<sup>१</sup> गुजराती तथा राजस्थानियों की वज्रभाषा की रचनाओं के प्रतिरिक्त महाराष्ट्र के महानुभाव तथा बारकरी सम्प्रदाय में उपलब्ध वज्रभाषा की कविता इसी बात की पुष्टि करती है। कारण कुछ भी हो (वज्रभाषा वा कोमल माधुर्य उसका कृष्णसीता भूमि से संबंध मध्यप्रदेश के केन्द्र में पनपना) पर इतना स्पष्ट है कि विक्रम की १९ वीं शताब्दी में साहित्यिक संघ पर वज्र और पूर्वी राजस्थान में वज्रभाषा का एकछत्र राज्य वा पश्चिमी राजस्थान में वह कम से कम कृष्ण भक्तों में वहाँ की साहित्यिक भाषा विप्लव से अधिक प्रचलित थी और गुजरात में उसका पर्याप्त मान था। इस प्रदेश के कृष्ण-भक्तों के लिए उसका धार्मिक पक्ष भी था। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वज्रवासी क्याम सन्तोने के प्रखर में अपना सर्वस्व समर्पित करके शेष सभी से नाछा छोड़ देने वाली मीरा ने अपने भक्तिभाव की अभिव्यक्ति के लिए मातृभाषा के साथ वज्रभाषा को भी अपनाया होगा। गुजरात में गुजराती लिपिकारों द्वारा संवत् १७० के आसपास लिपिबद्ध मीरा के पदों को देखने से उक्त अनुमान की प्रतिष्ठा निर्विवाद रूप से हो जाती है। संवत् १९१२ के गुजराती कवि अविजयरास द्वारा लिखित मुद्रक में मीरा के ओ पद हैं उनकी भाषा का मूल डीबा वज्रभाषा का ही है। गुजराती भाषी लिपिकारों से उन पदों में गुजरातीपन आने की संभावना अधिक है वज्रभाषापरन नै नहीं। अविजयरास जीने गुजराती के विद्वान कवि द्वारा लिखित पदों में प्रयुक्त वज्रभाषा के रूप उनके पूर्व प्रचलित रूप ही हो

(१) मुकुन्दारसेन—बंगला-साहित्येर कथा हिन्दीप्रबुधार पन्ना ०  
भोलानाथ मुद्रक ३९

सकते हैं लिपिकार का सर्जन नहीं है।<sup>१</sup> कहने का तात्पर्य यह है कि मुजरात में लिपिवद्ध प्राचीन पोथियों का सार्य है कि मीरों के पदों में व्रजभाषा-प्रयोग एक वास्तविकता थी।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मीरों की भाषा के संभावित रूप निम्नोक्ति है

- (१) व्रजभाषा का विक्रम की १६ वीं शती का साहित्यिक रूप
- (२) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का साहित्यिक रूप जो मुजरात और भारवाड़ में प्रचलित था।
- (३) सं० १६ • के आसपास मीरों की मातृभाषा भारवाड़ी का लोक-प्रचलित रूप।

मीरों की मातृभाषा के उत्कालीन लोकप्रचलित रूपों का कोई रेखा नहीं है। व्रजभाषा के उत्कालीन रूप घूर, हितहरिषा हरिवात आदि की भाषा में मिल जाते और प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की रूपरेखा आदिनाथ हैतनोडार का बालाबोध, आदिनाथ चरित दसबुद्ध्यान्त आदि ग्रंथों के आधार पर उपलब्ध हो जाती है।

भाषा का स्वरूप : [ सं० १६९५ की प्रति के आधार पर ]

किसी भाषा की रूपरेखा का निर्धारण उसकी व्याकरण-संबंधी विशेषताओं के आधार पर होता है। जीवित-भाषाओं के शब्द-समूहों में धातु प्रदान की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। उनमें परिवर्तन बरसता होता है। सामाजिक राजनीतिक साहित्यिक आदि कारकों से कोई-कोई शब्द कभी-कभी पाच-छ भाषाओं में प्रचलित हो जाता है। मूल भाषा के उत्तम शब्द दो उनसे उत्पन्न कई भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं। पर-रचना में परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है और उसकी मिल्नता क आधार पर ही भाषाओं में भेद किया जाता है। अतः मीरों की भाषा के स्वरूप निर्धारण के लिए व्याकरण की ही विश्वसनीय साधन मानना उचित होगा।

- 
- (१) यह एक प्रति की ही बात नहीं है उस समय अन्य प्रतियों में भी यही बात है, जवाहररा के लिए, संवत् १७०१ की विद्या सभा अहमदाबाद की प्रति—आदि।

प्रस्तुत अध्ययन के आधारभूत पद जिन हस्तलिखित पोथियों में हैं, उनमें सबसे प्राचीन है, डाकोर की प्रति परन्तु यह प्रति अपने मूल रूप में अप्रामाण्य नहीं है। पं. अलिताप्रसाद सुकुस के पास उसकी फोटो प्रति न होकर किसी असावधान लिपिकार द्वारा की गई प्रतिलिपि है। इस प्रति में मापा-जिन्गी दोष बहुत हैं। दूसरी प्रति विद्यासभा मंत्र ग्रहमन्त्राचार्य के संग्रहालय की है। इसका लिपिकान्त सं० १६६३ है और इसको गुजरगोटी के कवि अविजयदास ने स्वयं लिपिबद्ध किया था। केवलक के पास इसमें संगृहीत मीराई ५ पवों की फोटोकॉपी है जिसे अविजय प्रतिलिपि कहा जा सकता है। शेष प्रतियाँ बाध की हैं। सामान्य से परिवर्तनों से व्याकरण के रूपों में परिवर्तन हो जाता है। अन्त्यावली मुहावरे-कहावतें भावि लिपिकारों की गलतियों से अधिक प्रभावित नहीं होतीं। अतएव यहाँ पर मीराई की भाषा के स्वरूप का निर्धारण इसी सं० १६६३ की अविजयदास की प्रति में प्रयुक्त भाषा के व्याकरण के रूपों के आधार पर किया जा रहा है। सम्बन्ध-समूह, कहावत-मुहावरे भावि के लिए अन्य प्रतियाँ को भी आधार बनाया गया है।

एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत विश्लेषण का उद्देश्य मीराई की भाषा का सांगोपांग भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना नहीं, उसकी प्रमुख प्रवृत्ति का निर्धारण है। अतः यहाँ पर कुछ भाषा रूपों को लेकर इस बात के निरुद्ध का प्रवास किया गया है कि सं० १६६३ की प्रति में लिपिबद्ध मीराई की भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थी। इस बंध में दो गई पद संख्या से तात्पर्य इसी प्रति की पद-संख्या से है।

संज्ञा के रूप

मीराई के पवों में संज्ञा स्वरूप धर्मात् अकारान्त आकारान्त इकारान्त और ईकारान्त रूप प्रायः मिलते हैं।

[अकारान्त बरछ पुष्प राजन सुद, ताप सिव (सिद्ध), पीप  
आकारान्त गोविदा नीला पुजा

इकारान्त माठि, पंक्ति

ईकारान्त मोरती होरी गटकी तरंगिनी छबी ]

संज्ञाएँ प्राचीन वज्रभाषा में भी अकारान्त थी पर उसमें अकारान्त रूपों का पर्याप्त प्रयोग होता था जिसका प्राच्य प्रति में विशेष अभाव है।

(क) जिन प्राचीन वज्रभाषा पद्यों के समान मीराई के प्रयुक्त संज्ञा धर्म पुस्त्रिय और स्त्रीलिङ्ग हैं। प्राच्यहीन वस्तुएँ भी व्याकरण की

कृपा से इन्हीं दोनों के अन्तर्गत आती हैं। प्राचीन राजस्थानी में संस्कृति और अपभ्रंश के समान तीन सिंग होते थे।

( १ ) प्राणी—पुस्तिक तथा स्त्रीलिंग  
गिरिधर स मरम ठाकुर भीरौ सी बासो ( पद ६ )

( २ ) अप्राणी—पुस्तिक तथा स्त्रीलिंग  
मुच परे स्नेह बलकलर छूटी ( पद ४ )

( ३ ) वचन ३—दो वचन मिलते हैं। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा प्राचीन ब्रजभाषा दोनों में यही स्थिति थी। प्रम के आदिप्रम में एकवचन मध्यम पुरुष का प्रयोग मिलता है।

कर्ता और क्रम के अधिकारी रूपों में संज्ञा का एक ही रूप दोनों वचनों में प्रयुक्त मिलता है।

( १ ) राम अति तान जयामें (पद—१) राम का प्रयोग बहुवचन के रूप में है, पर इसमें कोई परिण संन नहीं हुआ है।

( २ ) बसल समूबल बस तबि (पद १) समूपण (सामूपाण)  
का प्रयोग बहुवचन में हुआ है,  
पर एकवचन के रूपस कोई  
मिलता इसमें नहीं है।

विकारी रूपों के बहुवचन कई प्रकार से बने हैं—जैसे

नैन—नैनों (—या बोड़कर )

डोरी—डोरीया (—या बोड़कर)—आदि

( ३ ) परसब ( को ) मुरसी को बोर  
गोकुल को बाणी  
मपोदा को पुण्य

( के ) रस के पीये  
बिम्बन के—  
हरि के नाव  
बाही के मनि  
कंस के धोष

की तन की ताप  
प्रेम की माँठ  
मधुरा की नार

धु गोविन्दा तुं प्रीत करत  
चि रह पि बिबेह भई  
बी रवि बी मोही टरत नाही

का रूप प्राचीन राजमापा का है।<sup>१</sup> प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में सर्वत्र कारक में कइ रूप था। जो उसका परवर्ती रूप भी हो सकता है। के कदाचित प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के अधिकरण—संश्रान में प्रयुक्त के का ही रूप है।<sup>२</sup> की राजमापा का स्त्रीलिंग मूल-विकृत एक-बहुवचन का रूप है।<sup>३</sup> मु रूप प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के कारण कारक के सिद्ध का परवर्ती रूप है।<sup>४</sup> पुरानी राजमापा में सौं सौं रूप ही मिलते हैं, तुं नहीं है, धातुमिक रूप में तुं है। पि बी परसगं राजमापा में नहीं है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में बी का प्रयोग प्रचुर रूप में मिलता है।<sup>५</sup>

संयोगात्मक रूप :

समि प्राठ समि एण भीठे धावे ( समय में )  
मनि जाही के मनि ( मन में )  
वरि वरि थी ( हृदय में से )  
करि मुरभी करि ( कर में )  
बुन्दावने बुन्दावने रहेनो ( बुन्दावन में )

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में भविष्यत एवञ्चन के रूप दो ढंग से बनते थे —हि ( हि ) समाकर, तथा प्रकारान्त ढाँचों में अन्त्य स्वर ने एं एँ ईं

(१) राजमापा धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ ८५

(२) पुरानी राजस्थानी लेखित्तोरी पृष्ठ ७२

(३) राजमापा, धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ ८९

(४) पुरानी राज०, पृष्ठ १७

(५) किहा थी=कहा से

बादल थी रवि नीकस्पष्ट=बादल से रवि निकला—पुरानी राजस्थानी पृ० ८२

क्यान्तर द्वारा जैसे धरि सूरि पैदि हयादि ।<sup>१</sup> प्राचीन राजमापा में भी में का धर्म देने वाले समोसारमक रूप इ सगा कर बनते थे<sup>२</sup> पर इस प्रकार के रूपों का प्रचार इतना नहीं था जितना कि हिं, ऐं, ऐ, आदि सगाकर बने रूपों का ।

परस्पा के रूप में प्रयुक्त विशेष रूप

सहीत संगि आदि मिलत हैं, जो राजस्थानी धीर वज्र दोनों में व्यवहार में आते थे ।

सर्वनाम —

प्रस्तुत प्रति में निम्नांकित सर्वनामों का प्रयोग मिलता है ।

कोई	तब न कोई हुक्की
जैसे—जिसी	मनि जे सो भाव तिसी कुछ प्रकाशी
जिते—जि	जिते सुवर मुकन निमुवन के राग
	ति भसाप्यो टोरी
को	को बाले या बट की
उनकी	छठ छाहार उनकी प रो जो(पु री ज)
आपुन	आपुन से भाये
ते	ते बाठ कैन गई
कट्टे	मोच करत नाहे
ति	जल ति त्याग

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में प्रत्ययवाचक तथा धनिप्रत्ययवाचक सर्वनाम के कर्त्ता-कर्म के अर्थ में कोई प्रयोग मिलता है ।<sup>३</sup>

प्राचीन राजमापा में धनिप्रत्यय वाचक सर्वनाम के मूल रूप कोई, कोई और विभुत रूप काहू मिलते हैं ।<sup>४</sup> कोई-कोई का क्यान्तर भी हो सकता है ।

को प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में प्रत्ययवाचक तथा धनिप्रत्ययवाचक सर्वनाम के कर्त्ता-कर्म में को का प्रयोग मिलता है,<sup>५</sup> प्राचीन राजमापा में प्राणिवाचक सर्वनाम के मूल एकवचन धीर बहुवचन में को मिलता

(१) पुरानी राजस्थानी पृष्ठ ६४

(२) राजमापा, पृष्ठ ६०

(३) पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ १५५

(४) राजमापा पृष्ठ ८०

(५) पुरानी राजस्थानी पृष्ठ ११५



है।<sup>१</sup> प्राणिवाचक प्रत्ययवाचक का ही एक भेद है। इस प्रकार प्रत्ययवाचक को दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलता है। उलझी रूप केवल प्राचीन राजभाषा में ही मिलता है। यह दूरवर्ती निष्पद्यवाचक को दिकत बहुवचन रूप उन म की परसर्ब लयाकर बनता है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में संबंध विकारी के रूप में जनकी नहीं मिलता। धातुगिक राजस्थानी में दूसरे कणो रूप मिलते हैं।<sup>२</sup>

काहे प्राचीन राजभाषा में अप्राणिवाचक सर्वनाम के विकृत रूप के रूप में मिलता है प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में केह केहि केहई केह प्रत्येक रूप मिलते हैं काहे नहीं मिलता।

अवधी का प्रयोग — (?)

आपुन प्रयोग अवधी का है। तुलसी धीर केशव के समय में राजभाषा में आ चुका था।<sup>३</sup> प्राचीन पुरानी राजस्थानी में आपणउ आपणयु, आया आदि रूप मिलते हैं। हो सकता है संबंधी संज्ञा ( बहुवचन ) के आपणउ से इस आपुन का संबंध हो।

जैसा—तिसी गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में इसउ जिसउ तिसउ किसउ आदि रूप मिलते हैं।<sup>४</sup> उदित रूप में लउ धीर उसके स्त्रीमय रूप में ली भी मिलता है। घट तिसी प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के तिसउ ( सउ का स्त्रीलिंग ली जाड़ने पर ) में मिल जाता है। इस प्रकार जिसउ या जिसो रूप प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का होना चाहिए मीरा में जैसा मिलता है। अब में ऐसी जैसा लीयो रूप मिलते हैं।

जिते का प्रयोग यहाँ परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण के रूप में हुआ है। ( संख्यावाचक है ) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में 'आदिनाच करिअ' य जेतउ रूप मिलता है। इसका जेतो ही आना स्वाभाविक

(१) राजभाषा, पृष्ठ ७७

(२) अप्पापउ सीताराम लालस राजस्थानी व्याकरण पृष्ठ ८३

(३) केशव—जनि भु भु आपुन लहिण

तुलसी—फल सोचन आपन ली कहि हूँ—

(४) पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ११९

है। प्राबुगिक वज में जिते जिते हतो हते, रूप मिसते हैं। प्राचीन वजभाषा में हती का प्रयोग भी मिसता है। यद्यपि अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन वजभाषा में जिते या जितो रूप अनवय होमा।

जिते संबंधवाचक सर्वनाम भी है और इसका भित्ति सचन्नी है ति। प्राचीन वज में ति नहीं मिसता ते यासे रूप मिसते हैं<sup>१</sup> परन्तु ते और ति रूप प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में आदिनाथ चरित्र और उपदेशमाता बामावबोध में मिलते हैं।<sup>२</sup>

क्रिया

क्रिया के रूपों में वैविध्य बहुत अधिक है। यहाँ पर वर्तमान काल तथा कृदन्त के कुछ रूपों का विवरण दिया जा रहा है।

(क) वर्तमान काल

- (१) (रसिक) करत भ्रुकुम्होरी
- (२) रसिक मासन संधि जलत होरी मिरिपर रस की
- (३) को जानत घर की
- (४) मधुरा की नार नाचती पावती बजावती
- (५) विनोद हासी करत लोक कहत भटकी

करत कीकृत जानत कहत, नाचती पावती बजावती वर्तमान कालिक कदन्त हैं। ये कदन्त रूप निश्चित रूप से प्राचीन वजभाषा के हैं। प्राचीन वजभाषा में वर्तमानकालिक कदन्त के रूप व्यञ्जनान्त वाचुधों में—समाकर बनाये जाते थे जैसे सेवत (नन्ददास १-२७) तथा स्वरान्त वाचुधों में—समाकर बनाये जाते थे जैसे जात (विहारी-१५)। वज में स्त्रीलिंग प्रत्यय के रूप में ती का प्रयोग कम होता है पर होता अवश्य है—बोलती ही (मतिराम ४७)। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी वर्तमानकालिक कदन्त के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार के होते हैं—उदाहरण के लिए क्यतह आणुतु हूतह पड़िह प्रादि।

(ख) पूर्वकालिक कृदन्त :

प्राचीन वजभाषा में व्यञ्जनान्त वाचुधों में  
—इ समाकर पूर्वकालिक बनाते हैं—जैसे करि

- (१) वजभाषा, पृष्ठ ७५
- (२) पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ११२
- (३) वजभाषा पृष्ठ ९९ से उद्धृत

सूर-मात्मन बोरी )<sup>१</sup> मीरी में उपलब्ध रूप इसी प्रवृत्ति के धनुस्म । मोपी छठि घाई । ( भूस पोधी में उठी रूप है )

सब तमि पिय के धनुरामे ।

नारि भानव सुखराखी बेसी—नाचती ।

प्राचीन परिवर्तनी राजस्थानी में भूतकालिक कदन्त प्रायः धातु म-ए ( जैसे खलेखि जरेखि धादि में )-ई जोड़कर ( जैसे लगी लेई जोई में ) बनते हैं । कविता में-ई के बाद प्रायः स्वाधिक या धा जाता है ( जैसे पानीम मारीम में ) मीरी में यह प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है ।<sup>२</sup>

(ग) भूतकालिक कदन्त :

मीरी में भूतकालिक कदन्त का प्रयोग भूतकालिकार्थ तथा विशेषण की भाँति भी हुए हैं । वस्तुतः यह प्रवृत्ति राजस्थानी मुखराठी और पश्चिमी हिन्दी समर्थ है । मीरी के पदों में ये कदन्त रूप निम्नलिखित प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं ।

एकवचन

बहुवचन

भुल्लिय-ओ ( कीनी )

-ए ( लामे लामे )

लौलिय-ई ( घाई )

प्राचीन ब्रजभाषा में भूतकालिक कदन्त बनाने के लिए इन प्रत्ययों का प्रयोग होता था । ( जैसे 'कीनी' 'लामे' 'घाई' 'बनाए'—धादि रूपों में )

'होना' क्रिया के कई और भए रूप वच के विर परिरचित रूप हैं । मीरी में इनका प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है । जैसे 'अग एकित भए विदेह भई'

प्राकृति भूलक संज्ञावाचक विशेषण का एक विशेष रूप बोल है । यह मूर में आया है तुलसी में इसका बोल रूप है । मीरी में बोल ( उच्चारण कदाचित् बोल ) रूप है ।

'बोल भुमट रणसेम महारण' ( पद २ )

एक विविष्ट प्रयोग

क्रिया का एक विविष्ट प्रयोग मीरी में है धादि मोकुल को निवासी । यह कदाचित् प्राचीन परिवर्तनी

राजस्थानी का प्रयोग है । वर्तमान आजाय और वर्तमान निरूपणार्थ में ऐसे अन्य

(१) वही, पृष्ठ १०३

(२) पुरानी राजस्थानी, १७०

प्रयोग मिलते हैं। जैसे ऐबि ( भाव वैराग्यशतक का भाषावर्णन १०२ )  
विरमि ( बही-२५ ) कविता में ये रूप कहीं-कहीं एकारान्त भी हो गये हैं,  
जैसे करे ( पंचाख्यान २५० ) बाले ( कान्हूदेव प्रबंध-७३ )<sup>१</sup>। वचनभाषा में  
इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते।

निरूपण — उक्त विवेचन से पता चलता है कि मीरों के पदों की  
भाषा में प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी और प्राचीन वचनभाषा के रूपों का  
विशाल-नुसार प्रयोग है। ( उन्होंने अपने युग के कव्य-काव्य की साहित्यिक भाषा  
तथा अपनी मातृभाषा के सर्वोत्कृष्टों का मिश्रित प्रयोग अपने पदों में किया  
है ) मीरों की भाषा में कव्य-रूप प्रायः वचनभाषा के ही हैं। अतः इसकी  
भाषा का मूल ही वचनभाषा के अधिक निकट है, जैसे प्राचीन पश्चिमी  
राजस्थानी के प्रयोग भी काफ़ी हैं।

## शब्दावली

शब्द अर्थान्वयिता की बहुलता इकार है। किसी रचना को प्रयुक्त  
शब्दावली के विस्तार-संकोच से उसके रचयिता की भाषागत समृद्धि का पता  
चलता है, उसकी मनोभूमि प्रकाश पर पड़ता है और उसकी रीति का एक रूप  
बाने जाता है।

मीरों में शब्दों का वैभव अधिक नहीं है। तुलसी दूर, मंदराज जैसे  
कहाकार कवियों की तरह उसका शब्द-कोष न विस्तृत है और न वैविध्यपूर्ण।  
इसकी विशेषता कोमल भावुर्य तथा सरल सजीवता में है। मीरों की शब्दा  
वली को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

### (१) उत्तम शब्द

प्राचीन आर्य भाषा के साहित्यिक रूप अर्थात् संस्कृत के विभुद शब्द  
को उत्तम शब्द कहलाते हैं,<sup>२</sup> १६ वीं शताब्दी के काव्य में कवि के पाण्डित्य  
और कलात्मक धार्मिकता के प्रतीक माने जाते थे। मीरों में इन दोनों के प्रति  
वैजायन भावना अदासीनता का सहज भाव या बिना फल-स्वरूप उनके

(१) पुराणी राजस्थानी, पृष्ठ १४८

(२) हिन्दी भाषा का इतिहास, बीरेन्द्र वर्मा, भूमिका, पृष्ठ ७०

काव्य में उत्तम शब्दावली के प्राचुर्य का ध्यान है। इस कोटि के शब्द उनकी दो प्रकार की रचनाओं में ही विद्यमान रहते हैं

(क) निरिधर के रूप-वर्णन वाले पदों<sup>१</sup> धीर

(ख) स्तुति-श्लोक पदों<sup>२</sup> में

धीर उत्तम शब्दावली का विद्यमान ध्यान प्रणय-विकस आत्मनिवेदन के रसिक पदावली में है।

## (२) तद्वसय शब्द

धीरों की काव्य-कला का आडंबरहीन सहज आकर्षण तद्भव शब्दोंपर ही आधारित है। प्राचीन धार्यभाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होकर चले आने वाले ये शब्द लोक-जीवन धीर विशेषकर लोक-हृदय की अनुभूतियों की समीपताओं से परिपूर्ण होते हैं। जो उत्तम शब्दावली में संभव नहीं है। धीरों के पदों में ७० प्रतिशत से अधिक तद्भव शब्द हैं। शेष उत्तम शेष शब्द धीर विशेषी शब्द हैं। कहीं-कहीं तो पदों में दो-चार शब्दों को छोड़कर सभी शब्द तद्भव रहे मिलते हैं। उदाहरण के लिये कासी की प्रति पर-संख्या ७९ में अंतिम पंक्ति को छोड़कर शेष पद में एक भी उत्तम शब्द नहीं है। धीरों की भाषा भाषा के पाठक को इसी कारण कठिन भी प्रतीत होती है पर आत्म-निवेदन के लिए जिसमें प्रिय के समुक्त हृदय की समस्त आकांक्षा-कामना कहनी हो हृदय के साथ बुझीमिली तथा धीरधारिक चिप्टता से मुक्त शब्दावली ही उपयुक्त है।

धीरों के पदों में प्रयुक्त तद्भव शब्दों की एक लघु सूची इस प्रकार है  
 घघवा (डा० १) घटव्या (डा० १३) अशोसणा आसिरो (डा० १२)  
 धांगन धाम्यो (डा० २८) अरव (डा० ३३) घटकी (डा० ९३)  
 अकोर (का ७५) अखड़ा (का० ७१)  
 इमरत (डा० ६)  
 उबारता (डा ३९) उमग्या (डा० ४३) उमगो (डा २१) उपमी  
 (डा० २१) अघरे (डा० २३)  
 मृण (डा २८)

(२) अकोर, पद ५

(३) अकोर, पद १४

- कृप (डा ६) कोल (डा० १३) कलपना (डा० २०) कृबुष (डा० १५)  
 क्षीण (डा० ३६)  
 गल (डा० १७) गछा (डा० २७) गर्भण (डा० ७१)  
 चारया (का० ७४) चितवन (कासी ७३)  
 क्षुया छाणे (डा० १३) छाया (डा० १६)  
 जेनाई (डा० २) जामा (कासी ७०)  
 झरमट (डा० १०) झरता (डा० २७) झरझोर (डा० ६६)  
 ठाढ़ी (डा० १६)  
 डारा (२७ डा )  
 डेमा (मैना)  
 टरस (डा० १८)  
 धाका (डा ३०)  
 दीमा दासरा (डा ३३)  
 धडा (का० ६३)  
 नेह (डा ११) निरक्या (डा० १६) नरबारी (डा० ६ )  
 निरस (डा० ३२) नवा (डा० ४३)  
 पीर (डा १६) परतीत (डा० २३) परमा (डा० ३८) पिठ (डा० ३८)  
 पुखना (कासी ६४) परबारेना (का० ६३)  
 बांकी (डा० ३) बाणी (डा० ११) विषम (डा० २४) बुझावा  
 (डा० २७) विष्टराग्यो (डा २८) बरबना (डा ३०)  
 बिरिया (का ७ ) बिग्नू (का ७८)  
 भौ (डा २२) मूट (डा० १३) मुरभावा (डा १५) मछरी  
 मझर (डा० १२) मयता (डा० ५६) मावा (का ७०)  
 (डा० ३६) मैहा (डा २०) मिरस (डा० २१)  
 राबली (डा० २२) रीवा (डा २४) राती (डा० २६)  
 राचा (डा ४८) रुठपा (का० ६१)  
 ससक (डा० २४) भूग (डा ३८) नटवा का० (का० ७८)  
 बुझमा (डा २२) बिरछ (डा )  
 घमेल (का० ७४)  
 सींच (डा० १) मांझ (डा० २) संगती (डा० ११) मंजोष (डा०, १६)  
 सीब (डा० ३६) सप्तड़ा (का० ७८)  
 हिवरो (का० ७३)

## (३) अनुपनात्मक या अनुकरण वाचक शब्दः

अंग्रेजी में ऐसे शब्दों को 'ओमोमोटोमोइक' शब्द कहते हैं। कहीं-कहीं भाषा के कलात्मक उत्कर्ष में ऐसे शब्द पर्याप्त योग देते हैं। मीरा के पदों में प्रयुक्त कुछ अनुरक्तनात्मक शब्द इस प्रकार हैं

झकझोर भिलमिल, मङ्गङ्गात झर, कलकल लड़प, हहर। ऐसे शब्दों का प्रयोग बीजपूर्व कविता में विशेष होता है। ङिगल-पिगल की मध्यकालीन बीररसात्मक कविता इस प्रकार के प्रयोगों से भरी पड़ी है। हुबन की तरल मधुरिमा की अपेक्षा बाह्य स्तुम व्यापारों के साथ इनका सम्बन्ध विशेष है।

## (४) निरर्थक प्रयोग

अनेक सार्थक शब्दों में अर्थ को सीमा के विस्तार के लिए, उनके साथ जहाँ की ध्वनि के आचार बने हुए शब्दों को जो जोड़कर उनके युग्म बना देते हैं जैसे 'रोटी-ओटी' 'बर-कर' 'पानी-बानी' इत्यादि। इनमें निरर्थक शब्द सार्थक शब्द द्वारा उचित अर्थ के साथ इत्यादि का भाव जोड़ देते हैं। मीरा में भी इस प्रकार के दो-एक प्रयोग मिल जाते हैं जैसे 'सुमरन' के साथ 'उमरन' (बाकोर, पद १७) शब्द का का प्रयोग। व्याकरण की दृष्टि से वे समाहार द्वंद्व के अन्तर्गत आते हैं।

## (५) दिक्क शब्द

मीरा ने बेधन शब्दों के भी अनेक प्रयोग किए हैं। लोक-भाषा के प्रति मीरा की समता के कारण लोक के विमुख अपने शब्द उनके पदों में सहज ही पा गये हैं उदाहरण के लिए ओड़गिया झर्झर, हेड़ा मेड़ा इत्यादि। इन शब्दों का प्रयोग कभी-कभी अनिवार्य होता है क्योंकि इनका सही पर्याय मिलना

- (१) प्राकृत संज्ञाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्द-समूह में नहीं पाते वे जहाँ देहा अर्थात् अनाय भाषा के मान लेते थे। (हिंदी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ ७०) हिंदी के जो शब्द मध्ययुगीन भाषाओं में होकर धाय हो वे हिंदी के लिए धार्यभाषा के शब्दों के समान ही हैं। प्रायः जिन शब्दों की व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता और जो संस्कृत या प्राकृत के मूल से निकले नहीं जान पड़ते, वेग्नज कहलाते हैं।

—कामताप्रसाद बुध हिंदी-व्याकरण पृष्ठ ११

संभव नहीं होता। साहित्यिकता की हानि इनमें एक भय में होती है कि ये व्यापकता और दीर्घकालीनता दोनों दृष्टियों से अर्थ-बोध को सीमित कर देते हैं।

## (६) विदेशी शब्द

विदेशी शब्दों का प्रयोग यहाँ में अधिक नहीं है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

### अरबी शब्द

- सखी — मोरों के प्रभु अरबी म्हारी सब सबेर कुच कारण<sup>१</sup>  
 सख — सब ठाढ़ी सख करों गिरवायी<sup>२</sup>  
 मोहर — मोहर कीमत मोहरों बाप्पा<sup>३</sup>  
 मोहरी — मोहरी  
 कीमत — कीमत

### फारसी शब्द

- बाक — बाकरी म्हाणे बाकर राजां भी  
 बाकरी या बरखण पासु<sup>४</sup>  
 बरखी — बखीं सुमरण पासु बरखी<sup>५</sup>  
 बरख — बख हेरी म्हा ली बरख बिवाली  
 बिवाली — बीवानी म्हाणें बरख न बाप्पा कोय  
 बर — बरख री मारुयां बर-बर बोस्थां  
 व्याली — व्याला राजा भोग्या बिकरो व्यालो<sup>६</sup>  
 गुमया — गुम पाय गुमयां मूठजां मेय गुमयां रोय<sup>७</sup>  
 बेबाज — बिबाज जुग-जुग पीर हरां भगतां री लीस्यां मोच्छ  
 बिबाज<sup>८</sup>

(१) बाकरी, पद ३४

(२) बाकरी पद १९

(३) बही, पद ३५

(४) बही १९

(५) बही, पद ३५

(६) बही १८

(७) कासी, पद १०९

(८) बही ३५

(९) बही पद ३५

(१०) बही पद १९

(११) बही, २१



घरबी और फारसी शब्दों के प्रयोग मीरा में अधिक नहीं हैं। सूर की अपेक्षा बहुत कम हैं। मीरा मुसलमानी संस्कृति से प्रभावित प्रवेश (यागरा-विस्ती) में बिछप नहीं रही। व्रज की यात्रा के समय उन्पर से गुजरी मर भी। अतः घरबी और फारसी के ये ही प्रयोग मीरा के पदों में मिलते हैं जो कदाचित् प्रकाशिन जोक-भाषा में अनुमिलकर उही शब्द-समाज के बंध बन गये थे।<sup>१</sup> इस दृष्टि से मीरा की स्थिति परमानन्ददास जैसी है जिन्होंने घरबी-मगरी शब्दों के प्रयोग अधिक नहीं किये।

मीरा ने विदेशी शब्दों का प्रयोग उनके मौलिक रूप में नहीं अपितु अपनी भाषा-श्रानियों के अनुरूप समुचित परिवर्तन करके किया है। होसकता है कि मीरा को यह परिवर्तन श्रम न करना पड़ा हो। भारतीय शब्दों के साक्षर से प्रभावित होकर और शब्द-राजस्थानीभाषी समाजों द्वारा प्रयोग की शरार पर बढ़कर ये शब्द इसी रूप में मीरा को मिले हैं। उस समय इन शब्दों की स्थिति कुछ-कुछ ऐसी ही थी जैसी कि संस्कृत के शब्द उत्सव शब्दों की। अतः, मीरा ने जिस रूप में उनका प्रयोग किया है वह रूप विदेशी शब्दों को छोड़कर आया है। 'प्यासा' मीरा के वाक्य में 'प्यासो' बन गया है। बीबानी बीबाणी एवं बरत और सपीं करपीं होकर आये हैं। विदेशी शब्दों में स्वरचना संबंधी परिवर्तन भारतीय पद्धति से किये गये हैं जैसे 'गुम' बिघोष है उससे किया बनायी है 'गुमाया' (गुमाना का भूतकालिक रूप)

मीरा में विदेशी शब्दों के कम प्रयोग के निम्नांकित कारण हैं

- (१) मीरा नाटी थी। हिन्दू परिवार की नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा प्रायः परंपरागत संस्कृति से अधिक चिपटी रहती हैं। बाहरी सामाजिक परिवर्तन उन्हें इतना प्रभावित नहीं करते जितना पुरुषों को।<sup>२</sup> मीरा की स्थिति बृहदार में बन्ध नारी की सी नहीं थी फिर भी पुत्री और

(१) पुरुषों हिंदी के कवि तुलसी पंडितजी हिंदी के कवि सूर और गुजराती के कवि मरती मेहता की भाषा में ऊपर के कई शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

(२) सापुनिक युग में स्वतंत्रता के पूर्व पंजाब में पुरुषों ने उच्च स्वीकार कर ली थी तब भी स्त्रियाँ हिन्दी ही पढ़ती थी क्योंकि सांस्कृतिक परंपरा के निष्ठ हिन्दी ही थी और सामाजिक आतावरण उन्हें के पास में था।

पत्नी' के रूप में उनकी भीमाएँ प्रबल्य थीं । घत सामाजिक बाधा वर्णन में पैमाने वाले शब्दों की प्रयत्ना जो राज्य पर घोर परिवार के भीतर तक पहुँच कर जीवन में बुलमिस गये व उनका प्रयास मीरा के लिए अधिक स्वाभाविक वा कमसे कम प्रारंभिक अवस्था में ।

- (२) घरकी पारसी के प्रभाव का प्रमुख कम्प दिस्ती-आगरा का क्षेत्र था मीरा उन क्षेत्र में बुर रही । कबल एक बार हजर यात्रा के लिये प्राप्ती थी ।
- (३) मीरा के काव्य की भूमिका सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष व्याप्त नहीं थी । उन्होंने वैयक्तिक आध्यात्मिक अनुभूतियों के चित्र संकित किए हैं जो समाज-विरोधी न होने हुए भी समाज का अक्षत नहीं करते ।

इस सामाजिक चित्रण के प्रभाव के कारण उत्पत्ती सामाजिक जीवन के अनेक राज्य मीरा-काव्य में मही है, दूसरी ओर, वैष्णव धर्म की प्रचलित शब्दावली का बाहुल्य है । इसलिए घरकी-घरमी के शब्दों के लिए गुंजायस कम थी ।

### मुहावरे और लोकोक्तियाँ

मुहावरा घरकी का राज्य है जिसका अर्थ है बोलचाल या बातचीत । जब इनका प्रयोग 'मातृमित्र या कश्चित् व्यापार' में रूढ़ वाक्य वा प्रयोग के लिए होने लगा है ।<sup>१</sup> वस्तुतः मुहावरे भाषा की शक्ति का संवर्धन करने वाले विद्यम प्रयोग हैं । इनसे भाषा में एक प्रकार की निकटता प्रयत्न और घरलु पन का भा भाव आ जाता है ।

लोकोक्तियाँ मानव-समाज के युग-युग में संक्षिप्त अनुभव की व्यक्त करने वाले सरल सूत्र हैं । अनकार-शास्त्र में लोकोक्ति को एक अनकार के रूप में भी स्वीकार कर लिया गया । इससे स्पष्ट है कि काव्य-शास्त्रियों ने भी लोकोक्ति को भाषा की शक्ति का उत्कर्षकारक और सामान्य शक्ति से अधिक सबल और सुन्दर माना है । साथ ही अपनी इस अज्ञानी रचना पर मुख ही है ।

मीरा के काव्य में लोकोक्तियों के प्रयोग का प्रायः अभाव है । 'बिर छर' जो पाठ दुःखा सम्या ना फिर डार,<sup>२</sup> 'बौह मही री लाज'<sup>३</sup> जैसी दो बार

(१) बृहत् हिन्दी कोष—आन-मण्डल, १०७५

(२) डाकोर पद्य ६७

(३) वही, पद्य ६४

नाद-सीर्ष्य—बर्ण-जयन और योजना की सबसे बड़ी सफलता उसमें भावानुकूल नाद-सीर्ष्य की सृष्टि करना है । मीरा स्वयं पाती थीं । संगीत का उन्हें अच्छा ज्ञान था । उनके बर्णों में नाद द्वारा धर्म का ध्वनित करने की तुलसी-जैसी अनुसूत सामर्थ्य है, यह कहना तो अत्युक्ति होगी पर उनकी बर्ण-योजना नाद द्वारा विषयानुकूल वातावरण का निर्माण प्रायः सफलतापूर्वक कर सकी है । उदाहरण के लिए—

‘रंग मरी राग भरी राग रू मरी री ।  
होती केत्या क्याम संव रंग रू मरी री ।  
उकत दुसाज सास बाबरा रो रंग सास ।  
विचका उड़ावा रंग रंग री मरी री ।’

यह में ‘रंग रंग री मरी री’ शब्द अपने नाद के प्रादीन से मस्ती और उत्साह की ऐसी स्वच्छ परिस्थिति को स्थापित कर बैठे हैं जो पद के मूल वस्तुत्व की अनुकूल और सावक परिबेध प्रदान करता है । लगता है कि बरसत हुए सुख की ठाल-सय पर बर्ण स्वयं स्वच्छ-से उत्साह से बिरहते हैं ।

बर्णों के बिजों में यह कीचल बिशेष है । गीत की मंगल वेसा में बर्णों का कोमल रूप कुशल ध्वनि-योजना द्वारा ही प्रतिमान हो जाता है ।

‘बरसाँ री बरियाँ सावन री सावन री मन मान री ।

मगुक बुध्या हरिभाबण री ॥’

इन दो पंक्तियों में कोमल और मधुर बर्णों का प्रधानतः ह्रस्व रूप में प्रयोग बहु समीपस्थ वातावरण बना होता है, जो सुगों के पदवात् प्रियागमन की मनक से उत्पन्न मुखामुखी की स्वाभाविक प्रतिक्रिया बन जाता है । इसी प्रकार ‘कंचन बसत कसीटी जैते’ की मंथर गति और कोमल बर्ण-योजना दीपकालीन विषय कोमलता को ध्वनित करती है और उनके पदवात् जब वे कहती हैं कि ‘तन रझी बारह बानी’ वो ‘रझी’ का आवाज तथा ‘बारहबानी’ में ‘बा’ की दीर्घता एक भावपूर्ण आशेष की व्यंजना करती है जिसमें उनके दृढ़ संयमित धारम बिरहास को चिह्नित करने वाला रागात्मक वातावरण बन जाता है और धर्म के प्रति ऐसा ही मार्थक धारमसमर्पण ‘नाद में सुख समस्तक सीध की सृष्टि कर देता है ।

(१) काशी पद ७३

(२) बाघोर, पद ५०

माधुर्य गुण—शृंगार परम मधुर और चरम आह्लादप्रद रस है। वस्तु-  
रस-गन्ध है। माधुर्य नक्ति इसी महामहिम का आध्यात्मिक संस्करण है। मधु-  
रिम ध्वनियों का प्रकृतया माधुर्य माध के साथ विषय आत्मीय सम्बन्ध है। मीरा  
के प्राण ता धनुराम की प्रकथनीय माधुरी से संसिक्त व अतएव उनकी  
धनीय प्रणयामिष्यक्ति में माधुर्य गुण की प्रधानता स्वानाविक है। विषय  
की व्याप में उसका विस्तार का प्रकाश और भी अधिक हुआ गया है।

चित्त को शीघ्र या उत्तेजित करने वाले धौञ्जगुण प्रसंगों का मीरा के  
जीवन और काव्य दोनों में बाढ़ी प्रभाव है। उनके पदों में 'कामीरह  
नायना' और 'बाणुर-मृष्टिक-बब' जैसे कठिन उदाहरण मिल जाते हैं। पर  
ये सब अल्पम मात्रा में ही हैं और इनमें मीरा की आत्मा नहीं रही।  
विशेष मन्त्रों के साथ ही व प्रवेश पाये हैं। हाँ प्रभाव गुण मीरा के  
काव्य की व्यापक विद्यता है। धर्म का पुर्ण कर देना जाना याचना उनकी  
धर्मिण्याक्ति में नहीं नहीं है। जो न गृह्य के अनेक तम में खोई हा न बायकी  
कल्पना के पक्षों पर समशीयता के स्वयं-स्वात मीर्य का आश्रय हो। उसकी  
धर्मिण्याक्ति अशक्य से पीड़ित बैठ हा सकती है ?

## शब्द-शक्ति

शब्द की उपादेयता धर्मिण्याक्ति में है। वही उसकी आन्तरिक  
नामधर्म्य या शक्ति है। उसका अभाव में शब्द निष्कार और उनकी उपा-  
याहीन है। इस शक्ति (धर्म्य-शक्ति) के तीन प्रकार माने जाते हैं—  
धर्मिण्याक्ति और व्यञ्जना। विज्ञान इस बात पर पूर्णतः एकमत नहीं है  
कि शब्द काव्य के मूल में किस शक्ति का धर्मिण्याक्ति व्यापार होता है। पर  
बहुधा सभी शक्तियों का अभाव-अपना महत्व है। वे धर्मिण्याक्ति की श्रेष्ठता  
की अतिरिक्त नहीं हैं। शब्द-शक्ति के प्रकार हैं। अतएव व एक दूसरे की  
पूरक हैं विरोधी नहीं। मीरा के काव्य में धर्मिण्याक्ति और व्यञ्जना की प्रधानता  
है। अतएव उसमें शक्ति है।

(क) धर्मिण्याक्ति — शब्द के मुख्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति  
धर्मिण्याक्ति है। वाचि गुण किया तथा इत्य का बोध इसी के द्वारा होता है।  
मीरा के काव्य में कृष्ण के रूप और उनकी लीलाओं के वर्णन में धर्मिण्याक्ति का  
प्रभाव है। उदाहरण के लिए :

कुप्यु का रूप-चित्रण मोर मुगट पीताम्बर सीहां कृंदम भ्रमर्या हीर  
 मीरा के प्रभु गिरधर भागर कोइया संय बनबीर ॥<sup>१</sup>  
 भयवा धांसो म्हांसु साया भिग्रावन नीका ।  
 पर भर तुलसी ठाकर पूजा वरसस गोविन्दजी का  
 निरमल नीर बहू का बमणा का भोजन बूब बही का ।<sup>२</sup>  
 कुप्यु-सीसा के पंकज कालिन्धी बहू नाय माप्या काल फण-फण निरस कटा  
 क्यूा बन म्हातर छा कट्यां व एक बाहु प्रकाश ।  
 भयवा शोपरी की भाव राखी तुम बड़ायो थीर ॥<sup>३</sup>

ये बहान संक्षिप्त घोर मीरा की मधुर भावना में मिपटे रहने के कारण वेसे हीरस नहीं हैं जैसे कि मूर के भोजनार्थ के मन्त्रे चितरस-बर्हल हैं<sup>४</sup> पर वाम ही इनमें मूरकृत वासस्वचित्रण की स्वभावोच्छियों की कोटि की सरसठा थीर कलात्मकता भी नहीं है । अभिषा का अत्यन्त कलात्मक घोर भाविक प्रयोग मीरा की अपनी हल्का आकाशा स्थिति धारि के सङ्ग घोर सीपे कमनी में है ।

म्हरी से गिरधर गोपाल बूछरी न क्यूा ।

बूछरी न कोवा माया सकल लोक पूवा ।

सजन मुधि क्यो जानै त्यों सीजे ॥<sup>५</sup> इत्यादि

इन कमनी में यद्यपि उनकी लौकिक प्यवा थीर धनीकिक धनुराव की भाविक व्यंजना भी होती है, पर इसमें कमत्कार प्रमुखता अभिषा का है । ऐसे चित्रों की तुलना मूर की 'अदोखो देवकी सौ कहियो' जैसी रसवित्त पंक्तियों से की जा सकती है ।

(१) डाकोर ७

(२) नागरीदास ३

(३) डाकोर, ८

(४) बही ३२

(५) नागरीदास ४

(६) गुरदास (सभा) दण्डमार्कण्ड ४४ १२ १३

(७) डाकोर, १

(८) नागरीदास ५

(क) लज्जाला — अतिशय से जहाँ काम नहीं चलता वहाँ रुढ़ि या प्रयोजन के आधार पर उससे संबंधित धर्म लगाया जाता है। इसी को लज्जाला कहते हैं। लज्जाला अंगार को गोबर या दुग्ध के माध्यम से प्रपट कर देती है। इसके सहारे अन्न अपनी मंगिमाओं से बहुत कुछ कह जाते हैं। मीरी के पदों में लज्जाला का सीधे विशेषकर क्रिया धीरे बिघपण पदों में दिखाई पड़ता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

क्रिया-शब्द

लमल्लो	बाका चितवन नैला समानी ।'
घटके	म्हारे नैला निपट बकट छब घटके ।'
घाबाँ	घाबा मोहणा बी जोबाँ पारी बाट ।'
लुमाखी	पिमा धारे नाम लुमाखी बी ।
लमगना	घाबण मा लमगना म्हारे मन री ।'

विशेष-शब्द

प्यासा	भूम'
बकट	छब'
बाका	चितवन'

मीरी के पदों में लज्जाला का वैभव विशेष नहीं है। उन्होंने परंपरागत प्रयोगों को ही अपनाया है। इस दृष्टि से न लम में सूर का सा विस्तार है, न महादेवी की सी कुशलता। उनकी प्रमुख विशेषता मार्मिकता की दृष्टि है। 'बाँकी चितवन का लयन में समा जाना' और 'भूमि का प्यासा होना' इन उक्तियों ने मूल वस्तुओं की हृदय के चिर परिचित और मार्मिक सत्यों से बाँध कर रामात्मकता की जगाने की अद्वितीय सामर्थ्य प्रदान कर दी है और इसमें सहारा मिला गया है लज्जाला का।

- (१) डाकोर पद संख्या ३
- (२) वही पद ५
- (३) वही पद १३
- (४) वही पद २५
- (५) वही पद ५०
- (६) वही पद ४६
- (७) वही पद २
- (८) वही पद ३

(ग) व्यञ्जना — यमिना भीर ललछा के बिराम सेने पर कमी-कमी एक बिशेष धर्म और निकलता है जिसे व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं। इस प्रकार के धर्म को व्यक्त करने की शब्द की सामर्थ्य व्यञ्जना शक्ति कहलाती है। मीरा का काव्य मूलतः व्यञ्जनाप्रधान काव्य है। उसमें भी प्रमुख है भावव्यञ्जना वस्तु-व्यञ्जना का स्थान घीन है और भासकार-व्यञ्जना का अभाव है।

‘सखी म्हारी नीद मसानी हो

पियरो पंख निहारता सब रेणु बिहाखी हो ।’

पपीया म्हारा कजरा बेर चितामा ।

म्हा सोबू छी अपने भबखुमा पियुकरता पुकारा ॥’

इन उद्धरणों में उत्कट विरह की विकृत व्यथा की ही व्यञ्जना है।

‘उड़त गुलाम सान बाबर रो रंग सान

पिचको उड़ावा रंग रंगरी भरी री’

इत

पर में हृदय का संयोजकत्व उल्लास न यमिना द्वारा व्यक्त है, न बखला से इसका संकेत व्यञ्जना से ही मिलता है। इसके ‘सान’ और ‘रंग री भरी’ शब्दों में प्रत्ययमूलक रस की स्वच्छ प्रगुप्ति की कितनी मनोहर सांकेतिक अभिव्यक्ति है? जगता है कि जैसे प्रगुत्पत्ति की ही बर्ण हो रही हो। इसी प्रकार बाबर के प्रसंग मीरा के प्रणवी मन की चिर आशाभंगी प्रतीक्षा-विकृत साज को व्यक्त करते हैं। वे कहती हैं

सुध्या री म्हारे हरि पाबांगा पाब ।

म्हैड़ा बड़ बड़ जोबां सजली कज पाबां महाराज ।

बापुर मोर पपीहा बोस्या कोइल मबुरां साब ।

उमग्या ईह बहुत बिस बरसां रागण छोड़्यां साब ।

बरती रूप नवां नवां बरया ईह मिलण रे काब ।

मीरा के प्रभु गिरधर मापर बेम मिसयो महाराज ॥’

इसमें प्रणयिनी मीरा ने ‘इन्द्र के उमगने चारों बिस बरसन और शमिनी के साज छोड़ने’ का चित्र धीकृत करके अपने साज भरे उमग मारी मन की कामना की वैसी संघट पर धर्मस्पर्शी व्यञ्जना की है ?

(१) डाकोर, पृष्ठ ३९

(२) वही पृष्ठ ३८

(३) वही पृष्ठ ४५

वही एक भक्ति-रस का संबंध है वह भीरी के पदों में व्यंग्य ही है। भक्तिगत माधुर्य के स्वाभाविक सहज और उदात्त भाव की मार्मिक व्यंजना करने वाली इतनी निष्कलम आत्माभिव्यक्ति प्रायः बिरल है। उन्हें साहित्य के महान मंच पर बरेल्य ब्रह्म का योग इसी प्रकार की भाव-व्यंजना को है।

## चित्रण

अभिव्यक्ति-कौशल में चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। जो कलाकार चित्रने ही सबीब और स्वाभाविक चित्र प्रकट करता है, उसके काव्य की सहजता और प्रभावोत्पादकता उतनी ही बढ़ जाती है। भाव तो व्यंग्य होता है। इसलिए चित्र प्रायः विभाव और अनुभावों के ही प्रकट किये जाते हैं।

(क) आत्मन के चित्र—भीरी की प्रेमाभक्ति का प्रमुख कारण विरह का रूप-व्यापार-सीधर्म है। उन्हीं के आकर्षण ने उन्हें इस असीमिक प्रलय-संघ पर जीव जिया है। अतएव भीरी का ध्यान जब कृष्ण की माधुरी मूरत पर टिकता है तो व उसे सग्यों में उतार बेठी है। 'इस 'वारिज मवां मत्तानी भसक, निपट बंकट छविबामे' मदन मोहन के कायल मधुर तस्म रूप ने चित्र भीरी में मिलते हैं। सूर के समान वात्सल्य की छवियों को उन्होंने प्रकट नहीं किया। धामद उनका धर्मकुरित मातृत्व इसके मूल में ही। बाल-जीसा का केवल एव उल्लेखनीय चित्र है काशीदाह को नाचने का।'

कृष्ण राधा या मोपियों के नक्षत्रिक का चित्रण भीरी के पदा में नहीं मिलता। वस्तुतः उनकी कथा भीरी-कृष्ण कथा है। राधा-कृष्ण कथा के चित्र उनमें अत्यन्त बिरल हैं। भीरी का नारी मन नारी-रूप से इतना मोहित नहीं हो सकता जितना सूर या श्री हितहरिचंघ का। फिर राधा से उनका वात्सल्य और उनके नारी गुणम सकोपी स्वर के लिए इस शृंगारिक तत्व में लीन होना कठिन था।

(१) डाकोट, पृष्ठ १ ८ ५ आदि

(२) कयल इल लोचण व नाक्यां काकभुजंग।

कानिहो बहु नाय नाक्या काल फल फल निरत करत

कूश बल धनार ना डर्या ने एक बाहु धनन्त।

भीरी है प्रभु गिरधर नापर कम बलुता रो बल ॥



(क) अनुभाव के चित्र—भाव अनुभावों के माध्यम से ही व्यक्त होता है । संयोगवन्ध अनुभावों के चित्र भीरा के काव्य में विरल हैं पर हैं प्रबल । रूपमानु-मन्विनी प्रातःकालत मोद-मुखिनी के रूप में पाती हैं । उनके मुख की छोमा घीर माधुर्य-विभिन्न यति का वर्णन भीरा ने एक पद में किया है जिसमें कहा है कि

मुख पर स्वेद घनक बट झूटी मधुरी बाल डोरिया भूषत धावे ।<sup>१</sup>  
इसमें संयोग मृदार के धातारिक मुख-वसन का कैसा स्पष्ट चित्रण है ? पर यह पद भीरा के स्वभाव के अनुकूल कम घीर की हितहरिबंस की रचना परंपरा का अधिक लगता है ।

किसी गोपी से योविन्द ने प्रीति की, प्रीति का प्रभाव इतना सम्पादक इतना बिस्मरणकारी हुआ कि तन-बदन की कुछ कुछ भी नहीं रही । प्रेम की कैसी मधुर बिषयता है कि—

डोलत यवमल जैसे मुख न रहे मन्की ।  
प्रेम की पाँठ परी कोटि बार भटकी ।<sup>२</sup>

मीरा स्वयं विरह की बाबरी हो गयी हैं उन्हें नींद नहीं आती है, नींद का झोंका धाया भी तो प्रिय को स्वप्न में बेसकर बीक पड़ती है घीर बम बाँटी है ।<sup>३</sup> एक दिन 'यावत् ब्रह्म परमासते घीर मंद-मंद मुसकाते मीरा के द्वार से निकल गये । वह तबसे उनके सौंदर्य-भोगी नयन कृपल के रूप में घटक बने हैं लौटते नहीं हैं । तब से वे कहती हैं 'कम-रूप-नय धिल सक्या मतक मतक अनुभाव' । इस 'नलन सनक अनुभावे' में कितना आकर्षण-संसाहन कितनी बिषयता विरसता साकार हो उठी है । विरह की कुछ भी घबट लछा में नींद और जागरण से बाँध मिथोनी सनन घीर

(१) बिद्या समा सं० १९९५, पद ४

(२) वही पद ३

(३) मीराली धाराएँ छा घाराएँ रात कृपल बिष होय प्रभात

बमक उठा सुपल सन लजली मुख का भूषा जात

तड़का तड़का जीयरा धायाँ कम मिलियाँ बीनानाय ।

भयाँ बाबराँ मुख बूध भूलाँ पिव लाग्या म्हारी बात । —काशी पद २१

(४) काशी पद ८७

मीर में आद-जाय पड़ने में जो वियोग की घम्ट-दरघाई चित्रित है उसकी पाठक जोता-जा'ता मोमता हुआ-सा सामन देखता है ।

(ग) प्रकृति चित्रण—मीरों ने प्रकृति के बिज बिघेप प्रकट नहीं किए। प्रकृति कहीं धामधन नहीं है। उद्दीपन के रूप में भी उसका बिघेप महत्व नहीं है। उनके प्रणय में जो काय-कलापों की भूमिका के रूप में प्रकृति नहीं आ सकी। बस्तुन मीरों का समग्र ध्यान कृष्ण पर या व अपनी समस्त भावात्मक सत्ता के साथ गिरिपर क रंग में डूब गयी थीं पर प्रकृति क सौंदर्य और महत्व को मीरों ने समझा था। उसे अपनी तरह सप्राण सचेतन मान कर उसके साथ आत्मीयता का भाव रखती थीं इसलिये वे बावत व कह सकती थीं

‘बावत रे मेँ बल मग धायो ।

भर भूँ बूँ बरपाँ भासी कोयल राख सुखायो’

प्रकृति के बिज व्यापारों में प्रियतम के जाने का संकेत-संकेत मीरों को मिलता है उन्हें मीरों ने प्रकट कर दिया है। ‘कहीं-कहीं प्रकृति ने उद्दीपन विभाज का कार्य भी किया है।’ ये बिज संख्या में कम हैं सूक्ष्मता का इनमें घमाव है पर सांकेतिक होम क कारण भासिक हैं। प्रकृति के विराट रूप के बिज भी मीरों के काव्य में नहीं हैं। प्रकृति की भयंकर विपटता या तो प्रकृतिवादियों में होती है या प्रकृति की भूमिका में विराट के साथ रेंवरेली करने बाध रहस्यवादियों में। मीरों के समुल प्रिय यमुना क किनारे, द्वार पर, वन की गली में ही मिल जाते हैं। अतः ऐसा संभाव मीरों की रचनाओं में नहीं आया और उनके भाव-वीरों में प्रकृति क कामल मधुर और प्रिय-मुहूर्त रूप को ही स्थान मिला।

(१) बरपाँ री बरिया घाबल री घाबल री मन भावन री

डाहोर पद ५०

(२) बावत न्हाँ मरी स्याम बावत बैस्याँ मरी ।

काका पीला घट्याँ ऊमड़्याँ बरपाँ बार मरी ।

बित जाँवाँ मित पाणी पाणी प्यासाँ भूम हरी ।

मूरा पिया परबेसाँ बसताँ भीग्या बार मरी ।

मीराँ रे प्रभु हरि घबिलासी करायो प्रीत मरी ॥

—डाहोर, पद ४९

## विम्ब-योजना

कविता धनुमूर्ति की भाषा है जो संवेदना को बेह प्रबल करती है। तथ्य का बोध मात्र करानेवासी अभिव्यक्ति काव्य की कोटि में नहीं आती। यतः सफल कवि को प्रायः विम्ब के सहारे भाव-वस्तु या व्यापार को मूर्तिमान करना पड़ता है।<sup>१</sup> आचार्य शुक्ल ने तो 'विम्ब ग्रहण करना' कविता का काम बताया है।<sup>२</sup> मीरा की यह एक कलात्मक उपलब्धि है कि वे सामान्य और धर्मूर्त की व्यापक रूप से मोक्षर और धनुमूर्तिवन्म बना सकी हैं।

पर, मीरा काव्यम की पुञ्जारिण नहीं थीं। इसलिये उनमें न विम्ब की मनोहरता का मोह का न सन्द-विस्म की कञ्जाग्रि प्रवृत्ति। विम्बवादियों (ह्यूम एकरा पाबन्ध रिपोस्ते आदि) की तरह वे कलापूर्ण ऐंद्रिक दृश्य-चित्रों के आस में नहीं उलझीं। सूर और तुलसी की तरह उनके दृश्य-चित्र बाणी के बीज के असंकुत भी नहीं हैं, पर इनके विम्बों की भूमिका या संदर्भ में मानवीय संवेदनाओं का ऐसा संस्पर्श प्रबल रहता है जो भाव-बोध के आये धनुमूर्ति और आस्वादन की स्थिति तक के जाता है और वस्तु को संवेद बना देता है। मीरा के काव्य की मार्मिकता और लोकप्रियता का क्याचित् यह एक प्रमुख कारण है।

मीरा में न आचार्य का तथ्य चित्रण है, न आचार्य का भाव-चिन्तन और न ह्यूमानी कल्पना का विह्वल-विनाश। इसलिये उनके विम्ब न ह्यूम विवरणों से बने हैं, न सूक्ष्म चिन्तन-वैचार्यों के दुर्बल संयोगों से। उनमें प्रायः एक प्रकार की घनीभूत भावमयता ही मुखरित हो उठी है, जो विस्म की आवासहीनता के कारण बहुत अनाकान्त और अधिकत है।

विम्ब-योजना का भूलावार इन्द्रिय-संवेदन है। ऐंद्रिक बोध के नाम्यों के आधार पर विम्बों के भी पाँच प्रकार हो जाते हैं— दृश्य

(१) इस प्रसंग में सी० बी० लेबिस का यह कथन दृष्टव्य है —

Poetic image is a more or less sensuous picture in words to some degree metaphorical with an undertone of human emotion in its context, but also charged with and releasing into the reader a specific poetic emotion or passion —Poetic Image pp 22.

(२) रसपीमाता, पृष्ठ १६०

(Visual) श्रव्य (Auditory), स्पर्शमूलक (Tactile), स्वादमूलक (Gustatory) तथा गन्धमूलक (Olfactory)

मीरों में ब्रह्म बिम्बों का बाहुल्य है। प्रिय की पापाखो उपेक्षा और प्रेयसि की स्वादमूलक एकलप्लुता साकार कर देनेवाले ऐसे ब्रह्म बिम्ब घनेक हैं— 'पानी पीर न बाणई लड़क मीन लग्यां बेह। यह भी हुषा है कि लम्पयता के पल में रस-रस-गन्ध-स्पर्श और सब एकाकार हो गए हैं। 'भांवा पाना घामसी भी सांभरा' में रस-रस-गन्ध तीनों ध्वनित हैं, पर ऐसे बिम्ब अधिक नहीं हैं। प्रयत्न करने पर प्राकृतिक बिम्बबाधियों द्वारा बहुबन्धित भौतिक और बेह-संवेदनारम्भक बिम्ब भी मीरों के पदों में खोजे जा सकते हैं पर ऐसा प्रयास इस विकल बियोपिनी के प्रति एक अभ्यास होगा।

मीरों के बिम्ब प्रायः सान्द्र या समाहृत (Compressed) अधिक हैं, विवृत (Elaborate) कम। गीत की सीमित परिधि और घामेस के लघु क्षण में न कैसाब का अवकाश है न विस्तार की बहुमुखी चेष्टना। विवृत बिम्ब सज्ज कसारमकता की अपेक्षा करते हैं। सूर के काव्य में कहीं-कहीं बिम्बों में सूक्ष्म रेखाओं और सूक्ष्मतर रंगों की बड़ी विस्तृत कलापूर्ण योजना मिलती है, तुलसी में इसका सीर्य और भी व्यापक है, पर मीरों के बिम्बों में वह विवृति नहीं है। विवृत बिम्ब प्रायः विशेष अलंकृत होते हैं। साजसज्जा मीरों के जीवन और काव्य में कहीं नहीं है इसलिए समाहृत सूक्ष्म सधु अनलंकृत बिम्ब ही उन्हें अधिक प्रिय हैं।

बिम्बबाधियों ने वस्तु, व्यापार और मान-बिम्बों की अलग-अलग

(१) Kreyzer—Elements of Poetry शीत-साप-बोधक बिम्बों को Thermal (भौतिक) तथा धारीरिक विधाम-बोधक बिम्बों को Kinæsthetic (बेह-संवेदनारम्भक) नाम दिया गया है। वस्तु-बोध और अनुभूति के प्रकारों के साथ इस संख्या का विस्तार किया जा सकता है।

(२) ऐसे घनेक उदाहरण हैं —

हरि बिन मयुरा ऐसी लाप दाहि बिनु रैन अंबेरी।  
छोड़ गयी धब कीन बिसासी, प्रेम की बासी बराय।  
पिसता मिलता पिस गईं गहारी चापसियाँ री रेख।

बर्बाद की है। रूप के स्थिर और व्यापार के गत्यात्मक बिम्ब तो मीरा में हैं पर उनकी वास्तविक सफलता भाव-व्यंजक बिम्बों को प्रस्तुत करने में ही है। वैसे तीनों प्रकार के बिम्ब प्रायः आपस में जुगमिग जाते हैं और संश्लिष्ट बिम्ब सामने आता है।

दो बिम्बों की बगिए —

(१) बिरह समंद में छोड़ गया छो मेहू री नाव बड़ाव ।<sup>१</sup>

(२) ज्यों जातक जन कीं रहे मछरी बिन पानी ।<sup>२</sup>

इस प्रसंग में एक बात कह देना आवश्यक है कि बिम्ब-योजना में कल्पना की अस्वाभाविक कलाबाजी अत्यधिक की अमरकारिक प्रवृत्ति और बिबरण-प्रियता मीरा के काव्य में नहीं है। जबकि सूर जैसे रससिद्ध कलाकार कृष्ण-छवि के बिम्बण में 'विपुलरि' का बिम्ब बढ़ा करने की कारोगरी का मोह नहीं त्याग सके (वैसे म रंकर की बटाएँ बासकृष्ण की मुकोमल प्रसक्तों का स्थान ले सकती हैं और न सुन्दर तिमक मिनेत्र का) तथा "बधि मुन में बधि जात" सिद्ध करने में बिम्बण की बजाय घण् ब्रीड़ा में उसम्भ मय हैं और आपसी भयर-बिम्बण के स्थान पर घुपी खोलकर बैठ गए हैं वहाँ मीरा ऐसे किसी मोह में नहीं पड़ी। इसका कारण उनके काव्य की सीमितता और प्रिय में अतिशयमीनता भी हो सकती है और कल्पना के प्रयोग के प्रति उनकी अपेक्षा या असमर्थता भी।

कृष्ण भी हो संतोष में कहा जा सकता है कि बिम्बण स्वतंत्र रूप से मीरा की प्रिय नहीं था। उनके रूप-व्यापार के बिम्बों में वैविध्य विस्तार और मुरम रेखाओं का घनाव है। प्रकृति के बिम्ब उसके कामल आत्मीय और भावत्रेरक रूप के हैं पर बर्पा तक ही सीमित है। भावों और अपोचर व्यापार के मूलरूप उन्होंने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किये हैं और कलात्मकता के मोह में उनका बिम्बण कभी भी अति अमंजुल नहीं हुआ।

(१) डाकोर, पद

(२) नागरीदास पद ९

(३) सुरसागर (समा) बराम् सकल्य पद १५९

(४) वही पद १७२

## अप्रस्तुत विधान

काव्य जीवन के सत्य और अनुभूति की भाूमिकतम बाणी है। उसके भाव-बोध की अभिव्यक्ति की साधक उनसे भिन्न वस्तुओं की जो योजना की जाती है उस अप्रस्तुत विधान कहते हैं। काव्य में 'प्रस्तुत' का होना (बाहे सार्केतिक रूप में ही हो) आवश्यक है पर 'अप्रस्तुत' व्यवसाय का होना अनिवार्य नहीं है।—(कोरे वस्तु-व्यापार-वर्णन अपना स्वाभाविकता में अप्रस्तुत विधान नहीं रहता, पर रसात्मकता रह सकती है।) मीरा का काव्य 'प्रस्तुत' के भाूमिक स्वरूप और निरालस सहज अभिव्यक्ति के कारण ही रसात्मक है उसमें अप्रस्तुत-विधान की स्थित अत्यन्त मीरु है।

अप्रस्तुत-विधान प्रायः अलंकरण बन जाता है। हमकी सार्वकला अभिव्यक्ति की साधना में निस्व हो जाने में है स्वयं सर्वस्व बन जाने में नहीं। मीरा की अलंकरण धारणशी नहीं है। उपमा रूपक और उत्प्रेक्षाओं के बीच से उनका काव्य बोझिल-संकुल तो हुआ ही नहीं है वहाँ के घाए हैं, वहाँ भी अधिक सुन्दर नहीं है। (अतिमुक्त होने पर अलंकरण अनुभूति का पोषण करती है पोषण नहीं।) 'अमलल लोचना के नायका काल मुग्ध' वीसी पंक्तियों में अलंकरण की रक्षाएँ उभरती नहीं हैं सामने आती हैं अनन्त कोमलता की मूर्ति और अकल्पित प्राण-सेवा साहस। हृदय में स्निग्धता बनती है कि अगला चित्र उसे अकल्पित होता है अलंकार की ओर ध्यान ही नहीं जाता।

रसमयी वाली तो बैठे ही अलंकारों की अपेक्षा नहीं करती। अतिशय अलंकरण उसकी दुर्लभ भाषा है। मीरा में वहाँ कलात्मक उत्कृष्ट के घास्त्र पूजित चित्रों का अभाव है वहाँ के भाव-व्यंजना की उन्नत भाषा से भी मुक्त है। वहाँ उनके भाव मुक्त हैं वे मीरु हैं। कला परंपरा यद्यपि किसी के मोह में उन्होंने भाव की पूर्ण अलंकारों से नहीं की। आनन्दवर्धन के शब्दों में कह सकते हैं कि मीरा के काव्य में ये अलंकार 'अहम्युक्ति' उपस्थित होते हैं और इसीलिए वे मीरा की अनुभूति से अन्तरंगसम्बद्ध होकर व्यंजनसम हो सके हैं।



काल भुजंग । प्रह्ला में 'कमल-दल-मोचन' ( कमल सूखर ) होते हुए भी हृषण का कानीरह जैसे विरैसे कालभुजंग को नाचना एक विरोध का प्रभास कराता है । पर हृषण की महत्ता का स्वरूप उनके व्यक्तित्व में ऐसे विरोधों की स्थिति से ही स्पष्ट होता है । इसीसे बुद्धि उन्हें धर्मीक और धाराम्य मान लेती है ।

न्याययुक्त कथनयुक्त चमत्कार प्रायः उन स्वर्णों पर होता है, वहाँ यथासंख्या काव्यलिंग तत्त्वपूर्ण लोकोक्ति प्रादि प्रसकार पाते हैं । लोकोक्तियों के उदाहरण मीरा की भाषा के विवरण करते समय दिये गये हैं, उनमें मुप-मुप की चमत्कृतमूर्ति का साथ बोधता है । वहाँ मीरा ने एक पंक्ति में अपने मन को प्रभु की ओर प्रेरित होने का उद्बोधन किया है । वहाँ युक्ति द्वारा कारण देकर पर या वाक्य का समर्थन भी कर दिया है । शास्त्रीय सन्तापनी में इसी को काव्यलिंग प्रसकार कहते हैं, जैसे—

मज मन चरण कंवल धविनासी ।

जैताई दीसा चरण मगल मा तेताई उठ जासी ।

इस प्रकार का चमत्कार स्वयं प्रत्यक्ष साधारण होता है । यतः काव्य के उत्कर्ष में इसका योग भी विशेष नहीं है ।

काव्य-वस्तु का प्रभाव की तीव्रतर और तद्गत भाषानुमूर्ति को अधिक संवेद्य बनाने के लिए, उसके यथार्थ वास्तविक रूप को कुछ अतिशयता के साथ प्रस्तुत किया जाता है । अधिकतर धर्मकारों ने पीछे यही प्रवृत्ति काम करती है । यह काम कल्पना द्वारा होता है । मीरा में अतिशयता मूर्धित करने के लिए क्लासिक वस्तु-व्यवहारमक विधान का वही रूप ग्रहण किया गया है । वहाँ क्ला की साधारणतः वस्तु का स्वरूप साथ या भ्राम्य है अथवा नहीं है । ये रूप काव्यी मार्मिक हैं । उदाहरण के लिए 'तारां यणना रेण बिहावा' में अतिशयता हाते हुए भी साधार की संभवता के कारण उक्ति में मन का कू भेने की पंक्ति प्रा गयी । ऐसी पंक्तियों की कमी मीरा में नहीं है —

(१) पपीहा म्हारो कबरो बैर चितायां

म्हा सोबू ही अणणे मचणयां पियु पियु करता पुकार्या ।

(१) डाकोर, पृष्ठ ३८



- (२) छप्पन कोटा बरसा पधारमां ब्रूसां भी बबनाय ।  
 (३) म्हारे घर होतां बाय्मों महाराज  
 नैण बिस्म्यायूं हिवबो बाय्मूं सर पर राय्मूं बिराज ।<sup>१</sup>

रीतिकाम में असत्य या कवि प्रोक्षोक्ति-सिद्ध वस्तु के बचवा छाप वस्तु के काव्यनिक [११] के आधार पर अनेक ऊहात्यक चित्र अंकित किये गये। जायसी<sup>२</sup> और सूर<sup>३</sup> में भी इस प्रकार के दोष हैं। मीरा<sup>४</sup> इससे प्रायः मुक्त है।

शास्त्रीय दृष्टि से अतिशयतामूलक अमलकार-पद्धतियों में अतिशयोक्ति अत्युक्ति आदि अलंकार पाते हैं। मीरा ने इनका प्रयोग अमलकार-दृष्टि के लिए कहीं नहीं किया। संस्कृत का परवर्ती साहित्य काव्य-कवेवर के भ्रुमार की छावना की ओर एक प्रकार की अमलकारपूर्ण फैशन-परस्ती की ओर सम्बुद्ध था। रीतिकाल का तो कहना ही क्या। उन दिनों अलंकार-स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। अलंकार भी पूर्णतः इससे मुक्त न था। तुलसी और सूर भी अपनी कुशलता सिद्ध करके ही घामे बड़े थे। पर, मीरा ने न तो 'नखचिह्न का अनूपम बाव' लगाया और न भेंगुरी की मुखरी को कंधन बनाने की कत्तारमक कोष्ठि की।

## कल्पना

वेब्सपियर ने कहा है—“The lunatic, the lover and the poet are of imagination, all compact मीरा प्रणयनी भी भी और कवयित्री भी इसलिये कल्पना की प्रचुरता उनमें स्वाभाविक थी। काव्य के क्षेत्र में चित्रण तथा अपस्तुत-विधान दोनों की अगली कल्पना ही है। मीरा के चित्रण की ता बर्बा हो चुकी है। अपस्तुत-वाचना में भी मूर्खता और बिराटता दोनों का अभाव उनकी पद्यावली में है। कल्पना का रमणीय प्रयोग और तज्जन्म अमलकर कर देने वाला रूप-विधान भी उनमें नहीं है। पर, उनकी

- (१) वही पद १६  
 (२) वही पद २६  
 (३) बुनि तैहि ठौर परी तिनि रेखा घूंट भी पीक नीक सब देखा ।  
 (४) दूर करहु बीना कर जरिबो  
 रूप पाषयो मानी मृग मोहे नाहिन होत जम्ब को डरिबो ।

एक बहुत बड़ी उपलब्धि यह है कि उनका समस्त व्यक्तित्व-रूप-विमान मादोरेर द्वारा परिचायित है और, यहाँ सच्ची कवि-कल्पना है।<sup>१</sup> कंचन कछत बसोटी जैसे तन रह्यो बारह बानी' भीरों के रंग सम्यो हरो के' 'कही सखी कैस की धुनू मई सुमद की माथी' आदि अनेक उदाहरण इस तथ्य के प्रबल प्रमाण हैं।

अभिनवगुप्त ने कल्पना को 'अपूर्ववस्तुनिर्माणमा प्रभा' कहा है। भीरों में 'अपूर्व' कुछ है, तो विराट सौन्दर्य की वैयक्तिक ( विभक्तुत अपनी ) अनुभूति और बिरोधों के विरुद्ध अचरित अभिनव रूप्य साहस है जो नारी सुसम मायु के परिवेश में और भावपूर्ण सगता है। बरना उनके काव्य की समस्त भाव भूमि फिरपरिचित है मौकिक और अमौकिक दोनों दृष्टियों से और इसीलिए संवेदना के तम पर अधिक संसक्त और व्यापक है।

भीरों प्रणयिनी है। फिर भी उनमें कल्पना का असंक्रियत रूप नहीं है जो प्रायः दिवास्वप्नों और फँसी के रूप में व्यक्त होता है। उसके पीछे पनायत की एक अनजानी निष्क्रिय प्रकृति रहती है जो वस्तुतः भीरों के मजग सक्रिय और आस्थावान व्यक्तित्व के लिये विजातीय थी। धर्म-युद्धों के प्रबल विरोध और पाण्डा के राजकीय रोप दोनों के सामने उनकी आस्था अनासक्ति और विश्वास अविचल रहे। इसीलिए उनकी कल्पना सदैव उनके संकल्पों की ही संविनी बनी किन्हीं शिविस जगो की स्वनिज रमणीयता की नहीं।

## उक्ति-सौंदर्य

उक्ति ही सच्चे धर्म में हमारी माया की इकाई है, यत उक्ति का अपनी समग्रता में सुन्दर होना भी काव्य की रमणीयता का कारण होता है और यह समग्रता का सौंदर्य अथर्वों के सौंदर्य को अपने में समाकर भी उनसे अपना असम्य अस्तित्व रखता है। यह सौंदर्य दो प्रकार का होता है एक तो केवल अनुष्ठेय का' और दूसरा 'आमिषता' का है। यही दूसरा सौंदर्य

(१) रत्नमीमांसा शुक्ल पृष्ठ ३४८

(२) नागरीदास पद २ तथा १

(३) विद्यासभा हस्तलिखित प्रति सप्त १७०१

काव्यगत उक्ति-सीर्य है। इस सीर्य का प्रसार मीरा के पदों में पर्याप्त है। सुन्दर छक्ति सहज और स्वाभाविक भी हो सकती है तथा बक और वीचित्र पूर्य भी। मीरा की सहज छक्तियों में हृदय की मर्म-कथा भोमती है। 'तनक हरि चितवा म्हारी ओर' में कोई बकता नहीं है पर 'तनक' शब्द ने अपनी समस्त सतक-भासना को प्रतिपादित कर दिया है।

बक्योक्ति (घसंकार नहीं) छक्ति की बकता या बमत्कारिता है, जो काव्योत्कर्ष में सहायक होती है। प्राचार्य कुंतक ने बक्योक्ति में बाणी के बमत्कार के सगमय सभी रूपों की गणना कर ली है। यद्यपि मीरा में बक्योक्ति के अनेक रूपों के प्रयोग मिल पाते हैं किन्तु वे कुछ निम्नांकित हैं:—

(१) पर परार्थ बकता—'हम चितवा ये चितवा या हरि हिनको बड़ो कठोर' वक्ति में हिनको में 'हो' प्रत्यय की विशेषता है यद्यपि इसे प्रत्ययबकता कहेंगे जो पर के परार्थ में होने के कारण परपरार्थबकता का एक रूप है।

(२) परपुर्वाई बकता:—'म्हा मोहन हो कम गुमाखी' में 'मोहन' का प्रयोग बमत्कार पूर्य है, यह धर्म को प्रतिषेध पुष्ट करता है और संबन्ध धर्म की ओर संकेत भी। इसमें शब्द के एक ऐसे पर्याय का बमत्कारपूर्ण प्रयोग हुआ है, जो धर्म से अनिष्टता रखता है। यद्यपि इसे पर्यायबकता कहा जायगा जो पर पुर्वाईबकता का एक भेद है।

इसीप्रकार मीरा के पदों में उपसम और निपात (अर्थात् अवयव रहित शब्दों के रमणीय प्रयोग) सुंदर वस्तु का रमणीय वर्णन तथा प्रसंग के प्रासंगिक सीप्य के उदाहरण भी मिलते हैं जिन्हें पारिभाषिक सम्प्रदाय में पर बाध और प्रकरण-बकता कहा जा सकता है। प्रसंगबकता के कई उदाहरण मीरा में इतने रमणीय हैं कि उनसे रबीन्द्रनाथ टैगोर जैसे विद्वत्कवि प्रभावित हुए और उन्होंने स्वयं उसका अनुकरण किया है।

काव्या भु मिसण बिब क्या होय ।

भावा म्हारे भागला फिर गया काव्या काय ।

जोवता मन रैण मोवा दिवस बीता जोय ।

हरि पबारा भागला क्या न्हें भागणु लोय ॥ (दाकार, २९)

उक्त घटना को मुझे ने पीठावधि में इस प्रकार रख दिया है —

He came and sat by my side but I woke not. What a cursed sleep it was, O miserable me ! He came when the night was still. Alas, why are my nights all thus lost ? Ah, why do I ever miss his sight whose breath touches my sleep

( पीठावधि—गीत २६ )

दिन और रात भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् सो जाना किटना स्वाभाविक है और निष्ठुर दुर्भाग्य का यह खेल किटना कष्ट। टीपोर की इस स्थिति में कि “प्रिय आया और मैं जयी नहीं” की अपेक्षा मीरा की यह स्थिति अधिक मार्मिक है कि दिनरात प्रतीक्षा की पर प्रिय के आने की आनकही बड़ी में शीघ्र लय गयी।

टीपोर कृत ‘वाङ्मय’ काव्य का सारा प्रसंग ही मीरा के पर ‘मूढने जाकर राखी की मिरर साजा जाकर राखी की’ पर के केंद्रीय भाव का कथात्मक विस्तार है।

शास्त्रीय कवि-कोटियाँ और मीरा — मीरा मुसल मन्त भी कवि-रूप उमने नील वा और कवि रूप में भी शास्त्रीयता तो उनसे अत्यन्त दूर थी। ‘अतः काव्य-शास्त्र की रूढ़ कसौटी पर मीरा का मूल्यांकन उचित नहीं है। पर, प्राचीन रूढ़ काव्य-शास्त्रीय परंपरा मीरा को किस कोटि में रख सकती है वह जान लेना सामय प्राचीनों की दृष्टि से उपाध्य तथा नवीनों की दृष्टि से अनोखक हो सकता है।’

कारमिनी प्रतिमा के आधार पर कवि की तीन कोटियाँ मानी गयी हैं —

- (क) सारम्भिक—सहजा प्रतिमा प्रमाण कवि जिनमें कवित्व-सक्ति पूर्व जन्म के संस्कार वल काव्य रचना में प्रवृत्त होती है।
- (ख) आभ्यासिक—जिनकी कवित्व-सक्ति आहार्य बुद्धि द्वारा अभ्यास से जागृत होती है।
- (ग) औपदेशिक—जिनकी काव्यरचना उपदेश के सहारे होती है।

(१) कविकोटियों के संबंध में निश्चित तथा तथ्यपूर्ण विवरण देने वाले प्रमुक्तता से ही ग्रंथ है—राजशेखर-कृत ‘काव्य-मीमांसा’ और कोमल कृत ‘कवि संज्ञाकरण’।

मीरा को काव्य का उपदेश किसी ने दिया था इसका प्रमाण नहीं है। इसकी संभावना भी नहीं है। उन्होंने मसि घीर कागव भी नहीं हुआ था यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता लेकिन उनके पदों को देखकर कोई भी कह सकता कि कम से कम उपदेश की प्रेरणा मर्मकथा की उस समुदायों का आधार नहीं है। 'धम्मपद' का हाथ भी मीरा के काव्य में ध्वज नहीं है। रचनाओं का अनगड़पन कला के प्रति रचनाकार की उदासीनता की बात स्पष्ट शब्दों में कह देता है। बौद्धिकता और चिन्तन की मुख्यधम्मा के स्थान पर भावना का सहज उद्वेग भी 'आहार्य बुद्धि द्वारा धम्म' के बिंदु साक्ष्य प्रस्तुत करता है। मीरा की प्रतिमा सहज भी इसीलिए नकि के अनुमूर्तिपूर्ण शब्दों की बाणी धर्मादास काव्य की कोटि में था मयी। पद पाठे-गाथे मीरा को धम्मपद ध्वज्य हुआ होगा धम्म भक्तों के पदों को पढ़कर या सुनकर भी उन्होंने कुछ न कुछ सीखा ही होगा। संगीत के स्वर साधने का धम्मपद जाने या भनकाने उन्होंने किया ही था। धर्म पों कहता उचित होगा कि मीरा की काव्य प्रतिमा सहज भी जो कदाचित 'धर्मादास' धम्मपद के कारण प्रसर हुई। इस दृष्टि से व औपदेशिक और धार्मिक नहीं सारस्वत कवियों की कोटि में पाती हैं।

प्रतिमा और व्युत्पत्ति के आधार पर कवि तीन प्रकार के माने गये हैं

(क) शास्त्र कवि (ख) काव्य कवि (ग) उभय कवि।

शास्त्र कविकी रचना में धर्मयन और ज्ञान प्रधान होता है काव्य-कवि भावना को प्राधान्य देता है और उभयकवि में दोनों का सामंजस्य है। मीरा शास्त्र जानती धर्म्य थी (जीव गोस्वामी की बटना इसका प्रमाण है) पर उनके काव्य में शास्त्र नहीं बही बोलता। व शास्त्र भी शास्त्राक्रम नहीं। उसकी पूर्वो है 'भाव' उस जो परिपक्व होकर धास्वाद्य होन पर रस-मंजा ग्रहण कर सकता है। धर्म मीरा की इस आधार पर काव्यकवि में काटि रख सप्त है पर हिचक के साथ क्योंकि काव्य रस भी उनकी रचनाओं का लक्ष्य नहीं है, वह पद की धर्मादास 'धर्मपदी' उपलब्ध्य या यों कहिए कि बाईप्रोडक्ट मात्र है।

रचना की मौलिकता के आधार पर कवियों की चार कोटियाँ कही गयी हैं

(क) उत्पादक कवि—नवीन उद्भावना करने वाला

(स) परिवर्तक कवि—दूसरे की रचना में परिवर्तन करके अपनी छाप व साथ प्रस्तुत करन वाला

(ग) संबन्धक कवि—प्रगट रूप से दूसरे की रचना का अपना कहने वाला

मीरा का काव्य अच्छा हो या बुरा साधारण हो या असाधारण पर वह 'मंचयक आच्छादक परिवर्तक कवि' की रचनाओं की कोटि में नहीं आता। उन्होंने जो कुछ लिखा है उसकी अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। कव्य ही नहीं कथा भी उनकी अपनी है। उनकी रचनाओं का खदम उनका इतना अपना है कि 'नई उद्भावना' का प्रश्न उठाना भी अर्थहीन-सा लगता है। वह तो पराई कथा के संवस के अपनी बात कहन वालों का काय-सम है।

कवियों की काव्य कई कोटियों के अन्तर्गत भी हैं जैसे आबापहरण की दृष्टि से—(क) छायापत्रीवी पदकोपत्रीवी पाद्योपत्रीवी स्रजसापत्रीवी प्राप्ति कवित्वत्रीवी मुक्तोपत्रीवी। (ख) आत्मक चम्बक कर्पक दाबक। इसी प्रकार कास की दृष्टि से चारकोटियाँ हैं असुर्यम्पद निपण्ण दत्तावसर, प्रायोगिक। कवि सुकवि सत्कवि महाकवि भी कवि की कोटियाँ बतायी गयी हैं परन्तु मीरा की इन कोटियों की दृष्टि से देखना उपहासास्पद होगा क्योंकि इनका आधार विमूर्ध कला है और मीरा कलाकार कबिणी नहीं थी। कदाच न कविप्रिया में कवि के तीन मेरु किये हैं—(१) उत्तम—हरिरमलीन (२) मध्यम—'वरनत मागुबहि' (३) अधम—दापपूण काव्य रचनेवाले या दोषों का वर्णन करन वाला। मीरा हरिरसरलीन थीं। मागुस उनके काव्य का विषय नहीं बना मनुष्य के विषय में उनके काव्य में जहाँ नहीं संकेत भी है वे भी हरिभक्ति के प्रसंग में ही है। अतः मीरा इस दृष्टि से उत्तम कोटि के कवियों में ही हैं।

## मीरों के काव्य का सामाजिक मूल्य .

प्रश्न उठता है कि 'मीरों' के काव्य का सामाजिक मूल्य क्या है ? सम-सामयिक समाज को कवि तीन भाषों से ग्रहण करता है—स्वीकृति अस्वीकृति या तटस्थता के साथ । अस्वीकृति की अवस्था में कमी बिगोह होता है और कमी पता चलती । मीरों में उगासीन तटस्थता तो विस्फुल्ल नहीं थी । जीवन की कहलों में वे दूर तक पहुँची थी और समाज का त्याग उसे निर्वेध, निर्मम, व्यस्य दृष्टि से उन्होंने कमी नहीं देखा । पर साथ ही समाज और परम्परा की धनुस्तरणप्रिय अड्डामय स्वीकृति भी उनमें पूर्णतः नहीं थी । उन्होंने युग और परम्परा के जीवन मानवीय सत्य को ही ग्रहण किया मरखो-गुल्ल कड़ तलों का यथासम्भव परिष्कार किया और यदि नहीं हुआ तो सामाजिकपूर्वक उनका तिरस्कार कर दिया ।

युग के सांस्कृतिक छव के कीटाणुओं के विरुद्ध संघर्ष बलिदान के सही प्रबुद्ध कलाकारों ने किया । कबीर और तुलसी सबसे सामे थे । मीरों में यह संघर्ष उनके राजकीय परिवेश और नारी-स्वरूप के धनुकूल ही फलित हुआ । इसीलिए उनमें विरोध का कोलाहल नहीं विरोध की बुद्धि है ।

मीरों के काव्य में विरलतन नारीत्व की भाषा-भाषाओं और ध्वजा का स्वर तो है ही युग की नारी का मूक विद्रोह भी ध्वनित है । उसमें कबीर का पक्ष भोज तुलसी की तन-विमिश्रक सखता और मूर की रससिद्धता न हो पर कस्तुरि-माधुर्य की बहु स्निग्धता अवश्य है जो विरोध को आघात से झुकाती नहीं स्पर्श से विगलित कर देती है ।

कितने साम्प्रदायिक नेताओं ने मीरों की फुलताया फटकारा । (मर्यादा-भाग के विरायी कृष्णराज तो दीन-सीरम्य की मर्यादा भी तोड़ गए ।) मगर धार्मिक नहिर्नों के रूप में पनपने वाले साम्प्रदायिकतावाद और एक प्रकार के धार्मिक सामन्तवाद की मीरों ने बड़ी सामीप्यता से उधेरा कर दी । कृष्ण के धार्मिक किसी को उन्होंने गुरु-सम्य-आराध्य नहीं माना । उस युग में बलिदान की भावना के बावजूद नारी घर की सोया पुद्गल के बीज की प्रदर्शनी या उसके बच्चों की जन्मजाती-पोषिका मात्र थी । नारी की

स्वातन्त्र्यता सामाजिक व्यवहार में तो अक्षुब्ध थी ही। आर्थिक क्षम में भी वह पुरुष के बिना पार नहीं जा सकती थी। मीरा ने नारी और पुरुष के स्वातन्त्र्य सम्बन्धी इस सामाजिक श्रेष्ठ को आर्थिक व्याख्या द्वारा तो अस्वीकृत किया ही, सौक्य व्यवहार में भी व्यस्त किया। और सबसे बड़ी बात यह भी कि मीरा ऐस अन्य अनेक सामंतीय मूल्यों को टुकराकर शोक-जीवन के साथ एकरस हो गई। उस युग में इतना कर्तृत्व किसी भी नारी को महनीय बनाने के लिए पर्याप्त था। इसी कर्तृत्व की आस्थावाद अनुपूर्व उनके स्वर्ण में सर्वत्र व्याप्त है जो उनके काव्य की ऐनात्मिक आध्यात्मिकता को सामाजिकता से दूर करने नहीं देती।

मीरा का काव्य प्रचलित वियोग की व्याप और संयोग की साधना का काव्य है। वे न तो दुखी हैं और न दुखवादी हैं। उनके प्राणों में प्यार की वह पीर (दुख नहीं) है जो जीवन को अधिक मधुर और संवेदनशील हृदय को संसार के प्रति उबार बना देती है। मीरा केवल कष्ट को पुरुष और शेष सभी मानवों को बोधी-रूप में देखती थी। अतः उसका आत्मनिवेदन वैयक्तिक होते हुए भी समस्त साधक मानव-जाति के आत्म-निवेदन है।

कुछ आलोचक तो निरुद्ध आत्मनिवेदित का स्वतंत्र उपयोग भी स्वीकार करते हैं। जैसा कि डॉ० मर्गेन्ट का मत है, इसका पहला उपयोग तो यही है कि सहानुभूति (Sympathy) के द्वारा सामाजिकों को परिष्कृत मानस की प्राप्ति होती है। यह परिष्कृत आत्म उसकी संवेदना को समुद्र करता हुआ उनके व्यक्तियों को समुद्र बनाता है। जीवन में उस उत्पन्न करता है पश्य और नशानि की अवस्था में शान्ति और मायुर्व का संचार करता है।<sup>1</sup> यह सब नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी अपेक्षणीय उपलब्धि नहीं है। प्रसिद्ध कवि-आलोचक टी एच० हर्मिस्ट ने भी प्रकारान्तर से अपने निबंध 'The social function of poetry' में लगभग इसी प्रकार की बात कही है। उनसे अनुसार प्रत्येक अच्छी कविता में किसी पर अनुभूति या परिचित तथ्य के मध्य बोध या किसी ऐसी बात का संवेदन होता है जिसे अनुभूत करके भी उपयुक्त शब्द नहीं दिए जा सके। और, यह प्रक्रिया स्वयं

(१) जीव पोस्वामी - मीरा - प्रस्ताव

(२) विचार और विवेक पृष्ठ ५४



हमारी चेतना को व्यापक और संवेदना को सुसंस्कृत बनाती है।' मीरा के काव्य के सम्बन्ध में और बाहे कुछ कहा जाय इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनकी अनुभूति भौतिक तथा आत्माभिव्यक्ति मिश्रित है और मानवीय स्तर की है और हमें भाव बोध और अनुभूति की चिर मार्मिक गहराइयों में ले जाकर लोक-मानस के साथ सम्बद्ध करती है। फिर उसकी सूक्ष्म सामाजिक उपादेयता के सामने प्रत्येक कौन से तपाया जा सकता है ?

## निष्कर्ष

(१) मीरा के काव्य में परम्परा-नाम्य शास्त्र-प्रबलित कर्मात्मक प्रवृत्तियों के उच्च शिखरों का प्रभाव है। उनकी कला कहीं भी मुक्त नहीं है सर्वत्र उनकी आत्माभिव्यक्ति के प्रति अनायास प्रवृत्ति है।

(२) मीरा के काव्य की भूमिका आध्यात्मिक ही नहीं लौकिक भी है, जिसमें मानवीय मूल्यों के विषय संयममयी नारी की कथना और विरोध के अत्यन्त दुःख संयत और आस्थावान् स्वर हैं।

(३) मीरा का काव्य मानव की भूतभूत संवेदनाओं की निरक्षत रात्मनो अभिव्यक्ति के कारण लोक के लिए सहज संवेद्य है। चिरस्तन व्यक्त प्राप्त नारीत्व की आशा आकांक्षा, विषमता और अस्वास्त्य के स्वर ने उस अग्रिम मधुरता दी है। इसलिये वह व्यक्ति वर्ग और युग की सीमा के बरे भी चिरमधुर, चिरप्रकाश्य रहेगा।

(४) मीरा शास्त्र से परिचित होकर भी उसमें खँबी नहीं की। इसलिये आत्मीय तपोत, साहित्यिक संवेदना और लोकगीत की लयें सभी

- 
- (१) I suppose it will be agreed that every good poet, whether he be a great poet or not, has some thing to give us besides pleasure for if it were only pleasure the pleasure itself could not be of the highest kind. There is always the communication of some new experience or some fresh understanding of the familiar or the expression of something which we have experienced but have no words for which enlarges our consciousness or refines our sensibility—On Poetry and Poets pp 18

उनके पदों में सहज एकत्र हो, उन्हें शास्त्र-सम्मत लोकप्रिय रूप दे सकें और संपीत-साक्षिय शास्त्रियों से लेकर भोली घाम-बातिकाओं तक का प्रिय बना गए ।

(५) मीराँ सुन्दर कवयित्री ही नहीं महान कवयित्री भी हैं । पुण-बोध को गई बिछाएँ वे नहीं वे सहीं पर उसे मानवता के प्राणों के चिरमयुर स्वप्न से परिचित करा गई हैं ।

## मीरा द्वारा सेवित मूर्तियाँ

मीरा रावस्थान सब घोर दुखरात के अनेक स्थानों पर गई घोर जहाँ गई वहाँ वे संतों से मिली घोर उन्होंने वीरसुख मंदिरों के दर्शन किए । 'तुमसी भस्तक ठब नबै बनुप बान केउ हाथ' जैसी कोई जाबना उनमें नहीं थी । उनकी दृष्टि अत्यन्त उदार थी । अतः 'गिरिधर' के प्रति अनन्य प्रियतम भाव होते हुए भी मनवान् के अन्य किसी रूप के प्रति अथवा उन्होंने कभी नहीं व्यक्त की । सांप्रदायिक संन्यास घोर जीवात्मा की संत सुख में सब संन्यास का कैबिल अगाए बिना निस्तार नहीं था मीरा उदर्य निष्कम्प भाव से बड़ी रही क्योंकि उनकी दृष्टि संन्यास पर नहीं गम्य पर थी । उन्होंने अपनी सक्ति-शक्ति गिरिधर को ही अर्पित की किसी संन्यास को नहीं । अतः अनेक मंदिरों में अनेक मूर्तियों के सामने विशेषकर कृष्ण की मूर्तियों के सामने उन्होंने सीधे झुकाया होना कीर्तन भी किया होना । उन सबका कैसा-मोसा संभव नहीं है । वहाँ पर केवल उन मूर्तियों की चर्चा है जिनके मीरा द्वारा बिखर रूप से अर्चित-वर्णित होने के सिद्धि वा अतिरिक्त प्रमाण उपलब्ध है ।

विभिन्न ज्योत निम्नलिखित मूर्तियों की मीरा द्वारा सेवित मानते हैं—

- (१) नेदुते के बतुर्भुजाजी के मंदिर की मूर्ति ।
- (२) डारका के रसछोड़रायजी के मंदिर की मूर्ति ।
- (३) डालोर के रसछोड़रायजी के मंदिर की मूर्ति ।
- (४) गिरिधरपुर की गिरिधरसाल्मजी की मूर्ति ।
- (५) नूरपुर के किले की बजराम स्वामी की मूर्ति ।
- (६) घाँवर के जगतशिवरोमणि के मंदिर की गिरिधर गोपाल की मूर्ति ।
- (७) जयपुर के जगदीशजी के मंदिर की दो मूर्तियाँ ।
- (८) बिलौड़गढ़ के कुंभाराम घोर मीराबाई के मंदिर की मूर्तियाँ ।
- (९) अन्य ( बंकेविहारी, गोविन्दजी तथा जयनमोहनजी आदि की )

(१) मेड़ता-स्थित चतुर्भुजाजी की मूर्ति—मुखपोतमबास पुरोहित बी० ए० के अनुसार अपने वास्तुकाश में मीरा को धर्म मेड़तिया राठीरों की तरह ही मेबाब के चतुर्भुजनाथ का दृष्ट था।<sup>१</sup> मेड़ता में तो लेखक को यह भी किंबदन्ती उपसम्भ हुई कि श्री चारभुजाजी स्वयं मीरा के हाथों से दूध पीते थे। इससे मीरा द्वारा चतुर्भुजाजी की पूजा करने का संकेत अवश्य मिलता है। मीरा-साहित्य के स्थानीय पंडितों का मत है कि मीरा ने अपने जीवन काश के प्रारम्भ में 'मीरा कहे प्रभु हरि धबिनाधी' या मीरा कहे प्रभु चतुर्भुजनाथ' छाप के पद भी लिखे थे।<sup>२</sup>

इस समय चतुर्भुजाजी के मंदिर में चार प्रमुख मूर्तियाँ हैं—

- (१) चारभुजा भगवान की (ध्यात बरुं) प्रमुख मूर्ति।
- (२) कस्याखुरायबो की (घोर बरुं की)।
- (३) गिरिधरजी की।
- (४) राधा-कृष्ण की।

ये मूर्तियाँ प्रमुख मंदिर में हैं। इसके अतिरिक्त चारों घोर पाँच-ठ मंदिर घोर हैं जिनमें धर्म्य मूर्तियाँ हैं। इनमें से चारभुजा भगवान की मूर्ति प्रमुख ही नहीं प्राचीनतम भी है। चारभुजा के मंदिर की स्थापना मीरा के पितामह राजबुबाजी ने मया मेड़ता बसाने के (संवत् १५१६) पश्चात् की थी। तभी से चतुर्भुज भगवान मेड़ता के ग्राम-देवता के रूप में पूजे जाते हैं घोर उनका दृष्ट सभी मेड़तिया राठीर करते हैं।<sup>३</sup> राज मासदेव ने संवत् १६१३ में मेड़ते को दूसरी बार बीतकर वहाँ के समस्त महुस ध्वस्त कर दिए थे पर चतुर्भुजाजी का मंदिर उन्होंने भी नहीं छुड़ा। वह अब तक वर्तमान है। चतुर्भुजा के मंदिर के मुख्य द्वार के ऊपर वह स्थान अब भी है वहाँ बैठकर मीरा कीर्तन करती थी। अतः मीरा द्वारा अपने जीवन के प्रत्युप में चतुर्भुजाजी की पूजा के संबंध में व्यापक जनश्रुति घोर स्थानीय साध्य सत्य के बहुत समीप है। समय बीतने पर उनके चारों घोर

(१) आदर्श भक्त अर्थात् मीराबाई भूमिका पृष्ठ २

(२) लेखक ने मीरा के उपरिलिखित छाप के लगभग एक दशक पर मेड़ता में मौखिक परंपरा से मिले। इनमें से कुछ अप्रकाशित भी हैं।

(३) जयमल-वंश-प्रकाश पृष्ठ ७१

(४) वही पृष्ठ १२१

प्रसौनिक घटनाओं का ज्ञान धीरे धीरे मया है। कल्याणरायजी, गिरिधरजी और रामा-कृष्ण की मूर्तियों की स्थापना अब हुई, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। वैभव के परचाव चित्तोदय से सौतेले पर मोरी मेढ़ता में रही थी। उस समय तक उनकी गिरिधर-सम्बन्धी भक्ति भावना पूर्ण बृद्ध हो गई थी। संभव है कि गिरिधरजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा उनकी की प्रेरणा से उसी युग में हुई हो।

(२) द्वारिका की वर्तमान मूर्ति द्वारिका के रणछोड़जी के मंदिर में मीरती कुछ काम तक पूजा करती रही थी। अद्वासु लोगों का विश्वास है कि व प्रान्त में वही मूर्ति में बिलीन भी हो गई। पर, वहाँ की वर्तमान मूर्ति तो वह है जो बोडाला खत्री द्वारा पुरानी मूर्ति के डाकोर से जाने के बाद लाइया नामक जाम में प्रगट हुई थी। इस घटना का काल निश्चित रूप से सन् १९२२ के परचाव का है।<sup>१</sup> अतः इसमें शक भी संदेह नहीं है कि द्वारिका के रणछोड़जी के मंदिर की वर्तमान मूर्ति मीरती द्वारा सेवित मूर्ति नहीं है।

(३) डाकोर की रणछोड़जी की मूर्ति द्वारिका की रणछोड़रायजी की मूर्ति प्रायः डाकोर के रणछोड़जी के मंदिर में वर्तमान है। कहा जाता है कि यह मूर्ति मीरती द्वारा सेवित है अन्तकाल में वे इसी में बिलीन हुई थी।

मीरती छाप के मुखरत में कई ऐसे पर प्रचलित हैं जिसमें रणछोड़जी के डाकोर जाने की घटना का उल्लेख है।<sup>२</sup> मीरती की छाप की कुछ परबियाँ १०० १२२ वर्ष तक पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों में भी मिलती हैं।<sup>३</sup> इनमें भी

(१) यजेदियर दावि बाँम्बे प्रेसीडेंसी (बोरा एंड पंच महल) पृष्ठ १६७

(२) नाथ तने तुम्हरी ने जब सोझाया एवा घुल दे मोबिना गवाया।

बोडाले बहु नाथ समरीया डाकोरमा बसाया

बादल गुलमी घोषवा भाव्या प्रपञ्चजी भटकाव्या इत्यादि

(३) बिछा-समा की हस्तलिपि पोथी तं० १९२० तथा १९२२ (पी डाकोरजीनी घरबी)

[ रोष टिप्पण पृष्ठ ४८९ पर देखिए ]

मीरा की डाकोर जाकर रणछोड़रायजी के चसन की अभिलाषा की अभिव्यक्ति है। जैसा कि पीछे सिद्ध किया जा चुका है। ये रचनाएँ धार्मिक हैं, मीराइत नहीं हैं परन्तु फिर भी इनका एक उपयोग है। इनसे पिछले सबासो बर्षों से जमी धाने वाला जनता की भावनाओं और विचारों का पता चलता है।

उक्त रचनाओं तथा बम्बई प्रेसीडेंसी के जैत जिल के पत्रटियर में रणछोड़जी के द्वारा दाने के विषय में जो बरनाम्य है उनका सार इस प्रकार है—<sup>१</sup>

१७६२ ई में डाकोर में एक रामदास नामक व्यक्ति रहता था जो 'बोमानो' नाम से प्रख्यात था। बाति का वह जमी था। कृष्ण का वह इतना भक्त था कि उसने अपनी एक हथेली पर 'Sweet Basil' के पौध को उगा लिया था। पुत्र के लिए वह बप में दो बार डाकोर के कृष्ण-मंदिर में जाता था। उसके मृत होने पर कृष्ण की सेवा भाई और यह देखकर कि इतना मार्ग ठी करना उसके लिए संभव नहीं है उन्होंने उसे अपनी मूर्ति डाकोर उठा जाने की अनुमा प्रदान कर दी। बाबाणा मूर्ति लेकर भाया। पुजारियों को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने पीछा किया। डाकोर में भाते-भाते पुजारियों ने उसे पकड़ लिया और उस तीर से मार डाला। पर मरने से पूर्व उसने वह मूर्ति डाकोर के तालाब (सामती) में फेंक दी। बाबाणा की पत्नी की प्रार्थना पर रणछोड़जी मोमती से निकल आए और डाकोर के पुजारी मूर्ति के बराबर सोना लेकर जान का रास्ता हाँ गये, पर एक नय में ही मूर्ति लुप्त गई। पुजारियों ने इस पर अपने बचन को तोड़ दिया। फिर स्वप्न में भयबान से यह बचन लेकर कि उनकी पुसरी वैसी ही मूर्ति उन्हें एक कुएं में मिल जायेगी वे डाकोर लौट गये।

डाकोर बरसण जाइए, मोमती गंमती जाइए रे।

रणछोड़जीना बरसण करीये, बरसण कमल बीत रहीये रे।

मीराबाई के प्रभु मीरपर नगर बरसण कमल बीत रहीये रे।

(इसी प्रकार की मीरा की श्राव की परबियाँ दोनों पोथियों में हैं)

- (१) पत्रटियर डॉब व बाम्बे प्रेसीडेंसी बोस्मूथ व, जेरा एंड पथ  
महसुस (१८७९ ए० डी० में प्रकाशित) पृष्ठ १६७

[ विष्णु २ पृष्ठ ४९० पर देखिए ]

डाकोर का वर्तमान मंदिर १६२३ तक संभव में (सन् १७०२ में) बेसबा के साहूकार सतारा निवासी गोपाल जगन्नाथ ठाम्बेकर नामक एक व्यक्ति ने बनवाया था ।

यद्यपि इतना निश्चित है कि डाकोर के मंदिर की वर्तमान मूर्ति डारका के रणछोड़जी के मंदिर की ही है पर यह प्रश्न अभी यह ही जाता है कि मीरा द्वारा इस मूर्ति की सेवा हुई थी या नहीं ।

गवैटियर के अनुसार मीरा के पंचपात्र और बोझाओं द्वारा मूर्ति डाकोर लाने के पूर्व डारका भुसजनामों द्वारा सूटी गई थी और यहाँ की मूर्तियाँ ठोड़ी गई थी ।<sup>१</sup> रणछोड़जी की मूर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध और पवित्र मानी जाती थी । हो सकता है कि यह मूर्ति भी लौड़ी हो गई हो । यद्यपि डाकोर की रणछोड़जी की वर्तमान मूर्ति के भी मीरा द्वारा सेवित होने की संभावना बहुत कम है ।

(४) शिवराजपुर की प्रथममूर्ति—छोहपुर के बिसे के ग्रन्थगत मंथा टट पर स्थित शिवराजपुर में एक कृष्ण-मूर्ति है । यह भी मीरा द्वारा सेवित मानी जाती है । मीरा साहित्य के ल० जिपाटी बिसे अम्बेयी विद्वान इसे ज्ञान भी मानते हैं<sup>२</sup> शिवराजपुर के कुछ उच्च मूर्ति को १० वर्ष से पहले का माना हुआ बताते हैं । कहा जाता है मीराबाई की मूर्ति होने के बाद इनका दुबारा किसी प्रकार से यह मूर्ति राजपूताने से काटी से ला रखा था । मार्ग में शिवराजपुर जाने पर यह मूर्ति वहीं प्रतिष्ठित हो गई । तब से यह मूर्ति मीरा के गिरिधर गोपाल नाम से विख्यात है ।

शिवराजपुर की गिरिधरलालजी की मूर्ति का बेष मीरा की कृतियों में में वर्णित गिरिधर रूप से मिलता है । यह मूर्ति विद्याल और रमणीय है ।

(२) डाकोर में उसका नाम 'बोझाला' प्रचलित है । कहावत रोमन धसरो और अंग्रेजी उच्चारण के यह कारण यह 'बोझानो' हो गया है ।

(१) स्वस्ति ओ भूमि दास्य धक धनै प्रसिद्ध बर्य धरे ।

भासते धुम दासिपाहन धके सीम्पाधने संदरे ।

डकपुर माजा काजीभाई सोभाभाई पटेल बी० एस सी० पृष्ठ ३

(२) गवैटियर धाँक बी बोम्ब प्रेसीडेंसी लेरा एंड पंच महस्त बॉम्बूम ३

(३) बृहत् जाम्बवीहन भाग ७ मीराबाई लेख पृष्ठ ३७-३८

इसमें सपनाय हैं और इसके घाठ भुजाएँ हैं जिनमें सख चक्र गदा पद्म गौ चराने की लकड़ी तथा मोचनन पर्वत हैं। जो हाथों में भ्रमूरो पर आधारित मुकरित मुद्रा में बाँसुरी हैं। इस मूर्ति में मीरा द्वारा दिए गए विष का कृष्ण चिह्न भी है।

इस विषय में निम्नलिखित बातें ध्याननीय हैं—

(१) उक्त जनमूर्ति के प्रतिरिक्त इस विषय में अन्य कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

(२) मीरा की मूर्ति राजपूताना में नहीं डारका में हुई थी। कोई पुजारी बिना विशेष राजकीय अनुग्रह के चित्तौड़ या उदयपुर से मूर्ति वा सकटा वा वह बात भी विश्वसनीय नहीं है।

(३) मूर्ति का चित्तौड़पुर में पचारने का प्रारम्भ प्रकाशित है। कहा जाता है कि किसी सैठ लक्ष्मणराय ने मथुरा में प्रसिद्ध मंदिर जनबाबर वहाँ पर मूर्ति पचारने का विचार किया था पर मूर्ति वहाँ नहीं गई। काशी मथुरा चित्तौड़ उदयपुर को छोड़कर चित्तौड़पुर का ही चुनाव क्यों? राजनीतिक वा सामाजिक परिस्थितियों में इसका संतोखजनक उत्तर नहीं मिलता।

प्रतीत यह होता है कि मीरा के पर्वों में बखित कृष्ण-चिह्न बाँसुरी आदि के कारण चित्तौड़पुर की कृष्ण-मूर्ति को 'मीरा क मिरबर' संज्ञा प्राप्त हो गई और फिर कामान्तर में अज्ञातजनकता में संतकबाधा का जाल फैलता गया। तानसेन द्वारा मिरबर मूर्ति का मीरा से संबंध जोड़े जाने की बटना का प्रमाण तो बीष्णुवर्मा के टिप्पण में सुरक्षित है ही। जीवनी ग्रंथ में इसका स्पष्टीकरण हो चुका है।

(५) मुरपुर की राजराज स्वामी की मूर्ति—कहा जाता है कि मीरा द्वारा सेवित एक मूर्ति मुरपुर के जिले में प्रतिष्ठित है 'मीरबिनोद' के लेखक को मुरपुर के पुरोहित मुजानम के पास (जो वि० सं० १९४१ में उदयपुर आया था) कुछ कागज और ताँबेपत्र मिले थे। इस सामग्री तथा अन्य स्थानीय ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर बिनोदकार का कथन है कि राजा दिलीप ने जब दिल्ली की राजधानी छूटी और उनके पुत्र जैतपाल ने मुरपुर को अपनी राजधानी बनाया उससे बीबीसवीं पीढ़ी में रामा मासू हुषा को बादशाह बहागीर के भेजने से अपने प्रधान पुरोहित व्यास समेत चित्तौड़ आया। उस



नमय राना घामू ने महाराजा उमरसिंह से एक मूर्ति जो अब नूरपुर के किसे में वजराज स्वामी के नाम से प्रसिद्ध है और मीराबाई द्वारा पूजित कही जाती है मांगी इस पर उनके प्रधान पुरोहित व्यास को वह मूर्ति एक घाम समेत बिसका ताम्रपत्र भीने भिजा जायगा मकस्य करके दे दी।<sup>१</sup>

(६) उदयपुर के जयवीरजी के मंदिर की मूर्ति—जगदीशजी के मंदिर के पुजारी जगुर्भोजजी के पुत्र रघुसंजन ने अपने बंध में बही घानेबासी धनुयुति के आधार पर सेवक को बताया कि मीरा को विरवरजी की मूर्ति माधवपुरीजी से मिली थी।<sup>२</sup> उनके अनुसार मीरा जब में जाकर माधवपुरीजी से फिर मिली थी और वहीं उन्हें बानेरायजी की मूर्ति (यह मूर्ति भी उस मंदिर में है) उससे प्राप्त हुई। मीरा द्वारा काठे समय ये मूर्तियाँ रामेश्वर को दे गईं। उस समय रामेश्वरजी बिर्सीङ्ग में रहते थे बाद में वे उदयपुर में आए। वैसाख सुदी पूर्णिमा शुक्रवार सं० १७१६ को उदयपुर के महाराजा जगतसिंह जी ने जयवीरजी का मंदिर बनवाया जिसमें ये मूर्तियाँ पधरई गईं।

जयन्ताचाराय या जगदीशजी के मंदिर की स्थापना के संबंध में उक्त उल्लेख तो उदयपुर राज्य के इतिहास की कसौटी पर सत्य सिद्ध होता है। पर मीराबाई को यह मूर्ति बज-बाणा-काल में माधवपुरी से मिली थी यह बात विचरनीय नहीं है क्योंकि माधवपुरी (माधवेन्द्रपुरी) मीरा की बज-बाणा के पूर ही दिवंगत हो चुके थे। प्रस्तुत विषय की दृष्टि से यह बात विचारणीय नहीं है कि मीरा को यह मूर्ति कहाँ से मिली विचारणीय यह कि मूर्ति मीरा द्वारा पूजित है या नहीं और मंदिर में पुजारी के परिवार में परंपरागत सूचना और उदयपुर का का इतिहास दोनों इन मूर्ति को मीरा द्वारा देवित सिद्ध करते हैं।

(७) घामर के जगत गिरामणिजी के मंदिर की मूर्ति—जयपुर के समीप घामर नामक स्थान में जगत गिरामणि का प्रसिद्ध मंदिर है इस मीरा का मंदिर भी बना जाता है। इसमें विरवर गोपाल धबबा मिटियारीनामजी

(१) ताम्रपत्र महाराजा उमरसिंह के समय वि० १६९६ भाषण कृष्ण ९ का है। और विनोद पृष्ठ २२७ के कुम्होट में ताम्रपत्र की नकल भी हुई है।

(२) बिस्तार के लिये देखिए, यही प्रबंध 'मीरा के गुह' ग्रंथ

(३) उदयपुर राज्य का इतिहास जोधा पृष्ठ १२६

की एक मूर्ति है। कहा जाता है कि यह मूर्ति मीरा द्वारा सेवित है। जयपुर शिरोमणि के मंदिर के मुखारी देवाजी के संग्रह हैं। इसमें स भूपनारायण तथा गिरधारीनाथ से ज्ञात हुआ कि उनके परिवार के परंपरागत 'रिकाद्' के अनुसार यह मूर्ति उनके पूर्वपुण्य देवाजी स मीरा का मिली थी। अकबर ने मानसिंह की सहायता से जब चित्तौड़गढ़ पर विजय प्राप्त की तब मानसिंह अन्य वस्तुओं के साथ प्रस्तुत मूर्ति धीरे से धाए थे। राजा मानसिंह ने अपने पुत्र जयसिंह के स्वगृहासी होने पर इस मूर्ति की पुनर्स्थापना जयपुर शिरोमणि नाम से की और कुण्ड वापाण-निमित्त इस एकाकी मूर्ति के साथ गंगा की मुनि पुत्री भाव से पहराई।

इस मंदिर के सामने गङ्गाजी की लीकी है जिसपर उत्कीर्ण स १८७७ के सत्र को राजाहृष्यरासजी ने संवत् १९११ का मानकर उक्त मूर्ति धीरे धीरे मूल के विषय में कई लिप्य लिखा है। डॉ० श्री हृष्यनाथ ने भी अपने लिप्यों से संवत् १९११ के साथ सत्र मूर्ति-संरक्षकों की संवत्सिद्धि के लिए, मीरा द्वारा गिरधारी की किसी अन्य मूर्ति के बनाए जाने की संभावना का अनुमान किया है। 'अध्ययन के आधार' में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यह तिथि संवत् १११ नहीं संवत् १८७७ है। अतएव स १९११ के आधार पर कोई अनुमान लगाना ठीक नहीं है।

गिरधारीनाथ द्वारा की गई मंदिर-स्थापना तथा मूर्ति प्रतिष्ठा-संबंधी सूचनाएं विश्वसनीय हैं क्योंकि जयपुर राज्य का इतिहास इसकी पुष्टि करता है।

अकबर ने चित्तौड़गढ़ सत्र १९२४ में जीता था। चित्तौड़गढ़ सत्र नई नई सामग्री का बिबरण नहीं उपलब्ध नहीं है पर इस बात में शिरोमणि करने का कोई कारण नहीं है कि मानसिंह गिरधारी वापाण की मूर्ति को धीरे-धीरे धाए थे। मुगलसाम्राज्य द्वारा दुर्ग-विजय के अवसर पर हिन्दू सामग्री के लिए मंदिर की मूर्ति को अपने सरक्षण में कर लेना स्वाभाविक ही है। बाद में धीरे में राधाजी की मूर्ति बनवाकर जोड़ी पूरी करन की सूचना भी गिरधारी की मूर्ति के बाहर से धाए जाने की ओर ही संकेत करती

है। घट मंदिर-विषय बबलू शिरोमणिजी के मंदिर की गिरिचरजी की मूर्ति चित्तौड़गढ़ की मूर्ति ही सिख होती है और इस नाते उसके मीरां द्वारा सेवित होने की संभावना बहुत अधिक है।

(८) चित्तौड़गढ़ के कुंभस्वाम और मीराबाई के मंदिर की मूर्तियाँ—  
चित्तौड़गढ़ में कुंभस्वामी और घादिबराह के दोनों विष्णु-मंदिर एक ही ढोबी कुई पर पास-पास बने हुए हैं। इनमें से एक बड़ा और दूसरा छोटा है। बड़े मंदिर की भीतरी परिष्कमा के पिछले ठाक में बराह की मूर्ति विद्यमान है। अब लोग इसी को कुंभस्वामी या कुंभस्वाम का मंदिर कहते हैं। मद्रुलप्रजस ने मकरमासे में इसका नाम योविन्दस्वाम लिखा है।<sup>१</sup> इस मंदिर के समा-मण्डप के ठाकों में कुछ मूर्तियाँ स्थापित हैं जिनके आसनों पर बि सं० १५०५ के कुंभकर्ण के केस हैं। इस की प्राचीन प्रस्तर मूर्ति मुसलमानों के समय में लोड़ वाली गई, जिससे गई मूर्ति पीछे से स्थापित की गई।<sup>२</sup> चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार मीरां के पश्चात् संवत् १६२४ में हुआ था अतएव कुंभस्वाम के मंदिर की वर्तमान मूर्ति का मीरां द्वारा सेवित न होना ही निश्चित है।

छोटा मंदिर जिसे अब बलती से मीराबाई का मंदिर कहते हैं राखा कुंभा द्वारा ही बनवाया गया था। चित्तौड़ के कीर्तिस्तंभ पर बुरा हुआ लेख इस बात का प्रमाण है।<sup>३</sup> चित्तौड़गढ़ के मुसलमानों के अधिकार में रहने पर इसकी मूर्ति के सुरक्षित रहने की संभावना भी कम है। हो सकता है कि मानसिंह इस मूर्ति को भी धाँवर के गए हों। ऐसी परिस्थिति में घादिबराह के मंदिर की वर्तमान मूर्ति के मीरां द्वारा सेवित होने की संभावना सम्भव नहीं के बराबर है।

अन्व—मीरां की स्वीकृत पदावली में कुण्ड के अनेक नाम मिलते हैं। कहीं-कहीं इन नामों का सम्बन्ध इस प्रकार है कि वह कुण्ड की मूर्तियों (धर्मावतारों) से भी सम्बन्ध किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अनेक पृष्ठ पर दिए हुए पदांत दृष्टव्य हैं—

- 
- (१) महाराजा कुंभा हरबिलास सारवा, पृष्ठ १४६
  - (२) उदयपुर राज्य का इतिहास घोष्य पृष्ठ ३१० फुडनोट (३)
  - (३) चित्तौड़ कीर्तिस्तंभ का लख १४ ३१ — महाराजा कुंभा, सारवा पृष्ठ १४६

(क) धाती म्हाले लाग बुम्बावन मीका ।

धर-धर तुमसी ठाकुर पूजा वरसण गोविन्दजी की ।

(ख) हमरो प्रणाम बकिबिहारी को ।

यह छवि देखि मगन भइ मीरा मोहन गिरवरषाटी को ।

(ग) देखा रूप मदन मोहन री विपत पिपुख न घटके ।

श्री गोविन्द जी की मूर्ति संवत् ११६१ के लगभग श्री रूपपोस्वामी को योमपीठ अर्थात् सोमाटीका पर मिली थी। प्रारंभ में यह मूर्ति एक छोटे से मंदिर में रूपपोस्वामी द्वारा स्थापित की गई थी। इस मंदिर के जीर्ण होने पर सं० १९४३ में मार्गसिंह ने वर्तमान मंदिर का निर्माण करवाया और उसमें गोविन्दजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

बकि बिहारीजी का विद्याल मंदिर हरिदासजी द्वारा बनवाया गया था। वहाँ यह मूर्ति निधुवन में मिली थी। इसका निर्माण-काल सं० १९००-१९१० ठहरता है।

'मदन मोहन' की मूर्ति श्री सम्राट्म पोस्वामी की सं० ११६० में साहित्य-टीले पर मिली थी जिसकी प्रतिष्ठा उसी वर्ष यात्र मास की द्वितीया को की गई। उस समय यह मूर्ति मदनपोपासजी कहलाती थी। उत्तर-नरेश प्रतापनरेश के पुत्र पुष्पोत्तम द्वारा प्रेषित राधाजी का दो मूर्तियों को (राधा और ललिता भाव से) मदनपोपासजी के दोनों धोर प्रतिष्ठित करने के पश्चात् उनका नाम मदनमोहन पड़ गया था।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि ये तीनों मूर्तियाँ मीरा के जन प्रवास काल में वहाँ वर्तमान थीं। अतः मीरा का उनके दर्शन करना स्वाभाविक ही था।

(१) डाकौर (८)

(२) बही (४)

(३) बही (५)

(४) हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्रमुक्त (१० वीं संस्करण) पृष्ठ १८५

उक्त विवेचन से निम्नांकित निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) डारकर के रणछोड़जी के मन्दिर की वर्तमान मूर्ति अजयपुर की 'मिरबरमात' की तथा बिछौड़गढ़ के कुम्हार्याम के मन्दिर की वर्तमान मूर्ति निश्चितरूप से मीरा द्वारा सेवित नहीं हैं। मीरा ने उनके वर्णन भी नहीं किए थे।

(२) बुन्दावन की गोविन्दजी, मदनमोहनजी तथा बकिबिहारीजी की मूर्तियों के उन्होंने वर्णन किए थे।

(३) डाकोर के रणछोड़रायजी के मन्दिर की अद्विष्ट के जगत् सिरों-मण्डिजी के मन्दिर की उदयपुर के जयसीतजी के मन्दिर की मूर्तियों के मीरा द्वारा सेवित होने की संभावना लगभग वास्तविकता के समीप है। मेड़ता के धर्तुमुखाजी के मन्दिर की मूर्तियों का मीरा द्वारा सेवित होना निश्चित है।

इनमें से मीरा के पास गिरिधर की मूर्ति कौन-सी थी यह निर्णय करना कठिन है। प्रायः यह श्रेय उदयपुर के जयसीतजी के मन्दिर की मूर्ति को दिया जाता है।

---

## मीरा-पूर्व हिन्दी-कृष्ण-काव्य

मीरा मीसिक मानव अनुभूतियों की मधुर गायिका हैं। उनके काव्य में प्रायः युग-युग के सत्य वैयक्तिक अनुभूति के लक्षण बनकर सहज स्वर पाये हैं। अतएव न इनमें परंपरा की अनुकृति है और न उसके प्रति विद्रोह। फिर भी इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वे परंपरा और युग का निर्माण थी और यह परम्परा उनकी तथा इनके युग की सम्मिलित काव्य-साधना से विकास के जरम शिखर की ओर अग्रसर हुई। अतः मीरा का नूतनाक्रम उस परंपरा के संदर्भ में ही सम्यक् रूप से हो सकता है।

कृष्ण मल्लि कम और कैसे प्रारंभ हुई इसकी कथा बड़ी लम्बी और विबादग्रस्त है पर इतना निश्चित है कि हिन्दी-साहित्य को अन्य के साथ ही उनसे प्रेरित काव्य की विद्याम सिद्धिमण्डित परंपरा का उत्तराधिकार ग्रहणपात्र ही मिला गया। तब तब भागवत के अतिरिक्त हरिबंश पुराण शारद पाचरात्र आदि धार्मिक ग्रंथों और भास के नाटक जैसी साहित्यिक कृतियों में कृष्ण जीवन के चित्र प्रकट दिए जा चुके थे। पुष्पवन्त कवि का महापुराण सिद्धांत का चुका था। अनेक (१२ वीं शती) इतने अद्यावत्पर्यन्त में विद्योगिनी गोपिकामों द्वारा वासिष्ठ के गुणगान और हेमचन्द्र द्वारा संकलित अपभ्रंश के दोहों और प्राकृतपैगलम् में संयुक्तीत पिगम-मन्त्रों में कृष्ण-संबन्धी रचनाएँ सामने आ चुकी थीं। यह सब इस बात का साक्ष्य है कि कृष्ण-काव्य की उत्पत्ति धारा अमुष्ण बहती जा रही थी। सभी कृष्णानुक्तिक का हिन्दी का स्वर मिला जो मिथिला की अमरावतियों से जुबदात वे रम्य प्रदेश तक पूँज रहा।

हिन्दी-साहित्य के आदि काल में कृष्ण-काव्य की तीन विद्यात धाराएँ इस महाप्राण नामक को अपनी साधना-भूमियों पर, अपने विधिष्ट साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत कर रहीं थीं। वे धाराएँ थी—

- [१] बीप्पण परंपरा के राजा-कृष्ण के भक्ति-गीत—ये सामान्यतः तीन वर्गों में रख जा सकते हैं  
 (क) स्तुतिभूतक  
 (ख) उपदेशपरक  
 (ग) सरस लीलात्मक
- [२] नाच-सिद्ध-परंपरा से प्रभावित गोविन्द, विठ्ठल के स्तवन-नाम जिसमें निर्गुण-सगुणवाद का विषेय विरोध नहीं, सम्भव था।
- [३] बेल इच्छिकोख से लिखे गए कृष्ण-भक्ति जो दो वर्गों में भिन्नते हैं (क) काव्य (ख) प्रद्युम्नभक्ति

इन चारों के अतिरिक्त दो परंपरों के अस्तित्व का प्रमाण और उपलब्ध है यद्यपि इन्हें पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकना अभी और शोध की अपेक्षा रहता है। ये हैं—

- [४] शुद्ध शृंगारिक और काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से सिद्धे गए कृष्ण-काव्य जो प्रायः भक्तिकाव्य में भिन्नकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व को चुके हैं।
- [५] सूत्रीपरक ग्रंथों का व्यवहृत कृष्ण-काव्य जिसके अस्तित्व के प्रबल संकेत हज्जामकेहिदी आदि ग्रंथों में मिलते हैं।

सूत्रियाणा कृष्ण-काव्य (?) सूत्रियाणा कृष्णकाव्य की परंपरा अधिक प्राचीन नहीं है पर १४-१५ वीं सदी में संगीत और शब्द की सरसता के कारण अनेक सूत्री कृष्ण-काव्य की ओर उन्मुख हुए थे। उदात्त वैष्णव संत मुहम्मद हुसैनी और अमीर खुसरो के नाम तो इस संदर्भ में प्रसिद्ध हैं ही। धामे बनकर कृष्ण-काव्य संगीत के कारण सूत्रियों को इस सीमा तक मोहने लगा कि कट्टर मुस्लिम-मीनवियों द्वारा उनकी कड़ी आलोचना होने लगी और विमर्शमी (मीर अम्रुल बाहिर) जैसे उदार नेता मुसलमानों को उसका सामान्य उत्तर ही महा देना पड़ा 'कृष्ण-लीला' के सूत्रीपरक ग्रंथों को स्पष्ट भी करना पड़ा। हज्जामके हिन्दी में उन्हें बहना पड़ा—

‘यदि हिन्दवी बाणों में कृष्ण अपना उनके प्रायः नामों का उल्लेख हो तो इतने रितामय पनाह सम्भव (मुहम्मद साहब) की ओर संकेत होता

है।<sup>१</sup> यदि हिन्दी वाक्यों में जब ध्वजा गोकुल ध्वज आए तो उसके धातु में मासुत और कभी-कभी धातु में असकृत तथा कभी-कभी धातु में अवकृत की ओर संकेत होता है।<sup>२</sup>

हृदयके हिन्दी के लेखक का जन्म हिजरी सन् ११३३ (संवत् १३९९) के आसपास मीरा के जन्म के ३/६ वय बाद ही हुआ था। उन्होंने उक्त पंथ की रचना संवत् १६२३ (बसाहि-उम्-शब्द ११४ हि०) में की थी। इसमें उन्होंने 'विपुल पर्व' में प्रयुक्त शब्दावली के सूची पद्य देखे समझ कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं जो निश्चित रूप से उनके समकालीन और पूर्ववर्तियों के हैं। इनमें से कृष्ण की चर्चा करने वाले प्रचुर उदाहरण निम्नांकित हैं —

- (१) 'गाय पार कछ बागुरी बाई' (पृष्ठ ७६)
- (२) 'कान्हू भाट सँधी' ध्वजा 'कन्हैया मारण रोटी' (पृष्ठ ८०)
- (३) 'सार जवान को ही' ध्वजा 'काहु की बाँह मरोरो काहु के कर बूरी छोरी काहु की मदकिया डारी, काहु की कंधुकी छारी (काही) (पृष्ठ ८१)
- (४) 'यह बातक मेरा कछु न जान' कन्हैया मेरे बारो तुम बाद समावत खोर (पृष्ठ ८२)
- (५) मोर मुकुट सीध बरे (पृष्ठ ८३)

यह कहा नहीं जा सकता कि ये सब रचनाएँ सूफियों की हैं पर मेरा यह अनुमान है कि यदि ये ध्वजा सूफ़ी रचनाओं में न पाते तो उनके सूफ़ीपरक धर्म लेकर कट्टर मुसलमानों से बचने की कोशिश नहीं होती। दूसरे यह भी स्वयंसिद्ध ही है कि धारा के विरुद्ध पीछों पर मुग़ल होकर मूल तक करने वाले आनुक सनीतज्ञ सर्वज्ञ के कारणों में उनसे अप्रभावित नहीं रहते होंगे। बाद के मुसलमान कवियों की कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ भी इस परंपरा के अस्तित्व की ओर संकेत करती हैं। मानसिंह के दरबार में तो महमूद और बक़्श जैसे कलाकार ने जो धातु की प्रेरणा संगीत के प्रेम और परंपरा से प्रभावित हो राजा-कृष्ण-मीरा के भीत भाते थे। महमूद की तो एक होतो और एक कृष्ण-पद भी मिलता है जो निश्चित रूप से मीरा-पूर्व सूफ़ी कृष्ण काव्य के अस्तित्व का प्रबल प्रमाण है।

(१) हृदयके हिन्दी पृष्ठ ७३

(२) वही पृष्ठ ७५



**शृंगारिक कृष्ण-काव्य** — राधा-कृष्ण के शृंगारिक रूप को केवल प्रपञ्च में ही रचनाएँ हुईं ही पर उस भाषा में भी ऐसी कृतियाँ मिलती हैं जिसे हिन्दी और प्रपञ्च के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। वस्तुतः यह भाषा परिनिष्ठित प्रपञ्च-काल की वह लोक भाषा थी जिस कुछ सीखवान कर 'गुजनी हिन्दी' कहा गया है। बारहवीं शती में हेमचन्द्र द्वारा संकलित यह दोहा दृष्टव्य है —

हरि मन्वावित पंखुहि, बिम्बुह पाकिउ सोउ ।

एम्बइ राह पभोहरहि ज भावइ उ होउ ॥

[ (जो) हरि को मन्वाते हैं पंखु में बिम्ब में डालते हैं सोमों को ऐसे राधा-पयोधरों को जो भावे बहो हा । ]

यह दोहा निश्चित रूप में में हेम के किसी पूर्ववर्ती का है और यह हिन्दी के उद्भव की घोषणा कर रहा है। शृंगार की ऐसी रचनाएँ जयदेव के मीत-मोदिव्य और विद्यापति के पदों की पूर्वजा हैं। जयदेव के साधनामृतक हिन्दी-पदों सामने आ गए हैं। असंभव नहीं कि सीधे ही उनकी या सब कासीनों की शृंगारिक हिन्दी रचनाएँ भी प्रकाश में आवें और जिस परंपरा के पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों छोर प्रकाशित हैं, वह स्वयं सम्प्रकार में न रहे ।

**जन दृष्टि से रचित कृष्ण-काव्य** — तीन कवियों ने जैसे राधा-कथा की अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया वैसे ही कृष्ण-कथा की अपने धर्म का साधक स्वरूप प्रदान कर दिया। विशेषण करने पर इस काव्य-धारा में दो रूप विद्येय रूप से सामने आते हैं—एक 'पद्म' काव्यों का और दूसरा, प्रद्युम्न का नायक मानकर लिखी गई कृष्ण-कथा का ।

(क) **पद्म और राधा काव्य** — कृष्ण-काव्य का एक रूप नुबरात में प्राप्त 'पद्म' तथा उसकी परंपरा के धर्म ग्रन्थों में मिलता है। पद्म के रचयिता और रचनाकाल के सम्बन्ध में तो मतभेद है ही उसकी भाषा भी विचारणीय है। प्राचीन हिन्दी से समझा साम्य एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना देता है। श्रीमंती काव्य के रचनाकार का नाम नरसि (१४६६) मानते हैं ।<sup>१</sup> के का शास्त्री का अनुमान है कि कदाचित् यह कृति बमन्तबिज्ञासकार की ही

है।<sup>१</sup> कुछ लोग फागु की ८१वीं कड़ी में 'कीरति मेरु समान' के आधार पर इस कृति की रचना का श्रेय कीर्तिमेरु नामक जैन साधु के किसी शिष्य को देना अधिक समीचीन समझते हैं। कुछ भी हो इसकी संवत् १४१७ की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है जो इसकी प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है। इस फागु में दोहे मात्र नहीं हैं। कवि ने 'अईयु' तथा 'रासक' छंद का भी प्रयोग किया है। भाषा का विचार उठाया व्यर्थ है। निम्नांकित उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन हिन्दी-काव्य की चर्चा के समय यह ग्रन्थ विचारणीय प्रबन्ध है।

‘कीटा करी योबिन्द विनमर सकल गरिन्द ।

×

×

×

रास—

योपिय योपिय छाय निरोपिय बन बनि भमई मुकुन्द रे ।  
 अह विचारी किहि संचरी ? बोलति कुल नम आनंद रे ।  
 बाट बाट सवि बाँधइ सहियर, अहियर तब कुछ रंग रे ।  
 अह मूकी तुं किम हिव जासई ? पासइ योपिय बृन्द रे ।<sup>२</sup>

भी क भा मुंछी मे अपने इतिहास के जो अंश उद्धृत किए हैं,<sup>३</sup>  
 इनका रूप भी सुष्ठु है

रासक—

बाणवरि आबिय प्रभु बीनविज नव इसइ बि सारी रे ।  
 भावव भावव भेटखे आबइ आबति बैन मुछरि रे ।  
 —इत्यादि

आबोल—

बाकई योपिय बृन्द बाई मधुर मूर्धन ।  
 मोरई अंग सुरंग सारंगपर नाइत महपरि ऐ,  
 कुलअण महपर ए ॥  
 कट सिई पंकज नाल सिरि बरि फेरइ बास ।

(१) कवि अज्ञात पृष्ठ १२

(२) फार्बस गुजराती अभासिक १११३ पृष्ठ ४३७

(३) गुजरात एंड इन्डस लिटरेचर, पृष्ठ १४०

छविहि बाजइ ताल सारंगधर०  
 तारा माहि जिमि बन्द गोपिय माह मुकुन्द  
 पणमई भुरगर ह्य सारंगधर०

काव्य—

गोपिय वैपति कीकति हीइत बनहि भँभारि ।  
 मास्त प्रेरित बन भर नमई मुरारि ॥

(क) प्रद्युम्न-चरित तथा कथा-हरण — इस परंपरा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है धनबास बंसीय एक जैन कवि कृत—‘प्रद्युम्न चरित’। इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ० हीरानाथ जी भगवन्त नाहटा तथा डॉ० शिवप्रसादसिंह को है।<sup>१</sup> धनबास कवि का मूल नाम ‘सबाह’ या घोर से धामरे में उत्पन्न हुए थे। प्रद्युम्न-चरित की रचना संवत् १४११ में हुई थी। कथा के सूत्रधार नारदजी हैं, जो स्वयंभावा से श्रुत होकर उनके मान मर्दन के लिए शिशुपाल की वाग्दत्ता इक्ष्मणी का प्रेम घोर विवाह कृष्ण से करवा देते हैं। बाद में उनके पुत्र प्रद्युम्न की कथा विस्तार से आती है, जो घन्ट में कृष्ण प्रद्युम्न के नाटकीय संघर्ष घोर नारद द्वारा रहस्योद्घाटन में समाप्त होती है। प्रारम्भ में तीर्थंकरों की कम्बना घोर घन्ट में प्रद्युम्न द्वारा विनेष्ट से बीछा घोर कैवल्य प्राप्ति का बख़्श है।

इन प्रद्युम्न चरितों की एक लम्बी परंपरा जैन-साहित्य में मिलती है। कम्बई की जैन स्नेहाम्बर सभा द्वारा प्रकाशित ‘जैन संघाचमो’ में पाँच प्रद्युम्न चरितों की बर्णना मिलती है जिसमें से एक तो १२०१ वि० की रचना है। ये पाण्डुलिपियाँ धामी तक भेजे स्वयं नहीं देखी हैं, पर असम्भव नहीं कि इनमें से कोई हिन्दी के प्रारंभिक काल की प्रस्तुत परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी हो।

इसी परंपरा में धापा-हरण नायक घनेक ग्रंथ भी मिलते हैं पर मीरा के पूर्व के दो ग्रंथों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—एक है परमानन्द बाह्यण इत धोपा-हरण जिसकी रचना संवत् १५१२ में हुई थी और दूसरा है

(१) वैपियु—नागरी प्रचारणी तभा की छोज रिपोर्ट १९२३ २५  
 धनबास नाहटा का लेख ‘१४११ के प्रद्युम्नचरित का बर्ता’  
 हिन्दी अनुशीलन वर्ष २/१४

(२) नागरी प्रचारणी पत्रिका ५६-१

जनार्दन ब्राह्मण कृत<sup>१</sup> जो संवत् १२२४ में लिखा गया था। इन दोनों की भाषा मुजराती मिश्रित हिन्दी है वस्तुतः मुजराती के अधिक निकट है।

नाथ-सम्प्रदाय से प्रभावित कृष्ण-काव्य—भक्ति-काल में समुल्लेख्य और निर्गुण चाराग्रों में स्पष्ट विभेद ही नहीं कुछ विरास भी था। पर धार्मिकता में स्थिति भिन्न थी भक्तों और सन्तों में भेद नहीं था। समुल्लेख्य 'बड़ा-पियसा-सुपुष्पा' की बात कर लेते थे। जयदेव इस सम्प्रदाय के प्रथम और स्पष्ट उदाहरण है। रामानन्द ने भी 'हनुमान की धारणी' और 'हठयोगी साधना' की कर्षा को विरोधी नहीं समझा पर उनके पदवाच्य हिन्दी प्रदेश में विभेद की प्रक्रिया धीरे-धीरे इतनी प्रचार हुई कि कबीर को 'बखरव सुत का मरम' बताना पड़ा और तुलसी से निपुणिया की 'आमबासी ब्रह्ममयता' का खण्डन किए बिना न रहा गया। यह विभेद महायष्ट को नहीं झूपाया। वहाँ संत विद्वंस की मूर्ति की पूजा और धर्म-साधना एक साथ करते रहे। प्रथम और मुजरात की स्थिति भी हिन्दी प्रदेश में भिन्न रही।

जयदेव—हिन्दी कृष्ण-काव्य के रचयिताओं में प्राचीनतम नाम जयदेव का मिलता है<sup>१</sup> जिनके दो पद युक्त ग्रंथ साहित्य में संकलित हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह विश्वास करना पड़ता है कि ये दोनों जयदेव (गीतगोविन्दकार और पदग्रंथ साहित्य में संगृहीत पदों के रचयिता) एक ही हैं क्योंकि ग्रंथ साहित्य में संगृहीत पद केवल विषय वस्तु की दृष्टि से ही गीत गोविन्द से भिन्न नहीं हैं उनमें गीतगोविन्द के रचयिता की अपेक्षा बहुत सीसी और मनोहर पद-विन्यास का कुछ साम्य नहीं मिलता।<sup>१</sup> आचार्य सितिमोहन राम ने अपने दादू नामक ग्रंथ में इसी

(१) प्राचीन पूर्वक काव्य (क. ह. भुव)

(२) संस्कृत साहित्य में जयदेव नाम के कई व्यक्ति मिलते हैं—  
प्रसन्नराघव भाटक के रचयिता जगन्नाथकृष्णकार और पीत-  
गोविन्दकार। नामावली में अनेककाल में दो जयदेवों का उल्लेख  
किया है, एक 'उज्जायार पीतगोविन्द के कर्ता कवि नृपचरन्' और दूसरे 'संसार से निवृत्त' होने वाले। यहाँ प्रायः पीतगोविन्दकार से ही है।

(३) हिन्दी-साहित्य पृष्ठ ११८

बात का संकेत दिया था <sup>१</sup> पर उनका निष्कर्ष भ्रम था ।

वस्तुतः मुक्त प्रेम साहित्य के प्रथम संघर्ष में संकलित जयदेव छाप के पद की सम्यक्बोधी और भावना दोनों उसके रचयिता के गीतगोविन्दकार होने का ही संकेत देती है । इस संबंध में निम्नांकित बातें विचारणीय हैं—

( १ ) जयदेव के गीतगोविन्द के रसोक्तों का प्राकृतपद्यमम् के कृष्ण लीला-संबंधी पद से साम्य और उनका लोकगीत की मधुरता भाव का प्रयोग (जो संस्कृत काव्य के लिए असामान्य बात थी) यह बताता है कि जयदेव संस्कृत के मिथिले समय जन भाषा लोक-मय और जनभावना के प्रति अत्यन्त सज्ज थे । उन्होंने तत्कालीन जन भाषा में भी काव्य लिखा होगा इसमें संदिग्ध नहीं है ।

( २ ) जयदेव के एक पद की दो पंक्तियाँ हैं —

हरि भगत निज मिहकेबसा रिद करमणा बचसा ।

बायेन कि बनेन कि वानेन कि तपसा ॥

इन पंक्तियों की मय पलों के संस्कृत रूप और 'गोविन्देति भज गोविन्देति भज' की भावना क्या इस बात का संकेत नहीं करती कि संस्कृत का कोई कृष्ण भक्त पंडित जनभाषा में अपनी बात कहने का प्रयास कर रहा है ? मय और पदावली स्पष्टतः गीतगोविन्द की ओर संकेत करती है । बस संकेत है कि गीतगोविन्द की शृंगारिक आत्मा संन्यास लेकर जन-भाषा के स्वर में उद्बोधन कर रही है ।

( ३ ) वहाँ तक भाव साधना पद्धति के प्रभाव का प्रश्न है यह बात स्पष्ट की जा चुकी है कि उस युग में दोनों धर्म-साधनाएं समन्वित थी । रामानन्द जैसे सद्गुरुवादी भी 'वसंत कुंडलिनी और अनहद नाद' की बात करते थे ।

गीतगोविन्दकार राजा लखणसेन के दरबारी कवि थे जिनका शासन काल ११७६ १००३ ई० माना जाता है <sup>१</sup> कुछ विद्वानों का अनुमान है कि

( १ ) प्रेम ताहेवे जयदेवेर बाणीयो उद्भूत धाछे । तासते देखि गीतगोविन्देर बाणीर संगे तार किछू भाव भायेर सम्पर्क नाई ।

( २ ) रत्नगीतास्त गुप्त जयदेव-वर्तित (हिन्दी अनुवाद) अङ्गणुर प्रेस बालीपुर (१८१० ई०), पृष्ठ १२

वे उड़ीसा के राजा कामार्णव देव (११८८-१२११ ईसवी) और पुरुषोत्तमदेव (१२०८-१२३८) के समकालीन थे। कुछ भी हा उसका जीवन-काल ईसा की १२ वीं सदी के आसपास पड़ता है।

अपदेव के गाथापाविन्द में मौलिकता है, प्रणय के उपमाय का उद्गारक रूप है और है प्राणों को मकुर स्पन्दन से भर देनेवाला घलहृत संगीत। इससे विपरीत उनके गावित-सम्बन्धी हिंदी-पद्य में बैरगम्यमूलक भक्ति के निरालम मरस भाव का घनकारखीन सीधी-आगी भाषा में धर्मिष्यवित किया गया है। इस प्रकार अय्येब-साहित्य में कृष्ण-काव्य के दो रूप मिलते हैं—

(१) संस्कृत में—गीतगोविन्द में सङ्ग-शृङ्गार पद-आतिथ्य एवं संगीत माधुर्य से पूर्ण सफल श्रृंगारिक भाव प्रधान गीति-काव्य का।

(२) हिन्दी में—बराण्य-अधान संत-भावना से प्रभावित संदेशपूर्ण पर कमाहीन शैली में रचित गीत-काव्य का।

[इन दो भाव-धाराओं और शैलियों का अनुसरण हिंदी में समान रूप से नहीं हुआ। गीतगोविन्द की चिरमकुर अनुपूर्व से अनेक परवर्ती मल्ल-कवि प्रेरित हुए पर 'गावित मल्ल का उपदेश था' के कवियों को प्रभावित नहीं कर सका। इतना ही नहीं आज हिंदी कृष्ण-काव्य की समस्त धारा पर दृष्टिपात करने पर यह पता अपनी उपरसमयों दुर्लभ्य भीरसता के साथ परंपरागत संदर्भ में अजनबी-सा प्रतीत होता है।]

अय्येब में कृष्ण-काव्य की जो दो परंपराएँ दिखाई पड़ती हैं वे उन्हीं तक सीमित नहीं रहीं। एक ओर सरस ब्रज-बीषियों और बिबिला की भाव प्रबल भूमि में रामाकृष्ण की 'शृंगारमयी नाकांतर छटा' के रसोन्मत्त करने वाले मकुर गीत मिले जा रहे थे साथ-साथ-साथ जिनकी प्रौढ़ कसारमल्ल धर्मिष्यवित विद्यापति और मूर की रचनाओं में हुई थीं दूसरी ओर महाराष्ट्र में नाव-मल्ल से प्रभावित बराण्य-अधान साधनात्मक भक्तिभावनापनप रही थी जिन महानुभाव और बारकरी संप्रदाय के संतों ने वाली थी। पहले प्रकार की धारा विनोद अनुचितमूलक थी। इसकी परंपरा हिंदी में बसी। याग-मल्ल से प्रभावित महाराष्ट्र की कृष्ण भक्ति भावना का प्रचार उत्तर में नहीं हुआ। एक ओर सजान की बात है कि बीरी के पूर्व महाराष्ट्र के कृष्ण मल्ल कवियों-बबबर, महामयिमा बामोदर पंडित (महामुभावी) आमेर और मुक्ताबाई (बारकरी) का जो हिंदी-काव्य उपलब्ध है वह भावना धर्मिष्यवित-शैली तथा भाषा-शैली से संत-काव्य के अधिक निकट है।

जयदेव की विद्युत् अनुसक्तिमूलक और श्रुमारपरक भाव-धारा के उत्तराधिकारी मैथिलकोविन्द विद्यापति थे। इन्होंने भाव ही नहीं कसा की मूर्ष्टि से भी जयदेव की संस्कृत परंपरा का अनुसरण और विकास किया।<sup>१</sup>

विद्यापति—डॉ० उमेश मिश्र के अनुसार उनका जन्म २४१ मन्मथ सप्तम् ( सन् १३९० वि० ) के लगभग बैठता है।<sup>२</sup> मीरा के समय से पूर्व ही मन्मथों में इनका बड़ा प्रभाव हो गया था। महाभारत चैतन्य तो उनके पदों को गाते-गाते मूर्च्छित हो जाते थे।

विद्यापति के कृष्ण-काव्य में कुछ विद्यान (कुमार स्वामी जनार्दन मिश्र आदि) रहस्यवाद की अनुपम छटा देखते हैं।<sup>३</sup> और सहजिया संप्रदाय के वैष्णव भक्त तो विद्यापति को अपने सात श्रेष्ठ रसिक भक्तों में से एक मानते हैं पर वस्तुतः उनका काव्य वीरबोधि की तरह ही उग्राम जीवन के तत्त्व-विनाश के बीछे से भरा है। जैसा कि डॉ० रामकुमार वर्मा का कथन है 'प्राप्य वे प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिए, वह उसमें सन्तान भी नहीं है। उममें कृष्ण तो जीवन में समस्त नायक की भाँति हैं और राधा जीवन की मदिरा में मत्तवासी एक मुग्धा नायिका की भाँति। अनेक पदों में इस कवि कण्ठहार ने शिवसिंह और मखनारई के मधुर रस के लिए, रति का सद्य मानकर जसनेबाल केतिफला विचारव हृष्य और अतिष्ठ सुंदरी कामिनी-राधा-की प्रणयबीजा' की विभिन्न अवस्थाओं के विभिन्न संकित किए हैं।<sup>४</sup>

(१) तुलना कीजिए ललित लवंग सदा परिशीलन कोमल मलय समीरे। (जयदेव)

सरस वल्लभा समय भल पाधोक इष्टि पवन धनु पीरे। (विद्यापति)

(२) विद्यापति ठाकुर पृष्ठ ३९ [इस विषय में अनेक मत हैं— देखिये 'विद्यापति' शास्त्रप्रसाद सिंह पृष्ठ ३८-४१]

(३) विद्यापति प्रो० जनार्दन मिश्र एम० ए० पृष्ठ ३२

(४) द्विती संहिता का आत्मोत्पत्त्यात्मक इतिहास पृष्ठ ५०८

(५) विद्यापति की पदावली, बेनीपुरी (द्वितीय संस्करण)

देसिए 'प्रेम-प्रतीक'-'मिथुन'-'सपनी-सभाषण' आदि ग्रंथ

विद्यापति ने 'बिरह धीर 'भावोत्साह' के पक्ष भी लिखे हैं। इनमें वियोग की मनोव्यथा का चित्रण है धीर प्रणय का मानसिक पक्ष प्रधान है अतः इनमें शृंगार की वह मांसमत्ता नहीं है जो सयोग के चित्रों में है। साथ ही विद्यापति की कुछ रचनाएं ऐसी भी हैं जिनमें उनका विकसित मन 'भाव बनम मीद में रीबाकर' 'सौम की बेसा में' 'सेवकाई' गीता है।'

इस प्रकार विद्यापति के कृष्ण-काव्य में तीन चरण हैं—

- (१) प्रमुख—स्वून संयोग शृंगार की
- (२) सामान्य—वियोगजन्य मनोव्यथा की
- (३) अत्यन्त हीन—मक्तिमूलक वैभ्य भावना की

नामदेव—कृष्ण-काव्य रचयिताओं की परंपरा में नामदेव का नाम भी मिलाया जाता है। गुजरात के मरुसिंह मेहता जैसे अछ कवियों पर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। उन्होंने इनसे छाप की पद्धति ही ग्रहण नहीं की थी उनके 'ारसमें' के पदों में सम्बोधन की रीति और उनकी आर्त भावना पर नामदेव की छाप दिखाई पड़ती है।' प्रारंभ में ये बिठूर के सपुत्र भाव के भक्त थे। कुछ कठोरा लेकर पोषिम राइ की पुजा करते थे। उस समय की उनकी रचनाओं में सपुत्र-मक्ति का स्वर अधिक प्रबल है पर बिसोबा केचर से सीला लेने के पश्चात् इनकी प्रेमपूर्ण मक्ति में ज्ञान का समावेश हो गया। नामदेव ने कदाचित् उत्तर भारत की यात्रा के पश्चात् ही हिन्दी में काव्य रचना की होगी और उस समय वे भावना की दृष्टि से सत-मत के समीप थे। अतएव नामदेव का सपुत्र मक्ति-काव्य-चरण में योग लगभ्य है।

अंकरदेव—अंकरदेव का जन्म सन् १४४६ में अक्षम ग्राम के एक कामस्य कुल में हुआ था। जिस धर्म का इन्होंने प्रवर्तन किया उसे महाधर्म या महापुरुष धर्म अथवा महापुरुषिया धर्म कहते हैं।' इन्होंने असमिया तथा

(१) बही पृष्ठ २४६

से २९६ तक तथा पृष्ठ ३१४ से ३१५ तक

(२) गुजराती साहित्यम् रैखा-वर्गन, पृष्ठ ७२-८२

(३) अनागत सम्प्रदाय डॉ० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ५४५ १४९



समीचीन है तो 'दसम' नामा प्रसिद्ध ग्रंथ १४ वीं और १६ वीं शती की कवि व्यष्टी है।

वहीं तक इसके रचयिता का प्रश्न है वह भावी शोध का विषय है। अभी तो रासो के रचयिता का भी ठीक पता नहीं है।

'दसम' समग्र के दशावतार-चरितम् की परंपरा की कवि नहीं है। समता है कि इसके मूल रूप में घाये चलकर और विकास हुआ है। दसमकार मूलतः 'घायब राम-हृष्य-भीमा का ही गान करना चाहता था। उसने कहा भी है—राम-किसन किती सरस कहत भये बहुवार।

सिर बहुमान मार रामभीमा कछु मचाइए।<sup>१</sup>

दसम में आई कृष्ण-कथा में काव्य-शास्त्रीय कड़ियों और भुंवारिकता का समन्वित रूप है। घिसिर घीत और बसन्त में विमोच-व्यक्तियों का विमल चर्चा परंपरा की ओर संकेत करता है।<sup>२</sup> वैसे इसमें प्रबानता मवनोत्सव और बसन्तोत्सव की भीलाओं की है और घन्त में मधुरागमन बोपीबिरह और कंस-दहन के पश्चात् द्वारकानगमन का उल्लेख करके कहा समाप्त होती है। इस ग्रंथ की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि कृष्ण की प्रवृत्तारवाही भीलाओं का चित्रण करते हुए भी वह निर्मूल्यवाद का समर्थक है। विमोचिनी बोपिकाओं के सम्बन्ध में वह कहता है—

प्रमिनव बिरह बिलपि भिय विखान नन्द जुंवार।

निर्गुण पुन बाँधिय सकल मनु पण्डित पछार।

[नन्दकुमार ने उन्हें दीक्षित करके निर्गुण पुण (रस्ती) में बाँध दिया माना परियों की पंखड़ी (उड़ाने वाली बासना से मुक्त) कर दिया हो]

विष्णुदास (पंखड़ी वाली ?) विष्णुदास को प्रकाश में लाने का येय डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह की है। जिन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा की सर्व रिपोर्टों के आधार पर इस कवि का विवरण प्रस्तुत किया। इन रिपोर्टों के

(१) पुष्पीराजरासो, प्रथम भाग सं० कविराज मोहनसिंह पृष्ठ ८०

(२) तिसिर बन तप करहि कयल दसमय सुबदन घनि।

हैमसतन बन बहिन बनिभ जल सुबल सुबल मिमि।

(३) सुपूरुष ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ १४९, १५२

अनुसार बिष्णुदास गोपासगढ़ या भ्वाभियार के बासी थे जो उन दिनों डोंगरसिंह मामक राजा के अधीन था और इनका जीवन-काल १४१५ ईसवी के आसपास है। इनकी निम्नलिखित रचनाओं की सूचना मिलती है—

- (१) महाभारत कथा (कथित रचनाकाल संवत् १४९२)
- (२) ब्रह्मलीमंगल
- (३) स्वर्गारोहण
- (४) स्वर्गारोहण पर्व
- (५) रत्नेहलीला

इन खोज-रिपोर्टों और उनमें उद्धृत जगों को ध्यान से देखने के पश्चात् इस प्रसंग में कुछ उचित सामने आते हैं जो विचारणीय हैं —

(क) बिष्णुदास की उक्त रचनाओं में से एक भी इस समय उपलब्ध नहीं है। जो उपलब्ध है, वह समा के खोज-रिपोर्ट-सेलकों द्वारा प्रस्तुत विवरण और कुछ उद्धरण मात्र हैं।

(ख) इन खोज-रिपोर्टों में जिस नियोजित क्रम से पुस्तकों की संख्या बढ़ाई गई है, वह सबीह उत्पन्न करता है।

(ग) १८०९ ई० के खोज-रिपोर्ट-सेलक बिष्णुदास की दो रचनाओं (महाभारत कथा तथा स्वर्गारोहण) के ब्रह्मराज पुस्तकालय में होने की सूचना देते हैं पर बाद में वे ब्रह्मराज पुस्तकालय में न मिलकर, बरियान गण बिजा एटा और विनहार बिजा भागरा में मिलती हैं।

(घ) 'ब्रह्मली मंगल' के अष्ट के बिष्णुपत्र के लिए हुए दो पाठ यह स्पष्ट कर देते हैं कि इनमें केवल पढ़ने की श्रुतों के कारण ही इतना अन्तर नहीं है। एक पाठ है महमन मोहन जगत बिभास।

कहाँ मोहन कहाँ रमन रानी और कोठ नहीं पास।

दूसरा पाठ है मोहन महमन करत बिभास।

कमक भँदिर में कोलि करत हैं और कोठ नहीं पास ॥

(च) बिष्णुदास भ्वाभियार-बासी ब्रह्मभाषी थे। उनकी भा प्रतियाँ मिली हैं जब प्रदेश में लिपिबद्ध हुई हैं—भागरा और एटा में। फिर भी उनमें कुछ ऐसे प्रयोग हैं जो ब्रज के प्राकृतिक और प्राचीन दोनों रूपों की दृष्टि से विचित्र हैं। कुछ उदाहरण नीचे—

(१) पंडो जणित सुने बै काना

[सामान्यतः लोगों में यह भ्रम है कि जब मैं हर आकारान्त संज्ञा प्रोकारान्त हो जाती है इसीलिए कई विद्वान घोड़ा का पंजी रूप घोड़ो कर गए हैं जो वस्तुतः भ्रमभुज है । पंडो भी इसी प्राधुनिक विद्वत्ता का निर्माण मा मयता है ।]

(२) तुम करो घस्नाना

(३) साध सोय छीड़ेमे जासी

(४) कलि में ऐसी बलि है राह, इत्यादि ।

इस सम्बन्ध में मेरा भक्त निवेदन यही है कि जब तक मूल प्रतियाँ उपलब्ध न हों और रिपोटों की परीक्षा न हो जाय तब तक बिष्णुदास के रचना-काल के सामने से प्रश्नवाचक न हटाया जाय ।

भीम—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में भीम नामक कवि की 'हरिमीसा सोलह कसा' नामक कृति की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जिसका लिपिकाल संवत् १७२१ है । इसका रचनाकाल संवत् १५४१ कहा जाता है । वस्तुतः भीम गुजराती कवि के और कदाचित् यविचमदास के पितामह तथा प्रसिद्ध गुजराती कवि बिष्णुदास के पिता के । 'हरि मीसा सोलह कसा' को नाया प्राचीन गुजराती है । इसलिये कभी-कभी उसके प्राचीन हिन्दी होने का भ्रम हो जाता है ।

कुंमनदास—'मोक्षार्चनापत्री के प्राकट्य की वार्ता' के आधार पर कुंमनदासजी का जन्म-संवत् १५२५ ठहरता है । संवत् १५४१ में श्री बल्लभाचार्यजी ने भीमाधजी के पधारने के कुछ ही बार 'कुंमनदासजी को नाम सुनायो और बड़ा-सम्मान करवायो' । कुंमनदास के पर स्फुट रूप से अनेक हस्तलिखित पुटकों में मिलते हैं । प्राप्त पदों में कुछ वा निश्चित रूप से मीरा के रचना-काल के पूर्व की कृतियाँ हैं, पर अब उन पदों का प्रसंग कर लेना संभव नहीं है ।

(१) घट्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय पुष्ठ ५४८

(२) घट्टछाप सं० डॉ० बीरेन्द्र वर्मा, पुष्ठ ७२ (यद्यपि कुंमनदासमीरवा तिनकी वार्ता)

‘मोक्ष साज कृष्ण की मर्यादा’ स्थापक ‘रसिक नदनदन की कोटिक  
पद सजानेवाली चितवन’ पर ‘तन मन बारन की सरस साधना को कुंमनदास  
न अपने काव्य में मुखरित किया है। मुर की कमनीय कला और मीरा की  
मधुर भावना की तीव्रता उनमें नहीं है। फिर भी सामुदायिक और भक्तिभाव की  
ईमानदारी अभिव्यक्ति के कारण ये भक्तिकाव्यी साहित्य में अपना स्थान किए  
हुए हैं।

सूरदास—वत्सभ-सम्प्रदाय में प्रचलित परंपरागत भाव्यता के आधार  
पर मुरदास की जन्म-तिथि संवत् १३३३ बैशाख सुदी पंचमी निर्धारित होती  
है। उन्होंने लगभग ३१-३२ वर्ष की अवस्था में (संवत् १३६६-६७) वत्सभ-  
चार्य न पुष्टिमार्ग की बीजा सी थी। बीजा के पूर से गऊवाट पर रहते थे  
स्वयं स्वामी से सेवा करते थे। मयवत् मान घण्टा करते थे। मीरा का  
रचना काम मुर के बहू-नम्बरा के बाद ही प्रारंभ हुआ है। अतः वत्सभ-चार्य  
से मिलन के पूर्व रचित मुर के भगवत-गान मीरा के युग के पूर्व की संपत्ति है।  
उनकी इन काव्य की रचनाएँ ‘विनय के पद’ हैं। चूंकि डॉ० मधाराज  
धर्मा न अपने ग्रंथ ‘भारतीय साधना और मुर-साहित्य’ में स्पष्ट किया है मुर  
के ये विनय-सर्वगी पद बार कोटियों में रज जा सकते हैं—

- (१) हृदयगत और चित्त-साधना से सबब रचनबान पद
- (२) निर्गुण भक्ति से प्रभावित पद
- (३) वैष्णव भक्ति के वाक्य भाव वाले विनय के पद
- (४) सकल भाव की भक्ति वाले पद

प्रथम मिलन के अवसर पर मुर ने वत्सभ-चार्य का जो हाँ पद सुनाये  
वे से निविदाद रूप से बीजा के पूर्व के ह और उनमें आत्म-ज्ञान वैष्णव और  
वैष्णव का भाव प्रधान है। पुष्टिमार्गी बीजा प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने  
‘हरिजीना’ के पद रचना प्रारंभ कर दिया जिनमें वास्तव्य सकल और माधुर्य  
की मनमोहिनी विचार्य अपनी पावन सरसता के साथ बड़ी। मुर के इस परवर्ती  
काव्य की कुछ छोड़ी-नी प्रारम्भिक रचनाएँ मीरा के काव्य-रचना-काल के पूर्व  
की भी होनी अभिधात ता उनकी समकालीन हैं।

- (१) अष्टछाप, सं० श्रीरंगधर्मा पुष्ट ३ और ४, “अथ मुरदास जी मऊवाट  
ऊपर रहते।”

तत्त्ववेत्ता—ये मिथार्क-संप्रदाय के संत जोधपुर राज्य के जैतारण नगर के निवासी श्रीर जाति के छेम्याणि ब्राह्मण थे। इनके असली नाम का पता नहीं है। तत्त्ववेत्ता इनका उपनाम था। इनका अधिमर्श-कास संवत् १५१० के समय माना जाता है।<sup>१</sup>

‘तत्त्ववेत्ता का विगम भाषा में लिखे १८ छप्पयों का एक सङ्कलन उपलब्ध है। उसका जो प्रारंभ डॉ० मैकारिया ने उद्धृत किया है उससे स्पष्ट है कि सर्वचन्द्र (रामचन्द्र हरिचन्द्र आदि) को सुमरते-सुमरते उन्हें वृन्दावन-चन्द्र (परमचन्द्र) का ‘परचे भया’ था। उसी की सरस अनुमति उनके काव्य की मूल प्रेरणा थी। भ्रत उनको मीरा पूर्व के कृष्ण-काव्य के प्रेरेताओं में स्थान देना उचित ही होगा।

सामान्यशास —सामान्यशास हमबाई नामक किसी कवि का दोहा—  
बोपाई—छंद—बीची में रचित ‘भागवत भाषा हरि चरित बचन स्कंध’ की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख डॉ० बीमलदास गुप्त ने किया है। इनके अनुसार ये प्रतियाँ भाषाशास्त्र यात्रिक संप्रदाय में हैं। इनमें से एक में रचना-कास सं० १५०० दिया हुआ है।<sup>२</sup>

सामान्यशासबीनबी बीम के पास ‘भागवत बचन स्कंध भाषा’ की प्रति थी। मिथबन्धु विनोद में रामचरणी निवासी एक सामान्यशास हमबाई द्वारा सं० १५८७ में दोहा—बोपाई बीची में लिखित ‘भागवत बचन स्कंध की भाषा’ नाम से इसी कृति का उल्लेख है।<sup>३</sup> डॉ० गुप्त का कथन है कि ‘मिथबन्धु विनोद’ में उद्धृत ग्रंथ कुछ पाठभेद के साथ यात्रिक संप्रदाय की भागवत से मिलते हैं जिससे निश्चित हो जाता है कि ये दोनों दो भिन्न पुस्तकें नहीं हैं।

माधवी प्रचारिणी सभा की सं० १९०६ ७ ८ की खोज-रिपोर्ट के अनुसार ‘हरि चरित’ के रचयिता सामान्यशास १५९५ वि० में विद्यमान थे। मिथबन्धुजी ने भी इसी तिथि को उनके कविता-कास के रूप में उल्लिखित किया है। अस्तु सामान्यशास का रचना-कास संदिग्ध है। इतना स्पष्ट है कि

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १४१

(२) ग्रन्थालय और बाल्य सङ्ग्रह, पृष्ठ २१

(३) मिथबन्धु विनोद—भाग १, पृष्ठ २५६

वे मीरा के पूर्ववर्ती या समकालीन थे। काव्य की दृष्टि से उनकी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

नरसिंह मेहता —नरसिंह मेहता की कृष्ण-भक्ति-संबन्धी कुछ हिन्दी-रचनाएँ यत्र-तत्र मिलती हैं। 'सिधसिंह सरोज' में इनका एक पद उद्धृत है।<sup>१</sup> मीरादास रचित 'नरसी मेहता को भानेरो' में भी नरसी की छाप के कई पद मिलते हैं। लेखक को 'नरसी की छाप' के कुछ पद मौखिक परम्परा से मिले हैं जो प्रायः रचना जाती द्वारा मिले 'माहेरा' के बीच-बीच में गाए जाते हैं। इनके प्रतिरिक्त इच्छाराम भुर्यराम देसाई द्वारा संपादित 'नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह' में भी कुछ पद ऐसे हैं जो दो-एक शब्दों से अपवाद के साथ पूर्वतः वज्रभाषा के हैं।<sup>२</sup> इन हिन्दी रचनाओं में कौन कितनी प्रामाणिक है यह निर्णय अभी तक नहीं हो सका पर गुजरात के साहित्यकारों का यह सामान्य विश्वास है कि वज्रभाषी कृष्ण की मधुर भक्ति के साथ-साथ और सुम-निर्माता कवि ने अपने समय के अन्य कवियों के समान अपने आराध्य कृष्ण की जन्मभूमि से सम्बन्धित जमी और उत्तर भारत की तत्कालीन 'काव्य भाषा' (वज्र-भाषा) में रचना व्यवस्था की थी।

नरसिंह मेहता के जीवनकाल के विषय में मतभेद है। गुजराती के प्रसिद्ध विद्वान उनका प्रायुष्काल सन् १४१४ से १५०० मानते हैं और उन्हें गुजराती भाषा के 'आदि कवि' होने का श्रेय देते हैं।<sup>३</sup> और अगर वह मत

(१) पृष्ठ १७४—यदः व्याल जरि व्याल जरि बन्धी कुवर जु थे  
—यदि अश्लिष्य पागल पागले।

(२) पृष्ठ ४६८ पद ५० धुं—राग आरती  
पृष्ठ ४६९, पद १ धुं—राग प्रभातिधुं।

(३) (क) गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (क० मो० सचरे, संशोधित बीबी प्रापुति), पृष्ठ ३८

(ख) कवि चरित भाग १-२, के० का० दासजी पृष्ठ २४ (बीबू संस्करण)

(घ) गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) अनन्तराय रावल पृष्ठ ८९

(घ) हिन्दी के कुछ इतिहास लेखकों ने उन्हें हिन्दी में कृष्ण-विषयक पद-रचना करनेवाला प्रथम कवि माना है—हिन्दी-साहित्य-एक अध्ययन भटनागर, पृष्ठ १२८

सत्य हो तो मरसी सबमाया के भी कदाचित् प्रथम कवि सिद्ध होंगे। परन्तु इस विषय में प्रसिद्ध ग्रन्थोंकर भ्रुव द्वारा व्यक्त संदेह से प्रभावित होकर के० एम० मुंशी ने स्वतंत्र अनुसंधान के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि 'मरसिंह का जीवन-कास सन् १५०० और सन् १५८० के बीच ही कभी मानना बुद्धिसंगत है।'<sup>१</sup>

मरसी को ईसा की १५वीं शती का माननेवाले विद्वान 'हारमार्स' को मरसिंह का नामकर उसमें उल्लिखित सं० १५१२ (सन् १४५५) के आधार पर उनके जीवन-कास के विषय में अनुमान करते हैं। मुंशीजी इस प्रश्न को अप्रामाणिक मानते हैं। साथ ही १५ वीं और १६ वीं शती के कृष्ण-भक्ति कवियों के मरसी के विषय में अनुसन्धेय विशेषकर सन् १५१३ में पौतस्य के जूनाबाद गमन का मरसी-सबधी विवरण रत्नेबासे गोविन्ददास की रैमिकी में इसके उल्लेख का प्रभाव तथा १५०० ई० के आसपास प्रकाशित 'नृन्यायन-निकाय' की भक्ति का मरसिंह पर प्रभाव देखकर वे मरसी को सन् १५०० ई० के बाद का मानते हैं।<sup>२</sup> यद्यपि मुंशीजी के तर्क नकारात्मक हैं और उनके हल पर उनका निर्णय सही नहीं सिद्ध किया जा सकता पर वस्तुतः उनका निष्कर्ष सपन्नग सही है।

इस विषय में निम्नलिखित बातें विचारणीय ह—

(१) जामात-निवासी कवि बिष्णुदास ने अपने 'जुंवरबाईनु मोसाळु' नामक काव्य-ग्रंथ में मरसिंह मेहता द्वारा 'मीरीबाईने बीस धत्रीत मरें' कहाया है।<sup>३</sup> बिष्णुदास ने अपनी कुछ रचनाओं की रचना-तिथि दे दी है उसके आधार पर उनका जन्म सन् १६०० के आसपास माना जाता है<sup>४</sup> और उनके 'जुंवरबाईनु मोसाळु' का रचना-कास मुजरासी साहित्यान्वयकों में सन् १६२४-२८ के लगभग निर्धारित किया है।<sup>५</sup> स्पष्ट है कि मीरी का प्रत्यक्ष परिचय पानेवाले घनेक व्यक्ति बिष्णुदास के समय में रहे होंगे और वे अपने

(१) मुजरात एंड इदल लिब्रेरी, पृष्ठ २००

(२) वही, पृष्ठ १२२-२००

तथा 'मरसीया भक्त हरिणों'—प्रस्तावना मुंशी, पृष्ठ ४२-८२

(३) कवि बिष्णुदास का 'समापन नलायन' जुंवरबाईनु मोसाळु, ईडी प्रकटकर्ता भा० नि० मेहता (सं० १२७७) पृष्ठ २८

(४) कवि-चरित, के० का० शास्त्री पृष्ठ ३४७

व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर जानते रहे होंगे कि मरसी मीरा के समय में ये या नहीं।

विष्णुदास ने इन लोगों के अनुभव और विरवाओं के आधार पर ही अपने रस का निर्माण किया होगा। इस प्रकार मीरा के विप्लव की घटना के बाद तक नरसिंह मेहता का जीवित रहना समकालीनों के प्रत्यक्ष अनुभव और तत्कालीन वास्तविकताओं के आधार पर किए गए उल्लेख से ही सिद्ध हो जाता है।

(२) नरसिंह मेहता ने अपने एक पद—‘तुं तात बीर साहामु जोखे घामळ’ में स्वयं कहा है—मीराबाईना बिर्ल धमूत कीना। ‘जूनी प्रत’ न भिन्न के कारण ही इसे प्रामाणिक नहीं मान लेना चाहिए।

(३) राजस्थान और मध्यभारत में एक अनुसूति है कि ‘नरसी मेहता को माहेरो’ संवत् १६१९ में कृष्ण मगवान ने भक्त की साज रखने के लिए भरा था। रतनाबायी द्वारा उचित और शिक्षक द्वारा सशोभित माहेरो में इसी आशय का बोधा भी है—

“सोभा सी सोलो लखो बिक्रम संवत् आम  
बनबासी इकियासिया साके सासीबाहान  
भक्ता के हित कारण बर हरि बांध्यो मोड़  
माहेरा में रुपिया सागा छपन जोड़”

(४) मीरा-छाप के एक पद में नरसिंह मेहता का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> अगर इसे प्रामाणिक मान लिया जाय तो भी इसका प्रटना ही अर्थ है कि मीरा के जीवन-काल में नरसिंह एक आधार प्राप्त भक्त के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

मान्यवरकर धुब के० एम मुंदी के तकें और उक्त तथ्यों के प्रकाश में नरसिंह मेहता को मीरा का समकालीन मानना ही उचित है।

(१) नरसिंह मेहता कृत काव्य-संग्रह, संग्रहकर्ता अने संशोधक इच्छाराम सूर्यराम बैठाई पृष्ठ ४७२

(२) नरसी मेहता को बड़ी माहेरो, प्रकाशक बनबारीलाल बपिय पृष्ठ १६

(३) पुरुरती साहित्यम् रत्नावर्धन के० ना० शास्त्री, पृष्ठ ८०



संभव है कि मूर की तरह से वे मीरा से धायु में बड़े रहे हों पर वे मीरा के विप्लान की पटना के बाद तक जीवित व्यपय वे । अतः पर्यसह मेहता की ब्रजभाषा की अधिकार्य रचनाएं (अगर प्रामाणिक भागी आर्य) मीरा के काल की ही हैं । हो सकता है कि कुछ मीरा के रचना-काल के पूर्व की भी हों ।

भास्य—गुजराती को कहवाबद्ध आख्याय काव्य से संबंध करने वाले प्रथम कवि भास्य माने जाते हैं । उनका काल कहवाभास्य मुघी सं० १४८२ से १५३५ तक कु० मो० खबेरी सं० १४६५ से १५६५ तक और ए० ख० मोदी सं० १४६१ से १५४५ तक मानते हैं । भास्य मूलतः राम के मरुत वे पर इन्होंने कृष्ण-काव्य भी लिखा । इनकी 'भागवत-ब्रह्म स्फूर्ति' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १७४५ की है । उसमें भास्य की छाप के ३ ब्रजभाषा-पद प्राप्त हैं—<sup>१</sup>

- (१) मैया मोहे भावे बनि भात<sup>३</sup>
- (२) प्रज को सुख समरत हो स्वाम<sup>४</sup>
- (३) कहो मैया कसे सुख पाऊँ<sup>५</sup>
- (४) प्रब पड़वे को प्राया दिन<sup>६</sup>
- (५) सुत मैं मुनी लोक में बात<sup>७</sup>

ह० डा० कोटाबासा द्वारा प्रकाशित पाठ में एक पद और मिलता है—

- (६) कौल तप कीनारी माई नंद बदनी

भावना की दृष्टि से ये पद सामान्यतः मूर के पदों से मिलते हैं । के० बा० छात्री इसी आधार पर भास्य को मूर का समकालीन (सं० १५३० में वर्तमान) मानते हैं ।<sup>८</sup> अस्तुतः भास्य के काल का निर्णय एक बड़े महत्त्व की चीज है । अधिकार्य गुजराती दोषकों के आधार पर तो भास्य का काल

- (१) गुजराती साहित्यपत्र रेखावर्धन पृष्ठ ८३
- (२) गुजरात विद्याभार प्रथ-संख्या १५७ (धी प्रबालाल जाली के वैयक्तिक तपह में भी इसकी एक प्रति सं० १७५१ की थी, जो छात्र में वर्धित थी ।)
- (३) पद-संख्या २१२      (४) पद-संख्या ५१४      (५) पद-संख्या २१५
- (६) " २१६      (७) " ५१६
- (८) पहले तो भारतीय भास्य को ब्रजभाषा का अधिकार्य तक मानत थे । ('भास्यः ब्रजभाषाभाषी आदि कवि'—हिन्दुस्तान दैनिक, ११ नवम्बर १९६४)

मूर के काम से पूर्व पड़ता है ।<sup>१</sup> जो हो पर प्रस्तुत पदों की भाषा उनकी प्राचीनता के सामने प्रत्यक्षायक लगा देती है और यह असंभव नहीं कि भाषी शोध इन्हें किन्हीं ब्रह्ममन्त्रिणी मूर-साहित्य-ग्रन्थी का सर्वज सिद्ध कर दे ।

मीरा अपने जीवन की संध्या में—सं० १६०० के आसपास द्वारिका में थी । तरविह मेहता के प्रतिरिक्त भासग की रचनाओं के संपर्क में भी आई होंगी ।

केशव हरेराय—यहाँ पर एक ऐसे कृष्ण-काव्यकर्ता का उत्सव करना अप्रासंगिक नहीं होगा जिन्हें सांप्रदायिक भावना या शीमकों की भूमि के कारण प्राचीन मान लिया गया है ।

गुजराती के एक कवि हैं प्रभामपाटन क निवासी 'केशव हरेराय' । उन्होंने ब्रजभाषा में भी कविताएं लिखी हैं ।<sup>२</sup> उनका 'कृष्ण-कीर्ति-काव्य' अत्यन्त प्रसिद्ध है । उनकी हस्तलिखित पोथी के हाथिए में एक स्थान पर 'संवत् १५२६ वर्ष उत्सव' लिखा है जिसके आधार पर स्व० ब्रम्हासास बानी न उसका रचना-काल सं० १५२६ माना है । प्रो० मनमोहनसाल मगरी तथा प्रो० रमणलाल दाह जैसे आधुनिक विद्वान भी कुछ संशय के साथ यही (सन् १५७३) मानते हैं ।<sup>३</sup> परन्तु ग्रंथ में 'तिथि सबत् तिथि बसका दोस' दिया हुआ है जिसका अर्थ १५ (तिथि) ६२ (तिथि बसका = ६० + दोस अर्थात् २) सेना अधिक उचित लगता है १५ (तिथि) २६ (दस का दोस २ + तिथि ६) नहीं । फिर जैसा कि रामलाल मोदी लिख कर चुके हैं प्रथम में उल्लिखित मंगलसूत्र का नाम 'शोभा' तथा ब्राह्मणी का दिन है । 'घटतारिका मखन' 'बड़ि योग' और 'बालक' करण तो स १५६२ की आग्निव शुधी १२ गुम्हार को पड़ता है ।<sup>४</sup> अतः केशव हरेराय का कविता-काल मीरा के कविता-काल से पूर्व नहीं ठहरता दोनों समकालीन ही हैं ।

(१) श्री भाषी को भासग के प्राचीन निवास-स्थान से एक जन्म-गुच्छती प्राप्त हुई है, जिसके अनुसार उनका जन्म संवत् १४६९ में हुआ था ।

(२) इस काव्य की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

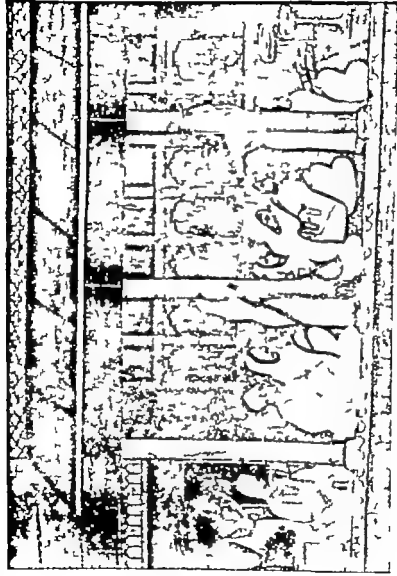
"त्यज प्रभिमाल गोबाली । धरय धायो श्रीवममाली  
माके करण जतुर्मुख सेरे, फिकर हीय कपाली ॥—प्रादि ॥

गुजराती साहित्यगुं रेखावर्णन लब्ध १ नो, पृष्ठ ६७

(३) गुजराती साहित्यगुं रेखावर्णन मनमोहनसाल मगरी रमणलाल दाहपृ० २६

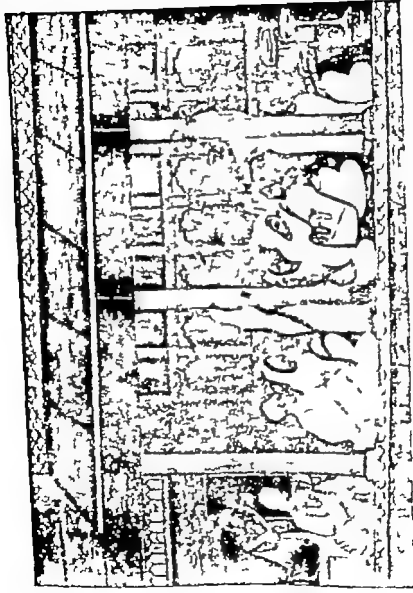
(४) गुजराती साहित्यगुं रेखावर्णन लब्ध १ नो, पृष्ठ ६८





मीरीगौरी का प्राचीनतम उपसम्भवित्र  
 ( विप्रसम्भवित्र संस्कृत )  
 प्राचीनी के सम्भवित्र—मीरी, प्रसूतों के सम्भवित्र





मीराबाई का प्राचीनतम उपलब्ध चित्र  
( बिराजगढ़ संग्रह )

घाटली के समय — मीरा, प्रसूतों के साथ

प्रकृतविद्युज्जमगतीम्यरलगतिहोएन्स्  
 मतिआशरीपीयाप्रमश्रीमूलजंलावतप्रगरी  
 लयिमद्युआशरी॥१॥सुनगसरीवरश्यामश्री  
 मिश्रमुदीतननिताद्वारा॥सिरीधरपिस्सगे  
 श्रीलामिलीलीउतश्रुदासयत्रागारी॥२॥  
 ॥अधामरसीप्रगोपासलालमेसंगमेइ  
 उशिर्धधुरास्थितानिप्रमाणलानुत्तुमावली  
 अनरलादीतुतजातुतातछुटे॥प्रोरीगयाती  
 लप्रअधररीगश्रीररगश्रीगश्रीगमानोममम  
 थलुटे॥अश्रुदासप्रभुगिरीधरभागरसुरतदी  
 उरामिलीलएश्रुटे॥॥आराम॥अश्रीधुन  
 मोक्षपन्ननिनदनीजातसमिरएआतेआवे  
 मुरयपेररवेदअश्रुलरछुरीमधुरीयातिग  
 जंगनिलजावता॥आ॥पोदिनबेलकबालेना  
 गरसुरतद्वारीयातुलतगावे॥दोउसुनदरए  
 जलमदारसत्रासतमदनठोरनदीपीवि॥२॥  
 दरधुनजरुयिउदयप्रिराजीतमिनतारावदी  
 दारदजावतामोरीअनुगिरीधरछुनिरजत  
 वदनछोटिरवियोतिजकावता॥३॥॥आराम॥  
 नालाडीनामोरनएआएमेरअंगनीअधरनी  
 रंगनीहोप्रोलेकाजलप्रोसल्लोटतीलप्रमले  
 श्राहरीगोपागमा॥देपतसुभारेनुनभोलसरस्त  
 लिजनहुमोदनापित्तपारोप्यणसजलानीपुन  
 मरुदरपथकोमावप्रसुरगुथाधोनाभेजाका

ममिति॥ श्रीरामप्रसादान्। संवत् १५५५  
 वरुणश्रावणशुद्धि १२ रविवारे नटप  
 १ वास्तव्यं ज्ञानपीठर नागरजाती मह  
 यस्तु जीस्तु तन्मल्लससच यवुधिराता  
 श्रीनारायणगेप्रसादे प्राक्तनगीगत्र  
 एण्डपर्वसंश्रुयेष्टि श्रीनारायणोच  
 रेशोष्टु॥ शुभनयतु डलीएमस्तु  
 पदप्राठडयो शुभनयतु॥ अष्टम १५  
 १५५१ रागसत्तर सरथात्रयविरा  
 रयन्नारनशुभेनचतु॥ ०॥  
 । न । न । श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥  
 गीशावस्यवदगेलस्त्रीयस्थपव  
 सीयस्यास्तिरुदयेसेवीनरुमेह  
 ईनजे॥ विनासगतेगमजसगायडि  
 पदोष्टोरुनुमन्त्रणगायालस्त्रीश्रु  
 यष्टिमस्तरेयाथागोरातेष्टिवयनी  
 भस्ते॥ ॥ न । श्रीरामायनम॥







आदी  
 राजभारु आयेगा भुजशोभाशी॥ मधुरा  
 ब्रीनारने रस्यत ज्ञाने दसुजराशी॥ १॥ आ  
 एष्टिगां धत एष्टिनां यत्त एष्टित पीना दहरी॥  
 नंदुशो दहरी पुरन पुन मगत अन्न ना  
 शी॥ २॥ आयेगा आदी येयी न जेशी हुनीने  
 शी वृद्ध मजारी॥ मुक्त भुया एरमार शरी  
 जेशी उवाशी॥ ३॥ आयेगा पीना वर वृद्धी  
 राज त अर गजशो दहरी॥ ग्रीरि वरशेन  
 नृपुण्ड्र मीराशी दहरी॥ ४॥ — ॥ ॥  
 ॥ मेरी गाड़ी ने ननीने दहरी शो ता दीनय  
 उ नशाम मनो घर सीत नमनये ली जेतो॥ ५॥  
 जेशे वन भुष्टयो ले अष्टीत आ न वीद  
 पी जेतो॥ वीसरी देह गेह सुजम परत पर  
 पस पान ग्री जेतो॥ ६॥ भे॥ तजी वी जाम  
 यली महु खुसी पुहरी वीन वीया जी जेतो॥

भोटा ओलम जोली अमझाग ले॥  
 जा एगो थरा पीरि॥ अल गोर हो झं  
 अज गट जोले जा सुमधुसागा इति॥  
 मथम दूध पुतना भारी ब्रसर हो छे न  
 शरीरी॥ अट जादी वरा अइ लेन  
 गभी अइ वन जा उवाही री नर सही थो  
 यो रे चामी न ले मली अओ पुन रे पीना  
 ट वरा इति॥ १॥ — ॥ ६॥ —  
 राग भास॥ तेरो रूप दे जल रक्षी देखे थो  
 देह न ही डेर परी को रे म दूरी॥ मात पी  
 ना लो क म दू स बनो भली रक्षी॥ हीर  
 देखे दे रत नो ही छपी नागर न रक्षी॥  
 मेरे मने एसी आ ही लो ज जाने न रक्षी  
 मीरा अल गीर धरा की न को न जान पर  
 अओ तेरो रूप दे जल रक्षी — — —



# संदर्भ-ग्रंथ

हिन्दी —

प्रमुखतः मोरारि के जीवन और काव्य से संबंधित ग्रंथ

- १—मीरों एक अध्ययन
- २—मीरों-संक्षिप्ति
- ३—मीरों-साधुजी
- ४—मीरों जीवन और काव्य
- ५—मीरों-वचन
- ६—मीरोंबाई का काव्य
- ७—मीरों-पदावली
- ८—मीरों
- ९—मीरोंबाई की पदावली
- १०—मीरों की प्रेम-साधना
- ११—मीरों-बृहद्-मह-संग्रह
- १२—मीरोंबाई के मंगल
- १३—मीरोंबाई की दाय्यावली
- १४—मीरोंबाई
- १५—मीरोंबाई का जीवन चरित्र
- १६—मीरोंबाई का जीवन चरित्र
- १७—श्री बलविरोचणि मीरोंबाई के मंगल
- १८—शक्तिमयी मीरोंबाई
- १९—मक्त मीरों
- २०—मीरों की पदावली
- २१—आदर्श मक्त अध्याय मीरोंबाई
- २२—मीरों और उनकी प्रेमवाणी
- २३—मीरोंबाई
- २४—मीरों स्मृति ग्रंथ
- २५—मीरों मुखा शिषु
- पदावली दाय्यावली
- नोटसमूह स्वामी
- संस्कृत-साधुजी
- महामीरोंसिंह महामोक्ष
- मुरलीधर श्रीवास्तव
- मुरलीधर श्रीवास्तव
- विष्णुभाषी 'मंजु'
- वामदेव धर्म
- परमेश्वर चणुबेदी
- मुक्तेश्वर मिश्र 'महाप्र'
- पदावली दाय्यावली
- ईश्वरप्रसाद रामचन्द्र
- वाल्मीकिप्रसाद, बेतवेडियर प्रस
- श्रीहृण्णाल
- मुंशी देवीप्रसाद
- कालिदासप्रसाद श्री
- विश्वेश्वर प्रेम बनारस
- वसन्तप्रसाद मेहता
- व्यक्ति हृदय
- सदानन्द भारती
- पुष्पलोकप्रसाद पुरोहित
- आनन्दजी देव
- वसन्तप्रसाद मिश्र
- संदीप हिंदी परिवर्त
- स्वामी दाय्यावली स्वर्ण

## इतिहास ग्रंथ (राजनेतिक)

- |                                     |                             |
|-------------------------------------|-----------------------------|
| २६—महसोत मेरुसी की क्यात (दो भाग)   | काशी मीनारी प्रचारिणी समिति |
| २७—उदयपुर राज्य का इतिहास (२ भाग)   | गौरीशंकर हीराचंद धोम्य      |
| २८—बोधपुर राज्य का इतिहास           | गौ० ही० धोम्य               |
| २९—मारवाड़ का इतिहास (२ भाग)        | विश्वेश्वरनाथ रेड           |
| ३०—महाराणा सोपा                     | हरमिनाथ सारदा               |
| ३१—राजपूताने का इतिहास (भाग १)      | अगदीशसिंह गहलोत             |
| ३२—बीर-विजोद                        | कविदास वामनदास              |
| ३३—बंश मास्कर (काव्य)               | सूर्यभक्त मिश्र             |
| ३४—चतुरकुल चरित                     | ठाकुर चतुरसिंह वर्मा        |
| ३५—जयमल बंशप्रकाश                   | गोपाशंसिंह राठौर मेड़िया    |
| ३६—ऐतिहासिक संकीर्ण निबंध (काव्य ६) |                             |
| ३७—प्रकाश नामा (भाग १)              |                             |
| ३८—महाराणा जल प्रकाश                | ठाकुर चतुरसिंह खेसावत       |

## विविध—

- |  |                              |
|--|------------------------------|
| ३९—मष्टछाप बीर बल्लभ संप्रदाय                        | दीनदयालु गुप्त               |
| ४०—मष्टावध सिद्धांत के पर स्वामी<br>हरिदास जू के     | टीकाकार जगिताप्रसाद पाठक     |
| ४१—मकबरी दरबार क हिंदी-कवि                           | सरयूप्रसाद धरबास             |
| ४२—ईरान के मुंजी कवि                                 | बकिविहारी तथा कन्हैयादास     |
| ४३—उत्तरी भारत की संत-परम्परा                        | परशुराम चतुर्वेदी            |
| ४४—कबीर-कसौटी  | कैहनसिंह                     |
| ४५—काव्यशास्त्र                                      | मगीरज मिश्र                  |
| ४६—कबीर  | हजारीप्रसाद द्विवेदी         |
| ४७—बीठम भट्टिका में तुलसी का वृत्तान्त               | विश्वनाथप्रसाद मिश्र         |
| ४८—ग्रंथ साहिब अर्बान सद्गुरु<br>की परीवर्तन की बानी | गरीबदास                      |
| ४९—बैतम्य चरितचरणी अण्ड ५                            | प्रमोदस ब्रह्मचारी           |
| ५०—बीरामी वैष्णवम की बाठी                            | महमी बैकटेश्वर प्रेस संस्करण |
| ५१—  | बाकोर संस्करण                |

१२—दो सौ बावन बीप्पवन की बार्ता

१३—ठमिल और उसका साहित्य

१४—तुमसी-संभावनी

१५—नरसी मेहता को बड़ो माहेरो

१६—नरसी मेहता का बड़ा मामेरा

१७—नागर समुच्चय

१८—प्राचीन बार्ता-साहित्य (प्रथम भाग)

१९—पुरानी हिन्दी

२०—प्रेममक्ति योग

२१—रससा साहित्य की कथा

२२—रजमापा

२३—रजमापुटी सार

२४—रामवत संप्रदाय

२५—भारत की विभक्तता

२६—मल्ल कवि व्यास जी

२७—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ

२८—महिषा-मुदुबायी

२९—मूल गोसाईं चरित

३०—रस-मीमांसा

३१—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित

ग्रंथों की खोज— तृतीय भाग—

३२— चतुर्थ भाग—

३३—राधा-वत्सल संप्रदाय सिद्धान्त और

साहित्य

३४—राम-भक्ति में रक्षिक संप्रदाय

३५—रामरसिकावली

३६—राजस्थानी भाषा और साहित्य

३७—राजस्थान का पियस साहित्य

३८—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ

सम्पादक-ब्रजभूषण शर्मा तथा  
द्वारकादास पारीक

पूर्णमुद्रण

नागरी प्रचारणी सभा

प्रकाशक—वनवासीसास बधीष

सदायिककरण रामरतन

केमराज श्रीकृष्णदास बम्बई

मागरीबास सं वा रामाकृष्णदास

संपा द्वारकादास पुस्त्योत्तम परीक

के ठेक्सिठोरी मनु नामवरसिंह

देवदास महाराज डाकोर

सुकुमारसेन

मनु मोलानाथ शर्मा

बीरेश्वर शर्मा

बियोगी हरि

बलदेव उपाध्याय

राय कृष्णदास

बामुदेव मोस्वामी

सावित्री सिन्हा

मुंशी देवीप्रसाद

बेणीमाधवदास

रामचन्द्र शुक्ल

उदयसिंह भटनागर

मयरचंद नाहटा

विजयेन्द्र स्नातक

भगवतीप्रसाद सिंह

महाराज रघुराजसिंह

मोतीलाल मेनारिया

मोतीलाल मेनारिया

प्रधान संपा० हजारीप्रसाद द्विवेदी



- ७६—राजस्थान की आठियाँ  
 ८०—विचार-विमर्श  
 ८१—वैष्णव धर्म  
 ८२—संतकवि हरियाँ-एक अनुशीलन  
 ८३—संघीतसार  
 ८४—सन्तबाणी संग्रह  
 ८५—संघीत राग कल्पद्रुम  
 ८६—साहित्य वाचस्पति सेठ कन्हैयालाल  
 पोद्दार धर्मिनन्दन ग्रंथ  
 ८७—सूर और उनकी साहित्य  
 ८८—सूरसागर  
 ८९—श्री बयालीस बीला बाणी  
 ९०—श्री नोदान्दा कुछ गीतावली  
 ९१—सूफ़ी मठ और हिन्दी साहित्य  
 ९२—श्री कुव संक्षेप साहित्य  
 ९३—दीहित हरिबंध और उनकी साहित्य  
 ९४—श्री भक्तमाल  
 ९५—श्री राधा का क्रमविकास  
 ९६—शिवसिंह सरोज  
 ९७—हिंदी काव्य में निर्गुन सम्प्रदाय  
 ९८—हिंदी साहित्य  
 ९९—हिंदी साहित्य की भूमिका  
 १००—हिंदी साहित्य का इतिहास  
 १०१—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक  
 इतिहास  
 १०२—हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि  
 १०३—हिंदी बालिक कथाओं के भौतिक धर्म  
 १०४—हिंदू साहित्य का इतिहास  
 १०५—मिथवन्धु निगीर (प्रथम भाग)  
 १०६—भारतीय साधना और गूर साहित्य

- बभरंगलाल लोहिया  
 चम्बरवी पाण्डेय  
 परशुराम चतुर्वेदी  
 जर्मन् बह्मचारी  
 महाशय सवाई प्रतापसिंह देव  
 रैवासणी—वेसनेबियर प्रेस  
 कृष्णलाल व्यासदेव रामसामर  
 प्रधान संपादक—बासुदेवधरण  
 मयवाल  
 हरबंधलाल वर्मा  
 नामरी प्रचारिणी सभा काशी  
 श्रीहित द्रुवदास  
 अनुबाबक—सम्प्रदायार्थ  
 विमलकुमार वैम  
 शिरोमणि पुष्पाय प्रबन्धक  
 कमेटी समूहसर  
 ललिताचरण नोस्वामी  
 सम्पादक—कमलका  
 धर्मसूत्रवास पुष्प  
 शिवसिंह सेमर  
 पीठान्वरदा बड़वाब  
 इबारीप्रसार द्विबेदी  
 इबारीप्रसार द्विबेदी  
 रामचन्द्र गुप्त  
 रामकुमार वर्मा  
 रत्नकुमारी  
 त्रिवेणीप्रसाद सिंह  
 भूम केकर पासों व तासी  
 अनु० लक्ष्मीधायर बाण्योय  
 मिथवन्धु  
 मुंशीराम वर्मा

१०७—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपयुक्त भेष

१०८—भारतीय वर्णन

१०९—भारतीय वर्णन

११०—हिंदी की मराठी संतों की बेग

१११—गुजराती

गुजराती

१११—कवि चरित (भाग १ २)

११२—कुंवरदासनुं नामेक

११३—गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो

११४—गुजराती साहित्यनुं रेखा-वर्णन

खंड १ लो

११५—गुजराती साहित्यना स्वरूपो

११६—गुजराती साहित्य (मध्य काशीन)

११७—गुजराती साहित्यनु रेखा वर्णन

११८—बीरसी वैष्णवनी बाता

११९—कुनु नर्म गद्य—पुस्तक १नुं

१२०—२३२ वैष्णवनी बाता

१२१—बभाराम कृत काव्य संग्रह

(भीरा चरित)

१२२—नरसिंह मेहता कृत काव्य-संग्रह

१२३—प्राचीन साहित्य धंक बीजो

१२४—प्राचीन काव्य-सुभा (भाग १ २ ३)

१२५—प्राचीन काव्य भाषा (भाग १)

१२६—मक्तमणि प्रमथ

१२७—महाजन मंडल

१२८—मीराबाई

१२९—मीराजी भक्ति गीतो

१३०—मीराजी प्रेमबाणी

१३१—मीरा वासी अनम अनम की

रामनाथ शास्त्री

बसदेव उपाध्याय

उमेश मिश्र

विनयमोहन शर्मा

माताप्रसाद गुप्त

के० का० शास्त्री

संपा भगनभाई प्रभुदास देसाई

कृष्णभास मोहनभास ऋगेरी

के० का० शास्त्री

म० र० मकुमदार

अनन्तराय रावत

मनसुखभास ऋगेरी तथा

रमणभास शाह

ग्रहमशाबाद संस्करण

संपा नर्मदाशंकर भाससंकर

प्रका० बसुभाई अयनभास देसाई

संपा० नन्दकिशोर

संपा० इच्छाराम भूर्पराम देसाई

संपा० भा० मेहता

संपा० अणनभास विद्याधर रावत

प्रकाशक हरगोविन्द हारकाशस

कोटभासा तथा भाषाशंकर शास्त्री

गोपालराम प्रभुधराम मेहता

मयनभास नरोत्तमदास पटेल

भानुसुखराम भिर्गुणराम मेहता

विवासी बेन भट्ट

श्री मधुर

देवाशंकर सोमपुरा

१३२—मीराबाईनी भजनो

१३३—मीराबाई

१३४—मीरा-माहात्म्य

१३५—वीष्णव भक्तो संक्षिप्त इतिहास

१३६—राघ मण्डसनी गरबिघो

१३७—बृहत्-काव्य-बोहन (भाष १, २, ५, ६, ७)

१३८—सती मण्डस

१३९—साक्षरमासा

मराठी

१४०—वाचा पंचक श्री सप्त गाथा

१४१—संत मीराबाईचा वाचा

१४२—मीराबाई भजन भाष्यार क्षर्णम्

मीराबाई कृत पदपल संग्रह—

१४३—मल्ल सीसामृत

१४४—श्री तुकाचम चरित्र

१४५—महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोष

१४६— " " (पुरवखी)

१४७—चरित्र मीराबाई

हरसिद्धभाई बबुभाई दिवेष्टिया

सहसंग मण्डस—गरनाचण मंदिर

मुंबई—२

राजाबाई

गुर्गांवकर केवसराम सास्त्री

प्र हेमराज वमानजी सीकजी सेरी

इच्छाराम सूर्यराम देसाई

केवळजी विश्वनाथ

जबसुखसान ज्योतिषी

संपादक अर्चक हरी घापटे

वासकुण्ठ सक्षम पाठक

श्री लोबिन्दराज मेयवा कार्नेकर

महीपति

जक्षमण रामचन्द्र पांमारकर

श्रीपी नामा

संस्कृत भाषा

१४८—नारद भक्ति सूत्र

१४९—ताण्डिस्य भक्ति सूत्र

१५०—श्रीमद्भागवत

१५१—श्री वीष्णवमताञ्ज भास्कर

१५२—छांदोग्य उपनिषद् कठोपनिषद् भाषा

१५३—आग्नेय

१५४—माहा सतसई

पत्र-पत्रिकाए

१५५—धनुषीतन जनमार्गती राजस्थानी धीप-पत्रिका हिन्दुस्तानी बीणा

संतवाणी देशबुत पारिजात भारती नागरी प्रचारिणी पत्रिका  
कल्याण, राठु-वाणी इनके धनक प्रादि का उत्तेज यथास्थान कर दिया  
गया है ।

हस्तलिखित ग्रन्थ, सूची-पत्र तथा जोड रिपोर्टें

११६—प्रबन्ध समा सम्बन्ध, काही सकनी नाइवेरी नडियाड विद्या-समा भद्र  
प्रहमरावाक प्राच्य विद्या मंदिर बड़ीवा रामझार बोली वाचकी उदयपुर,  
रामवासी संशोधन मण्डल बुनिया (पश्चिम सामनेष्ट) राजवाडे संशोधन  
मण्डल बुनिया पुस्तक-प्रकाश बोमपुर सरस्वती मण्डार पुस्तकालय  
उदयपुर मगरचन्व नाहुट्य का संग्रहालय बीकानेर पुरोहित संग्रहालय  
बमपुर, काही नागरी प्रचारिणी समा काही साहित्य सम्मेलन संग्रहालय  
प्रयाग प्राच्य विद्या मंदिर उज्जैन के सूची-पत्र और हस्तलिखित धन ।  
इनका भी यथास्थान उत्तेज कर दिया गया है ।

## अप्रेजी

- |   |                        |
|---|------------------------|
| 1 A Monograph on Mirabai  | S. S. Mehta            |
| 2 Alvar Saints  | Swami Sidhnath Bharati |
| 3 An Indian Ephemeris   | S. Pillai              |
| 4 An Outline of the religious<br>literature of India              | J. N. Farquhar         |
| 5 Annals and Antiquity of<br>Rajasthan                            | James Tod              |
| 6 Archeological Survey of India<br>Annual Reports-1907-8, 1911 12 |                        |
| 7 Book of Indian Eras   | Alexander Cunningham   |
| 8 Early History of the Vakhnava<br>Sect                           | Rai Choudhary          |
| 9 Encyclopaedia Religion and<br>Ethics Volume II                  |                        |
| 10. Encyclopaedia of Britannica<br>Vol. VI                        |                        |

- |     |  |                    |
|-----|--|--------------------|
| 11  | Gazetteer of the Bombay Presidency Vol. III-Khaira and Panch Mahals.   |                    |
| 12. | Glories of Marwar and glorious Rathors                                 | Bhishahwarnath Ren |
| 13  | Gujrat and its Literature  | K. M. Munshi       |
| 14  | History of Gujrat  | Bele               |
| 15  | Hymns of Alvar   | J S M Hooper       |
| 16. | Influence of Islam on Indian Culture                                   | Tarachand          |
| 17  | Indian Antiquary-August, 1903<br>Legend of Mirabai, the Rajput Poetess | M Macauliff        |
| 18  | Journal of the Royal Asiatic Society-1905                              |                    |
| 19  | Linguistic Survey of India-Vol. IX                                     | George Grierson    |
| 20. | Medieval Mysticism   | K. Mohan Sen       |
| 21  | Mewar and Mughal Emperors  | G N Sharma         |
| 22. | Mirabai, life and times  | H. Goets           |
| 23  | Monograph on the religious sects in India among Hindus                 | D A. Pal           |
| 24. | Modern Vernacular Literature of Hindustan                              | George Grierson    |
| 25. | Ragas and Raginis  | O C. Gangoli       |
| 26. | Rasmah   | A. K. Forbes       |
| 27  | Religious Sects of Hindus  | H H. Wilson        |
| 28. | Satvatas   | S. K. Aiyenger     |
| 29  | Songs of Mirabai   | R. C. Tondon       |
| 30  | Some Aspects of Society and Culture during the Moghal age              | P N Chopra         |
| 31  | The Sultanate of Delhi   | A L. Shrivastava   |
| 32. | The Early writers on Music   | V V Narsingachari  |
| 33  | Vaishnava Literature of Medieval Bengal                                | Dinesh Chandra Sen |
| 34  | Selection from Classical Gujarati Literature                           | H J Taraporewala   |
-

